भोजदेवकृत राजमार्तण्डवृतिसमेतम्

पातञ्जलयोगसूत्रम्

PATANJAL YOGA-SUTRA

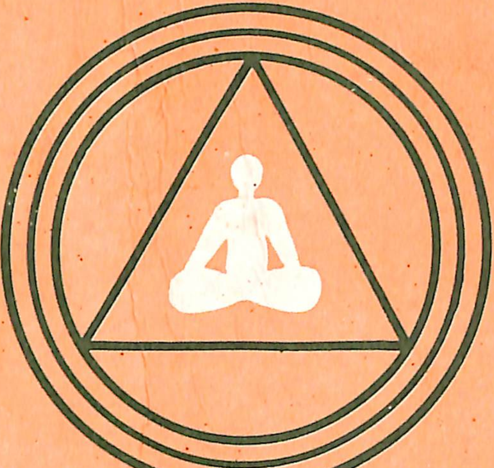

सम्पादक

डॉ0 रामशंकर भट्टाचार्य

हिन्दी व्याख्याकार

डॉ0 अमलधारी सिंह

शादीलाल ग्रन्थमाला न० ३

पातञ्जलयोगसूत्रम्

भोजदेवकृत राजमार्तण्डवृत्तिसमेतम्

धारेश्वरभोज-तद्ग्रन्थ-तन्मतसमीक्षा-पातञ्जलसिद्धान्तादि-
विवरणात्मिकया भूमिकया
विस्तृतहिन्दीव्याख्यया च संवलितम्

संपादकः
डॉ० रामशंकरभट्टाचार्यः
वाराणसी

हिन्दीव्याख्याकारः
डॉ० अमलधारी सिंह
भूतपूर्व प्रधानाचार्य, भैंसवाड़ा डिग्री कालेज
लालगंज (रायबरेली)

भारतीय विद्या प्रकाशन
दिल्ली वाराणसी
(भारत)

प्रकाशक :
© भारतीय विद्या प्रकाशन
१. पो० बा० ११०८, कचौड़ो गली, वाराणसी-१
२. १. यू० बी० जवाहर नगर, बंग्लो रोड, दिल्ली-७

तृतीय संस्करण : 1997

मूल्य : 75/—

मुद्रक : जी० आर० प्रिंटर्स, गांधी नगर, दिल्ली-31

भूमिका

ऋषये परमायार्कमरीचिसमतेजसे ।
धर्ममेघप्रतिष्ठाय शान्ताय गुरवे नमः ॥

पतञ्जलिप्रणीत योगसूत्र पर धारेश्वर भोजदेव ने एक वृत्ति लिखी है, जो राजमार्तण्ड नाम से प्रसिद्ध है (स श्रीभोजपतिः····वृत्ति व्यधात्—सर्वान्तिम मङ्गलाचरण श्लोक तथा ग्रन्थारम्भ-स्थित 'पातञ्जले कुर्वता वृत्तिम्' वाक्य द्र०)। वृत्तिरूप व्याख्या का जो लक्षण मिलता है (सूत्रार्थप्रधानो ग्रन्थो वृत्तिः), वह इस व्याख्या में चरितार्थ होता है, अतः 'वृत्ति' पद का व्यवहार सार्थक ही है।[1]

सुगृहीतनामधेय डा० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त कहते हैं[2] कि भोजवृत्ति व्यासभाष्य की व्याख्या है। यह वस्तुतः अनवेक्षण है। भोजवृत्ति योगसूत्र की एक स्वतन्त्र व्याख्या है (व्यासभाष्य की नहीं), यद्यपि इसमें बहुत्र व्यासभाष्य की छाया उपलब्ध होती है। भोजराज ने व्यासभाष्य की कोई व्याख्या लिखी थी, इसका कोई प्रमाण ज्ञात नहीं है और दासगुप्त महोदय ने भी ऐसा कोई प्रमाण नहीं दिया है।

---

१. भोजवृत्ति के मत 'राजवार्त्तिक' के नाम से मणिप्रभाटीका में दो बार उद्धृत हुये हैं (१।५, ३।३३)। टीकोक्त राजवार्त्तिक निश्चय ही तत्त्व-कौमुदी (सां० का ७२) द्वारा स्मृत राजवार्त्तिक नहीं है। 'राजा' शब्द से टीकाकार को यह भ्रान्ति हुई है—यह स्पष्ट है।

2. Vyasa's bhasya commented on by Vacaspati Misra is called तत्त्ववैशारदी, by Vijnanabhiksu योगवार्त्तिक, by Bhoja in the tenth century भोजवृत्ति, and by Nagasa (seventeenth century) छाया व्याख्या (A History of Indian Philosophy vol I, p. 212). यहाँ दासगुप्त महोदय नागेशकृत छाया-व्याख्या को व्यासभाष्यटीका के रूप में स्वीकार करते हैं, यह अनवेक्षण ही है। छाया योगसूत्र पर स्वतन्त्र टीका है।

यह वृत्ति लघु है और वृत्तिकार स्वयं कहते हैं कि उन्होने व्याख्या को विस्तृत नहीं किया बल्कि विकल्पजाल का परित्याग ही किया हैं ('उत्सृज्य विस्तरमुदस्य विकल्पजालम्' इत्यादि ग्रन्थारम्भगत सप्तम मङ्गलाचरण-श्लोक द्रष्टव्य)। इस व्याख्या का प्रामाण्य पूर्वाचार्यों ने माना है। गोदावरमिश्र योग-चिन्तामणि (लेखनकाल १५ वीं शती का प्रथमांश) के आरम्भ में कहते हैं—

यद् व्यासवाचस्पतिभोजदेवैः पातञ्जलीयं निरणायि तत्त्वम्।
अन्यत्र सिद्धं यदपेक्षितं च तदत्र संक्षिप्य निरूपयामि ॥

(श्लोक ३)। श्री परशुराम कृष्ण गोडे महोदय ने इस ग्रन्थ पर विशद विचार किया है (द्र० Poona Orientalist, Vol IX, No. 1–2)।

योग के अन्यान्य आचार्य भी भोजवृत्ति का स्मरण करते हैं। शिवानन्द सरस्वती ने योगचिन्तामणि में (पृ. २०, १५२ और १७३ में) 'भोजदेव-कृत इस वृत्ति का उद्धरण दिया है। योगसूत्र की नागोजीवृत्ति (लघुवृत्ति) में एकस्थल पर भोज का मत प्रमाणरूप से उद्‌धृत किया गया हैं—अनुलोम-प्रति-लोमलक्षणपरिणामद्वये····इति भोजराजः ॥ (४।३)।

शाक्त भास्कर राय ने ललितासहस्रनाम के भाष्य में इस वृत्ति का उल्लेख किया है। ललिता के 'कैवल्यपददायिनी' नाम की व्याख्या में कैवल्य-स्वरूप के विषय में भास्कर कहते हैं—"कैवल्यशब्देन योगशास्त्रान्तिमसूत्रेण 'कैवल्यं स्वरूप-प्रतिष्ठा चितिशक्ते' रित्यनेन प्रतिपादितस्वरूपो मोक्ष उच्यते। चितिशक्ते-र्वृत्तिसारूप्यनिवृत्तौ स्वरूपमात्रेणावस्थानं कैवल्यमुच्यते इति भोजराजवृत्तौ" (पृ. १३२; मुद्रित योगसूत्रपाठ में ईषत् अशुद्धि है, जिसको ठीक कर यहाँ उद्‌धृत किया गया है)। यह पाठ मुद्रित भोजवृत्ति में (४।३३ सूत्र की व्याख्या में) यथावत् है[1] (आनन्दाश्रममुद्रित संस्करणगत पाठान्तर द्र०)।

---

१. तत्र आनन्त्येति भावप्रत्ययान्तपाठ इति भोजदेवः" (पृ. १५२; यह २।४७ सूत्र पर है); "भोजराज-व्याख्यानं तु न विद्यते विप्लवो····" (पृ. २०; यह २।२६ सूत्र पर है); "तत्र आसनस्थैर्ये सति····प्राणायाम उच्यते" (पृ. १७३; यह २।४९ सूत्र पर है)।

भोज का परिचय

वृत्तिकार भोज राजपूत जाति के अन्तर्गत परमारवंश में आविर्भूत हुए थे। प्रारम्भिक काल में परमारवंशीय नृपतिगण आबू पर्वत में रहते थे। बाद में इस वंश के राजाओं ने मालव देश में आकर अपना राज्य स्थापित किया। इन राजाओं की विद्यावत्ता एवं शौर्य के कारण उज्जयिनी एवं धारानगरी इतिहास प्रसिद्ध हो गयीं। भोज ने उज्जयिनी के स्थान पर धारानगरी को अपनी राजधानी बनाया। यही कारण है कि अनेक ग्रन्थकारों ने 'धारेश्वर' 'धाराधिपति' आदि नामों का प्रयोग भोज को लक्ष्य कर किया है। भोज 'रणरङ्गमल्ल' उपाधि से प्रसिद्ध थे।

परमार-वंश के प्रसिद्ध राजा कृष्णराज थे (आनुमानिक ९१४-९३४ ई०)। इस वंश के द्वितीय प्रसिद्ध राजा का नाम वाक्पति (अपरनाम मुञ्ज) था, जिनका शासनकाल ९७३ ई०से ९९७ ई० तक माना जाता है। इनकी अमोघवर्ष आदि कई उपाधियाँ थीं। मुञ्ज के बाद इनके भाई नवसाहसांक उपाधिकारी सिन्धुराज (या सिन्धुल) राजा हुए (आनुमानिक ९९७-१०१० ई०); वर्तमान वृत्तिकार इनके पुत्र हैं। भोज का राज्यकाल लगभग ४० वर्ष का था (आनुमानिक १०१८-१०६० ई०)। भोज १०६२ ई० तक जीवित थे, इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है (कल्हणकृत राजतरंगिणी ७।२५९), यद्यपि ऐसा प्रमाण भी मिलता है जिससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि भोज १०५४ ई० के बाद जीवित न थे (P. V. Kane : H. S. P., p. 250)। जीवन के अन्तिमांश में गुजरात-नृपति भीमसेन के साथ इनका विकट युद्ध हुआ और इस युद्धकाल में रुग्ण होकर वे दिवंगत हुये। सोमनाथ पर मुहम्मद गजनी के आक्रमण को भोज ने प्रतिहत किया था—यह ऐतिहासिक तथ्य है।

राजा होते हुये भी प्रामाणिक ग्रन्थों के प्रणेता होने का उदाहरण विरल है। यही कारण है कि विद्वानों ने भोज के मतों का उल्लेख करने के समय सहृदय होकर श्रद्धा-प्रदर्शनार्थ 'राजा' शब्द का प्रयोग किया है (द्र० विद्याधरकृत एकावली की तरला टीका, पृ० ९८)

ऐसा प्रतीत होता है कि भोज शैव थे। उन्होंने एक बृहत् संस्कृत पाठशाला

का निर्माण कराया था, जिसमें सरस्वती की एक भव्य प्रतिमा भी थी। यह प्रतिमा इस समय इंग्लैंड के 'ऐतिहासिकसंग्रहालय' में है। भोज ने अनेक मन्दिरों का भी निर्माण कराया था, जिनके अवशेष आज भी अंशतः मिलते हैं।

भोज की दानशूरता प्रसिद्ध है। मेरुतुंग, वल्लालसेन आदि के ग्रन्थों से भोज के सर्वतः प्रसारी यश की सत्ता अनुमित होती है। जैन विद्वानों के साथ भोज का प्रीतिपूर्ण सम्पर्क था। इस विषय में भक्तामरचरित ग्रंथ द्रष्टव्य है।[१]

विद्या-प्रस्थानों में भोज का प्रामाण्य

योगविद्या के अतिरिक्त अन्यान्य शास्त्रों में भी भोज का प्रामाण्य माना जाता है, इस विषय में कुछ प्रसिद्ध स्थल उद्धृत किए जा रहे हैं—

१—अमरकोश की टीका में क्षीरस्वामी ने अनेकधा (श्री) भोज के मतों का उपन्यास किया है (पृ० १७, ४१, हरदत्त शर्मा संस्करण)।

२—क्षीरतरङ्गिणी (रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रकाशित संस्करण) में भोज के शब्दसंबन्धी मत उद्धृत हुए हैं (पृ० १४, ११२, ११४, १५४)।

३—सुभूतिचन्द्रकृत अमरकोश-टीका में भोज के मत उद्धृत हैं ; द्र० गोडे कृत Date of Subhuti Chandra's Commentary on the Amarakosa लेख (Kuppuswami Shastri commemoration Volume पृ० ४७–५१)।

४—अष्टाङ्गहृदय की केरली व्याख्या में (पृ० ४०३) भोज के वाक्य उद्धृत हैं।

५—डल्हण ने सुश्रुतटीका में भोज के मतों का उल्लेख किया है।

६—चिकित्सासंग्रह और उसकी टीका तत्त्वचन्द्रिका में भोज के मत उद्धृत हैं (पृ० ३७० वङ्गीय संस्करण)।

---

१. भोज के विषय में विशेष जिज्ञासु को निम्नोक्त दो ग्रन्थ पढ़ने चाहिये : C. V. Vaidya : History of Mediaeval Hindu India, vol III; P. T. Srinivasa Ayyangar : Bhoja Raja, chap. 4-8.

७—गन्धवाद-परक ग्रन्थों में धारेश्वर भोज के मत उल्लिखित हुए हैं। इस विषय में गोडे कृत A Rare Manuscript of Gandhasastra लेख द्रष्टव्य है (New Indian Antiquary Vol. vii, pp. 185–193)।

८–विराटपर्वकी विमलबोधकृत टीका में भोज का वाक्य उद्धृत है (१७।११)– "भोजस्त्वाह सर्वशुक्लेव राजहंसीव माहेयी महनीयतरा. पक्षे मानससरसो महीं गासा वने वह्नौ जाता"।

९—राघवभट्टकृत शकुन्तलाटीका (पृ० ५५) में भोज का वाक्य उद्धृत है।

१०—लक्ष्मणभट्ट कृत पद्यरचना (काव्यमाला में प्रकाशित सुभाषितसंग्रह) में भोज का पद्य उद्धृत है (पृ० १०१)।

११—शंकर कृत वास्तुशिरोमणि (अमुद्रित) ग्रन्थ में धारेश्वर भोज कृत राजमार्तण्ड-नामक ज्योतिष-ग्रन्थ के वाक्य उद्धृत हैं (पृ० १८, १३६)। इस विषय में गोडेकृत 'Vastusiromani, a Work on Architecture by Samkara लेख (A.B.O.R.I. Vol. XXXV. pp. 35—41) द्रष्टव्य है।

१२—धनुर्विद्या में भोजराज की पटुता की प्रशंसा कोदण्डमण्डन ग्रन्थ में मिलती है (१।५)।

१३—लक्ष्मण पण्डित कृत अद्वैतसुधा में भोज के मत बहुधा निर्दिष्ट हुए हैं– द्र० Exact Date of the Advaitasudha of Laksmana Pandit and His Possible Identity with Laksmanarya (Poona Orientalist Vol. iv. Nos. 1–2.)।

१४—स्मृतिशास्त्र के विद्वानों ने भोज का सबहुमान उल्लेख किया है, यथा—शूलपाणि (प्रायश्चित्तविवेक में), रघुनन्दन (अष्टाविंशति-स्मृतितत्त्व में) आदि। इस विषय में History of the Dharmasastra (Vol. I, section 64) द्रष्टव्य है।

भोज के ग्रन्थ

भोज ने योगसूत्रवृत्ति के आरम्भ में कहा है कि उन्होंने शब्दानुशासन, पातञ्जलवृत्ति और वैद्यक में राजमृगाङ्क नामक ग्रन्थों की रचना की है—

शब्दानामनुशासनं विदधता पातञ्जले कुर्वता
वृत्तिं राजमृगाङ्कसंज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके ।
वाक्चेतोवपुषां मलः फणिभृतां भर्त्रेव येनोद्धृतः
तस्य श्रीरणरङ्गमल्लनृपतेर्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः ॥

यह शब्दानुशासन 'सरस्वतीकण्ठाभरण' ही है। इस व्याकरणग्रन्थ के विषय के विशद विचार 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' (भाग १) ग्रन्थ में द्रष्टव्य है (पृष्ठ ५५३–५६० द्वितीय संस्करण)। पातञ्जलवृत्ति योगसूत्र पर वृत्ति ही है, न कि पातञ्जलमहाभाष्य पर कोई वृत्ति, यह ज्ञातव्य है। योगसूत्र-वृत्ति का प्रकृत नाम 'राजमार्त्तण्डवृत्ति' है।

वैद्यक में 'राजमृगाङ्क' नामक ग्रन्थ भोज ने रचा था, यह यहाँ स्पष्टतया कहा गया है; पर यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। आफ्रेक्ट की बृहत्सूची में 'राज-मृगाङ्क' नाम के आगे ज्योतिष और वैद्यक—इन दो विषयों के नाम दिये हैं, यह ज्ञातव्य है। काणेमहोदय ने 'शब्दानामनुशासनम्...' श्लोक का उल्लेख करके भी राजमृगाङ्क ग्रन्थ के विषय में कुछ नहीं कहा (H.Dh.S. Vol. I. pp. 276)। राजमार्तण्डनामक ४१८ श्लोकमय वैद्यक ग्रन्थ भोजकृत है और यह प्रकाशित भी है। P.T. Srinivasa Ayyangar कृत Bhoj Raja ग्रन्थ (सप्तमाध्याय) में भोजग्रन्थों की चर्चा है; यहाँ वैद्यक-ग्रन्थों में 'राजमृगाङ्क' ग्रन्थ का नाम नहीं है, बल्कि ज्योतिषग्रन्थों में करणविषयक इस ग्रन्थ का नाम है। 'राजमृगाङ्क' ग्रन्थ की इस स्थिति को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि श्लोक के मूल पाठ 'व्यातन्वता वैद्यके' के स्थान पर 'ज्योतिषे' हो गया है ? पर ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि बाद में भोज 'वाक्चेतोवपुषां' कहते हैं।

भोज के निम्नोक्त ग्रन्थ भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—सरस्वतीकण्ठाभरण (अलङ्कारशास्त्र), शृङ्गारप्रकाश (अलङ्कारशास्त्र), समराङ्गणसूत्रधार (शिल्प-रणादिपरक), युक्तिकल्पतरु (शिल्प-वास्तु-यन्त्रादिपरक), तत्त्व-प्रकाश (शैवमतसंबन्धी)। विश्वनाथ रेउकृत 'राजा भोज' ग्रन्थ में भोजकृत

ग्रन्थों की विशद चर्चा है (पृ० २३६–३१२) ।[1]

महाराज भोज हमारे देश के आदर्श नरपति हैं। विद्या, विक्रम और वैभव के क्षेत्र में उनका कार्य चिरस्मरणीय रहेगा। वे संस्कृत भाषा के पुनरुद्धारक के रूप में चिरकाल तक स्मृत होते रहेंगे।

भोज की दृष्टि में योगसूत्रकार

अहिपति (शेष या अनन्तनाग) के दूसरा रूप पतञ्जलि इस योगसूत्र के रचयिता हैं—ऐसा भोज कहते हैं (द्र० वृत्ति के प्रारम्भिक मङ्गलश्लोक तथा अन्तिम मङ्गलश्लोक)। वे यह भी कहना चाहते हैं कि एक पतञ्जलि ने ही योगसूत्र, व्याकरण महाभाष्य और आयुर्वेदीय ग्रन्थ (चरक का प्रतिसंस्कार, चरकवार्त्तिक या इस प्रकार का कोई ग्रन्थ)—इन तीनों की रचना की है। इस प्रकार के मत अन्यान्य अर्वाचीन आचार्यों ने भी कहा है।[2] इस विषय में "योगेन चित्तस्य पदेन वाचाम्…" इत्यादि एक श्लोक सर्वत्र प्रसिद्ध है। (व्यासभाष्यविवरण ग्रन्थान्त मङ्गलश्लोक ४)।

इस छोटी सी भूमिका में हम इन मतों की अयुक्तता का विस्तृत प्रतिपादन नहीं कर सकते, अतः अपना मत संक्षेप से कह रहे हैं। पतञ्जलि शेषनाग के अवतार हैं और उन्होंने तीन विभिन्न कालों में योगसूत्र आदि तीन ग्रन्थों की रचना की है, यह अप्राचीन दृष्टि है। एक ही काल में इन तीन ग्रन्थों की रचना

---

१. सिंहासनद्वात्रिंशिका, रामायणचम्पू, कूर्मशतक आदि कुछ ग्रन्थों के रचयिता के रूप में भोज को माना जाता है, जो सर्वथा सांशयिक है।

२. "सूत्राणि योगशास्त्रे वैद्यकशास्त्रे च वार्त्तिकानि ततः।
कृत्वा पतञ्जलिमुनिः प्रचारयामास जगदिदं त्रातुम् ॥
(रामभद्रदीक्षितकृत पतञ्जलिचरित)।

"पातञ्जलमहाभाष्य-चरक-प्रतिसंस्कृतैः।
मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः ॥"
(चरकटीका चक्रपाणिकृत)।

हुई है, यह भी न्यायतः उपपन्न नहीं होता। पुराणों में भी इस मत की प्रतिध्वनि नहीं मिलती, यद्यपि इन पुराणों में योगी पतञ्जलि[1] का उल्लेख मिलता है। आयुर्वेद, योग या व्याकरण के किसी की प्राचीन ग्रन्थ में इस प्रवाद का संकेत भी नहीं मिलता है। इन ग्रंथों में शब्दप्रयोग की दृष्टि में भी ऐसा कोई उदाहरण नहीं दृष्ट होता, जिससे पूर्वोक्त एकता की संभावना भी व्यक्त हो।

इस विषय में निम्नोक्त तथ्य पर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। पातञ्जल महाभाष्य में 'अनेक' शब्द को एकवचनान्त ही स्वीकार किया गया है (नञ्सूत्रभाष्य द्र०); एकवचनान्तरूप से अनेक शब्द का प्रयोग भी महाभाष्य में मिलता है। योगसूत्र (४।५) में 'अनेकेषाम्' यह बहुवचनान्त प्रयोग है। चूर्णिकाकार (जो महाभाष्यकार हैं) के मत में अनेक शब्द का एकवचनान्त प्रयोग ही साधु है, यह मेधातिथि ने स्पष्टतः कहा है (मनु ५। १५९)। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि महाभाष्यकार एवं योगसूत्रकार एक व्यक्ति नहीं हो सकते।

योगसूत्रकार पतञ्जलि को नागरूपी समझना एक भ्रान्त धारणा है। इसके लिये कोई हेतु होना चाहिए। हमारा कहना है कि कुछ सादृश्य से ऐसी भ्रान्ति हो गई है। वह सादृश्य इस प्रकार का है—

प्रसिद्ध नाग-नामों की सूची में 'पतञ्जलि' का नाम है (मत्स्यपुराण ६।३८-४१)[2] और हम समझते हैं कि इस नामसादृश्य के कारण शेषनागावतार पतञ्जलि के द्वारा योगसूत्र प्रणीत हुआ है—इत्यादि प्रवाद बाद में उत्पन्न हुआ है। हम यह भी समझते हैं कि पूर्वोक्त भ्रम के कारण ही योगसूत्र या योगसूत्र-

---

१. द्र० भागवत ६।१५।१४ (यहाँ सिद्धेशसूची में पतञ्जलि का नाम है)। सौरपुराण में पातञ्जलयोगशास्त्र को शैव कहा गया है—"पातञ्जलं योगशात्रं शैवं तच्छास्त्रमिष्यते" (४०।५५)। यह शैव संप्रदाय की दृष्टि में कहा गया है। इस मत पर बहुत कुछ वक्तव्य है, जो अन्यत्र विवृत होगा।

२. ये श्लोक लिङ्पुराण (१।६३।३७-३९)। तथा पद्मपुराण (५।६।७०-७३) में भी मिलते हैं (ईषत् पाठभेद सहित)।

कार का कोई सम्बन्ध 'अनन्त' से हो गया। इसका ही फल है कि हमें विष्णुधर्मोत्तरपुराण में पातञ्जलशास्त्र की मूर्ति का निर्माण 'अनन्त' के रूप में बनाने का स्पष्ट निर्देश मिलता है (तृतीय खण्ड ७३।४८)। अनन्त भी एक नागनाम है, जिसको शेषनाग माना जाता है (विष्णुपुराण २।५।१३-१४, अग्निपुराण १२०।४)। इस नाग को कहीं-कहीं 'योगी', योगिवदासीन' आदि विशेषण भी दिये गये हैं और हम समझते हैं कि इस प्रकार के कुछ सादृश्यों से ही पूर्वोक्त प्रवाद बना होगा। 'नामसादृश्य से ऐतिहासिक-तथ्य-निर्धारण में भ्रम का होना' इस देश में एक साधारण-सी बात है, क्योंकि स्थूल ऐतिहासिक दृष्टि का बहुमान इस देश में कभी नहीं था। परम्परा में जो भी बात चल पड़ती थी, उसके विषय में पुनः परीक्षण करना रूप कार्य पूर्वाचार्य प्रायः करते नहीं थे, अतः हमारा 'ऐतिह्यप्रमाण' कहीं-कहीं विपर्यस्त है। सहस्रों वर्षों के इतिहास में ऐसी भ्रान्तियों का हो जाना सुलभ भी है। इन भ्रान्तियों के उद्‌भव में अन्ध श्रद्धा का भी बहुत कुछ हाथ रहा है। विभिन्न संप्रदायों की गुरुपरम्परा की ऐतिहासिकता भी ऐसी ही विपर्यस्त है। Ancient Indian Historical Tradition ग्रन्थ में शब्दसाम्य या अर्थैक्य के कारण व्यक्तियों की भ्रममूलक एकता (पौराणिकों के द्वारा दर्शित) के अनेक उदाहरण दिये गये हैं।

भोजकृत व्याख्यान के कुछ विशिष्ट स्थल[1]

(१) १।४१ सूत्रवृत्ति में भोज कहते हैं कि यद्यपि सूत्र में 'ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्य' रूप क्रम है, तथापि भूमिकाक्रम की दृष्टि में 'ग्राह्य-ग्रहण-ग्रहीतृ' ऐसा क्रम होना चाहिए। यह संगत दृष्टि है। समापत्ति के अभ्यास में भोजोक्त क्रम ही अपनाया जाता है।

---

१. यहाँ जो उदाहरण दिये जा रहे हैं, उनमें से कई अन्य व्याख्यानों में भी मिलते हैं, अतः वे मत भोज द्वारा प्रथमतः चिन्तित हैं—ऐसा सर्वत्र नहीं कहा जा सकता। भोज ने उन मतों को 'ये संगत हैं' ऐसा समझकर ही स्वीकार किया है; अतः वे मत भोजसंमत हैं—इतना ही हमारा तात्पर्य है।

(२) १।३३ वृत्ति में कहा गया है कि यद्यपि सूत्र में 'सुख-दुःख-पुण्य-अपुण्य' शब्द व्यवहृत हुए हैं, तथापि उन शब्दों का तात्पर्य 'सुखी, दुःखी, पुण्यवान् और अपुण्यवान्' से ही है। यह दृष्टि उचित है, तथा सूत्रकार का हृदय भी ऐसा ही है, क्योंकि सूत्र में 'विषय' शब्द है, जिससे 'सुखविषय' 'दुःखविषय' आदि शब्द लक्षित होते हैं। 'सुखविषय' से 'सुखी' रूप अर्थ लेना सर्वथा समीचीन है।

(३) २।२० सूत्र में 'द्रष्टा दृशिमात्रः' कहा गया है। यहाँ मात्रग्रहण क्यों किया गया—इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है—"मात्रग्रहणं धर्मधर्मिनिरासार्थम्"। यह सर्वथा समीचीन दृष्टि है। क्योंकि सांख्यसूत्र में कहा गया है—'निर्गुणत्वान्न चिद्धर्मा' (१।१४६)। पुरुष वस्तुतः धर्मधर्मिदृष्टि का अतीत है, क्योंकि यह धर्मधर्मिभाव परिणामी वस्तु में ही संभव होता है और पुरुष अपरिणामी है—'सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात्' (४।१७)।

(४) २।४७ सूत्र में 'आनन्त्यसमापत्ति' को आसनसिद्धि के लिये सहायक माना गया है। (कोई कोई व्याख्याकार 'अनन्तसमापत्ति' पाठ करते है)। भोज ने 'आनन्त्यसमापत्ति' की जो व्याख्या की है वह सर्वथा योगाभ्यासोपयोगी है। 'अनन्तसमापत्ति' का यही स्वरूप हो सकता है। पर जो अनन्त का अर्थ 'शेषनाग' करते हैं और 'उस नागपर समापत्ति के अभ्यास से आसनजय' करने की बात करते हैं, उनका मत स्पष्टतया असमीचीन है। स्वबाह्य किसी पदार्थ में मन को स्थिर करने से सामान्यतया स्थैर्य हो सकता है, पर वस्तुतः उससे आसन की सिद्धि नहीं होती।

(५) योगसूत्र में 'संवेग' शब्द है (१:२१)। कोई इसका अर्थ 'वैराग्य' करते हैं, तो कोई 'उपायानुष्ठान में शीघ्रता' करते हैं। ये दो अर्थ सर्वथा समीचीन नहीं हैं। भोज ने इस शब्द का जो अर्थ दिया है (क्रिया का हेतुभूत दृढतर संस्कार), वही संगत प्रतीत होता है।

(६) वार्ता शब्द की व्युत्पत्ति बहुत ही विचित्र ज्ञात होती है। ३।३६ सूत्र पर भोज कहते हैं—"वार्ता गन्धसंवित्। वृत्तिशब्देन तान्त्रिक्या परिभाषया घ्राणेन्द्रियमुच्यते, वर्तते गन्धविषय इति कृत्वा वृत्तो घ्राणेन्द्रियाज् जाता वार्ता

गन्धसंवित्" । भोज की यह व्याख्या कहाँ तक समीचीन है, इस पर विद्वान् विचार करें; गन्धसंवित् को वार्ता क्यों कहा जाता है, यह दुर्निरूपणीय ही है ।[1]

(७) १।३४ वृत्ति में 'प्रच्छर्दन-विधारण' की व्याख्या में भोज 'रेचक-पूरक-कुम्भकरूप प्राणायाम' का अभ्यास मानते हैं । (तदेवं रेचकपूरककुम्भकस्त्रिविधः प्राणायामः चित्तस्य स्थितिमेकाग्रतायां निबध्नाति) । यह असंगत है, क्योंकि सूत्र में 'प्रच्छर्दनपूर्वक विधारण' (गत्यभाव) ही कहा गया है; यह पूर्ण प्राणायाम नहीं है । पूर्ण प्राणायाम का विवरण २।४९-५० सूत्र में है । विशेष विवरण के लिये कापिलाश्रमीय पातञ्जलयोगदर्शन द्रष्टव्य है ।

(८) ४।१३ वृत्ति में भोज कहते हैं कि सुख-दुःख-मोहरूप सत्त्व रजः-तमः के परिणाम से सभी भाव पदार्थ उत्पन्न हुए हैं, जैसे मृत्तिका के परिणाम से घट उत्पन्न होता है । भोज का यह मत अंशतः अशास्त्रीय है । सभी बाह्य-आभ्यन्तर भाव-पदार्थ त्रिगुण के विकार हैं (सर्वमिदं गुणानां सन्निवेशविशेषमात्रम्—व्यासभाष्य ३।१३), पर ये तीन गुण सुख-दुःख-मोह-रूप नहीं हैं । सुखादि गुण-विकार हैं, गुण का स्वरूप या स्वभाव नहीं हैं । तीनों गुणों के स्वभाव यथाक्रम प्रकाश-क्रिया-स्थिति ही हैं । सुख-दुःख-मोह को गुणलक्षण मानकर जिन विचारकों ने सांख्यपक्ष पर दोषारोपण किया है, वे सांख्य में अज्ञ हैं । सांख्यशास्त्र के मत में जगत् सुख-दुःख-मोह से अन्वित (निर्मित) नहीं, प्रत्युत जगत् प्रकाश-क्रिया-स्थिति-रूप मूल गुणत्रय का वैषम्यभूत है ।

(९) ४।२४ की वृत्ति में 'आत्मभावभावना' की जो व्याख्या की गई है (चित्त ही कर्ता-ज्ञाता-भोक्ता है, इस अभिमान की निवृत्ति), वह चिन्त्य ही है, क्योंकि इस दर्शन में कर्तृत्व तो त्रिगुण का ही है ('त्रिषु गुणेषु कर्तृषु……' इत्यादि पञ्चशिखवचन में यह मत स्पष्टतया कहा गया है; २।१८ योग-भाष्योद्धृत वचन द्रष्टव्य), अतः चित्त कर्ता है—यह भ्रान्त ज्ञान नहीं है ।

---

१. वस्तुतः यहाँ अकारान्त वार्त शब्द है (वर्ति + अण् = वार्त), अतः वार्त का संबन्ध गन्ध से मानना संगत ही है । (वर्ति गन्धद्रव्यों से बनती है) । मेरे प्रकाशित होने वाले 'An Introduction to the Yogasutras' ग्रन्थ में यह विषय विशदीकृत हुआ है ।

(१०) ३।४९ सूत्रवृत्ति में भी 'गुणानां कर्तृत्वाभिमानशिथिलीभावरूपा विवेकख्यातिः' कहा गया है ; यह भी चिन्त्य है, क्योंकि सांख्याचार्यों के अनुसार तीन गुण ही मूलकर्ता हैं, चूँकि वे परिणामशील हैं ।

(११) १।१७ सूत्रोक्त सास्मितसमाधि के व्याख्यान में भोज ने अस्मिता के स्वरूप के विषय में कहा है कि जिस अवस्था में अन्तर्मुखत्व-परिणाम के कारण चित्त के प्रकृतिलीन हो जाने से सत्तामात्र अवभासित होता है, वही अस्मिता है । यह दृष्टि संगत नहीं है क्योंकि प्रकृतिलीन चित्त का विषय नहीं रह सकता, व्यक्त चित्त का ही विषय रह सकता है । सास्मित समाधि चूँकि सालम्बन है, इसलिये अव्यक्तताप्राप्त चित्त का वह धर्म नहीं हो सकता (कापिलाश्रमीय पातञ्जलयोगदर्शन १।१७) ।

(१२) १।२८ वृत्ति में भोज ने 'प्रणव' को 'सार्धत्रिमात्र' (पाठान्तर—त्रिमात्रिक) कहा है । यह दृष्टि स्मृति आदि अन्यान्य शास्त्रों में भी मिलती है—"अकारश्च तथेकारो मकारश्चार्धमात्रया........" इत्यादि अग्निपुराणीय श्लोक इस प्रसङ्ग में द्रष्टव्य है (३७२।२२-२५) ।

(१३) सांख्य को भोज 'शान्तब्रह्मवादी' कहते हैं—"शान्तब्रह्मवादिभिः सांख्यैः" (४।२२;४।३३) । यह दृष्टि न्याय्य है, क्योंकि शान्तोपाधि चिद्रूप पुरुष ही सांख्य का अन्तिम लक्ष्य है । कठ उप० में 'शान्त आत्मा' शब्द का प्रयोग भी इसी दृष्टि के अनुसार ही है—'तद् यच्छेच्छान्त आत्मनि' (१।३।१३) । यह शान्त आत्मा ही चिद्रूप पुरुष है, वही 'परा गति' है—'सा काष्ठा सा परा गतिः (कठ० १।३।११) । यह चिद्रूप आत्मा सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् नहीं, क्योंकि सार्वज्ञ्यादि चित्त के धर्म हैं और शान्त आत्मा अन्तःकरण-संपर्कशून्य है; अतः निर्गुण आत्मा को सर्वज्ञ-सर्वशक्ति कहना अतत्त्वदर्शन है । हमारी दृष्टि में ऐसा समझने वालों को 'संकीर्ण ब्रह्मवादी' कहा जा सकता है । 'ब्रह्म' शब्द का व्यवहार भी सांख्य-संप्रदाय में था (द्र० ४।२२ योगभाष्यधृत श्रुतिवाक्य; शान्तिपर्व २१८।१४ गत आसुरिमत) । षष्टितन्त्र के सांख्यीय विषयों के विवरण में 'ब्रह्म' पद व्यवहृत हुआ है (अहिर्बुध्न्य संहिता १२।२०) । माठरवृत्ति में 'ब्रह्म उपदिदेश' वाक्य है (प्रथम कारिकावृत्ति) । 'ब्रह्म' शब्द से प्रकृति भी

कही जाती है, यह ज्ञातव्य है। सोपाधिक और निरुपाधिक पुरुष—ये दो सदैव ब्रह्मपदवाच्य होते हैं। अतः विवक्षा को देखकर 'ब्रह्म' पद का अर्थ निश्चित करना चाहिए।

(१४) २।५० वृत्ति में भोज 'उद्घात' का लक्षण देते हैं—"उद्घातो नाम नाभिमूलात् प्रेरितस्य वायोः शिरस्यभिहननम्"। उद्घात का इतना स्पष्ट विवरण विज्ञानभिक्षु आदि के व्याख्यानों में नहीं मिलता। यहाँ यह स्मरण रखने की बात है कि प्राचीन योगाचार्य देवल ने 'उद्घात' का यही लक्षण दिया था—"प्राणापानव्यानोदानसमानानां सकृदुद्गमनं मूर्धानमाहत्य निवृत्तिश्चोद्घातः" (कृत्यकल्पतरु का मोक्षकाण्ड, पृ० १७० में उद्धृत)। संभवतः धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों को लिखने के समय भोजराज ने इस लक्षण को देखा था।

(१५) भोज परमर्षि कपिल को जन्मसिद्धि क उदाहरण के रूप में मानते हैं (४।१)। सांख्यकारिकोक्त भावों के वर्णन में गौडपाद कहते हैं—"भगवतः कपिलस्यापि आदिसर्गे उत्पद्यमानस्य चत्वारो भावाः सहोत्पन्नाः" (४३ कारिका)। युक्तिदीपिका में कहा गया है—"परमर्षि र्भगवान् सांसिद्धिकधर्म-ज्ञानवैराग्यैश्वर्यैराविष्टपिण्डो विश्वाग्रजः कपिलमुनिः" (पृ० १७४)। वस्तुतः मानुष गुरु के उपदेश के बिना सहजात धर्मादि के बल से ही परमर्षि योगसिद्ध हुए थे—यह इतिहास-पुराण में प्रसिद्ध है, क्योंकि उनके किसी मानुष गुरु का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। साक्षात् हिरण्यगर्भ से उनकी ज्ञानप्राप्ति का उल्लेख भी योगसंप्रदाय के आगम में है।

(१६) ३।२५ वृत्ति में 'विप्रकृष्टज्ञान' के उदाहरण में भोज ने 'मेरु के अपर-पार्श्ववर्ती रसायन[1] आदि' का उल्लेख किया हैं। एक साधारण स्थल में इस प्रकार का एक असाधारण उदाहरण देने से यह ध्वनित होता है कि भोज को इस 'रसायन' के विषय में कोई सूचना ज्ञात थी। असुरों में रसायनसिद्धि थी,

---

१. इसका पाठान्तर 'रसातल' है; पर पातालरूप रसातल मेरुपर्वत के अपर-पार्श्ववर्ती नहीं है, वह पृथिव्यधःस्थ ही है (लिङ्ग १।४५ अ०; विष्णु २।५ अ० आदि द्रष्टव्य)।

व्यासभाष्य (४।१) में स्पष्टतः ऐसा कहा गया है। क्या भोज असुरों को मेरु के अपर पार्श्व में रहने वाले मनुष्यों की तरह ही समझकर ऐसा कह रहे हैं ?

(१७) वृत्ति में क्षिप्त-मूढ़-विक्षिप्त भूमि के प्रसंग में भोज कहते हैं कि 'क्षिप्त भूमि सदैव दैत्यदानवादि की है, मूढ़भूमि सदैव रक्षःपिशाचादि की है एवं विक्षिप्त भूमि सदैव देवों की है'। इसमें सन्देह नहीं कि दैत्य-दानवादि के चित्त क्षिप्त आदि होते हैं, क्योंकि उनके ऐसे चित्तों का विवरण इतिहास-पुराण में प्रायेण मिलता है। पर भोज ने जो 'सदैव' पद का व्यवहार किया है, वह कहाँ तक संगत है, यह विचार्य है। शास्त्रों में उच्च साधनयुक्त देवों का भी उल्लेख है (३।२६ योगभाष्य द्र०)।

(१८) ४।३३ वृत्ति में भोज ने अत्यन्त स्पष्ट रूप से अन्यवादियों के आत्मविषयक मतों का अनुवादपूर्वक खण्डन किया है, यथा—वेदान्तवादियों के 'आत्मा का चिदानन्दमयत्व' मत का खण्डन। चिद्रूप आत्मा में आनन्द (बौद्धप्रत्ययविशेष) स्वतः है, ऐसा प्रमाणित नहीं होता, महत्तत्त्वोपाधिक पुरुष को आनन्दमय या आनन्द (गौणरूप से) कहा जा सकता है। चिद्रूप पुरुष दुःखातीत है; इस दृष्टि से उनको यदि आनन्दस्वरूप कहा जाये तो कोई आपत्ति नहीं है। 'चेतना के योग से आत्मा चेतन है'—इस न्यायमत का भी यहाँ खण्डन किया गया है। उसी प्रकार मीमांसक आदि के मतों का भी खण्डन यहाँ किया गया है। काश्मीर शैवदर्शन की 'विमर्श'—परक दृष्टि का खण्डन सांख्य-योगग्रन्थों में केवल यहीं मिलता है।

(१९) भोज ने 'केचिद् हि चेतनामात्मनो धर्मम् इच्छन्ति' कहकर जिस सम्प्रदाय का उल्लेख किया है, वह न्याय-वैशेषिक सम्प्रदाय है।

(२०) भोज ने 'शब्द स्फोटरूप है' इस मत का उल्लेख किया है (१।४२)। उन्होंने शब्द को स्फोटात्मा कहा है (३।१७)। यह वैयाकरणों की दृष्टि है।

(२१) ४।२२ की वृत्ति में 'दर्शनान्तरेष्वपि एवंविध एव अविद्यास्वभावः शास्त्रेऽधिक्रियते' कहा गया है। यह अद्वैतवेदान्तियों का प्रसिद्ध मत है।

(२२) विन्ध्यवासी का एक वाक्य (सत्त्वतप्यत्वमेव पुरुषतप्यत्वम्) ४।२२ की वृत्ति में उद्धृत हुआ है, (यह मत २।१७ व्यासभाष्य में अत्यन्त स्पष्ट शब्द में

प्रतिपादित हुआ है)। विन्ध्यवासी का यह वाक्य अन्यत्र उद्धृत नहीं मिलता। क्या भोज के समय विन्ध्यवासी का ग्रन्थ प्रचलित था ?

योगसूत्रोक्त ईश्वर के विषय में भोज की भ्रान्त दृष्टि

१।२४ वृत्ति में भोज कहते हैं—'प्रकृतिपुरुषसंयोगवियोगयोरीश्वरेच्छाव्यतिरेकेण अनुपपत्तेः'। यह एक अलीक आपत्ति है; सांख्य-योगज्ञान में अपरिपक्वमति ही ऐसी भ्रान्त धारणा रख सकते हैं। सांख्य-योगशास्त्रसम्मत दृष्टि यह है कि जहाँ भी द्रष्टृ-दृश्य-संयोग है, वह अनादि है ('अनादिरर्थकृतः संयोगः' यह पञ्चशिख-वाक्य द्र०), किसी पुरुष-विशेष के द्वारा कृत नहीं है।

व्यावहारिक आत्मभाव का चरम विश्लेषण करके योगी समझते हैं कि प्रत्येक जीव 'प्रकृति-पुरुष का समाहार' है, यह नहीं कि कभी द्रष्टा और दृश्य पृथक् थे और किसी काल में किसी हेतु से प्रकृति-पुरुष का संयोग होने के कारण महदात्मभाव (जीव) की उत्पत्ति हुई। यह समाहार अनादिमुक्तचित्तवान् ईश्वर द्वारा कृत नहीं हो सकता, क्योंकि ईश्वर भी 'पुरुष-प्रकृति-संयोग' का ही एक फल है। ईश्वरेच्छा यदि अन्य पुरुषों को बद्ध करेगी, तो ईश्वर को भी ईश्वर (ईश्वरता अन्तःकरण का धर्म है; अन्तःकरण त्रैगुणिक है, जो पुरुष-संयोग-युक्त प्रकृति का एक परिच्छिन्न परिणाम है) करने के लिये किसी अन्य ईश्वर की इच्छा चाहिये, और इस प्रकार अनवस्था होगी।

यह भी विचारना चाहिये कि केवल द्रष्टा जब प्रकृति-संयोग-हीन रहता है, तब उस द्रष्टा पर किसी की इच्छा (इच्छा प्राकृत अन्तःकरण का विकार है) कोई कार्य नहीं कर सकती, क्योंकि स्वरूपतः निर्गुण द्रष्टा देशकालातीत ही है और कालातीत द्रष्टा को कालव्यापिनी इच्छा किसी के साथ संयुक्त नहीं करा सकती।

सांख्ययोग का कहना है कि प्रजापति का सर्वभावाधिष्ठातृत्व-संस्कार-युक्त अन्तःकरण जब प्राकृतिक नियम से व्यक्त होता है, तब एक ब्रह्माण्ड व्यक्त होता है, जिस ब्रह्माण्ड को व्यवहार्य रूप में पाकर असिद्ध जीव अपने संस्कारानुसार पुरुषार्थाचरण करते रहते हैं। यह सांख्ययोगदृष्टि है। जीव के व्यक्तदेहधारणरूप कर्म के साथ प्रजापति (पूर्वसिद्ध हिरण्यगर्भ नामक ईश्वर) द्वारा

अभिव्यक्त ब्रह्माण्ड के मूलतः योग रहने के कारण अज्ञ दार्शनिक, 'ईश्वर की इच्छा से प्रकृति-पुरुष-संयोग' की बात करते हैं, जो किसी भी अनुभव, परीक्षण या युक्ति से सिद्ध नहीं होता। 'संस्कारादि के अनुसार जीव का कर्म' तथा 'कर्मानुसार फल की प्राप्ति' इन दोनों पर भी साक्षात् रूप से प्रजापति ईश्वर का कोई हाथ नहीं है, यह भी सांख्य-योग का मत है। यह सृष्टिकर्ता ईश्वर योगसूत्रोक्त ईश्वर से निम्न कोटि का है।

मुक्त ईश्वर (योगदर्शनोक्त) या प्रजापति (=सगुण-ब्रह्म)-रूप ईश्वर के भक्ति पूर्वक प्रणिधान करने से चित्त में विवेकज्ञान की अभिव्यक्ति होती है, इस दृष्टि से ऐश्वर्यशाली पुरुष का प्रसंग योगशास्त्र में किया जाता है। ईश्वर चाहे किसी भी प्रकार का हो वह कोई 'तत्त्व' नहीं होता। सांख्य में 'तत्त्व' एक पारिभाषिक शब्द है। चरम हेतु (पुरुष, द्रष्टा) और चरम उपादान (प्रकृति) ये दो तत्त्व हैं। पुरुषसंयोगहेतुक प्रकृतिजन्य महत् आदि भी उपादान-दृष्टि से तत्त्व हैं। जगत्-सर्जक ईश्वर न विशुद्ध द्रष्टा हैं और न ही विशुद्ध दृश्य हैं, अतः वे कोई 'तत्त्व' नहीं हैं। ब्रह्माण्ड, जीव, भिन्न-भिन्न देव आदि भी कोई तत्त्व नहीं होते। अन्य अर्थ में तत्त्व शब्द का प्रयोग करके ईश्वर को भी एक तत्त्व माना जा सकता है, पर वह गौण दृष्टि होगी।

१।२५ वृत्ति में ईश्वर की 'कारुणिकता' के विषय पर भोज ने जो कहा है, वह भी उनकी अज्ञता का ज्ञापक है। वे कहते हैं कि यद्यपि ईश्वर का अपना कोई प्रयोजन नहीं है, तथापि करुणा से ही वे प्रकृति-पुरुष का संयोग-वियोग-कार्य में रत होते हैं। पहले ही यह जानना चाहिये कि यह मत न सूत्र में है और न भाष्य में। पुरुष-प्रकृति के संयोग-वियोग में अनादिमुक्त या सृष्टिकर्ता ईश्वर का कोई हाथ नहीं हो सकता, यह पहले दिखाया गया है।

ईश्वर के कारुण्य की जो बात कही गयी है, वह भी भ्रान्त है, क्योंकि इस दुःखमय संसार की करुणा से इच्छापूर्वक सृष्टि करने की प्रवृत्ति किसी सर्वज्ञ पुरुष को नहीं हो सकती। सृष्टिकर्ता प्रजापति मुक्त पुरुष नहीं हैं; बल्कि अविद्यायुक्त ऐश्वर्यशाली पुरुष हैं और यही कारण है कि शास्त्रों में उनका 'परार्ध काल के अन्त में विवेकज्ञानपूर्वक मुक्तिलाभ' की बात कही गयी है।

उनका सृष्टिसंकल्प (सर्वभावाधिष्ठातृत्वादिगुणयुक्त) ऐश्वर्य-संस्कार से प्राकृतिक नियम के अनुसार ही व्यक्त होता है, जिस प्रकार हम लोगों के कर्म से संकल्प व्यक्त होते हैं। प्राणियों पर कृपा करके वे इस ब्रह्माण्ड को व्यक्त नहीं करते, गुण-स्वभाव से ही उनका अन्तःकरण व्यक्त होता है, जिससे ब्रह्माण्ड की ग्राह्यता व्यक्त होती है।

उनके ऐश्वर्य द्वारा व्यक्त इस ब्रह्माण्ड को पाकर जीव पुरुषार्थ की सिद्धि करते रहते हैं (अन्यथा जीव मोहवत् स्थिति में रुद्धकरण अवस्था में ही रहते हैं), और विवेकाभ्यास से कैवल्य प्राप्त करने का सुयोग पाते हैं—इस दृष्टि से ही प्रजापति 'कारुणिक' हैं; पर यह कहना भ्रान्त है कि प्रजापति इस इच्छा से ही सृष्टि करते हैं कि जीव मुक्त हो जायें। यदि प्रजापति की ऐसी इच्छा होती तो उस सर्वभावाधिष्ठातृत्व-संस्कारवती इच्छा से सब जीव प्रभावित होते और अवश होकर मोक्षसाधन ही करते रहते, पर अभिव्यक्त प्राणियों की पुरुषार्थाचरण-क्रिया को देखने से ज्ञात होता है कि प्रजापति की कोई ऐसी इच्छा जीवों पर नहीं है।

वस्तुतः जीव के किसी भी कर्म में प्रजापति का या मुक्त ईश्वर का कोई भी साक्षात् अभिध्यान नहीं है, यद्यपि ब्रह्माण्ड की अभिव्यक्ति का चरममूल प्रजापति–ईश्वर ही हैं। इस प्रजापति के भूतादिनामक अहंकार से तन्मात्र की उत्पत्ति होती है, यह सांख्यमत इस प्रसंग में आलोच्य है।

जगत् के सृष्टिकर्ता के रूप में प्रजापति को मानने के लिये जो युक्ति है वह यह है—बाह्य शब्दादि के मूल उपादान के रूप में कालव्यापिनी क्रिया से युक्त वस्तु को मानने के लिये हम न्यायतः बाध्य होते हैं। कालव्यापिनी क्रिया अन्तःकरण की ही हो सकती है, अतः जगत् के साक्षात् मूल में पुरुषविशेष का अन्तःकरण है, यह अनुमान से सिद्ध होता है। यह अन्तःकरण जिनका है, वे ही प्रजापति हिरण्यगर्भ हैं, जिनके नारायण आदि अन्य नाम सांख्य-योगशास्त्र में हैं—"सांख्ये च पठ्यते शास्त्रे नामभिर्बहुधात्मकः। विचित्ररूपो विश्वात्मा एकाक्षर इति स्मृतः" (शान्तिपर्व ३०२।१९)। सृष्टिकर्ता हिरण्यगर्भ को लक्ष्य कर 'महान्' पद योगशास्त्र में प्रयुक्त होता है—"महानिति योगेषु पठ्यते" (देवी

पु० ३७।४७)। महत्तत्त्वाधिष्ठित पुरुष ही सृष्टिकर्ता होते हैं, इस दृष्टि से ही ऐसा कहा गया है।

योगसूत्रोक्त मुक्त ईश्वर ब्रह्माण्डसर्जक प्रजापति नहीं हैं; वे सर्वथा जगद्व्यापारशून्य हैं, यह इस प्रसंग में ज्ञातव्य है। ३।४५ व्यासभाष्य में सृष्टि-कर्त्ता 'पूर्वसिद्ध' प्रजापति का निर्देश है। कोई भी जीव सास्मित समाधि के बल पर सर्वभावाधिष्ठातृत्व आदि संस्कारों से युक्त हो कर जगत् का सर्जक बन ही सकता है। यह सर्जन अविद्यायुक्त पुरुष का कार्य है, मुक्त पुरुष का नहीं, यह योगविद्या का मत है। ईश्वरता अन्तःकरणधर्म है, तथा योगाभ्यास से जगत्-सर्जन का सामर्थ्य उत्पन्न होता है।

योगसूत्र एवं भोजवृत्ति

योगसूत्रसंख्या—भोजवृत्ति में जितने सूत्र स्वीकृत हुए हैं, वे सभी व्याख्या-कारों के द्वारा अनुमोदित हैं। निम्नोक्त स्थलों में कुछ मतभेद हैं, यथा—

(१) 'न चैकचित्ततन्त्रम्' इत्यादि वाक्य (४।१६) भोज के अनुसार सूत्र नहीं है। वे इस वाक्य को भाष्य का अंग समझते हैं। विज्ञानभिक्षु इस वचन को सूत्र ही समझते हैं।

(२) ३।२० सूत्र (न च तत्....) भोजसंमत है, पर भिक्षु के मत में यह भाष्य का ही अङ्ग है, पृथक् सूत्र नहीं। वाचस्पति आदि इसे सूत्र समझते हैं, यह ज्ञातव्य है।

(३) किसी-किसी संस्करण में ३।२१ सूत्र के बाद 'एतेन शब्दाद्यन्तर्धान-मुक्तम्' रूप एक सूत्र भोजसंमत माना गया है, पर यह संपादकीय प्रमाद है। भोज की व्याख्या (३।२१ सूत्र की) से यह कथमपि प्रतीत नहीं होता कि वे 'एतेन शब्दाद्यन्तर्धानम्' रूप एक पृथक् सूत्र की व्याख्या कर रहे हैं, क्योंकि यदि वे इस वचन को कोई सूत्र समझते तो पातनिका के रूप में कुछ लिखते।

सूत्र-पदच्छेद में मतभेद—सूत्रपाठ के समान रहने पर भी सूत्रपदच्छेद में एक स्थान पर मतभेद लक्षित होता है, यथा—

१।२९ सूत्र में 'प्रत्यक्चेतनाधिगमः' में भोज 'चेतना-अधिगम' ऐसा समझते

हैं, जब कि वाचस्पति आदि व्याख्याकार 'चेतन-अधिगम' ऐसा कहते है। चेतना=दृक्शक्तिः (पुरुषः), यह भी भोज का मत है। चेतना शब्द कभी-कभी ज्ञानवृत्ति का भी वाचक होता है, अतः चेतना शब्द के अर्थनिर्धारण में विवक्षा पर पूर्ण दृष्टि रखनी चाहिए। 'चित्तचेष्टा' अर्थ में भी चेतना का प्रयोग है।

१।३४ सूत्रगत 'प्रच्छर्दनविधारणाभ्याम्' में 'विधारणा' भोजानुमत शब्द है, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। व्यासभाष्य के अनुसार 'विधारण' पाठ है। अन्यान्य व्याख्यायें भी भाष्यानुसारी हैं।

सूत्रपाठभेद :—भोजव्याख्यात सूत्रों के पाठ कहीं-कहीं अन्य व्याख्यानों से भिन्न दृष्ट होते हैं। अधिकांश पाठभेद अर्थभेदकारक नहीं हैं। यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि कुछ पाठभेद लिपिकर-प्रमाद से उत्पन्न हो गये हैं तथा कुछ पाठभेद भोज-व्यवहृत शब्दों को देख कर भोजवृत्ति के विभिन्न सम्पादकों द्वारा कल्पित किये गये हैं। यहाँ कुछ पाठ भेदों पर विचार किया जा रहा है—

(१) १।५ सूत्र का पाठ (अनेक संस्करणों में) 'क्लिष्टाक्लिष्टाः' ही है, जो मूल पाठ प्रतीत होता है; पर भोज-व्याख्यान को देखकर (वृत्तयः कीदृश्यः ? क्लिष्टा अक्लिष्टाः) इस सूत्र में भी 'क्लिष्टा अक्लिष्टाः'—ऐसे असमस्त पाठ की कल्पना की गई है। हमारी दृष्टि में सूत्रस्थ 'क्लिष्टाक्लिष्टाः' पाठ को ही भोज ने विभक्त करके लिखा है; पाठभेद होने पर भी अर्थभेद किञ्चिन्मात्र नहीं होता।

(२) १।८ सूत्र में 'प्रतिष्ठम्' के स्थान पर 'प्रतिष्ठितम्' पाठ कुछ संस्करणों में मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वृत्ति में भोजव्यवहृत 'प्रतिष्ठितत्वात्' शब्द को देखकर ही सूत्र में भी 'प्रतिष्ठित' पाठ की कल्पना की गई है। प्राचीनतर व्याख्यान के अनुसार 'प्रतिष्ठम्' पाठ ही सिद्ध होता है।

(३) १।१४ सूत्र में 'आदर' शब्द भी किसी-किसी संस्करण में मिलता है। निश्चित ही सूत्रस्थ 'सत्कार' शब्द को लक्ष्यकर 'आदर' शब्द का प्रयोग भोज ने किया था, पर बाद में भ्रम से वह एक पाठभेद के रूप में माना गया। वाच-

स्पति और विज्ञानभिक्षु आदि के व्याख्यान से ज्ञात होता है कि सूत्र में 'आदर' शब्द नहीं है।

(४) १।१८ सूत्र में किसी-किसी संस्करण में 'संस्कारशेष' के स्थान पर 'संस्कारविशेष' मुद्रित हुआ है : यह सर्वथा भ्रष्ट पाठ ही है, क्योंकि असंप्रज्ञात समाधि का जो विवरण भिन्न-भिन्न स्थलों में मिलता है, उससे वह 'संस्कार शेष' है, यही सिद्ध होता है। निर्बीज समाधि 'संस्कारविशेष' है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

(५) १।२५ सूत्र की वृत्ति के कुछ संस्करणों में 'सर्वज्ञबीज' और कुछों में 'सार्वज्ञ्यबीज' पाठ मिलता है। वृत्ति में 'सर्वज्ञत्वस्य यद् बीजम्' कहा है; इससे 'सार्वज्ञ्य' पाठ ही भोजसंमत है, यह ज्ञात होता है। वाचस्पति एवं भिक्षु आदि 'सर्वज्ञ' पाठ को मानते हैं। सर्वज्ञबीज=सर्वज्ञ का कारण या अनुमापक लिङ्ग। कोई-कोई व्याख्याकार 'सर्वज्ञ [=हिरण्यगर्भादि] का बीज' ऐसा अर्थ भी करते हैं (द्र० योगरहस्य टीका)।

(६) १।२६ सूत्र का 'कालेनानवच्छेदात्' ही भाष्यादिसंमत पाठ है। इसके स्थान पर 'कालानवच्छेदात्' पाठ वृत्ति में क्वचित् मिलता है। यह लिपिकर या संपादक के द्वारा कल्पित पाठ है (असमस्त पद के स्थान पर समस्त पद की कल्पना यहाँ की गई है)।

(७) १।४२ सूत्र गत 'समापत्ति' शब्द किसी-किसी संस्करण में पठित नहीं हुआ है। संभवतः इस मत के अनुयायी यह समझते हैं कि १।४१ सूत्र से समापत्ति की अनुवृत्ति हो ही जायेगी, अतः १।४२ सूत्र में समापत्ति शब्द का ग्रहण व्यर्थ है। व्याख्याकारों की बहुसंमति 'समापत्ति'–युक्त सूत्र को ही मानती है।

(८) १।४९ सूत्र गत 'श्रुत' के स्थान पर वृत्ति के एक-दो संस्करणों में 'श्रौत' पाठ मुद्रित हुआ है। 'श्रुति से जात या संबद्ध'=श्रौत–यह 'श्रौत' पाठ के अनुयायी समझते हैं। 'श्रुत'-पाठवादी समझते हैं कि श्रुत (=आगम) से जात प्रज्ञा=श्रुतप्रज्ञा। 'श्रुता' यह प्रज्ञा का विशेषण है, ऐसा भी कहा जा सकता है; तब सूत्र में अनुमान के स्थान पर अनुमेय शब्द का पाठ करना अधिक संगत होगा, जैसा कि किसी-किसी व्याख्याकार ने दिखाया भी है।

इसी सूत्र के 'अन्यविषया' के स्थान पर 'सामान्यविषया' पाठ कदाचित् मिलता है। वस्तुतः मूल पाठ 'अन्यविषया' ही है, वृत्ति में प्रयुक्त 'सामान्य-विषया' शब्द के कारण अनवधान से सूत्र में भी 'सामान्यविषया' शब्द पठित हो गया है।

(९) १।५० सूत्र में 'प्रतिबन्धी' के स्थान पर 'विरोधी' पाठ कदाचित् मिलता है। अर्थस्पष्टता के लिये यह पाठान्तर बाद में कल्पित हुआ होगा। सभी प्राचीन व्याख्याकार 'प्रतिबन्धी' पाठ को ही मानते हैं।

(१०) २।३ सूत्र का 'पञ्च' पाठ वृत्ति का अनुसारी नहीं है क्योंकि 'के क्लेशाः' यह प्रश्न पातनिका में है। भाष्य में 'के क्लेशाः कियन्तो वा' ऐसी पातनिका है, अतः उसके अनुसार सूत्रपाठ में 'पञ्च' शब्द था, यह निश्चित है[1]।

(११) २।९ सूत्र में 'तन्वनुबन्धोऽभिनिवेशः' पाठ भोजवृत्ति के एक दो संस्करणों में मिलता है, यद्यपि अन्य व्याख्यानों के अनुसार 'तथारूढोऽभिनिवेशः' पाठ ही सिद्ध होता है। अभिनिवेश क्लेश की व्याख्या में 'शरीर से मेरा वियोग न हो' ऐसा कहा जाता है, अतः 'तन्वनुबन्ध' रूप पाठान्तर ('तथारूढ' के स्थान पर) उत्पन्न हो गया है—ऐसा प्रतीत होता है। 'तथारूढ' शब्द की अपेक्षा यह शब्द अधिक स्पष्ट है, यह भी इस पाठान्तर का एक कारण है। हम समझते हैं कि भोज ने 'तथारूढ' की व्याख्या ही की है (प्रतीक न देकर तथा 'अन्वहमनुबन्धरूपः' ऐसा कहकर) जिसमें इस नूतन पाठ की कल्पना बाद में की गयी। मूल पाठ 'तथारूढ' ही है।

(१२) २।२५ सूत्र में 'तदभावे' पाठ संस्करणविशेष में मुद्रित मिलता है। 'अविद्या के अभाव होने के कारण संयोग का अभाव होता है' इस दृष्टि से 'तदभाव' शब्द से पञ्चमी (हेतु में पञ्चमी) विभक्ति स्वरसतः प्राप्त है। सभी प्राचीन व्याख्यान के अनुसार 'तदभावात्' पाठ ही संगत है। भोजवृत्ति में

---

१. संख्येयों को कहने के बाद संख्या का कथन क्यों किया जाता है, इस पर डल्हण कहते हैं—"अत्र संख्येयद्वारेणैव संख्यालाभे सति द्वात्रिंशत्-संख्योपादानं नियमार्थं कृतम्" (सुश्रुत, उत्तर तन्त्र ६५।१)।

'तस्मिन् सति योऽयमभावः' ऐसा कहा गया है; इसके कारण ही 'तदभावे' पाठ बाद में कल्पित हुई है।

(१३) २।२७ सूत्र में 'प्रान्तभूमौ' पाठ भोजवृत्ति के अनुसार स्पष्टतया सिद्ध होता है। व्यासभाष्य के अनुसार 'प्रान्तभूमिः' पाठ ही है। प्रज्ञा किसी भूमि पर आश्रित अवश्य रहेगी, स्वतः स्थिर नहीं रह सकती—इस चिन्ता से संभवतः यह नया पाठ कल्पित किया गया था। 'प्रान्तभूमिः प्रज्ञा' पाठ भी सर्वथा निर्दोष है।

(१४) २।४१ सूत्र में भोजानुसार 'एकाग्रता' पाठ ही संगत ज्ञात होता है; क्योंकि वृत्ति में एकाग्रता शब्द ही व्याख्यात हुआ है (इसका पाठान्तर नहीं दृष्ट होता)। अन्यान्य व्याख्याकार 'ऐकाग्र्य' पाठ मानते हैं।

(१५) २।४७ सूत्र में 'आनन्त्य' शब्द भोजसंमत है, जब कि भाष्य तथा अन्य व्याख्यानों में 'अनन्त' शब्द स्वीकृत हुआ है। सम्भवतः 'अनन्तभाव' के प्रदर्शनार्थ 'आनन्त्य' पाठ बाद में कल्पित किया गया होगा।

(१६) ३।१२ सूत्र में 'ततः पुनः' शब्द वृत्ति के सभी संस्करणों में दृष्ट नहीं होता। हमारी दृष्टि में यदि सूत्र में 'ततः पुनः' पढ़ा जाये तो अर्थ में अधिक पुष्कलता आती है, क्योंकि 'ततः' का अर्थ होगा—'समाधि-परिणाम में', अतः ३।१२ सूत्र समाधिपरिणामान्तर्गत एकाग्रतापरिणाम से ही सम्बद्ध होगा। यह इष्ट है। कोई-कोई व्याख्याकार 'ततः पुनः' अंश को भाष्यवाक्य समझते हैं। भोज इस अंश को सूत्रान्तर्गत नहीं समझते थे, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है।

(१७) ३।२१ सूत्र में भोजवृत्ति में 'असंयोग' पद पठित हुआ है, जब कि अन्य व्याख्या में 'असंप्रयोग' शब्द है। ऐसा प्रतीत होता है कि भोज ने यहाँ वृत्ति में 'असंप्रयोग' के अर्थ में ही 'असंयोग' शब्द का प्रयोग किया है, 'असंप्रयोग' को प्रतीक रूप से उन्होंने नहीं पढ़ा। 'असंप्रयोग' शब्द का प्रयोग सभी प्राचीनतर ग्रन्थों में स्वीकृत हुआ है, अतः ऐसी कल्पना संगत जँचती है।

(१८) ३।३५ सूत्र में 'प्रत्ययाविशेषो भोगः' और 'प्रत्ययाविशेषाद् भोगः'—ऐसे दो पाठों की सम्भावना प्रतीत होती है। उसी प्रकार 'परार्थात् स्वार्थ-

संयमात्' और 'परार्थान्यस्वार्थसंयमात्' पाठद्वय की संभावना है। अर्थ की दृष्टि से 'प्रत्ययाविशेषो भोगः' अधिक संगत है, क्योंकि प्रत्ययाविशेष से भोग उत्पन्न नहीं होता, बल्कि प्रत्ययाविशेष ही भोग है। (द्र० इष्टानिष्टगुणस्वरूपावधारणं भोगः—व्यासभाष्य २।१९)। 'परार्थान्य.....' पाठ व्याख्याकारों के व्याख्यान-शब्दों को देखकर कल्पित किया गया है, वस्तुतः 'परार्थात्' पाठ ही सौत्र है।

(१९) ३।४० सूत्र में भोजवृत्ति के अनुसार 'प्रज्वलनम्' पाठ है—ऐसा वृत्तिव्याख्या से कथंचित् ज्ञात होता है, यद्यपि अन्यान्य व्याख्याकार 'ज्वलनम्' पाठ के पक्षपाती हैं। सूत्र में 'ज्वलन' पाठ के रहने पर भी व्याख्यान में 'प्रज्वलन' शब्द का व्यवहार किया ही जा सकता है (यदि वह प्रतीक न हो), अतः 'ज्वलनम्' पाठ भी भोज-संमत हो सकता है।

(२०) ३।५१ सूत्र में भोज के अनुसार 'स्वाम्युपनिमन्त्रणे' पाठ सिद्ध होता है, जब कि भाष्यादि-व्याख्यानों में 'स्थान्युपनिमन्त्रणे' पाठ है। हमारी दृष्टि में सूत्र का प्राचीन पाठ 'स्थान्युपनिमन्त्रणे' है। टीकाकारों ने 'स्थान' शब्द की उचित व्याख्या भी की है। स्थान शब्द के योगसूत्रसम्मत अर्थ में पुराणादि में प्रयोग भी मिलता है। भोजवृत्तिगत 'स्वामिनः' पाठ भ्रष्ट है, (वस्तुतः वह 'स्थानिनः' होना चाहिये)–ऐसा भी सोचा जा सकता है। भोज ने 'स्वामिनः' पद की कोई व्याख्या भी नहीं की, अतः यह संपादक या लिपिकर का प्रमाद है, ऐसा भी माना जा सकता हैं।

(२१) ३।५२ सूत्र में 'विवेकज्ञानम्' पाठ भोजवृत्ति के किसी-किसी संस्करण में है, पर यह अशुद्ध है; प्रकृत पाठ 'विवेकज' ही होगा।

(२२) ४।१५ में भोजवृत्ति के अनुसार 'विविक्त' पाठ है। भाष्यादि में 'विभक्त' पाठ है। अर्थदृष्टि में दोनों ही संगत हैं।

(२३) ४।२४ 'अपरिणामात्' यह पाठ मुद्रित मिलता है। यहाँ ग्रन्थ-स्वारस्य के अनुसार 'अपरिणामित्वात्' पाठ संगततर है और भोज भी इस पाठ के ही अनुयायी हैं, ऐसा माना जा सकता है।

(२४) ४।२४ भोजवृत्ति के अनुसार 'निवृत्ति' पाठ ही है, जब कि अन्य

व्याख्या में 'विनिर्वृत्ति' पाठ माना गया है। यह अकिञ्चित्कर पाठभेद है। सूत्र में 'विनिवृत्ति' रहने पर भी व्याख्या में 'निवृत्ति' शब्द प्रयुक्त हो सकता है, और इस प्रकार 'विनिवृत्ति' भी भोजसंमत सूत्रपाठ हो सकता है।

(२५) ४।३३ सूत्र में भोजवृत्ति के अनुसार 'चितिशक्तेः' पाठ ही है, ऐसा स्पष्टतया ज्ञात होता है। इस सूत्र का जो पाठ भोज का नाम लेकर भास्करराय ने उद्धृत किया है, उसमें भी 'चितिशक्तेः' पाठ ही है (ललितासहस्रनामभाष्य, पृ० १३२)। षष्ठयन्त (चितिशक्तेः) पाठ में भी अर्थ की संगति रहती है। कुछ अन्य व्याख्याकार भी 'चितिशक्तेः' पाठ को मानते हैं। प्रथमान्त पाठ में (जो भाष्यादि-समर्थित है) 'स्वरूपप्रतिष्ठा' शब्द चितिशक्ति का विशेषण है, जिससे योगशास्त्रीय दृष्टि ही समर्थित होती है।

भोजवृत्ति के अनेक संस्करण प्रचलित हैं। अंग्रेजी में इसका अनुवाद राजेन्द्रलाल मित्र ने किया था, जो Bib. Indica में १८८३ ई० में प्रकाशित हो चुका है।

योगसूत्र की कई टीकायें सुप्रचलित हैं, यथा—

(१) भावागणेशकृत प्रदीपिका,
(२-३) नागेशकृत दो वृत्तियां (बृहती और लघ्वी),
(४-५) नारायणतीर्थ-कृत चन्द्रिका या योगचन्द्रिका तथा अर्थबोधिनी
(६) रामानन्दयति-कृत मणिप्रभा,
(७) अनन्तदेव-कृत चन्द्रिका,
(८) सदाशिवेन्द्र-कृत योगसुधाकर,
(९) बलदेवमिश्र-कृत योगप्रदीपिका।

आधुनिक काल में भी कई टीकायें लिखी गई हैं, यथा (१०) हरिप्रसाद-कृत वैदिकवृत्ति, (११) ब्रह्मर्षि सत्यदेव कृत योगरहस्य, (१२) स्वामी हरिहरानन्द-आरण्यकृत श्लोकबद्ध टीका योगकारिका. (१३) ज्ञानानन्दकृतभाष्य तथा (१४) कृष्णवल्लभाचार्य स्वामिनारायण-कृत भाष्य। इन सभी टीकाओं से भोजवृत्ति प्राचीन है। व्यासभाष्य की वाचस्पति-कृत टीका भोज से प्राचीन है

तथा अधुना प्रकाशित शंकराचार्य कृत व्यासभाष्यटीका (विवरण) भोजवृत्ति से प्राचीन हो सकती है। आजकल रामानन्दयति-कृत टीका तथा भोजवृत्ति ही पठन-पाठन में सर्वत्र प्रचलित हैं।

भोजवृत्ति का हिन्दी अनुवाद डा० अमलधारी सिंह जी ने किया है। वृत्ति-गत पदों का जैसा स्पष्ट अनुवाद उन्होंने किया है, वह छात्रों के लिये सर्वथा उपयोगी है। इस अनुवाद के लिए आदरणीय सिंहजी धन्यवादार्ह हैं।

विजयादशमी
११-५०-१९७८

रामशंकर भट्टाचार्य

■

विषय-सूची

योगसूत्राणि

प्रथमः समाधिपादः

सूत्रम्		पृष्ठम्
अथ योगानुशासनम् ॥ १ ॥	....	२
योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ २ ॥	....	६
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ ३ ॥	....	१०
वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ ४ ॥	....	१२
वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥ ५ ॥	....	१४
प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥ ६ ॥	....	१५
प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥ ७ ॥	....	१६
विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥ ८ ॥	....	१८
शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ ९ ॥	....	१९
अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥	....	२०
अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ॥ ११ ॥	....	२१
अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १२ ॥	....	२२
तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १३ ॥	....	२४
स तु दीर्घकालादरनैरन्तर्य्यसत्कारासेवितो दृढभूमि ॥ १४ ॥	....	२५
दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥ १५ ॥	....	२५
तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥	....	२७
वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् संप्रज्ञातः ॥ १७ ॥	....	२८
विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥ १८ ॥	....	३३
भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥ १९ ॥	....	३६

सूत्रम्		पृष्ठम्
श्रद्धावीर्य्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ २० ॥	....	३८
तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥	....	४०
मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ॥ २२ ॥	....	४१
ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥	....	४२
क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ २४ ॥	....	४३
तत्र निरतिशयं सार्वज्ञ्यबीजम् ॥ २५ ॥	....	४८
स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ २६ ॥	....	५०
तस्य वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥	....	५१
तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥	....	५२
ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥ २९ ॥	....	५४
व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादाऽऽलस्याऽविरतिभ्रान्तिदर्शनाऽलब्धभूमिकत्त्वा-ऽनवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ ३० ॥	....	५५
दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥ ३१ ॥	....	५७
तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥	....	५८
मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्त-प्रसादनम् ॥ ३३ ॥	....	५९
प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥	....	६२
विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना स्थितिनिबन्धिनी ॥ ३५ ॥	....	६४
विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥	....	६५
वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥ ३७ ॥	....	६७
स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ ३८ ॥	....	६८
यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥	....	६९
परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥	....	६९
क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥	....	७०
तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥ ४२ ॥	....	७३

सूत्रम्		पृष्ठम्
स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥ ४३ ॥		७५
एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥ ४४ ॥		७५
सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम् ॥ ४५ ॥	....	७७
ता एव सबीजः समाधिः ॥ ४६ ॥	....	७९
निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ ४७ ॥	....	८०
ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा ॥ ४८ ॥	....	८१
श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥ ४९ ॥	....	८२
तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥ ५० ॥	....	८४
तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः सभाधिः ॥ ५१ ॥	....	८५
द्वितीयः साधनपादः		
तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ १ ॥	....	८९
समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥	....	९०
अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥ ३ ॥	....	९१
अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥	....	९२
अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ५ ॥		९७
दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥	....	९८
सुखानुशयी रागः ॥ ७ ॥	....	९९
दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ८ ॥	....	१००
स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥ ९ ॥	....	१०१
ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥	....	१०२
ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥	....	१०३
क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥ १२ ॥	....	१०५
सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ १३ ॥	....	१०७
ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ १४ ॥	....	१०९
परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥१५॥		११०
हेयं दुःखमनागतम् ॥ १६ ॥	....	११५

सूत्रम्		पृष्ठम्
द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥	....	११५
प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥		११६
विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥ १९ ॥	....	११९
द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥ २० ॥	....	१२०
तदर्थ एव दृश्यस्याऽऽत्मा ॥ २१ ॥	....	१२१
कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥ २२ ॥	....	१२३
स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥ २३ ॥	....	१२४
तस्य हेतुरविद्या ॥ २४ ॥	....	१२६
तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ २५ ॥	....	१२६
विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २६ ॥	....	१२८
तस्य सप्तधा प्रान्तभूमौ प्रज्ञा ॥ २७ ॥	....	१३०
योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥ २८ ॥	....	१३३
यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २९ ॥		१३४
अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ ३० ॥	....	१३५
एते जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥ ३१ ॥	....	१३७
शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ ३२ ॥	....	१३८
वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥	....	१३९
वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३४ ॥		१४०
अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ ३५ ॥	...	१४५
सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥	....	१४६
अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥	....	१४७
ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ ३८ ॥	...	१४७
अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः ॥ ३९ ॥	....	१४८
शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥ ४० ॥	....	१५०
सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥ ४१ ॥		१५१

सूत्रम्		पृष्ठम्
संतोषादनुत्तमः सुखलाभः ॥ ४२ ॥	....	१५३
कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ ४३ ॥	....	१५४
स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ॥ ४४ ॥	....	१५५
समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ ४५ ॥	....	१५५
स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६ ॥	....	१५६
प्रयत्नशैथिल्यानन्त्यसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥	....	१५७
ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥ ४८ ॥	....	१५९
तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ ४९ ॥	....	१५९
स तु बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ ५० ॥	....	१६१
बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१ ॥	....	१६२
ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥	....	१६४
धारणासु च योग्यता मनसः ॥ ५३ ॥	....	१६५
स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥		१६५
ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥	....	१६७

तृतीयो विभूतिपादः

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥	....	१७१
तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥	....	१७३
तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ ३ ॥	....	१७४
त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥	....	१७५
तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥ ५ ॥	....	१७६
तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥	....	१७६
त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥ ७ ॥	....	१७८
तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥ ८ ॥	....	१७८

सूत्रम्		पृष्ठम्
व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥ ९ ॥	....	१७९
तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥	....	१८२
सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः॥ ११ ॥	....	१८३
शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥ १२ ॥	....	१८५
एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥ १३ ॥	....	१८६
शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥ १४ ॥	....	१८८
क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥	....	१९०
परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥ १६ ॥	....	१९२
शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूत-रुतज्ञानम् ॥ १७ ॥	....	१९४
संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥ १८ ॥	....	१९८
प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ १९ ॥	....	१९९
न तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ॥ २० ॥	....	२००
कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुष्प्रकाशासंयोगेऽन्तर्धानम् ॥ २१ ॥		२०२
सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥ १२ ॥		२०३
मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥	....	२०६
बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥	....	२०७
प्रवृत्त्यलोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥ २५ ॥	....	२०८
भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ २६ ॥	....	२०९
चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥	....	२१०
ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ २८ ॥	....	२११
नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २९ ॥	...	२१२
कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३० ॥	....	२१३
कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥ ३१ ॥	....	२१४
मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३२ ॥	....	२१५

सूत्रम्	पृष्ठम्
प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३३ ॥	२१६
हृदये चित्तसंवित् ॥ ३४ ॥	२१७
सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थान्यस्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् ॥ ३५ ॥	२१७
ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥ ३६ ॥	२२०
ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३७ ॥	२२२
बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥ ३८ ॥	२२३
उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३९ ॥	२२५
समानजयात्प्रज्वलनम् ॥ ४० ॥	२२७
श्रोत्राकाशयोः संबन्धसंयमाद् दिव्यं श्रोत्रम् ॥ ४१ ॥	२२८
कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाऽऽकाशगमनम् ॥ ४२ ॥	२२९
बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥ ४३ ॥	२३०
स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूतजयः ॥ ४४ ॥	२३३
ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥ ४५ ॥	२३५
रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसंपत् ॥ ४६ ॥	२३८
ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥ ४७ ॥	२३९
ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥ ४८ ॥	२३९
सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥ ४९ ॥	२४१
तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ ५० ॥	२४२
स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥ ५१ ॥	२४३
क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५२ ॥	२४५
जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्ययोस्ततःप्रतिपत्तिः ॥ ५३ ॥	२४६
तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५४ ॥	२४९
सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् ॥ ५५ ॥	२५०

सूत्रम् पृष्ठम्

चतुर्थः कैवल्यपादः

सूत्रम्		पृष्ठम्
जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः ॥ १ ॥	....	२५५
जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥	....	२५७
निमित्तमप्रयोजकं वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥ ३ ॥	....	२५८
निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ ॥	....	२६०
प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ५ ॥	....	२६१
तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥	....	२६२
कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ७ ॥	....	२६३
ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥	....	२६४
जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्त स्मृतियंसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ९ ॥		२६६
तासामनादित्वमाशिषो नित्यत्वात् ॥ १० ॥	....	२७०
हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥ ११ ॥	....	२७२
अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥ १२ ॥	....	२७४
ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ १३ ॥	....	२७७
परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ॥ १४ ॥	....	२७९
वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विविक्तः पन्थाः ॥ १५ ॥	....	२८०
तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥ १६ ॥	....	२८९
सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥ १७ ॥	....	२९०
न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥ १८ ॥	....	२९३
एकसमये चोभयानवधारणम् ॥ १९ ॥	....	२९३
चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसंकरश्च ॥ २० ॥	....	२९६
चित्तेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥ २१ ॥	....	२९९
द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥ २२ ॥	....	३०१
तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥ २३ ॥	....	३१४
विशेषदर्शिन आत्मभावभावनानिवृत्तिः ॥ २४ ॥	....	३१८

सूत्रम्		पृष्ठम्
तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥ २५ ॥	....	३१९
तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥ २६ ॥	....	३२०
हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥ २७ ॥	....	३२१
प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥ २८ ॥		३२२
ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ २९ ॥	....	३२४
तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्याऽऽन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥ ३० ॥	....	३२५
ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥ ३१ ॥	....	३२६
क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥ ३२ ॥	....	३२८
पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति ॥ ३३ ॥	....	३२९

पातञ्जलयोगसूत्रम्

धारेश्वरभोजदेवविरचितराजमार्तण्डवृत्तिसमेतम्

हिन्दीव्याख्यया समन्वितञ्च

देहार्द्धयोगः शिवयोः सः श्रेयांसि तनोतु वः ।
दुष्प्रापमपि यत्स्मृत्या जनः कैवल्यमश्नुते ॥१॥

त्रिविधान्यपि दुःखानि यदनुस्मरणान्नृणाम् ।
प्रयान्ति सद्यो विलयं तं स्तुमः शिवमव्ययम् ॥२॥

पतञ्जलिमुनेरुक्तिः काप्यपूर्वा जयत्यसौ ।
पुं-प्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्युदितो यया[1] ॥३॥

जयन्ति वाचः फणिभर्त्तुरान्तर-
स्फुरत्तमस्तोमनिशाकरत्विषः ।
विभाव्यमानाः सततं मनांसि याः
सतां सदानन्दमयानि कुर्वते ॥४॥

शब्दानामनुशासनं विदधता पातञ्जले कुर्वता
वृत्तिं राजमृगाङ्कसंज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके ।
वाक्-चेतो-वपुषां मलः फणिभृतां भर्त्रेव येनोद्धृत-
स्तस्य श्रीरणरङ्गमल्लनृपतेर्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः[2] ॥५॥

दुर्बोधं यदतीव तद्विजहति[3] स्पष्टार्थमित्युक्तिभिः
स्पष्टार्थेष्वतिविस्तृतिं विदधति व्यर्थैः समासादिकैः ।
अस्थानेऽनुपयोगिभिश्च बहुभिर्जल्पैर्भ्रमं तन्वते
श्रोतॄणामिति वस्तुविप्लवकृतः सर्वेऽपि टीकाकृतः ॥६॥

---

१. यथा (पा०)। २. श्लोकोक्तग्रन्थानां स्वरूपं भूमिकायां व्याख्यातम् ।
३. तद्धि जहति ।

उत्सृज्य, विस्तरमुदस्य विकल्पजालं
फल्गुप्रकाशमवधार्य्य च सम्यगर्थान् ।
सन्तः पतञ्जलिमते विवृत्तिर्मयेय-
मातन्यते बुधजनप्रतिबोधहेतुः ।।७।।

अथ योगानुशासनम् ।। १ ।।

अर्थ—योगानुशासनम् = (आचार्य—शिष्यपरम्परा से प्राप्त) योग नामक (अनादि) शास्त्र का व्याख्यान । अथ = अब (यहाँ से) प्रारम्भ होता है ।

विशेष—प्रस्तुत सूत्र में 'अथ' शब्द का प्रयोग 'अधिकार' अर्थ में किया गया है, जिससे शास्त्र के आरम्भ की सूचना मिलती है अर्थात् एक विशिष्ट प्रकार के शास्त्र की व्याख्या यहाँ से आरम्भ होती है ।

मीमांसा में ६ प्रकार के सूत्रों को बतलाया गया है—

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च ।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम् ।।

श्लोकवार्त्तिक १–२२–२४

अतः प्रस्तुत प्रकरण में 'अथ' शब्द अधिकारार्थ, प्रस्तावार्थ या आरम्भार्थ को अभिव्यक्त करता है । यह शब्द मङ्गलवाचक भी है । क्योंकि—

"ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गलिकावुभौ"
'अर्थान्तरप्रयुक्त एव ह्यथशब्दः श्रुत्या मङ्गलप्रयोजनो भवति ।

शाङ्करभाष्य १।१।१

तथा शास्त्र का प्रारम्भ मङ्गल शब्द से होना भी चाहिये । क्योंकि

"मङ्गलादीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाणि भवन्त्यायुष्मत्पुरुषकाणि चाध्येतारश्च वृद्धियुक्ता यथा स्युरिति"

व्याकरण महाभाष्य १।१।३ आह्निकम्

अतः सूत्र में प्रयुक्त 'अथ' शब्द मङ्गलार्थक भी है। साथ ही यह शब्द पूर्णता का भी द्योतक है—

'मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्येष्वथो अथ'

अमरकोष ३।५ पं० २-२९

अतः विषय-प्रयोजन-सम्बन्ध-अधिकारी रूप अनुबन्धचतुष्टय निरूपणपूर्वक लक्षण-भेद-साधन-फल इत्यादि सहित समस्त अर्थों का सम्यक् बोध कराने वाले योगशास्त्र का प्रारम्भ यहाँ से होता है।

अनुशासन शब्द का अर्थ है पश्चात् शासन अर्थात् उपदिष्ट सिद्धान्तों का प्रतिपादन, पुनर्वचन। इससे योगविद्या की अनादिता सूचित होती है अर्थात् भगवान् पतञ्जलि से पूर्व भी योगशिक्षा विद्यमान थी।

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वेत्ता नान्यः पुरातनः॥

महाभारत शान्ति पर्व ३४९।६५

'योगशास्त्रं मत्प्रोक्तं ज्ञेयं योगमभीप्सता'

याज्ञ० ३।४।११०

के अनुसार हिरण्यगर्भ योगशास्त्र के आदि वक्ता हैं। इस प्रकार गुरुशिष्य परम्परा से आते हुए योगसिद्धान्तों को भगवान् पतञ्जलि ने सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया तथा सूत्र रूप में उन्हीं सिद्धान्तों को अनुबद्ध किया। सभी दर्शनों का परम प्रयोजन अपवर्ग-प्राप्ति है और इसकी सिद्धि आत्मबोध द्वारा होती है। इस दिशा में योगदर्शन का प्रशंसनीय प्रयास है। विवेकख्याति के साधनों का सुन्दर विवेचन इसमें किया गया है।

अतः अपवर्ग प्रदान करने वाले आचार्य-शिष्य परम्परा से प्राप्त अनादि योगशास्त्र का व्याख्यान यहाँ से प्रारम्भ होता है।

वृत्तिः—अनेन सूत्रेण शास्त्रस्य सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनान्याख्यायन्ते। अथ-शब्दोऽधिकारद्योतको मङ्गलार्थकश्च। योगो युक्तिः समाधानम्। युज समाधौ

(धा० पा० ४।६७)। अनुशिष्यते व्याख्यायते लक्षणभेदोपायफलैर्येन तदनुशासनम्। योगस्यानुशासनं योगानुशासनम्, तद् आ-शास्त्रपरिसमाप्तेरधिकृतं बोद्धव्यमित्यर्थः।

तत्र शास्त्रस्य व्युत्पाद्यतया योगः ससाधनः सफलोऽभिधेयः। तद्व्युत्पादनञ्च फलम्। व्युत्पादितस्य योगस्य कैवल्यं फलम्। शास्त्राभिधेययोः प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः[1]। अभिधेयस्य योगस्य तत्फलस्य च कैवल्यस्य[2] साध्य-साधनभावः। एतदुक्तं भवति—व्युत्पाद्यस्य योगस्य साधनानि शास्त्रेण प्रदर्श्यन्ते, तत्साधनसिद्धो योगः कैवल्याख्यं फलमुत्पादयति ॥१॥

अनेन = इस। सूत्रेण = सूत्र के द्वारा। शास्त्रस्य = प्रस्तुत योगशास्त्र के। संबन्धाभिधेयप्रयोजनानि = संबन्ध, अभिधेय (वर्ण्यविषय), उद्देश्य (एवं अधि-कारी) अर्थात् अनुबन्धचतुष्टय। आख्यायन्ते = कहे जाते हैं। योगशास्त्र के अनुबन्ध चतुष्टय का निरूपण इस सूत्र के द्वारा किया जाता है। अथशब्द = प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त अथ शब्द। अधिकारद्योतकः = अधिकार, प्रारम्भ को व्यक्त करने वाला। च=और। मङ्गलार्थकः=मङ्गल वाचक है। 'युज् समाधौ' (धा० पा० ४।६७)=√युज् धातु समाधि अर्थ में होने के कारण। योगः=योग शब्द का अर्थ। युक्तिः = युक्ति। समाधानं=समाधि, ध्यान की एकाग्रता है। √युज् धातु से निष्पन्न होने के कारण योग शब्द का अर्थ समाधि है। (√युज् + घञ्= योगः)। इसकी निष्पत्ति 'युजिर् योगे' (धा० पा० ७।७) से नहीं है। तद् अनु-शासनं=उसे अनुशासन कहते हैं, वही अनुशासन है। येन = जिसके द्वारा। लक्ष-णभेदोपायफलैः=लक्षण (असाधारणधर्मवचनम्, सजातीयविजातीयाभ्यां व्यावर्तको लक्ष्यगतः कश्चिल्लोकप्रसिद्ध आकारो लक्षणम्) प्रकार, साधन एवं प्रयोजन सहित शास्त्र का। अनुशिष्यते व्याख्यायते = अनुशासन किया जाता है, व्याख्यान किया जाता है अर्थात् उपदिष्ट सिद्धान्तों का पुनः कथन, प्रतिपादन, वर्णन किया जाता है। योगानुशासनं = योगानुशासन पद का अर्थ। योगस्य = पूर्व उपदिष्ट, अनादि योग सिद्धान्तों का। अनुशासनम् = पुनः कथन, प्रतिपादन निरूपण है। तद्=वह

---

१. भावः सम्बन्धः (पा०)। २. कैवल्येन (पा०)।

योग । आशास्त्रपरिसमाप्तेः = प्रस्तुत शास्त्र की समाप्ति तक । अधिकृतम्=अधिकार रूप से । बोद्धव्यम् = समझना चाहिये । इत्यर्थः = इसका यह अभिप्राय है अर्थात् प्रस्तुत सूत्र का तात्पर्य है कि यहां से प्रारम्भ कर शास्त्र की समाप्ति पर्यन्त योग के सिद्धान्तों का ही वर्णन है । तत्र = उसमें । शास्त्रस्य—इस योग शास्त्र का । व्युत्पाद्यतया = व्याख्यान के योग्य होने के कारण । ससाधनः = साधन, उपाय सहित । सफलः = फल, प्रयोजन सहित । योगः = योग ही । अभिधेयः = वर्ण्य विषय है अर्थात् साधन एवं फल के साथ योग ही इस शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है । च = और । तत् = उस योगशास्त्र का । व्युत्पादनं= प्रतिपादन, व्याख्यान, वर्णन ही । फलं=प्रयोजन, उद्देश्य है । व्युत्पादितस्य=वर्णन किये गये । योगस्य = योगशास्त्र का । कैवल्यं = पुरुष का केवल रूप, त्रिगुणात्मक दृश्य से पृथक् हो जाना, अपवर्ग, मोक्ष ही । फलं = प्रयोजन है । शास्त्राभिधेययोः = इस योगशास्त्र एवं उसके वर्ण्य विषय में । प्रतिपादकप्रतिपाद्यभावः = प्रतिपादक एवं प्रतिपाद्य, वर्णन करने वाला एवं वर्णन किया जाने वाला । संबन्धः = सम्बन्ध है । अभिधेयस्य = वर्ण्यविषय । योगस्य = योग का । च = और तत्फलस्य = उसके फल । कैवल्यस्य = कैवल्य, अपवर्ग का परस्पर । साधनसाध्यभावः = साधन एवं साध्य रूप संबन्ध है अर्थात् वर्ण्य विषय योग साधन है और कैवल्य साध्य । एतद् उक्तं भवति = इसका यह अभिप्राय है कि । शास्त्रेण = इस शास्त्र के द्वारा । व्युत्पाद्यस्य = वर्णनीय, वर्णन के योग्य । योगस्य = योग शास्त्र के । साधनानि = साधनों, उपायों को । प्रदर्श्यन्ते = दिखलाया जा रहा है । निरूपण किया जा रहा है । तत्साधनसिद्धः = उन्हीं साधनों, उपायों से सिद्ध, प्राप्त । योगः = योग । कैवल्याख्यं = कैवल्य, अपवर्ग नाम वाले । फलं = फल को। उत्पादयति = उत्पन्न करता है, प्रदान करता है ॥ १ ॥

विशेषः—अनादि काल से आचार्य-शिष्य परम्परा से आते हुये योग के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र का प्रारम्भ हो रहा है । अनुवन्ध सहित इसमें योग के लक्षण (स्वरूप), भेद, साधन एवं फल की सम्यक् व्याख्या की गई है । योग समाधि को कहते हैं, क्योंकि यह योग शब्द 'युज् समाधौ' से निष्पन्न

होता है, 'युजिर् योगे' संयोग अर्थवाली √युजिर् धातु से नहीं। क्षिप्तमूढ-विक्षिप्तएकाग्रनिरुद्ध रूप से चित्त की सभी पाँचों भूमियों में होने वाला यह योग चित्त का ही धर्म है। चित्त की एकाग्र भूमि में जो समाधि का लाभ होता है, उसे संप्रज्ञातयोग कहते हैं। वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत एवं अस्मितानुगत रूप से यह चार प्रकार का है। चित्त की समस्त वृत्तियों के निरोध हो जाने पर असंप्रज्ञात योग होता है।

तत्र को योग इत्याह—

तत्र को योगः = तो इस योग का क्या लक्षण, स्वरूप है। इति आह = इसी योग के लक्षण का निरूपण करते हैं।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ २ ॥

अर्थ—चित्तवृत्तिनिरोधः = चित्त की प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति रूप समस्त वृत्तियों का सभी प्रकार से रुक जाना ही। योगः = योग है।

विशेष—सभी वृत्तियों का पूर्ण रूप से निरोध हो जाने पर (सम्यक् निरोध रूप) असंप्रज्ञात समाधि ही मुख्य रूप से योग है। फिर भी संप्रज्ञात समाधि को भी योग कहते हैं। यद्यपि इस समाधि में रजस् एवं तमस् वृत्तियों का निरोध हो जाने पर सात्त्विक वृत्ति की स्थिति बनी ही रहती है।

वृत्तिः—चित्तस्य निर्मलसत्त्वपरिणामरूपस्य या वृत्तयोऽङ्गाङ्गिभावपरिणामरूपाः तासां निरोधो बहिर्मुखतया परिणतिविच्छेदादन्तर्मुखतया प्रतिलोमपरिणामेन स्वकारणे लयो योग इत्याख्यायते। स च निरोधः सर्वासां चित्तभूमीनां सर्वप्राणिनां धर्मः कदाचित् कस्याञ्चिद् भूमौ आविर्भवति।

ताश्च क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तम् एकाग्रं निरुद्धमिति चित्तस्य भूमयः, चित्तस्यावस्थाविशेषाः। तत्र क्षिप्तं रजस उद्रेकादस्थिरं बहिर्मुखतया सुखदुःखादिविषयेषु विकल्पितेषु व्यवहितेषु[1] वा रजसा प्रेरितम्, तच्च सदैव दैत्यदानवादीनाम्। मूढं तमस उद्रेकात् कृत्याकृत्यविभागमन्तरेण[2] क्रोधादिभिः विरुद्ध-

१. सन्निहितेषु इत्यधिकं क्वचित् पठ्यते। २. विभागमगणयत् क्रोधात् (पा०)।

कृत्येष्वेव नियमितम्, तच्च सदैव रक्षःपिशाचादीनाम्। विक्षिप्तं तु सत्त्वोद्रेकाद् वैशिष्ट्येन परिहृत्य दुःखसाधनं सुखसाधनेष्वेव शब्दादिषु प्रवृत्तम्, तच्च सदैव देवानाम्।

एतदुक्तं भवति—रजसा प्रवृत्तिरूपम्, तमसा परापकारनियतम्,[1] सत्त्वेन सुखमयं चित्तं भवति। एतास्तिस्रश्चित्तावस्थाः समाधावनुपयोगिन्यः, एकाग्र-निरुद्धरूपे द्वे च सत्त्वोत्कर्षाद् यथोत्तरमवस्थितत्वात् समाधावुपयोगं भजेते।

सत्त्वादिक्रमव्युत्क्रमे त्वयमभिप्रायः,—द्वयोरपि रजस्तमसोरत्यन्तहेयत्वेऽप्येतदर्थं रजसः प्रथममुपादानम्, यावन्न प्रवृत्तिर्दर्शिता तावन्निवृत्तिर्न शक्यते दर्शयितुमिति द्वयोर्व्यत्ययेन प्रदर्शनम्। सत्त्वस्य त्वेतदर्थं पश्चात् प्रदर्शनं यत्, तस्योत्कर्षेणोत्तरे द्वे भूमी योगोपयोगिन्याविति। अनयोर्द्वयोरेकाग्र-निरुद्धयोर्भूम्योर्यश्चित्तस्यैकाग्रतारूपः परिणामः, स योग इत्युक्तं भवति। एकाग्रे बहिर्वृत्तिनिरोधः, निरुद्धे च सर्वासां वृत्तीनां संस्काराणां च प्रविलय इत्यनयोरेव भूम्योर्योगस्य सम्भवः ॥२॥

निर्मलसत्त्वपरिणामरूपस्य = सत्त्वगुण के विमल, स्वच्छ परिणाम को प्राप्त करने वाले। चित्तस्य = चित्त की। अङ्गाङ्गिभावपरिणामरूपाः = अङ्ग एवं अङ्गी स्वरूप को प्राप्त हुई अर्थात् वृत्तियाँ अङ्ग एवं चित्त अङ्गीरूप से। याः = जो। वृत्तयः = वृत्तियाँ हैं (प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति) तासां = उन्हीं वृत्तियों का। निरोधः = रोकना अर्थात् बहिर्मुखतया = बाह्य विषयों की ओर से। परिणतिविच्छेदाद् = परिणाम के विच्छेद अर्थात् बाह्य विषयों के स्वरूप में परिवर्तित हुई वृत्तियों को उनमे हटाकर, बाह्य विषयों से सम्बन्ध समाप्त कर। अन्तर्मुखतया = अन्तः, भीतर की ओर उन्मुख करने से। प्रतिलोमपरि-णामेन = विलोम परिणाम द्वारा अर्थात् बाह्य विषयों की ओर से रोककर अन्त-र्मुखी बनाकर। स्वकारणे = (वृत्तियों के) अपने ही कारण (चित्त) में।

---

१. परापकारनिरतं (पा०)।

लयः = विलीन हो जाना ही। योग इत्याख्यायते = योग इस रूप से कहा जाता है अर्थात् वृत्तियों का बाह्य विषयों को त्यागकर अपने कारण चित्त में विलीन हो जाना ही योग है। च = और। सः = वह। निरोधः = चित्तवृत्तियों का निरोध। सर्वप्राणिनां = सभी प्राणियों का। सर्वासां चित्तभूमीनां = चित्त की सभी भूमियों में होने वाला। धर्मः = धर्म, गुण है। कदाचित् = कभी। कस्याञ्चित् = किसी। भूमौ = भूमि में। आविर्भवति = प्रकट होता है अर्थात् यदा कदा किसी की बुद्धि, चित्त में ही सभी वृत्तियों का निरोध हो पाता है। ताश्च= और वे। क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तम् एकाग्रं निरुद्धम् इति = क्षिप्त-मूढ-विक्षिप्त-एकाग्र-निरुद्ध नाम वाली। चित्तस्य = चित्त की। भूमयः = भूमियाँ हैं। जो। चितस्य = चित्त की। अवस्थाविशेषाः = विशेष अवस्थायें हैं। तत्र = उन पाँचों भूमियों में। क्षिप्तं = क्षिप्त नाम की भूमि। रजसः = रजो गुण की। उद्रेकात् = अधिकता के कारण। अस्थिरं = चञ्चल होती है अर्थात् प्रवर्त्तक, चञ्चल स्वभाव वाले रजो गुण के सम्बन्ध के कारण क्षिप्त भूमि में चित्त भी चंचल होता है। वा = अथवा। विकल्पितेषु = संशय, अनिश्चय इत्यादि विविध रूपों में कल्पना किये गये। व्यवहितेषु = व्यवधान युक्त, दूर स्थित। सुखदुःखादिविषयेषु = सुख दुःख इत्यादि प्रदान करने वाले विषयों में। बहिर्मुखतया = वहिर्मुखीरूप, बाह्य-विषयों की ओर। रजसा = रजोगुण के द्वारा। प्रेरितं =(क्षिप्तभूमि में चित्तवृत्ति) प्रेरित की जाती है। तच्च = और वह चित्त की क्षिप्त भूमि। सदैव = सदा ही। दैत्यदानवादीनां = दैत्य, दानव इत्यादि रजो गुण बहुल प्राणियों की होती है। मूढं=मूढ नाम की भूमि। तमसः = तमो गुण के। उद्रेकात् = आधिक्य प्रबलता के कारण। कृत्याकृत्यविभागमन्तरेण = कर्त्तव्य एवं अकर्त्तव्य में विवेक (बुद्धि) के बिना ही अर्थात् कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य का ज्ञान न होने से। क्रोधादिभिः = क्रोध-मोह-लोभ-राग-द्वेष इत्यादि भावनाओं के कारण। विरुद्धकृत्येषु एव = प्रतिकूल, अशुभ कार्यों में ही। नियमितं = लगाई जाती है, प्रवृत्त की जाती है। तच्च = और वह मूढवृत्ति। सदैव = सदा ही। रक्षःपिशाचादीनां = राक्षस पिशाच इत्यादि की होती है। विक्षिप्तं तु = विक्षिप्त भूमि तो। सत्त्वोद्रेकात् = सत्त्वगुण की अधिकता के कारण। वैशिष्ट्येन = विशेष रूप से। दुःखसाधनं =

दुःख के साधनों, कारणों का । परिहृत्य = परिहार कर, दूर करके । शब्दादिषु = शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध इत्यादि । सुखसाधनेषु एव = सुख प्रदान करने वाले साधनों, विषयों में ही । प्रवृत्तं = प्रवृत्त होती है, लगती है अर्थात् सुखमय विषयों को ही ग्रहण करती है । तच्च = और वह विक्षिप्त भूमि । सदैव = सदा ही । देवानां = सत्त्वगुणबहुल देवों की होती है । एतद् उक्तं भवति = इसका यह अभिप्राय है कि । रजसा = रजो गुण की प्रबलता के कारण । चित्तं = चित्त । प्रवृत्तिरूपं = क्रियारूप, प्रवर्त्तक, चंचल । तमसा = तमो गुण की प्रबलता के कारण । परापकारनियतं = दूसरों का अपकार करने वाला । सत्त्वेन = सत्त्वगुण की प्रबलता के कारण । सुखमयं = सुखरूप, सुखप्रदान करने वाला । भवति = होता है । एताः = ये । तिस्रः = तीनों क्षिप्त-मूढ-विक्षिप्त । चित्तावस्थाः = चित्त की अवस्थायें, भूमियाँ । समाधौ = (चित्तवृत्तिनिरोधरूप) समाधि में । अनुपयोगिन्यः = उपयोगी, सहायक नहीं हैं । च = और । एकाग्रनिरुद्धरूपे द्वे = एकाग्र एवं निरुद्ध नाम वाली अन्तिम दो चित्त भूमियाँ । सत्त्वोत्कर्षाद् = सत्त्व-गुण की प्रबलता होने के कारण । यथोत्तरं = क्रमशः बाद में । अवस्थितत्वात् = विद्यमान, सिद्ध होने के कारण । समाधौ = समाधि में । उपयोगं = उपयोगिता, अनुकूलता, साहाय्य को । भजेते = प्राप्त करती हैं । सत्त्वादिक्रमव्युत्क्रमे= सत्त्व इत्यादि गुणों के क्रम का विपरीत क्रम में वर्णन करने में अर्थात् त्रिविध गुण सत्त्व-रजस्-तमस् के इस क्रम को रजस्-तमस्-सत्त्व रूप से भिन्न क्रम में उपस्थित करने का । तु = तो । अयं = यह । अभिप्रायः = प्रयोजन है । रजस्तमसोः = रजो गुण एवं तमो गुण । द्वयोः = दोनों का । अपि = भी । अत्यन्तहेयत्वे अपि = बहुत ही बिलकुल ही त्याज्य, छोड़ने के योग्य होने पर भी । एतद् अर्थं = यह उद्देश्य है, इस उद्देश्य के कारण । रजसः = रजो गुण का । प्रथमं = सर्व प्रथम, सबसे पहले । उपादानं = ग्रहण किया गया है, वर्णन किया गया है । यावत् = जब तक । प्रवृत्तिः = प्रवृत्ति, विषयों का ग्रहण करना । न = नहीं । दर्शिता = दिखलाया जाता है, वर्णन किया जाता है । तावत् = तब तक । निवृत्तिः = निवृत्ति, विषयों से दूर होना । दर्शयितुं = दिखलाना, निरूपण करना । न = नहीं । शक्यते = सम्भव है । इति = इसी विचार, प्रयोजन से ।

द्वयोः = सत्त्व-रजस् दोनों गुणों, का। व्यत्ययेन = भिन्न क्रम से। प्रदर्शनं = निरूपण किया गया है। तु = तो। एतद् अर्थं = इसी उद्देश्य से। सत्त्वस्य = सत्त्वगुण का। पश्चात् = सबसे बाद, अन्त में। प्रदर्शनं = वर्णन किया गया। यत् = कि, क्योंकि। तस्य = उस सत्त्वगुण के। उत्कर्षेण = अधिक, प्रबल होने के कारण। उत्तरे = बाद की। द्वे भूमी = एकाग्र तथा निरुद्ध दोनों अन्तिम भूमियाँ। योगोपयोगिन्यौ इति = योग, समाधि में उपयोगी हैं, इसी विचार से सत्त्वगुण का वर्णन अन्त में किया गया है। अनयोः = इन्हीं। द्वयोः = दोनों। एकाग्रनिरुद्धयोः = एकाग्र एवं निरुद्ध। भूम्योः = भूमियों में। यः = जो। चित्तस्य = चित्त का। एकाग्रतारूपः = एकाग्रतारूपी। परिणामः = परिणाम हैं अर्थात् विषयों से वृत्तियों का निरोध हो जाने पर जो चित्त की एकाग्रता, स्थिरता है। सः = वही। योगः इति = योग इस रूप का, नाम से। उक्तं भवति = कहा जाता है, वही योग होता है। एकाग्रे = चित्त की एकाग्रता भूमि में। बहिर्वृत्तिनिरोधः = बाहरी वृत्तियों का निरोध होता है अर्थात् चित्त की वृत्तियाँ बाह्य विषयों से उपरत हो जाती है, दूर हो जाती हैं। च = और निरुद्धे = चित्त की निरुद्ध भूमि में। सर्वासां = सभी। वृत्तीनां = वृत्तियों। च = और। संस्काराणां = संस्कारों का। प्रविलयः = अच्छी प्रकार लय, लोप हो जाता है। इति = इस प्रकार से। अनयोः = इन्हीं दोनों। भूम्योः = एकाग्र तथा निरुद्ध भूमियों में। एव = ही। योगस्य = योग का। संभवः = संभव है अर्थात् इन्हीं दोनों अन्तिम भूमियों में योग की सिद्धि होती है॥ २॥

इदानीं सूत्रकारश्चित्तवृत्तिनिरोधपदानि व्याख्यातुकामः प्रथमं चित्तपदं व्याचष्टे—

इदानीं = इस समय, अब। सूत्रकारः = योगसूत्रकार भगवान् पतञ्जलि। चित्तवृत्तिनिरोधपदानि = चित्त की वृत्तियों के निरोध पदों के। व्याख्यातुकामः = स्वरूप की व्याख्या करने की इच्छा वाले या विचार से। प्रथमं = सबसे पहले। चित्तपदं = चित्तपद की। व्याचष्टे = व्याख्या करते हैं।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ ३ ॥

अर्थ—तदा = तब, असंप्रज्ञात समाधि में चित्त की समस्त वृत्तियों का सम्यक् निरोध हो जाने पर। द्रष्टुः = द्रष्टा चेतन पुरुष की। स्वरूपे = अपने ही वास्तविक चिन्मात्र, प्रकाशमय स्वरूप में। अवस्थानं = स्थिति, प्रतिष्ठा हो जाती है।

विशेष:—प्रकृति का परिणाम होने के कारण चित्तवृत्ति सुखदुःखमोहात्मक है। इसी से तादात्म्य प्राप्त कर निःसङ्ग, सुखदुःखमोहरहित त्रिगुणातीत, निर्विकारी पुरुष भी उसी स्वरूप का हो जाता है। यथा स्वच्छ स्फटिकमणि जपाकुसुम के सांनिध्य से अनुरंजित हो उठती है और उसके दूर होते ही अपनी विमल प्रकृति को प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार सभी चित्तवृत्तियों के चित्त में विलीन हो जाने पर पुरुष अपने चैतन्यमात्र स्वरूप में स्थित हो जाता है, जैसा कैवल्य की दशा में पुरुष केवल, चिन्मात्र ही रहता है। इस दशा में पुरुष अपने अनारोपित शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।

वृत्तिः—द्रष्टुः पुरुषस्य तस्मिन् काले स्वरूपे चिन्मात्रतायामवस्थानं[1] स्थितिर्भवति। अयमर्थः—उत्पन्नविवेकख्यातेः चित्तसङ्क्रमाभावात् कर्तृत्वाभिमाननिवृत्तौ[2] प्रोच्छन्नपरिणामायां बुद्धावात्मनः स्वरूपेणावस्थानं स्थितिर्भवति ॥३॥

तस्मिन् काले = चित्त की समस्त वृत्तियों की निरोध दशा में। द्रष्टुः = द्रष्टा। पुरुषस्य = पुरुष की। चिन्मात्रतायां = केवल चेतन मात्र। स्वरूपे = अपने ही वास्तविक रूप में। अवस्थानं = प्रतिष्ठा। स्थितिः = स्थिति। भवति= होती है अर्थात् सभी वृत्तियों के रुक जाने पर पुरुष अपने ही चेतनमात्र, द्रष्टामात्र स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। अयम् अर्थः = इसका यह अभिप्राय है। उत्पन्नविवेकख्यातेः = प्रकृति एवं पुरुषका भेद ज्ञान उत्पन्न हो जाने पर। चित्तसङ्क्रमणाभावात् = चेतन पुरुष के संक्रमण का अभाव हो जाने से अर्थात् चेतन पुरुष की छाया से ही अचेतन चित्त, बुद्धि चेतन सी हो जाती है। कर्तृत्वा-

---

१. चिन्मात्ररूपतायाम् (पा०)।

२. प्रान्मुक्त-परिणामायाम् (पा०)।

भिमाननिवृत्तौ = कर्तृत्त्व का अभिमान दूर हो जाने वाली। प्रोच्छन्नपरिणामायां = कटे हुए परिणाम वाली अर्थात् विषय के आकार का परिणाम न प्राप्त करने वाली, परिणाम रहित। बुद्धौ = बुद्धि, चित्त में। आत्मनः = पुरुष की। स्वरूपेण = अपने ही चेतन रूप से। अवस्थानं = अवस्थिति, स्थापना। स्थितिः = स्थिति, विद्यमानता। भवति = होती है॥ ३॥

व्युत्थानदशायान्तु तस्य किं रूपम् इत्याह—

व्युत्थानदशायां = चित्तवृत्तियों की उत्थान दशा में, विषयों के साथ चित्त का सम्बन्ध होने पर। तु = तो। तस्य = उस पुरुष का। किं = किस प्रकार का। रूपं = स्वरूप होता है। इति आह = इसी का निरूपण करते हैं।

वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ ४ ॥

अर्थ—इतरत्र = (इतरस्मिन् काले) दूसरे समय में अर्थात् चित्तवृत्तियों के उत्थान, उदय, विक्षेप काल में। चेतन, निर्विकार, त्रिगुणातीत पुरुष। वृत्तिसारूप्यं = वृत्तियों के स्वरूप के समान रूप वाला होता है अर्थात् पुरुष अपने विशुद्ध स्वरूप को नहीं देखता तथा विषयाकार हुई चित्तवृत्तियों के साथ ऐक्य को प्राप्त कर वह भी वृत्तियों के समान ही सुखदुःखमोह स्वरूप वाला हो जाता है।

विशेष:—यद्यपि बुद्धि में ही सुखदुःखमोहात्मक प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति रूप वृत्तियाँ हैं, फिर भी बुद्धि से तादात्म्य प्राप्त कर अपरिणामी असङ्ग पुरुष भी उन्हीं धर्मों से संयुक्त हो जाता है। जैसे अत्यन्त संनिधि के कारण जपाकुसुम में रहने वाले रक्तत्व धर्म को ग्रहण करने से स्फटिक मणि भी रक्तगुण से युक्त हो जाती है, अनुरञ्जित हो जाती है, वैसे ही पुरुष भी बुद्धिगत समस्त धर्मों को ग्रहण कर लेता है।

वृत्तिः—इतरत्र योगादन्यस्मिन् काले, वृत्तयो या वक्ष्यमाणलक्षणाः, ताभिः सारूप्यं तद्रूपत्वम्। अयमर्थः—यादृश्यो वृत्तयः सुखदुःखमोहात्मिकाः[1] प्रादुर्भवन्ति,

---

१. दुःखमोहसुखाद्यात्मिकाः (पा०)।

तादृग्रूप एव संवेद्यते व्यवहर्तृभिः पुरुषः। तदेवं यस्मिन् एकाग्रतया परिणते[1] चितिशक्तेः स्वस्मिन् रूपे प्रतिष्ठानं भवति, यस्मिंश्च इन्द्रियवृत्तिद्वारेण विषयाकारेण परिणते पुरुषस्तद्रूपाकार इव परिभाव्यते, यथा जलतरङ्गेषु चलत्सु चन्द्रश्चलन्निव प्रतिभासते, तच्चित्तम् ॥ ४ ॥

योगात् = असंप्रज्ञात समाधि से। इतरत्र = भिन्न। अन्यस्मिन् काले = दूसरे समय में अर्थात् वृत्तियों के उदय काल में, शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध विषयों को ग्रहण किये हुये समय में। वृत्तयः = चित्त की प्रमाण-विपर्यय-विकल्प आदि वृत्तियाँ। याः = जो। वक्ष्यमाणलक्षणाः = आगे स्वरूप का निरूपण की जाने वाली हैं। ताभिः = उन्हीं चित्तवृत्तियों के साथ। सारूप्यं = पुरुष की समानरूपता होती है। तद् रूपत्वं = पुरुष उन्हीं चित्तवृत्तियों के स्वरूप का हो जाता है। अयमर्थः = इसका यह अभिप्राय है। सुखदुःखमोहात्मिकाः = सुखदुःखमोह स्वरूप वाली। यादृश्यः = जिस प्रकार की। वृत्तयः = चित्त की वृत्तियाँ होती हैं। तादृग् रूपः = उन्हीं चित्तवृत्तियों के सदृश स्वरूप का। एव = ही। व्यवहर्तृभिः = व्यवहर्ता के द्वारा या व्यवहार काल में, व्यावहारिक रूप से। पुरुषः = पुरुष। संवेद्यते = जाना जाता है अर्थात् वृत्तियों के स्वरूप का ही पुरुष भी समझा जाता है, हो जाता है। तद् एवं = वही चित्त इस प्रकार से। यस्मिन् = जिस समय, समस्त वृत्तियों के निरोध काल में। एकाग्रतया = एकाग्रता रूप से। परिणते = परिणाम प्राप्त करने पर। चितिशक्तेः = चैतन्यशक्ति, चेतन पुरुष की। स्वस्मिन् रूपे = अपने ही स्वरूप में, चिन्मात्र रूप में। प्रतिष्ठानं=प्रतिष्ठा स्थिति। भवति = होती है। च = और। यस्मिन् = जिस समय, विक्षेप दशा में। इन्द्रियवृत्तिद्वारेण = इन्द्रियों के व्यापार के माध्यम से। (चित्ते = चित्त के) विषयाकारेण = शब्दादि विषयों के आकार के रूप से। परिणते = परिवर्तित होने पर, चित्त, बुद्धि के विषयाकार परिणाम प्राप्त करने पर। पुरुषः = सुखदुःखमोहरहित चेतन पुरुष भी। तद् रूपाकारः = उन्हीं चित्तवृत्तियों के आकार

१. परिणते विविक्तः स्वस्मिन् रूपे प्रतिष्ठितो भवति (पा०)।

का । इव = समान, ही । परिभाव्यते = प्रतीत होता है, प्रतिभासित होता है । यथा = जैसे । चलत्सु = चलते हुए, चञ्चल, गतियुक्त । जलतरङ्गेषु = जल की तरङ्गों में । चन्द्रः = न चलता हुआ भी चन्द्रमा । चलन् इव = चलता हुआ सा. चञ्चल सा । प्रतिभासते = दिखलाई पड़ता है, प्रतीत होता है । तत् चित्तं=इसी प्रकार वह चित्त भी अर्थात् शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध इत्यादि विषयों को ग्रहण करने वाली इन्द्रियों के सम्बन्ध के कारण चित्त भी विषय के आकार का हो जाता है और चित्त में प्रतिबिम्बित चेतन निर्विकार पुरुष भी चित्त के समान ही रूप को धारण करता है । पुरुष को अपने विशुद्ध चिन्मात्र स्वरूप की प्रतीति नहीं होती ॥ ४ ॥

वृत्तिपदं व्याख्यातुमाह—

वृत्तिपदं = चित्त की वृत्तियों की । व्याख्यातुं = व्याख्या, स्वरूप बतलाने के विचार से । आह = कहते हैं ।

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥ ५ ॥

अर्थ—क्लिष्टाः अक्लिष्टाः = अङ्गीरूप चित्त की क्लिष्ट एवं अक्लिष्टरूप से । वृत्तयः पञ्चतय्यः = अङ्ग, अवयव रूप वृत्तियाँ पाँच प्रकार की है ।

विशेष:—अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश पञ्चविध क्लेशों को पुष्ट करने वाली, आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक त्रिविध दुःखों को प्रदान करने वाली एवं संचित-प्रारब्ध-क्रियमाण कर्मफलों को उत्पन्न करने वाली वृत्तियाँ ही क्लिष्ट हैं, जो योगसाधना में बाधक रूप होकर स्वरूप प्राप्ति में बाधा उपस्थित करती हैं । सभी प्रकार के क्लेशों, बन्धनों से मुक्ति प्रदान करने वाली सत्त्वगुण प्रधान वृत्तियाँ ही अक्लिष्ट हैं, जो योगसाधना में साधक होकर आत्मस्वरूप को प्रकाशित करती हैं, प्रकृतिपुरुषविवेकख्याति को उत्पन्न करती हैं ।

वृत्तिः—वृत्तयश्चित्तपरिणामविशेषाः । वृत्तिसमुदायलक्षणस्य अवयविनो या अवयवभूता वृत्तयः, तदपेक्षया तय-प्रत्ययः (अष्टा० ५।२।४२) । एतदुक्तं भवति—

पञ्च वृत्तयः कादृश्यः ? क्लिष्टाः, अक्लिष्टाः; क्लेशैर्वक्ष्यमाणलक्षणैराक्रान्ताः क्लिष्टाः, तद्विपरीता अक्लिष्टाः ॥ ५ ॥

वृत्तयः = वृत्तियाँ । चित्तपरिणामविशेषाः = चित्त की ही विशेष परिणाम हैं । अवयवभूताः = अवयव, अङ्गरूप से विद्यमान । याः = जो । वृत्तयः=वृत्तियाँ हैं । वे । वृत्तिसमुदायलक्षणस्य = वृत्तियों का ही समूह रूप । अवयविनः=अवयवी अङ्गी चित्त की ही हैं । तद् अपेक्षया = उसी चित्त की अपेक्षा से अर्थात् अङ्गी-रूप चित्त की अङ्गरूप वृत्तियाँ हैं—इस अवयव-अवयवी भाव को व्यक्त करने के लिए ही सूत्र में पञ्च शब्द से 'तयप् प्रत्यय (अष्टा० ५।२।४२) का प्रयोग हुआ है । एतद् उक्तं भवति = इसका यह अभिप्राय है । पञ्चवृत्तयः = पाँचों वृत्तियाँ । कीदृश्यः = किस प्रकार की हैं, इनका स्वरूप क्या हैं ? क्लिष्टाः = क्लिष्ट, क्लेश प्रदान करने वाली, बाधक । अक्लिष्टाः = अक्लिष्ट, क्लेशों को दूर करने वाली, साधक । वृत्तियाँ हैं । वक्ष्यमाणलक्षणैः = आगे बतलाये जाने लक्षणों वाली, वर्णनीय लक्षणों वाली । क्लेशैः = पञ्चविध क्लेशों से । समाक्रान्ताः = आक्रान्त, अभिभूत की गयी । वृत्तियाँ ही । क्लिष्टाः = क्लिष्ट हैं । तद्विप-रीताः = उनसे भिन्न अर्थात् पञ्चक्लेशों से रहित, योगसाधना पथ को प्रशस्त करने वाली वृत्तियाँ ही । अक्लिष्टाः = अक्लिष्ट हैं ॥ ५ ॥

एता एव पञ्च वृत्तयः सङ्क्षिप्य उद्दिश्यन्ते—

एताः एव = यही । पञ्च वृत्तयः = पाँचों वृत्तियाँ । संक्षिप्य = संक्षेप करके, संक्षेप रूप से । उद्दिश्यन्ते = दिखलाई जाती हैं, वर्णन की जाती हैं ।

प्रमाण-विपर्य्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतयः ॥ ६ ॥

अर्थ—प्रमाणविपर्य्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः = प्रमाण–विपर्यय–विकल्प–निद्रा स्मृति भेद से चित्त की वृत्तियाँ पाँच प्रकार की हैं ।

वृत्तिः—आसां क्रमेण लक्षणमाह—

आसां = इन्हीं प्रमाणविपर्यय इत्यादि पाँचों वृत्तियों का । क्रमेण = क्रम से । लक्षणं = लक्षण, स्वरूप को । आह = कहते हैं ॥ ६ ॥

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥ ७ ॥

अर्थः—प्रत्यक्षानुमानागमाः = प्रत्यक्ष—अनुमान—आगम के भेद से प्रमाणानि = यह प्रमाण वृत्ति तीन प्रकार की होती है।

वृत्तिः—अत्रातिप्रसिद्धत्वात् प्रमाणानां शास्त्रकारेण[1]भेदनिरूपणेनैव गतत्वाल् लक्षणस्य पृथक् लक्षणं न कृतम्। प्रमाणलक्षणन्तु–अविसंवादि ज्ञानं प्रमाणमिति। इन्द्रियद्वारेण बाह्यवस्तूपरागाच्चित्तस्य तद्विषय-सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारणप्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षम्। गृहीतसम्बन्धाल् लिङ्गात् लिङ्गिनि सामान्याध्यवसायोऽनुमानम्। आप्तवचनम् आगमः[2] ॥ ७ ॥

अत्र = यहाँ पर, इस सूत्र में। अतिप्रसिद्धत्वात् = प्रमाणों का स्वरूप बहुत ही प्रसिद्ध, सुस्पष्ट होने के कारण। शास्त्रकारेण = योगशास्त्रकार भगवान् पतञ्जलि द्वारा। प्रमाणानां = प्रमाणों का। भेदनिरूपणेन = भेद, प्रकार कथन द्वारा। एव = ही। लक्षणस्य = प्रमाण के लक्षण, स्वरूप का। गतत्वात् = ज्ञान हो जाने के कारण। पृथक् = पृथक् रूप से। लक्षणं = प्रमाण का लक्षण। न = नहीं। कृतं = किया गया है अर्थात् प्रमाण का स्वरूप प्रसिद्ध होने के कारण शास्त्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में इसका लक्षण नहीं किया है। प्रमाणलक्षणं तु = प्रमाण का लक्षण तो इस प्रकार है। अविसंवादि ज्ञानं = संवाद रहित, विरोध रहित ज्ञान ही। प्रमाणमिति = प्रमाण है। इन्द्रियद्वारेण = इन्द्रिय की सहायता से। बाह्यवस्तूपरागात् = बाह्य विषयों के उपराग, सम्बन्ध से। चित्तस्य = चित्त की। तद् विषयसामान्यविशेषाऽत्मनः = उसी विषय के सामान्य एवं विशेष स्वरूप का। अर्थस्य = पदार्थ का। विशेषावधारणप्रधाना = विशेष रूप, गुण क्रियारूपआकारपरिणामदशा आदि का निर्णय करने वाली मुख्य। वृत्तिः = वृत्ति ही। प्रत्यक्षं = प्रत्यक्ष प्रमाण है अर्थात् इन्द्रियों की सहायता से चित्त, बुद्धि विषय को ग्रहणकर उसी के आकार की हो जाती है। अनन्तर उसी विषय

---

१. भेदलक्षणेनैव (पा०)। २. यतो हि अविसंवादिज्ञानं प्रमाणम् अतः आप्तवचनेतिशब्देन आप्तवचनजन्या धीरभिप्रेता—इति विज्ञेयम्।

की विशेषताओं को जो वृत्ति निश्चित रूप से ग्रहण करती है, वही बुद्धि की वृत्ति ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। गृहीतसंबन्धात् लिङ्गात् = हेतुमान् व्यापक से संबद्ध लिङ्ग हेतु के ग्रहण, ज्ञान के द्वारा। लिङ्गिनि = लिङ्गी, हेतुमान्, व्यापक में। सामान्याव्यवसायः = सामान्य का निश्चय ही। अनुमानं = अनुमान प्रमाण है। व्याप्त, हेतु, लिङ्ग धूम द्वारा व्यापक, हेतुमान् लिङ्गी अग्नि सामान्य का पक्ष में ज्ञान ही अनुमान प्रमाण है। आप्तवचनं = आप्त पुरुष, यथार्थ वक्ता का वचन ही। आगमः = आगम प्रमाण है। यथार्थ वक्ता के आप्तवचन से उत्पन्न वाक्यार्थ ज्ञान ही आगम प्रमाण है ॥ ७ ॥

विशेषः—'प्रमायाः करणं प्रमाणम्' 'प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्' इसी प्रकार प्रमा के मुख्य साधन को ही प्रमाण कहते हैं। सांख्य के समान यहाँ पर योग-शास्त्र में भी प्रमा का मुख्य साधन, कारण होने के कारण चित्तवृत्ति ही प्रमाण है—'असंदिग्धाविपरीतानधिगतविषया चित्तवृत्तिरेव प्रमाणम्' संदेहरहित, अबाधित एवं पूर्व से अज्ञात विषय वाली चित्तवृत्ति ही प्रमाण है। प्रत्यक्षप्रमाण में इन्द्रियाँ सहायक ही हैं, प्रमाण नहीं। यथा घटस्थ दीप को बाह्य वस्तुओं को प्रकाशित करने के लिए घट के छिद्रों की अपेक्षा होती है। इसी तरह इन्द्रियों के माध्यम से बुद्धि विषय को ग्रहण कर उसी के आकार की हो जाती है। इन्द्रियों के सहयोग के बिना वह तमोगुण से आवृत्त होने से वस्तु को प्रकाशित करने में असमर्थ रहती है। यही बुद्धिनिष्ठ ज्ञान प्रमा का साधकतम होने के कारण प्रमाण है। यही ज्ञान उपचार सम्बन्ध से पुरुषनिष्ठ हो जाने पर प्रमा प्रमाण का फल बन जाता है। अतः इन्द्रिय की सहायता से उत्पन्न चित्तवृत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण, लिङ्गज्ञान की सहायता से उत्पन्न चित्तवृत्ति अनुमान प्रमाण, तथा वाक्यार्थज्ञान से उत्पन्न होने वाली चित्तवृत्ति आगम प्रमाण है। अतः चित्तवृत्ति ही सर्वत्र प्रमा का करण होने से प्रमाण है ॥ ७ ॥

एवं प्रमाणरूपां वृत्तिं व्याख्याय विपर्य्ययरूपामाह—

एवं = इस प्रकार। **प्रमाणरूपां** = प्रमाणरूप वाली। **वृत्तिं** = वृत्ति को **व्याख्याय** = व्याख्यान, स्वरूप निरूपण करके। **विपर्य्ययरूपां** = विपर्यय रूप, नाम वाली वृत्ति को। **आह** = कहते हैं।

विपर्य्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अतद्रूपप्रतिष्ठं = वस्तु के अयथार्थ स्वरूप में स्थित होने वाला। मिथ्याज्ञानं = मिथ्याज्ञान ही। विपर्य्ययः = विपर्यय नाम की वृत्ति है अर्थात् किसी पदार्थ के वास्तविक स्वरूप को न ग्रहण करके उसके विपरीत रूप को यथार्थ रूप से मान लेना ही विपर्यय है। यथा शुक्ति में अविद्यमान रजत की प्रतीति अथवा सर्परहित रज्जुखण्ड में सर्प की प्रतीति होना ही विपर्यय है। अरजतरूप शुक्ति अयथार्थ में रजत यथार्थ रूप से चित्तवृत्ति का प्रतिष्ठित होना ही विपर्यय, विपरीत ज्ञान है। अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश अथवा तमस्-मोह-महामोह-तामिस्र-अन्धतामिस्र रूप से यही विपर्यय पाँच प्रकार की अविद्या है—'**पञ्चपर्वाऽविद्या**'-वार्षगण्यः। यही विपर्ययवृत्ति संसार की बीजभूता कही जाती है।

वृत्तिः—अतथाभूतेऽर्थे तथोत्पद्यमानं विपर्ययः। यथा शुक्तिकायां रजतज्ञानम्। अतद्रूपप्रतिष्ठमिति—तस्यार्थस्य यद्रूपं तस्मिन् रूपे न प्रतिष्ठति, तस्यार्थस्य यत् पारमार्थिकं रूपं न तत् प्रतिभासयतीति यावत्। संशयोऽप्यतद्रूपप्रतिष्ठितत्वान्मिथ्याज्ञानं,[1] यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वेति ॥ ८ ॥

अतथाभूते अर्थे = जो पदार्थ उस स्वरूप का नहीं है, जो वस्तु का अपना स्वरूप नहीं है, उससे भिन्न रूप में, विलोम अवास्तविक, अयथार्थ पदार्थ में। तथा = उस प्रकार का, वास्तविक, यथार्थ रूप का। उत्पद्यमानं = उत्पन्न होने वाला। ज्ञानं = ज्ञान। विपर्य्ययः = विपर्यय है। यथा = जैसे। शुक्तिकायां = शुक्ति में। रजतज्ञानं = रजत का ज्ञान होना है। अतद्रूपप्रतिष्ठम् इति = अतद्रूपप्रतिष्ठं शब्द का अर्थ है—तस्य = उस। अर्थस्य = पदार्थ का। यद् = जो। रूपं = वास्तविक स्वरूप है। तस्मिन् = उस। रूपे = स्वरूप में। न = नहीं। प्रतिष्ठति = स्थित होता है अर्थात्। तस्य = उस। अर्थस्य = पदार्थ का। यत् = जो। परमार्थिकं = यथार्थ, वास्तविक, कभी भी उत्तर काल

---

१. अतद्रूपप्रतिष्ठितमिति मिथ्याज्ञानम् (पा०)।

में बाधित न होने वाला। रूपं = स्वरूप है। तत् = उसी यथार्थ स्वरूप को। न = नहीं। प्रतिभासयति = प्रकाशित करता है, प्रकट करता है। इति यावत्= यही इसका अभिप्राय है। सशयः = संशय, सन्देह, अनेक कोटिक ज्ञान। अपि= भी। अतद्रूपप्रतिष्ठितत्वात् = अयथार्थ स्वरूप में ही स्थित होने के कारण। मिथ्याज्ञानं = मिथ्याज्ञान है। अतः संशय भी विपर्यय हैं। यथा = जैसे। स्थाणुः वा = अथवा, या तो स्तम्भ है। पुरुषः वा=अथवा पुरुष है। इति = इस रूप से संदिग्ध ज्ञान भी विपर्यय ही है ॥ ८ ॥

विकल्पवृत्ति व्याख्यातुमाह—

विकल्पवृत्ति = विकल्परूप वृत्ति की। व्याख्यातुं = व्याख्या करने के लिये आह = कहते हैं।

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ ९ ॥

अर्थः—वस्तुशून्यः = पदार्थ रहित, विषय का अभाव होने पर भी। शब्द-ज्ञानानुपाती = केवल शब्दश्रवणजन्य ज्ञान के बाद होने वाला ज्ञान। विकल्पः = विकल्पवृत्ति हैं अर्थात् पदार्थ के न होने पर भी किसी से शब्द को सुनकर उसके समान ही चित्तवृत्ति हो जाती हैं, इसी को विकल्प कहते हैं। जैसे—वन्ध्यापुत्रः आगच्छति, वाक्य को किसी से सुनकर वन्ध्यापुत्र रूप विषय के अभाव में भी शब्दश्रवणजन्य जो चित्तवृत्ति होती है, इसी को विकल्प वृत्ति कहते हैं।

वृत्तिः—

शब्दजनितं ज्ञानं शब्दज्ञानं, तदनुपतितुं शीलं यस्य सः शब्दज्ञानानुपाती; वस्तुनस्तथात्वमनपेक्षमाणोऽध्यवसायः स विकल्प इत्युच्यते; यथा पुरुषस्य चैतन्यं स्वरूपमिति। अत्र देवदत्तस्य कम्बल इति शब्दजनिते ज्ञाने षष्ठ्या योऽध्यवसितो भेदः तमिहाविद्यमानमपि समारोप्य प्रवर्त्ततेऽध्यवसायः। वस्तुतस्तु चैतन्यमेव पुरुषः[1] ॥ ९ ॥

---

१. द्र०—आत्मा वा चैतन्यम्, यथाहुः सांख्याः—चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमिति (वाक्यप० दिक् १८, हेलाराज-टीका)।

शब्दजनितं = शब्द सुनने से उत्पन्न। ज्ञानं = ज्ञान ही। शब्दज्ञानं = शब्द-ज्ञान है। तद् = उस शब्दश्रवणजन्य ज्ञान का। अनुपतितु = अनुगमन करने का। शीलं = स्वभाव है। यस्य = जिसका। सः = वही। शब्दज्ञानानुपाती = शब्दज्ञान के बाद होने वाला ज्ञान है। वस्तुनः = वस्तु, पदार्थ के। तथात्वं = वास्तविक स्वरूप की। अनपेक्षमाणः = अपेक्षा न करके होने वाला। अध्यव-सायः = निश्चय ही। सः विकल्पः = वह विकल्प। इति = इस रूप से। उच्यते = कहा जाता है। यथा = जैसे। पुरुषस्य = पुरुष का। चैतन्यं = चेतन ही। स्वरूपं = स्वरूप है। इति = ऐसा। अत्र = यहाँ पर। देवदत्तस्य = देव-दत्त का। कम्बलः = कम्बल है। इति = इस रूप से। शब्दजनिते = केवल शब्द के कारण ही उत्पन्न हुए। ज्ञाने = ज्ञान में। षष्ठया = षष्ठी विभक्ति द्वारा। यः = जिस। भेदः = भेद, अन्तर का। अध्यवसितः = निर्णय हुआ है। तं = उस भेद के। इह = इसमें, यहाँ पर। अविद्यमानं = विद्यमान न होने पर। अपि=भी। समारोप्य = आरोप करके। अध्यवसायः = निर्णय। प्रवर्तते= प्रवृत्त होता है। वस्तुतः = यथार्थ में। तु = तो। चैतन्यं = चेतनता। एव = ही। पुरुषः = पुरुष है, पुरुष का वास्तविक स्वरूप है, कम्बल, दण्ड इत्यादि नहीं॥ ९॥

निद्रां व्याख्यातुमाह—

निद्रां = निद्रा नाम की वृत्ति का। व्याख्यातुं = स्वरूप निरूपण करने के लिये। आह = कहते हैं।

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥

अर्थः—अभावप्रत्ययालम्बना = अभाव के प्रत्यय का आलम्बन करनेवाली। वृत्तिः = वृत्ति। निद्रा = निद्रा है। अभाव का ज्ञान ही इस वृत्ति का आश्रय है। इस वृत्ति में किसी भी विषय के न होने पर केवल ज्ञान के अभाव की ही प्रतीति होती है।

वृत्तिः—अभावप्रत्यय आलम्बनं यस्याः सा तथोक्ता। एतदुक्तं भवति—या सन्ततम् उद्रिक्तत्वात्तमसः समस्तविषयपरित्यागेन प्रवर्त्तते वृत्तिः सा निद्रा; तस्याश्च

'सुखमहमस्वाप्सम्' इति स्मृतिदर्शनात् स्मृतेश्चानुभवव्यतिरेकेणानुपपत्तेर्वृत्तित्वम् ॥ १० ॥

अभावप्रत्ययः = अभाव का ज्ञान ही । आलम्बनं = आश्रय है । यस्याः= जिस वृत्ति का । सा = वह वृत्ति । तथा उक्ता = उस प्रकार की निद्रा रूप से कही गई है । एतद् उक्तं भवति = इसका यह अभिप्राय है । या = जो । वृत्तिः= वृत्ति । सन्ततं = विस्तृत रूप से । तमसः = तमोगुण की । उद्रिक्तात् = अधिकता के कारण । समस्तविषयपरित्यागेन = सभी विषयों का त्याग कर देने पर । प्रवर्तते = प्रवृत्त होती है । सा = वह वृत्ति । निद्रा = निद्रा है । च = और । 'सुखम् अहम् अस्वाप्सम् = मैं सुखपूर्वक सोया ।' इति = इस रूप से । तस्याः = उस वृत्ति की । स्मृतिदर्शनात् = स्मृति देखने, होने से । च = और । स्मृतेः = स्मृति का । अनुभवव्यतिरेकेण = अनुभव के बिना । अनुपपत्तेः=उपपत्ति, सिद्धि न होने के कारण वृत्तित्वं = निद्रा वृत्ति रूप में सिद्ध होती है ॥ १० ॥

स्मृतिं व्याख्यातुमाह—

स्मृतिं = स्मृति वृत्ति की । व्याख्यातुं = व्याख्या करने के लिए । आह = कहते हैं ।

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ॥ ११ ॥

अर्थः—अनुभूतविषयासंप्रमोषः = पूर्व काल में अनुभव किये गये विषय का न छिपना, नष्ट न होना, तिरोहित न होना अर्थात् प्रकट हो जाना ही । स्मृतिः= स्मृति नाम की वृत्ति है अर्थात् प्रमाण-विपर्यय-विकल्प निद्रा इन चारों वृत्तियों द्वारा पहले अनुभव किये गये संस्कारों का कालान्तर में किसी निमित्त के कारण स्फुरित, उद्बुद्ध हो जाना ही स्मृति है ।

वृत्तिः—प्रमाणेनानुभूतस्य विषयस्य योऽयमसम्प्रमोषः संस्कारद्वारेण बुद्धावारोहः[1], सा स्मृतिः । तत्र प्रमाण-विपर्यय-विकल्पा [2]जाग्रदवस्थास्त एव

---

१. बुद्धावुपारोहः (पा०) । २. जाग्रदवस्थात एव तदनुभवबलात् प्रत्यक्षायमाणाः (पा०) ।

तदनुभवबलात् प्रक्षीयमाणाः स्वप्नः। निद्रा तु असंवेद्यमानविषया। स्मृतिश्च प्रमाणविपर्य्ययविकल्पनिद्रानिमित्ता ॥ ११ ॥

प्रमाणेन = प्रमाण (तथा विपर्यय-विकल्प-निद्रा) द्वारा। अनुभूतस्य = अनुभव किये गये। विषयस्य = विषय, पदार्थ का। यः = जो। अयं = यह। असंप्रमोषः=न नष्ट होना, न चुराया जाना, न छिपना अर्थात्। संस्कारद्वारेण = संस्कार के द्वारा। बुद्धौ = बुद्धि में। आरोहः = प्रकट हो जाना, उद्बुद्ध हो जाना ही। सा=वह। स्मृतिः=स्मृति नाम की वृत्ति है। तत्र=उन पञ्च वृत्तियों में। प्रमाणविपर्य्ययविकल्पाः=प्रमाण-विपर्यय-एवं विकल्प वृत्तियाँ। जाग्रदवस्थाः= जाग्रद् अवस्था की वृत्तियाँ हैं अर्थात् जाग्रद् दशा में इन वृत्तियों के द्वारा विषयों का ज्ञान, अनुभव प्राप्त किया जाता है। ते एव = वही प्रमाण विपर्यय-विकल्प वृत्तियाँ। तद् अनुभवबलात् = जाग्रत् अवस्था में प्राप्त किये गये अनुभव के बल से। प्रक्षीयमाणाः = बहुत ही क्षीण हुई सी। स्वप्नः=स्वप्नदशा में विद्यमान रहती हैं। यहाँपर 'प्रत्यक्षायमाणाः स्वप्नाः' पाठभेद स्वीकार करने पर इसका अभिप्राय यह है—प्रत्यक्ष के सदृश ही अर्थात् जाग्रत् दशा के समान ही ज्ञान प्रदान कराने वाली ये स्वप्नावस्था में चित्त की वृत्तियाँ हैं। निद्रा = निद्रा नाम की वृत्ति। तु = तो। असंवेद्यविषया = न जानने योग्य विषय वाली है अर्थात् विषय का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। च = और। स्मृतिः = स्मृति नाम की वृत्ति। प्रमाणविपर्य्ययविकल्पनिद्रानिमित्ता = प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा वृत्तियों के निमित्त अर्थात् स्मृति का विषय चारों ही प्रमाणादि वृत्तियाँ ही हैं। इन्हीं चारों वृत्तियों से अनुभूत विषयों के संस्कारों को धारण करना ही स्मृति है ॥११॥

एवं वृत्तीर्व्याख्याय सोपायं निरोधं व्याख्यातुमाह—

एवं = इस प्रकार से। वृत्तीः = वृत्तियों का। व्याख्याय = वर्णन करके। सोपायं = उपाय के सहित। निरोधं = निरोध को, इन्हीं वृत्तियों के रोकने को। व्याख्यातुं = कहने के लिये। आह = कहते हैं।

अभ्यास-वैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १२ ॥

अर्थः—तत् निरोधः = उन चित्तवृत्तियों का निरोध, प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति रूप चित्त की वृत्तियों का रोकना। अभ्यासवैराग्याभ्यां = अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा होता है अर्थात् वैराग्य द्वारा चित्तवृत्तियों को बाह्य विषयों में गमन से रोककर, उनके बहिःप्रवाह को रोककर, अभ्यास द्वारा सदैव उन वृत्तियों के अन्तः प्रवाह को बनाये रखना ही उन वृत्तियों का निरोध है।

वृत्तिः—अभ्यास-वैराग्ये वक्ष्यमाणलक्षणे, ताभ्यां प्रकाश-प्रवृत्ति[1] नियमरूपा या वृत्तयः, तासां निरोधो भवतीत्युक्तं भवति; तासां विनिवृत्तबाह्याभिनिवेशानाम् अन्तर्मुखतया स्वकारण एव चित्ते शक्तिरूपतयाऽवस्थानम्। तत्र विषयदोष-दर्शनजेन वैराग्येण तद्वैमुख्यमुत्पाद्यते, अभ्यासेन च सुखजनकं शान्तप्रवाह-प्रदर्शनद्वारेण दृढस्थैर्यमुत्पद्यते, इत्थं ताभ्यां भवति चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ १२ ॥

अभ्यासवैराग्ये = अभ्यास एवं वैराग्य। वक्ष्यमाणलक्षणे = आगे लक्षण का निरूपण किये जाने वाले हैं। ताभ्यां = उन्हीं दोनों के द्वारा। प्रकाशप्रवृत्ति-नियमरूपाः = प्रकाश करने वाली, कार्यों में प्रवृत्त करने वाली एवं नियमन करने वाली। याः=जो। वृत्तयः = चित्त की वृत्तियाँ हैं। तासां = उन वृत्तियों का। निरोधः = अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा निरोध, रोकना। भवति = होता है। इति उक्तं भवति – ऐसा कहा गया, इसका यह अभिप्राय है। विनि-वृत्तबाह्याभिनिवेशानां = बाह्य विषयों की आसक्ति से लौटी हुई है अर्थात् बाह्य-विषयों के सम्बन्ध का त्याग करने वाली। तासां = उन वृत्तियों का। अन्तर्मुख-तया = अन्तर्मुखीरूप से, विलोम परिणाम द्वारा। स्वकारणे एव = अपने ही कारण। चित्ते = चित्त में। शक्तिरूपतया = शक्तिरूप से। अवस्थानं = स्थापित करना, स्थित करना ही निरोध है। तत्र = उन वृत्तियों में। विषयदोषदर्शन-जेन = विषयों में क्लेश, अनित्यत्व, दुःखरूपत्व इत्यादि दोषों को देखने से उत्पन्न होने वाले। वैराग्येण = वैराग्य के द्वारा। तद् = उन विषयों से। वैमुख्यं = विमुखता, पराङ्मुखता, अनिच्छा। उत्पाद्यते = उत्पन्न की जाती है।

---

१. प्रकाशवृत्ति (पा०)।

च = और। अभ्यासेन = अभ्यास के द्वारा। शान्तप्रवाहप्रदर्शनद्वारेण = उद्वेग-रहित शान्त प्रवाह के प्रदर्शन द्वारा। सुखजनकं = क्लेश रहित सुख को उत्पन्न करने वाली। दृढस्थैर्य्यं=चित्तवृत्तियों की दृढ स्थिरता। उत्पद्यते = उत्पन्न होती है। इत्थं = इस प्रकार से। ताभ्यां = उन दोनों अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा। चित्तवृत्तिनिरोधः = चित्त की वृत्तियों का निरोध, बाह्य विषयों को त्यागकर अपने कारण चित्त में विलीन होना। भवति = होता है ॥ १२ ॥

अभ्यासं व्याख्यातुमाह—

अभ्यासं = अभ्यास की। व्याख्यातुं = व्याख्या करने के लिये। आह = कहते हैं।

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १३ ॥

अर्थः—तत्र = उनमें, अभ्यास एवं वैराग्य दोनों में, अथवा चित्त के निरोध के विषय में। स्थितौ = स्थिति में, चित्तवृत्तियों की स्थिरता के लिये। यत्नः = किया गया प्रयत्न, उद्योग, उत्साह ही। अभ्यासः = अभ्यास है, अभ्यास कहा जाता है अर्थात् चित्त की प्रशान्त वाहिता, एकाग्रता रूप स्थिति के लिये किये गये यम-नियम-आसन इत्यादि मानसिक उत्साह ही अभ्यास है।

वृत्तिः—वृत्तिरहितस्य चित्तस्य स्वरूपनिष्ठः परिणामः स्थितिः, तस्यां यत्न उत्साहः, पुनः पुन[२] स्तथात्वेन चेतसि निवेशनमभ्यास इति उच्यते ॥ १३ ॥

वृत्तिरहितस्य = वृत्तियों से रहित। चित्तस्य = चित्त की। स्वरूप-निष्ठः = अपने ही वास्तविक स्वरूप में रहने वाला। परिणामः = परिणाम ही, अवस्था ही। स्थितिः = स्थिति है। तस्यां = उसी स्थिति में, उसी स्थिति को प्राप्त करने के लिये। यत्नः=प्रयत्न, प्रयास अर्थात्। उत्साहः=उत्साह, मानसिक चेष्टा ही अर्थात्। पुनः पुनः=बार बार। तत्त्वेन = तत्त्वज्ञान के द्वारा, विचार पूर्वक। चेतसि = चित्त में। निवेशनं=वृत्तियों का प्रवेश करना ही। अभ्यासः = अभ्यास। इति उच्यते = इस रूप से कहा जाता है अर्थात् वृत्तियों के निरोध के

---

२. पुनस्तत्त्वेन (पा०)। ३. सत्कारसेवितो (पा०)।

के लिये बार बार प्रयास पूर्वक इन वृत्तियों का उनके कारण चित्त में प्रवेश करना ही अभ्यास है ।।१३।।

तस्यैव विशेषमाह—

तस्य = उस अभ्यास के । एव = ही । विशेषं=विशेष स्वरूप को । आह = कहते हैं ।

स तु दीर्घकालादरनैरन्तर्य्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ।।१४।।

अर्थः—सः—वह अभ्यास । तु = तो । दीर्घकाल = बहुत समय तक । आदर=विश्वास पूर्वक । नैरन्तर्य्य = निरन्तर, अनवरत, अविच्छिन्न रूप से । सत्कार = श्रद्धा, भक्ति के साथ । आसेवितः = सेवन किया जाने पर, अनुष्ठान किया जाने पर । दृढभूमिः = सुदृढभूमि, स्थायी अवस्था वाला होता है अर्थात् विश्वास एवं श्रद्धा के साथ बहुत समय तक व्यवधान रहित रूप से यम नियम आदि का सेवन करने से यह अभ्यास दृढ अवस्था वाला होता है ।

वृत्तिः—बहुकालं नैरन्तर्य्येण आदरातिशयेन च सेव्यमानो दृढभूमिः स्थिरो भवति, दार्ढ्याय प्रभवतीत्यर्थः ।। १४ ।।

बहुकालं = बहुत समय तक । नैरन्तर्य्येण = निरन्तर, लगातार, व्यवधान रहित रूप से । च = और । आदरातिशयेन = अत्यधिक आदर के साथ, बहुत ही विश्वास श्रद्धा के साथ । सेव्यमानः = सेवन किया जाता हुआ वह अभ्यास । दृढभूमिः = सुदृढ अवस्था वाला अर्थात् । स्थिरः = स्थिर, स्थायी । भवति = होता है । दार्ढ्याय = दृढता के लिए । प्रभवति = होता है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है ।। १४ ।।

वैराग्यस्य लक्षणमाह—

वैराग्यस्य = वैराग्य के । लक्षणं = लक्षण, स्वरूप को । आह = कहते हैं ।

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ।।१५।।

अर्थः—दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य=दृष्ट एवं आनुश्रविक विषयों के सम्बन्ध में सर्वथा तृष्णा का अभाव हो जाने वाले चित्त की । वशीकारसंज्ञा=वशीकार नाम वाली अवस्था ही । वैराग्यं = अपर वैराग्य है अर्थात् प्रत्यक्ष अनुभव में

आने वाले इस लोक के समस्त स्रक्-चन्दन-विलेपन-रमणी-अन्न-पान इत्यादि दृष्ट विषयों, भोगों में तथा वेद द्वारा ज्ञात होने वाले स्वर्ग स्थित अप्सरा-अमृतपान इत्यादि आनुश्रविक विषयों, भोगों में अनित्यत्व, दुःखरूपत्व, न्यूनाधिक्य इत्यादि दोषों को देखकर उनको प्राप्त करने की अभिलाषा न रखने वाले चित्त की जो वशीकार दशा होती है, वही अपर वैराग्य है।

वृत्तिः—द्विविधो हि विषयो दृष्ट आनुश्रविकश्च। दृष्ट इहैवोपलभ्यमानः शब्दादिः, देवलोकादावानुश्रविकः, अनुश्रूयते गुरुमुखादित्यनुश्रवो वेदः, तत आगत[1] आनुश्रविकः। तयोर्द्वयोरपि विषययोः परिणामविरसत्वदर्शनाद्विगतगर्द्धस्य या वशीकारसंज्ञा 'ममैते वश्या नाहमेतेषां वश्यः' इति योऽयं विमर्शः,[2] तद्वैराग्यमुच्यते॥ १५॥

द्विविधः हि = दो प्रकार के ही। विषयः = विषय होते हैं। दृष्टः=दृष्ट। च = और। आनुश्रविकः = आनुश्रविक। इह एव=इस ही, इसी संसार में। उपलभ्यमानः=प्राप्त होने वाले, अन्तःकरण तथा इन्द्रियों द्वारा भोगे जाने वाले। शब्दादिः = शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध इत्यादि। दृष्टः = दृष्ट, लौकिक विषय हैं। देवलोकादौ=देवलोक, स्वर्ग इत्यादि में भोगे जाने वाले। आनुश्रविकः = आनुश्रविक विषय हैं। गुरुमुखात्=गुरु के मुख से उच्चरित होने पर। अनुश्रूयते = बाद में सुना जाता है। इति = इस रूप से, इसलिये। अनुश्रवः = अनुश्रव ही। वेदः = वेद हैं अर्थात् अनुश्रव को वेद कहते हैं। तत्=उसी वेद से। तत आगतः = प्राप्त होने नाला, ज्ञात होने वाला विषय ही। आनुश्रविकः= आनुश्रविक कहा जाता है। तयोः द्वयोः=उन्हीं दृष्ट एवं आनुश्रविक दोनों प्रकार के विषयों में। अपि = भी। परिणाम = परिणाम, अनित्यता, नश्वरता। विरसत्व = रस का अभाव, आनन्द का अभाव, दुःख को। दर्शनात् = देखने से, ज्ञान होने से। विगतगर्द्धस्य = दूर हो गया है लोभ जिसका, लोभ रहित,

---

१. तत्समधिगत (पा०)। २. द्र० "वशीकारसंज्ञा ममैवेते वश्या नाहमेतेषां वश्य इति योऽयं विमर्शस्तद् वैराग्यमुच्यते" (योगचिन्तामणि, पृ. २७)।

ग्रहण की अभिलाषा से रहित चित्त की। या = जो। वशीकारसंज्ञा = वशीकार संज्ञा है अर्थात् यतमान-व्यतिरेक-एकेन्द्रिय के पश्चात् सभी प्रकार की तृणाओं का अभाव रूप जो चित्त की वशीकार नाम वाली चतुर्थ संज्ञा है अर्थात् "एते = ये सभी विषय। मम = मेरे ही। वश्याः = वश में हैं। अहं = मैं। एतेषां = इन विषयों के। वश्यः = वश में। न = नहीं हूँ।" इति = इस प्रकार का। यः = जो। अयं = यह। विमर्शः = ज्ञान है। तद् = वही। वैराग्यं = अपर वैराग्य। उच्यते = कहा जाता है ॥ १५ ॥

तस्यैव विशेषमाह—

तस्य = उस वैराग्य का। एव = ही। विशेषं = विशेष स्वरूप, भेद। आह = कहते हैं।

तत् परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥

अर्थः—पुरुषख्यातेः = प्रकृति एवं पुरुष का विवेक ज्ञान हो जाने पर। गुणवैतृष्ण्यं = प्रकृति के **गुणों में** भी सर्वथा तृष्णा का अभाव हो जाना ही। तत् = वह। परं = **पर वैराग्य** है अर्थात् प्रकृति एवं पुरुष का भेद ज्ञान प्राप्त हो जाने पर, प्रकृति के **गुणों में अथवा** सत्त्वगुण बुद्धि के कार्य विवेक ज्ञान में भी तृष्णा का अभाव हो **जाता है**। यह निर्विषयक बुद्धि की केवल शुद्ध ज्ञान मात्र की प्रसन्नता है। चित्त की **यही** अवस्था पर वैराग्य है।

वृत्तिः—तद्वैराग्यं परं प्रकृष्टम्; प्रथमं वैराग्यं विषयविषयम्, द्वितीयं गुणविषयम् उत्पन्नगुणपुरुषविवेकख्यातेरेव भवति, निरोधसमाधेरत्यन्तानुकूलत्वात् ॥ १६ ॥

तद् = वह। वैरायं = वैराग्य। परं = पर है अर्थात्। प्रकृष्टं = प्रकृष्ट, सर्वश्रेष्ठ, चरम पराकाष्ठा रूप है। प्रथमं = प्रथम। वैराग्यं = अपर नामक वैराग्य। विषयविषयं = दृष्ट तथा आनुश्रविक विषय वाला है अर्थात् दृष्ट एवं आनुश्रविक भोगों में तृष्णा का अभाव रूप है। द्वितीयं = द्वितीय पर वैराग्य। गुणविषयं = **गुण** विषय वाला है अर्थात् गुणों का भी परित्याग करने वाला त्रिगुणातीत है। जो उत्पन्नगुणपुरुषविवेकख्यातेः = प्रकृति एवं पुरुष के भेद ज्ञान के उत्पन्न होने पर। एव = ही। भवति = होता है। निरोधसमाधेः = निरोध समाधि, असंप्रज्ञात समाधि के लिये। अत्यन्त = बहुत ही। अनुकूल-

त्वात् = अनुकूल होने के कारण, सहायक होने के कारण, अर्थात् पर वैराग्य असंप्रज्ञात समाधि की सिद्धि में बहुत ही उपयोगी है ॥ १६ ॥

एवं योगस्य स्वरूपमुक्त्वा सम्प्रज्ञातस्वरूपभेदमाह[1]—

एवं = इस प्रकार। योगस्य = योग के। स्वरूपं = स्वरूप, लक्षण को। उक्त्वा = कहकर, निरूपण करके। अब। संप्रज्ञातस्वरूपभेदं = संप्रज्ञात समाधि के स्वरूप तथा भेद, प्रकार को। आह = कहते हैं।

वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः ॥ १७ ॥

अर्थः—वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् = वितर्क, विचार, आनन्द एवं अस्मिता के स्वरूप का अनुगमन करने वाली, संबन्ध रखने वाली चित्तवृत्ति का निरोध। संप्रज्ञातः = संप्रज्ञात समाधि होती है अर्थात् वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत एवं अस्मितानुगतरूप से चित्त की वृत्तियों का निरोध ही संप्रज्ञात योग है।

समाधिरिति शेषः। सम्यक् संशयविपर्य्ययरहितत्वेन प्रज्ञायते प्रकर्षेण ज्ञायते भाव्यस्य रूपं येन स सम्प्रज्ञातः, समाधिर्भावनाविशेषः। स वितर्कादिभेदाच्चतुर्विधः—सवितर्कः, सविचारः, सानन्दः, सास्मितश्च। भावना[2] भाव्यस्य विषयान्तरपरिहारेण चेतसि पुनः पुनर्निवेशनम्; भाव्यञ्च द्विविधम्—ईश्वरस्तत्त्वानि च। तान्यपि द्विविधानि जडाजडभेदात्; जडानि चतुर्विंशतिः, अजडः पुरुषः।

तत्र यदा[3] महाभूतानि इन्द्रियाणि स्थूलानि विषयत्वेनादाय पूर्वापरानुसन्धा-

---

१. संप्रज्ञातरूपं भेदमाह (पा०)।

२. अत्रत्या भोजवृत्तिः शिवानन्देन योगचिन्तामणौ अनुसृता—"भावना च विषयान्तरपरिहारे भाव्यस्य चेतसि पुनः पुनर्निवेशनम्। भाव्यन्तु द्विविधम् ईश्वरस्तत्त्वानि च। तत्त्वं पूर्वद्विविधानि-अजडो जडानि च। जडानि प्रकृतिमहदंकारैकादशेन्द्रियपञ्चतन्मात्रपंचभूतभेदाच्चतुर्विंशतिः अजडः पुरुषः" (पृ० ८)।

३. सवितर्कादिभेदानामत्र यद् विवरणं दत्तं तत् सर्वं शिवानन्देन अनुसृतमेवेति दृश्यते। (तत्रैव, पृ० ८-९)।

नेन शब्दार्थोल्लेखसम्भेदेन च भावना क्रियते, तदा सवितर्कः समाधिः। अस्मिन्नेवावलम्बने पूर्वापरानुसन्धानशब्दोल्लेखशून्यत्वेन यदा भावना प्रवर्त्तते तदा निर्वितर्कः। तन्मात्रान्तःकरणलक्षणं सूक्ष्मविषयमालम्ब्य तस्य देशकालधर्मावच्छेदेन यदा भावना, तदा सविचारः। तस्मिन्नेवावलम्बने देशकालधर्मावच्छेदं विना धर्मिमात्रावभासित्वेन भावना क्रियमाणा निर्विचार इत्युच्यते। एवंपर्य्यन्तः समाधिः ग्राह्यसमापत्तिरिति व्यपदिश्यते।

यदा तु रजस्तमोलेशानुविद्धमन्तःकरणसत्त्वं भाव्यते, तदा गुणभावाच्चितिशक्तेः सुखप्रकाशमयस्य सत्त्वस्य भाव्यमानस्योद्रेकात् सानन्दः समाधिर्भवति। तस्मिन्नेव समाधौ ये बद्धधृतयस्तत्त्वान्तरं प्रधान-पुरुषरूपं न पश्यन्ति, ते विगतदेहाहङ्कारत्वाद्विदेहशब्दवाच्याः। इयं ग्रहणसमापत्तिः।

ततः परं रजस्तमोलेशानभिभूतशुद्धसत्त्वमालम्बनीकृत्य या प्रवर्त्तते भावना, तस्यां ग्राह्यस्य न्यग्भावाच् चितिशक्तेरुद्रेकात् सत्तामात्रावशेषत्वेन समाधिः सास्मित इत्युच्यते। न चाहङ्कारास्मितयोरभेदः शङ्कनीयः, यतो यत्रान्तःकरणम् 'अहमिति' उल्लेखेन विषयान् वेदयते, सोऽहङ्कारः; यत्रान्तर्मुखतया प्रतिलोमपरिणामे प्रकृतिलीने चेतसि सत्तामात्रम् अवभाति, साऽस्मिता। अस्मिन्नेव समाधौ ये कृतपरितोषाः परं [1]परमात्मानं पुरुषं न पश्यन्ति, तेषां चेतसि स्वकारणे लयमुपागते; प्रकृतिलया इत्युच्यन्ते ये परं पुरुषं ज्ञात्वा भावनायां प्रवर्त्तन्ते, तेषामियं विवेकख्यातिर्ग्रहीतृसमापत्तिरित्युच्यते।

वृत्तिः—तत्र सम्प्रज्ञाते समाधौ चतस्रोऽवस्थाः शक्तिरूपतयाऽवतिष्ठन्ते, तत्रैकैकस्यस्त्याग[2] उत्तरोत्तरेति चतुरवस्थोऽयं सम्प्रज्ञातः समाधिः ॥१७॥

समाधिरिति शेषः = समाधि इस रूप में शेष है अर्थात् प्रस्तुत सूत्र में समाधिपद शेष है, इसका सम्बन्ध सूत्र के साथ होना चाहिये। सम्यक् = अच्छी प्रकार से। संशयविपर्य्ययरहितत्वेन = संशय एवं विपर्यय का अभाव हो जाने से। येन = जिसके द्वारा। भाव्यं = ध्येय पदार्थ का। रूपं = वास्तविक स्वरूप। प्रज्ञायते = भली भाँति जाना जाता है। प्रकर्षेण = प्रकृष्ट रूप से। ज्ञायते = जाना जाता है। सः = वही। संप्रज्ञातः = संप्रज्ञात समाधि है। भावनाविशेषः=

---

१. परमात्मानं (पा०)। २. उत्तरोत्तरत्रेति (पा०)।

विशेष प्रकार की भावना, विचार ही । समाधिः=समाधि है । सः=वह समाधि वितर्कादिभेदात् = विनर्क इत्यादि के भेद से । चतुर्विधः = चार प्रकार की है । यथा । सवितर्कः = वितर्क सहित । सविचारः = विचार सहित । सानन्दः = आनन्द सहित । च = और । सास्मितः = अस्मिता सहित । भावना = यह विशेष भावना रूपी समाधि । विषयान्तरपरिहारेण = ध्येय से प्रतिकूल विषयों का परिहार करके, दूर करके । भाव्यस्य = ध्येय, भावना किये जाने वाले पदार्थ का । चेतसि = चित्त में । पुनः पुनः = बार बार । निवेशनं = प्रवेश करना, चिन्तन करना है । च = और । भाव्यं = यह ध्येय पदार्थ । द्विविधं = दो प्रकार का है । ईश्वरः = ईश्वर । च = और । तत्त्वानि = तत्त्व । जडाजडभेदात् = अचेतन एवं चेतन भेद से । तानि = वे । अपि = भी । द्विविधानि = दो प्रकार के हैं । जडानि = जड तत्त्व । चतुर्विंशतिः = चौबीस हैं । अजडः = चेतन । पुरुषः = पुरुष है । तत्र = उस संप्रज्ञात समाधि में । तदा = तब । सवितर्कः = सवितर्क । समाधिः = समाधि होती है, उसे सवितर्क संप्रज्ञात समाधि कहते हैं । यदा = जब । स्थूलानि = स्थूल रूप से । महाभूतानि = पञ्चमहाभूत इन्द्रियाणि = और इन्द्रियों को । विषयत्वेन = विषय रूप से । आदाय = लेकर, ग्रहण करके । पूर्वापरानुसन्धानेन = पूर्व और अपर दशाओं के अनुसन्धान द्वारा अर्थात् पूर्वदशा उद्भव एवं अपर दशा, तिरोभाव के विचार से । च = और । शब्दार्थोल्लेखसम्भेदेन = शब्द, अर्थ, उल्लेख (ज्ञान) के भेदों के साथ । भावना = भावना, ध्यान । क्रियते = किया जाता है अर्थात् जब स्थूल महाभूतों एवं इन्द्रियों, को ध्येय आलम्बन बनाकर, उनमें विद्यमान शब्द, पदार्थ, ज्ञान इत्यादि विषय, गुण, धर्म, दशा इत्यादि सभी स्थूल विषयों का ध्यान किया जाता है, तब सवितर्क समाधि होती है । अस्मिन् एव अवलम्बने = इसी स्थूल महाभूत एवं इन्द्रिय रूप आश्रय, ध्येय विषय में । पूर्वापरानुसन्धानशब्दोल्लेखशून्यत्वेन = उद्भव, तिरोभाव का विचार एवं शब्द, अर्थ, ज्ञान इत्यादि के निर्देश से रहित रूप से । यदा = जब । भावना = भावना । प्रवर्तते = की जाती है । तदा = तब । निर्वितर्कः = निर्वितर्क नाम की संप्रज्ञात समाधि होती है । तन्मात्रान्तःकरणलक्षणं = शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध रूप सूक्ष्म तन्मात्राओं एवं अन्तःकरण रूप सूक्ष्मविषयं = सूक्ष्म

विषयों को। आलम्ब्य = आलम्बन, ध्यान का विषय बनाकर। तस्य = उस सूक्ष्म विषय के। देशकालधर्मावच्छेदेन = देश-काल धर्म से अवच्छिन्न, देश-काल-धर्म इत्यादि दशाओं के साथ। यदा = जब। भावना = भावना, ध्यान होता है। तदा = तब। सविचारः = सविचार नाम वाली संप्रज्ञात समाधि होती है। तस्मिन् एक अवलम्बने = उस ही आश्रय में, सूक्ष्मतन्मात्राओं एवं अन्तःकरण के सम्बन्ध में। देशकालधर्मावच्छेदं विना = देश-काल-धर्म इत्यादि संबन्ध के बिना ही। धर्मिमात्रावभासित्वेन = केवल धर्मी को ही प्रकाशित करने वाली, स्वरूप का ज्ञान प्रदान करने वाली। क्रियमाणा = की जाती हुई। भावना=भावना, ध्यान। निर्विचारः = निर्विचार समाधि। इति = इस रूप से। उच्यते = कही जाती है। सभी प्रकार के धर्मों से रहित, केवल सूक्ष्म विषय धर्मी का ज्ञान प्रदान करने वाली समाधि निर्विचार है। एवं पर्य्यन्तः=यहाँ तक सवितर्क से लेकर निर्विचार तक। समाधिः = समाधि। ग्राह्यसमापत्तिः = ग्राह्य समापत्ति। इति = इस। व्यपदिश्यते = नाम, संज्ञा से कही जाती है, क्योंकि स्थूल एवं सूक्ष्म रूप से चित्त के ग्राह्य भाव्य विषय होते हैं। तु=किन्तु। यदा = जब। रजस्तमोलेशानुविद्धं= रजो गुण एवं तमोगुण के सम्बन्ध से युक्त, संपृक्त। अन्तःकरणसत्त्वं = अन्तःकरण, अहंकार-मनरहित केवल बुद्धि की। भाव्यते = भावना, ध्यान किया जाता है। सुखप्रकाशमयस्य = सुख एवं प्रकाश करने वाली। भाव्यमानस्य = ध्येय (बुद्धि की)। सत्त्वस्य = सत्त्वगुण वहुल बुद्धि की। उद्रेकात् = प्रधानता होने के कारण। चितिशक्तेः = चेतनशक्ति, चैतन्य की। गुणभावात् = बुद्धि के अनुसार होने के कारण। सानन्दः = सानन्द, आनन्दानुगत। समाधि। भवति = होती है अर्थात् रजोगुण एवं तमोगुण से किंचित् सम्पर्क रखने वाली बुद्धि की जब भावना की जाती है, तब सत्त्वगुण की प्रबलता होने के कारण बुद्धि सुखमय एवं प्रकाशमय हो जाती है (सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टम्) इसी बुद्धि में प्रतिबिम्बत चेतन पुरुष भी इसी के धर्मों से युक्त हो जाता है। अतः आनन्द की प्रतीति होने के कारण इस समाधि को सानन्द संप्रज्ञात समाधि कहते हैं। तस्मिन् एव समाधौ= उसी सानन्द समाधि में। ये = जो साधक। बद्धधृतयः=बद्धधृति वाले हैं, धैर्यपूर्वक निश्चय रूप से इसी को चरम प्राप्ति, सर्वस्व मानने वाले हैं। प्रधानपुरुषरूपं = प्रकृति पुरुष रूप। तत्त्वान्तरं = इससे भिन्न तत्त्व को। न = नहीं। पश्यन्ति =

देखते हैं। ते = वे साधक। विगतदेहाहङ्कारत्वात् = देह से अहंकार के दूर हो जाने के कारण। विदेहशब्दवाच्याः = विदेह नाम से कहे जाते हैं। इयं = यह अवस्था। ग्रहणसमापत्तिः = ग्रहणसमापत्ति, बुद्धिविषयक समाधि है। ततः परं = इसके पश्चात्। रजस्तमोलेशानभिभूतशुद्धसत्त्वं = रजो गुण तथा तमो गुण के सम्बन्ध से अभिभूत न की गई शुद्ध सत्त्व गुण वाली बुद्धि को। रजोगुण तथा तमोगुण के प्रभाव से रहित रजोगुण एवं तमोगुण से सर्वथा असंबद्ध सत्त्वगुण-बहुला बुद्धि को। आलम्बनीकृत्य = आलम्बन बना करके, ध्येय रूप से। या = जो। भावना = विचार, ध्यान। प्रवर्तते = प्रवृत्त होता है, किया जाता है। तस्यां = उस भावना, ध्यान में। ग्राह्यस्य = ग्राह्यबुद्धि के। न्यग्भावात् = अभिभूत, दबाई गई, न्यून स्वरूप होने के कारण। चितिशक्तेः = (साथ ही) चेतनशक्ति, चैतन्य पुरुष की। उद्रेकात् = अधिकता के कारण। सत्तामात्रावशेषत्वेन = केवल सत्तारूप से शेष रहने वाली, सत्तामात्र की प्रतीति कराने वाली, सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त कराने वाली बुद्धि का भी विलय हो जाने से। समाधिः = समाधि। सास्मितः = साम्मित, अस्मितानुगत। इति उच्यते = इस रूप से कही जाती है। अहङ्कारस्मितयोः च = अहङ्कार और अस्मिता में। अभेद = अभेद, एकरूपता की। न शङ्कनीयः = शङ्का नहीं करनी चाहिये। दोनों को एकरूप नहीं मानना चाहिये। यतः = क्योंकि। यत्र = जहाँ पर, जिस समय। अन्तःकरणं = अन्तः करण। 'अहम् इति' = मैं हूँ इस रूप से 'अहमत्र अधिकृतः' इस अहं भाव से। उल्लेखेन = उल्लेखपूर्वक, ज्ञानरूप अहं भावना के द्वारा। विषयान् = विषयों का। वेदयते = ज्ञान प्रदान करता है। सः = वही। अहङ्कारः = अहङ्कार है। यत्र = जब, जिस समय। अन्तर्मुखतया = अन्तर्मुखीरूप से, बाह्य विषयों का परित्याग कर भीतर की ओर। प्रतिलोमपरिणामे = विलोम परिणाम में, विषयों से विमुख प्रवृत्ति होने से। प्रकृतिलीने = बुद्धि का अपने कारण प्रकृति में विलीन हो जाने पर। चेतसि = चित्त, बुद्धि में। सत्तामात्रं = केवल सत्ता की ही, पुरुष के स्वरूप की ही। अवभाति = प्रतीति होती है। सा = वह। अस्मिता = स्मिता है। विषयों से उपरत हुई बुद्धि जब अपने कारण प्रकृति में लीन हो जाती है, तब पुरुष के सत्तामात्र की ही प्रतीति होती है, यही दशा अस्मिता है। इससे युक्त समाधि अस्मितानुगत है। अस्मिन् एव

समाधौ = इसी अस्मितानुगत समाधि में। ये = जो साधक। कृतपरितोषाः संतुष्ट हो गये हैं, संतोष प्राप्त कर चुके हैं। और। परं = सर्वश्रेष्ठ। परमात्मानं = परमात्मा। पुरुषं = पुरुष को। न = नहीं। पश्यन्ति = देखते हैं। तेषां = उन साधकों को। चेतसि = चित्त, बुद्धि। स्वकारणे = अपने कारण प्रकृति में। लयमुपगते = लय प्राप्त होने पर, विलीन हो जाने पर। प्रकृतिलयाः=प्रकृतिलय, प्रकृति में लय को प्राप्त करने वाले। इति = इस नाम से। उच्यन्ते = कहते हैं। ये = जो साधक। परं पुरुषं = बुद्धि-प्रकृति से परे सर्वश्रेष्ठ पुरुष को। ज्ञात्वा = जानकर। भावनायां=उस पुरुष के स्वरूप ज्ञान में, विचार, ध्यान में। प्रवर्त्तन्ते= प्रवृत्त होते हैं, प्रयास करते हैं। तेषां = उन साधकों की। इयं = यह। विवेक-ख्यातिः = प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञान। ग्रहीतृसमापत्तिः = ग्रहीतृ समापत्ति। इति = इस नाम से। उच्यते = कही जाती है। तत्र = उस। संप्रज्ञाते समाधौ = संप्रज्ञात समाधि मे। चतस्रः = सवितर्क-सविचार-सानन्द-सास्मित रूप चारों। अवस्थाः= भावना की विशेष अवस्थायें। शक्तिरूपतया = शक्तिरूप से। अवतिष्ठन्ते = विद्यमान रहती हैं। तत्र = उनमें। एकैकस्याः=एक-एक अवस्थाओं का त्याग। एवं क्रमशः। उत्तरोत्तरेति=उत्तर-उत्तर, बाद-बाद की अवस्थाओं की प्राप्ति के रूप से। चतुरवस्थः=चार दशाओं वाली। अयं=यह। संप्रज्ञातः=संप्रज्ञात। समाधिः = समाधि है॥ १७॥

असम्प्रज्ञातमाह—

असंप्रज्ञातं = असप्रज्ञात समाधि के स्वरूप को। आह = कहते हैं।

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥१८॥

अर्थः—विरामप्रत्ययं = सभी वृत्तियों के उपरत हो जाने की प्रतीति का। अभ्यासपूर्वः = पर वैराग्य द्वारा सतत अभ्यास पूर्वक। संस्कारशेषः = सभी वृत्तियों का अभाव हो जाने से, संस्कारमात्रशेष। अन्य = संप्रज्ञात से भिन्न दूसरी असंप्रज्ञात समाधि होती है अर्थात् पर वैराग्य के सतत अभ्यास, अनुष्ठान द्वारा समस्त चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाने पर, जो केवल संस्कार शेष रूप अवस्था चित्त की है, वही असंप्रज्ञात, निर्विषयक, निर्बीज निर्वृत्तिक समाधि है। यथा भर्जित बीज अंकुर की उत्पत्ति में असमर्थ होता है, फिर भी स्वरूप से

स्थित होता है, उसी प्रकार निरुद्ध चित्त भी वृत्तिरूप अङ्कुर उत्पन्न करने में असमर्थ है। फिर भी स्वरूप में संस्कार मात्र शेष रहता है। अविद्या रूप बीज से रहित होने के कारण यह समाधि निर्बीज है।

वृत्ति—:विरम्यतेऽनेनेति[1] विरामो वितर्कादिचिन्तात्यागः; विरामश्चासौ प्रत्ययश्चेति विरामप्रत्ययः; तस्याभ्यासः पौनः पुन्येन चेतसि निवेशनम्। तत्र या काचित् वृत्तिरुल्लसति, तस्या 'नेति नेती' ति नैरन्तर्येण पर्युदसनं विरामप्रत्ययाभ्यासः, तत्पूर्वः सम्प्रज्ञातसमाधिः। संस्कारशेषोऽन्यः तद्विलक्षणः, अयमसम्प्रज्ञात इत्यर्थः। न तत्र किञ्चिद्वेद्यम्। असम्प्रज्ञातो निर्बीजः समाधिः।

इह चतुर्विधः चित्तस्य परिणामः,—व्युत्थानं, समाधिप्रारम्भः, एकाग्रता निरोधश्च। तत्र क्षिप्तमूढे चित्तभूमी व्युत्थानम्। विक्षिप्ता भूमिः सत्वोद्रेकात् समाधिप्रारम्भः। निरुद्धैकाग्रते च पर्यन्तभूमी। प्रतिपरिणामञ्च संस्काराः; तत्र व्युत्थानजनिताः संस्काराः समाधिप्रारम्भजैः संस्कारैः प्रत्याहन्यन्ते तज्जाश्च एकाग्रताजैः। निरोधजनितैरेकाग्रताजा निरोधजाः संस्काराः स्वरूपञ्च हन्यन्ते; यथा सुवर्णसंवलितं ध्मायमानं सीसकमात्मानं सुवर्णमलञ्च निर्दहति, एवमेकाग्रताजनितान् संस्कारान् निरोधजाः स्वात्मानञ्च निर्दहन्ति ॥१८॥

विरम्यते = उपरत हुआ जाता है, दूर हुआ जाता है। अनेन = इसके द्वारा। इति = इसलिए। विरामः = इसे विराम कहते हैं। वितर्कादिचिन्तात्यागः = वितर्क इत्यादि चिन्ताओं का त्याग है। विरामः = चित्त की वृत्तियों का विषयों से उपरमण। च = और। असौ = वही। प्रत्ययश्च = ज्ञान, प्रतीति ही। इति विरामप्रत्ययः = यही विरामप्रत्यय का अर्थ है। अर्थात् वृत्तियों के निरोध का ज्ञान ही विरामप्रत्यय का अर्थ है। तस्य = उसी प्रतीति का। अभ्यासः = अभ्यास अर्थात्। पौनःपुन्येन = बार बार। चेतसि = चित्त में। निवेशनं = प्रवेश करना है अर्थात् वृत्तिनिरोध ज्ञान का बार बार चित्त में ध्यान करना ही अभ्यास है। तत्र = उसमें। या = जो। काचित् कोई। वृत्तिः = चित्त की वृत्ति। उल्लसति = उद्भूत होती है। तस्याः = उसी वृत्ति का। 'न इति

---

१. अत्रत्या भोजवृत्तिः शिवानन्देन अनुसृता १।१८ सूत्रव्याख्यानप्रसंगे (योगचिन्ता पृ० ९)।

न इति' = 'अपना स्वरूप नहीं हैं, अपना स्वरूप नहीं है' इस रूप से। नैरन्तर्य्येण = निरन्तररूप से, सदा। पर्य्युदसनं = परित्याग करना ही। विरामप्रत्याभ्यासः = उपरत वृत्ति के ज्ञान का अभ्यास है। तत्पूर्वः = उसी अभ्यासपूर्वक। संप्रज्ञातसमाधिः = संप्रज्ञात समाधि होती है। संस्कारशेषः = केवल संस्कार मात्र शेष रहने वाली। अन्यः = अन्य, दूसरी समाधि। तद्विलक्षणः = उस संप्रज्ञात से भिन्न स्वरूप वाली। अयं = यह। असंप्रज्ञातः = असंप्रज्ञात समाधि है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है। तत्र = उस असंप्रज्ञात समाधि में। किञ्चित् = कोई भी पदार्थ, विषय। न वेद्यं = वेद्य, जानने योग्य, ध्येय पदार्थ नहीं होता। असंप्रज्ञातः = असंप्रज्ञात ही। निर्बीजः समाधिः = निर्बीज समाधि है, निरालम्ब समाधि है। इह = इस असंप्रज्ञात समाधि में। चित्तस्य = चित्त की। चतुर्विधः = चार प्रकार की। परिणामः=दशायें होती हैं। तथा। व्युत्थानं = १ व्युत्थान। समाधिप्रारम्भः = २ समाधिप्रारम्भ। एकाग्रता = ३ एकाग्रता। च = और। निरोधः = ४ निरोध। तत्र = उन चारों अवस्थाओं में। क्षिप्तमूढे = क्षिप्त और मूढ़ दोनों। चित्तभूमी = चित्त की भूमियाँ। व्युत्थानं = व्युत्थान हैं अर्थात् क्षिप्त एवं मूढ़ भूमियों में चित्त का व्युत्थान परिणाम होता है। सत्त्वोद्रेकात् = सत्त्वगुण की अधिकता के कारण। विक्षिप्ता भूमिः = चित्त की विक्षिप्त भूमि। समाधिप्रारम्भः=समाधि की प्रारम्भ की अवस्था है अर्थात् चित्त के एकाग्रता की आरम्भ की दशा है। निरुद्धैकाग्रते च = निरुद्ध और एकाग्रता दोनों ही। पर्य्यन्तभूमी = पर्यन्त भूमियाँ हैं। च = और जो। प्रतिपरिणामं = विलोम परिणाम, प्रसव रहित। संस्काराः = संकारों की दशा है अर्थात् निरुद्ध एवं एकाग्र दोनों ही भूमियाँ संस्कारों के विलोम परिणाम की अवस्थायें हैं, जिनमें संस्कारों का क्रमशः लोप होता जाता है। तत्र = उनमें, उन चतुर्विध परिणामों में। व्युत्थानजनिताः = व्युत्थानदशा में उत्पन्न हुये। संस्काराः = संस्कार। समाधिप्रारम्भजैः = समाधि प्रारम्भ परिणाम से उत्पन्न। संस्कारैः = संस्कारों के द्वारा। प्रत्याहन्यन्ते = नष्ट कर दिये जाते हैं। च = और। तत्जाः = उस समाधिप्रारम्भ से उत्पन्न संस्कार। एकाग्रताजैः = एकाग्रता परिणाम से उत्पन्न संस्कारों के द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं। एकाग्रताजाः = एकाग्रता से

द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं। च = और। निरोधजाः = निरोध से उत्पन्न संस्कार। स्वरूपं = अपने स्वरूप को भी। हन्यन्ते = नष्ट कर देते हैं। यथा = जैसे। सुवर्णसंवलितं = सुवर्ण में मिला हुआ, मिश्रित। ध्मायमानं = तपाया जाता हुआ। सीसकं = शीशा। आत्मानं = स्वयं अपने को। च = और। सुवर्णमलं = सुवर्ण के मल, कलुष को। निर्दहति = जलाता है, भस्म कर देता है। एवं = इसी प्रकार से। निरोधजाः = निरोध से उत्पन्न संस्कार। एकाग्रताजनितान् = एकाग्रता से उत्पन्न। संस्कारान् = संस्कारों को। च = और। स्वात्मानं=अपने स्वरूप को अपने से भी उत्पन्न संस्कारों को। निर्दहन्ति = अच्छी तरह जला देते हैं, दूर कर देते हैं। जैसे सुवर्ण में डाला हुआ शीशा अग्नि में तपाये जाने पर स्वर्ण की कलुषता तथा साथ ही स्वयं अपने को भी भस्म कर देता है। इसी प्रकार निरोध से उत्पन्न संस्कार, एकाग्रता से उत्पन्न संस्कारों को नष्ट कर देते हैं, साथ ही अपने से भी उत्पन्न संस्कारों को भस्म कर देते हैं॥ १८॥

तदेवं योगस्य स्वरूपं भेदश्च सङ्क्षेपेणोपायांश्चाभिधाय विस्तररूपेणोपायं योगाभ्यासप्रदर्शनपूर्वकमुपक्रमते—

एवं=इस प्रकार से। तद् = उस। योगस्य = योग के। स्वरूपं = स्वरूप, लक्षण। च = और। भेदं = भेद, प्रकार को। च=और। सङ्क्षेपेण = संक्षिप्त रूप से। उपायान् = उपायों को। अभिधाय = कहकर, वर्णन करके। योगाभ्यासदर्शनपूर्वकं=योग के अभ्यास के प्रदर्शन के द्वारा। उपायं = उपाय, योग-सिद्धि के साधन को। विस्तररूपेण = विस्तार के साथ। उपक्रमते = वर्णन करना प्रारम्भ करते हैं।

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥ १९ ॥

अर्थः—विदेहप्रकृतिलयानां = विदेह एवं प्रकृतिलय साधकों को असंप्रज्ञात समाधि। भवप्रत्ययः = भवप्रत्यय होती है! पं० वाचस्पति मिश्र के अनुसार विदेह एवं प्रकृतिलय उपासकों की सर्ववृत्तिनिरोधरूपसमाधि भवप्रत्ययः = अविद्या जन्य होती है। 'भवन्ति जायन्तेऽस्यां जन्तव इति भवोऽविद्या स खल्वयं भवः प्रत्ययः कारणं यस्य निरोधसमाधेः स भवप्रत्ययः' तत्त्ववैशारदी १।१९। यह निरोध समाधि दो प्रकार की है—१—उपाय प्रत्यय २—भवप्रत्यय। योगियों

की समाधि पर वैराग्य, श्रद्धा इत्यादि उपायों से उत्पन्न होने वाली है। भव-प्रत्यय समाधि तो संसार के कारण अविद्या से उत्पन्न होती है। अविद्याजन्य-वृत्तिनिरोध हो भवप्रत्यय है। क्योंकि अविद्या के कारण ही विदेह एवं प्रकृति-लय साधकों को अनात्म पदार्थों में आत्मबुद्धि हो जाती है। अतः इन साधकों की संस्कारशेषरूप, वृत्तिनिरोध, भवप्रत्यय समाधि अविद्याजन्य ही है।

भवप्रत्यय का अर्थ जन्म, संसार भी लिया जाता है। विदेह प्रकृतिलीन साधकों का पुनरावर्तन अस्त हुये के पुनरुत्थान के समान होता है। विदेह एवं प्रकृतिलय योगियों को भवप्रत्यय = जन्म से असंप्रज्ञात समाधि की सिद्धि हो जाती है। पूर्वजन्म के प्रभाव के कारण उत्तर जन्म में प्रारम्भ से ही पर वैराग्य से विरामप्रत्यय का अभ्यास करके असंप्रज्ञात समाधि सिद्ध हो जाती है। उनकी समाधि आयास, उपाय साध्य नहीं है। महाविदेह ३।४३ एवं प्रकृतिलय १।४५;३।४८ की अवस्था प्राप्त करते ही जिन योगियों के पाञ्चभौतिक शरीर का विनाश हो जाता है। और कैवल्य में हेतुरूप प्रकृतिपुरुषविवेकख्याति को नहीं प्राप्त कर पाते। इस प्रकार के योगियों के लिये यह निर्बीज, असंप्रज्ञात समाधि उपाय जन्य नहीं होती। उनकी समाधि की सिद्धि में भवप्रत्यय, मनुष्य-जन्म, पुनर्जन्म, संसार ही कारण है।

वृत्तिः—विदेहाः प्रकृतिलयाश्च वितर्कादिभूमिकासूत्रे (१।१७) व्याख्याताः, तेषां समाधिर्भवप्रत्ययः; भवः संसारः, स एव प्रत्ययः कारणं यस्य स भवप्रत्ययः। अयमर्थः—आधिमात्रान्तर्भूता एव ते[1] संसारे तथाविधसमाधिभाजो भवन्ति, तेषां परतत्त्वादर्शनात् योगाभासोऽयम्; अतः परतत्त्वज्ञाने तद्भावनायाञ्च मुक्तिकामेन महान् यत्नो विधेय इत्येतदर्थमुपदिष्टम् ॥१९॥

विदेहाः = विदेह। च = और। प्रकृतिलयाः = प्रकृति में लीन होने वाले साधकों की। वितर्कादिभूमिकासूत्रे = १।१७ सवितर्क-सविचार, सानन्द, सास्मित समाधि की भूमिका, प्रस्तावना वाले सूत्र में। व्याख्याताः = व्याख्या की गई है। तेषां = उनकी। समाधिः = समाधि। भवप्रत्ययः = भवप्रत्यय है।

---

१. आविर्भूत एव संसारे ते (पा०)।

भवः = भव ही । संसारः = संसार है अर्थात् भव का अर्थ है संसार । सः एव = वही भव, संसार ही है । प्रत्ययः = प्रत्यय अर्थात् । कारणं = कारण, हेतु । यस्य = जिसका, जिस समाधि का । सः = वही समाधि । भवप्रत्ययः = भवप्रत्यय कही जाती है । अयम् अर्थः = यह अभिप्राय है । ते—वे लोग । संसारे = संसार में । आधिमात्रान्तर्भूताः = सांसारिक ऐश्वर्यों, भोगों के अन्तर्गत रहने वाले, विषय भोगों से सम्बन्ध रखने वाले । तथाविध = उसी प्रकार, उन्हीं सांसारिक विषयों, भोगों के अनुरूप । समाधिभाजः = समाधि प्राप्त करने वाले । भवन्ति = होते हैं । परतत्त्वादर्शनात् = परम तत्त्व पुरुष का दर्शन, स्वरूप ज्ञान न होने से । तेषां = उन साधकों की । अयं = यह समाधि । योगाभासः = योग का आभास मात्र ही है, यथार्थ योग नहीं । अतः = इसलिये । मुक्तिकामेन = मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले के द्वारा । परतत्त्वज्ञाने = परमतत्त्व पुरुष के स्वरूप के ज्ञान में । च = और । तद्भावनायां = उसी तत्त्व के ध्यान, चिन्तन में । महान् = अत्यधिक । यत्नः = प्रयत्न, प्रयास । विधेयः = करना चाहिये । इति = इस रूप से । एतद् अर्थ = इसी अभिप्राय से । उपदिष्टं = यह उपदेश दिया गया ॥ १९ ॥

तदन्येषान्तु—

तद् = वह योग, निरोध समाधि । अन्येषां = विदेह, प्रकृतिलय से भिन्न दूसरे साधकों की । तु = तो । किस प्रकार सिद्ध होती है, इसी का निरूपण करते हैं ।

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥२०॥

अर्थः—इतरेषां = दूसरों की, विदेह–प्रकृतिलय साधकों से भिन्न योगियों की संस्कार शेष रूप निरोधसमाधि । श्रद्धावीर्य्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वकः = श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, संप्रज्ञातसमाधि एवं प्रज्ञा पूर्वक होती है । अर्थात् योगियों को निरोधसमाधि की सिद्धि श्रद्धापूर्वक, वीर्यपूर्वक, स्मृतिपूर्वक, संप्रज्ञातसमाधि-पूर्वक एवं प्रज्ञापूर्वक होती है । श्रद्धा इत्यादि उपायों के अनुष्ठान से ही योगियों को निरोध समाधि की प्राप्ति होती है ।

वृत्तिः—विदेह-प्रकृतिलयव्यतिरिक्तानां श्रद्धादिपूर्वकः, श्रद्धादयः पूर्वे उपाया यस्य स श्रद्धादिपूर्वकः, ते च श्रद्धादयः क्रमादुपायोपेयभावेन प्रवर्त्तमानाः सम्प्रज्ञात-समाधेरुपायतां प्रतिपद्यन्ते । तत्र श्रद्धा योगविषये चेतसः प्रसादः । वीर्यमुत्साहः । स्मृतिरनुभूतासम्प्रमोषः । समाधिरेकाग्रता । प्रज्ञा प्रज्ञातव्यविवेकः ।

तत्र श्रद्धावतो वीर्यं जायते, योगविषय उत्साहवान् भवति । सोत्साहस्य च पाश्चात्त्यासु भूमिषु[1] स्मृतिरुत्पद्यते । तत्स्मरणाच्च चेतः समाधीयते । समाहित-चित्तश्च भाव्यं सम्यक् विवेकेन जानाति । त एते सम्प्रज्ञातस्य समाधेरुपायाः, तस्याभ्यासात् पराच्च वैराग्यात् भवत्यसम्प्रज्ञातः ।।२०।।

विदेहप्रकृतिलयव्यतिरिक्तानां = विदेह एवं प्रकृतिलय साधकों से भिन्न योगियों का संस्कारशेषरूप निरोधयोग । श्रद्धादिपूर्वकः=श्रद्धा इत्यादि उपायों के द्वारा सिद्ध होता है । श्रद्धादयः=श्रद्धा इत्यादि हैं । पूर्वे=प्रारम्भ में । उपायाः=उपाय, साधन । यस्य=जिनके । सः = वह निरोधयोग । श्रद्धादिपूर्वकः =श्रद्धा आदि पूर्वक है अर्थात् श्रद्धा इत्यादि उपायों के सेवन, अनुष्ठान से प्राप्त होने वाला है । च=और । ते=वे । श्रद्धादयः=श्रद्धा इत्यादि उपाय, साधन । क्रमात्=क्रमशः । उपायोपेयभावेन=उपाय-उपेय भाव से, उपाय-प्राप्तव्य रूप से, साधनसाध्यरूप से । प्रवर्त्तमानाः=प्रवृत्त होते हुए, प्राप्त करते हुए । संप्रज्ञात-समाधेः=संप्रज्ञातसमाधि की । उपायतां = साधन रूप को, उपयोगिता को । प्रतिपद्यन्ते = प्राप्त करते हैं । तत्र=उन साधनों में । योगविषये = योग सम्बन्धी विषय में । चेतसः = चित्त की । प्रसादः=प्रसन्नता, निर्मलता, यथार्थवस्तुविषयक अभिरुचि ही । श्रद्धा = श्रद्धा है । वीर्य्यं=वीर्य । उत्साहः = उत्साह है । अनुभूतासंप्रमोषः=अनुभव किये गये विषय का लुप्त न होना, न छिपना ही । स्मृति=स्मृति है । समाधिः = समाधि । एकाग्रता=ध्यान की एकाग्रता है । प्रज्ञा = प्रज्ञा । प्रज्ञातव्यविवेकः= जानने योग्य पदार्थों, प्रकृति-पुरुष का भेद ज्ञान है । तत्र=उनमें । श्रद्धावतः=श्रद्धायुक्त साधक में । वीर्य्यं=उत्साह । जायते= उत्पन्न होता है । योगविषये = योगसम्बन्धी विषय में । उत्साहवान्=वह श्रद्धायुक्तसाधक उत्साहयुक्त, उत्साही । भवति = होता है । च = और । सोत्साहस्य = उत्साही साधक की । पाश्चात्त्यासु भूमिषु = पिछली भूमियों

---

१. पाश्चात्त्यानुभूमिषु (पा०) ।

में, पूर्व जन्म की भूमियों में। स्मृतिः=स्मृति। उत्पद्यते=उत्पन्न होती है। च=और। तत् = उसी। स्मरणात्=स्मरण, स्मृति से। चेतः = चित्त। समाधीयते=एकाग्र किया जाता है। च=और। समाहितचित्तः = एकाग्रचित्त वाला साधक। भाव्यं=ध्येय पदार्थ को। सम्यक् = भली भाँति। विवेकेन = विवेकपूर्वक, यथार्थरूप से, तत्त्वतः, पृथक् रूप से। जानाति = जानता है, तत्त्व का दर्शन करता है। ते = वे श्रद्धावीर्यस्मृति आदि सभी। एते = ये सभी। संप्रज्ञातस्य=संप्रज्ञात। समाधेः = समाधि के। उपायाः=उपाय, साधन हैं। तस्य= उनके, उन साधनों के। अभ्यासात्=अभ्यास, सेवन से। च = और। परात्= पर। वैराग्यात्=वैराग्य के सेवन से। असंप्रज्ञातः = असंप्रज्ञात समाधि। भवति =होती है, सिद्ध होती है॥ २०॥

उक्तोपायवतां योगिनाम् उपायभेदाद्भेदानाह—

उक्त=कहे गये, बतलाये गये, निरूपण किये गये। उपायवतां=उपाय वाले श्रद्धावीर्य इत्यादि साधनों से असंप्रज्ञातसमाधि सिद्ध करने वाले। योगिनां= योगियों का। उपायभेदात्=साधनों के भेद से। भेदान्=भेदों को। आह = कहते हैं।

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥२१॥

अर्थः—तीव्रसंवेगानां = तीव्र संवेग वाले योगियों को। आसन्नः=समाधिलाभ अति निकट, शीघ्र ही प्राप्त होने वाला होता है अर्थात् जिन योगियों के संवेग, वैराग्य इत्यादि संस्कार तीव्र, अत्यधिक तेज होते हैं, उनको असंप्रज्ञात समाधि का लाभ बहुत ही शीघ्र होता है।

वृत्तिः—समाधिलाभ इति शेषः। संवेगः क्रियाहेतुर्दृढतरः संस्कारः[1], स तीव्रो येषामधिमात्रोपायानां तेषामासन्नः[2] समाधिलाभः समाधिफलञ्चासन्नं भवति, शीघ्रमेव सम्पद्यत इत्यर्थः ॥२१॥

समाधिलाभः=समाधि का लाभ होता है, सिद्ध होती है। इति शेषः= यह शेष है अर्थात् सूत्र के साथ इसका सम्बन्ध होना चाहिए। क्रियाहेतुः =

१. द्र०—संवेगः क्रियाहेतुर्दृढतरः संस्कारः (आयुर्वेदसूत्र ४।३)। २. आसन्न इति क्वचिन्न पठ्यते।

क्रिया का हेतु, कार्य के शीघ्र सम्पादन के कारण। दृढतरः=और भी अधिक दृढ़-बलवत्तर। संस्कारः=संस्कार ही। संवेगः=संवेग है। सः=वही संवेग। येषां=जिन साधकों में। तीव्रः=तीव्र, तेज है। अधिमात्रोपायानां=अत्यधिक, अतिशय उपाय, साधनों वाले, प्रकृष्ट संस्कारों वाले। तेषां=उन योगियों को। समाधिलाभः = समाधि की सिद्धि। आसन्नः=समीप, शीघ्र होती है। च=और। समाधिफलं=समाधि का फल, मोक्ष। आसन्नं=अति निकट। भवति=होता है। शीघ्रमेव = शीघ्र ही। संपद्यते = प्राप्त होता है। इति अर्थः=यह अभिप्राय है ॥ २१ ॥

के ते तीव्रसंवेगा इत्याह—

ते=वे। के = कौन। तीव्रसंवेगाः=तीव्र संवेग हैं। इति = ऐसा। आह=कहते हैं, इनका वर्णन करते हैं।

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ॥२२॥

अर्थः—मृदुमध्याधिमात्रत्वात् = मृदु–मध्य-अधिमात्र, मन्द-मध्यमउच्चरूप होने के कारण। ततः = तीव्रसंवेगसंपन्न योगियों में। अपि = भी। विशेषः = विशेषता, भेद होता है।

वृत्तिः—तेभ्य उपायेभ्यो मृद्वादिभेदभिन्नेभ्य उपायवतां विशेषो भवति, मृदुर्मध्योऽधिमात्र इत्युपायभेदाः। ते प्रत्येकं मृदुसंवेग-मध्यसंवेग-तीव्रसंवेगभेदात् त्रिधा; तद्भेदेन च नव योगिनो भवन्ति, मृदूपायो मृदुसंवेगः मध्यसंवेगः तीव्रसंवेगश्च। मध्योपायो मृदुसंवेगः मध्यसंवेगः तीव्रसंवेगश्च; अधिमात्रोपायो मृदुसंवेगो मध्यसंवेगस्तीव्रसंवेगश्च। अधिमात्रे उपाये तीव्रे च संवेगे च महान् यत्नः कर्त्तव्य इति भेदोपदेशः ॥२२॥

मृद्वादिभेदभिन्नेभ्यः = मृदु इत्यादि भेदों के कारण भिन्न। तेभ्यः= उन। उपायेभ्यः = उपायों, साधनों से। उपायवतां = उपाय वालों, साधनसंपन्न योगियों में। विशेषः = विशेषता, भिन्नता। भवति = होती है। मृदुः = मृदु, मन्द। मध्यः = मध्य, मध्यम। अधिमात्रः = अत्यधिक, उच्च, तीव्र इति = इस रूप से। उपायभेदाः = उपायों, साधनों के भेद, प्रकार हैं। ते = वे तीनों ही प्रत्येकं = प्रत्येक। मृदुसंवेगमध्यसंवेगतीव्रसंवेगभेदात् = मन्द संवेग, मध्य संवेग,

तीव्र संवेग भेद से । त्रिधा = तीन प्रकार के हैं । च = और । तद्भेदेन=उन भेदों के कारण । नव = नव प्रकार के । योगिनः = योगी । भवन्ति = होते हैं । मृदूपायः = मृदु उपाय वाला योगी । मृदुसंवेगः = मृदु संवेग । मध्यसंवेगः मध्य-संवेगः । च=और । तीव्रसंवेगः = तीव्र संवेग भेद से तीन प्रकार हैं । मध्योपायः = मध्यम उपाय तो । मृदुसंवेगः = मृदुसंवेग । मध्यसंवेगः = मध्यम संवेग । च = और । तीव्रसंवेगः = तीव्र संवेग भेद से तीन प्रकार का है । इसी प्रकार । अधिमात्रोपायः = अधिमात्र उपाय, तीव्र उपाय । मृदुसंवेगः = मृदु संवेग । मध्य-संवेगः = मध्यमसंवेग । च = और । तीव्रसंवेग = तीव्र संवेग भेद से तीन प्रकार का है । इसलिये । अधिमात्रे = तीव्र । उपाये = उपाय, साधन में । च = और । तीव्रे = तीव्र । संवेगे = संवेग में । महान् = अत्यधिक । यत्नः = प्रयत्न, प्रयास । कर्त्तव्यः = करना चाहिये । इति = इसी विचार से । भेदोपदेशः=भेदों के साथ संवेगों का उपदेश, निरूपण किया गया है ॥ २२ ॥

इदानीमेतदुपायविलक्षणं सुगममुपायान्तरं दर्शयितुमाह—

इदानीं = अब । एतद् उपायविलक्षणं = इन श्रद्धा-वीर्य-स्मृति इत्यादि उपायों से विलक्षण, अनुपम । सुगमं = अति सरल, सुकर । उपायान्तरं = समाधि की सिद्धि के लिये दूसरे उपाय, साधन को । दर्शयितुं = दिखलाने के लिये, प्रदर्शित करने के लिये । आह=कहते हैं ।

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥२३॥

अर्थः—वा = अथवा । ईश्वरप्रणिधानात् ईश्वर-प्रणिधान, विशिष्ट भक्ति, सम्यक् समर्पणबुद्धि, शरणागति द्वारा बहुत ही शीघ्र असंप्रज्ञात समाधि की सिद्धि होती है । समाधिसिद्धि का यह अति सरल सुगम उपाय है ।

वृत्तिः—ईश्वरो वक्ष्यमाणलक्षणः, तत्र प्रणिधानं भक्तिविशेषः, विशिष्टमुपासनं, सर्वक्रियाणां तत्रार्पणम्, विषयसुखादिकं फलमनिच्छन् सर्वाः क्रियास्तस्मिन् परमगुरावर्पयति, तत्प्रणिधानं समाधेस्तत्फललाभस्य च प्रकृष्ट उपायः ॥२३॥

ईश्वरः = ईश्वर । वक्ष्यमाणलक्षणः = आगे वर्णनीय लक्षण वाला है, ईश्वर का लक्षण आगे निरूपण किया जायेगा । तत्र = उसी ईश्वर में । प्रणिधानं = प्रणिधान अर्थात् । भक्तिविशेषः=विशिष्ट भक्ति अर्थात् । विशिष्टम्

उपासनं = विशेषरूप से उपासना करना । सर्वक्रियाणां=सभी क्रियाओं, अनुष्ठानों का । तत्र=उस ईश्वर में । अर्पणं = समर्पित करना । विषयसुखादिकं = तरह-तरह के विषय, भोग एवं उनके सुख इत्यादि । फलं=फल को । अनिच्छन् = न चाहता हुआ, कामना न करता हुआ । सर्वाः = सभी । क्रियाः = क्रियाओं को । तस्मिन् = उसी ईश्वर रूप । परमगुरौ = परम गुरु में । अर्पयति = अर्पित करता है । तत् = वही । प्रणिधानं = प्रणिधान है । समाधेः = असंप्रज्ञात, निर्बीज समाधि । च = और । तत्फललाभस्य = उस समाधि के फल लाभ का, कैवल्य-प्राप्ति का । प्रकृष्टः=सर्वश्रेष्ठ । उपायः = साधन है ॥ २३ ॥

ईश्वरस्य प्रणिधानात् समाधिलाभ इत्युक्तम्, तत्रेश्वरस्य स्वरूपं प्रमाणं प्रभावं वाचकम् उपासनाक्रमं तत्फलञ्च क्रमेण वक्तुमाह—

ईश्वरस्य = ईश्वर के । प्रणिधानात् = प्रणिधान, विशिष्ट भक्ति से । समाधि-लाभः=असंप्रज्ञात समाधि का लाभ, निर्बीज समाधि की सिद्धि होती है । इति = ऐसा । उक्तं = कहा गया । तत्र = उसमें, उस प्रसङ्ग में । ईश्वरस्य = ईश्वर के । स्वरूपं = स्वरूप, लक्षण । प्रमाणं=सिद्धि में प्रमाण । प्रभावं = प्रभाव, ईश्वर का ऐश्वर्य । वाचकं = वाचक शब्द, ईश्वर के स्वरूप को बतलाने वाले नाम, शब्द । उपासनाक्रमं = ईश्वर को भक्ति के क्रम को । च=और । तत्=उसके । फलं=फल को । क्रमेण = क्रम = से, क्रमशः । वक्तुं = कहने के लिये, बतलाने के लिये, सुस्पष्ट करने के लिये । आह = कहते हैं ।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥२४॥

अर्थः—क्लेशकर्मविपाकाशयैः = क्लेश-कर्म-विपाक एवं आशय से । अपरा-मृष्टः = असंबद्ध । पुरुषविशेषः = विशिष्ट पुरुष ही । ईश्वरः = ईश्वर है अर्थात् अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष अविनिवेश रूप पञ्चविध क्लेशों, पुण्य-पाप-पुण्यपापमिश्रित त्रिविध कर्मों, जाति-आयु-सुखदुःखादि भोगरूप त्रिविध विपाकों, कर्मों के फलों तथा कर्म संस्कारों के समुदाय रूप कर्माशय, वासनाओं से, जो फलोन्मुख न होकर चित्त में संस्कार रूप से विद्यमान है—इन चतुर्विध दोषों से तीनों काल में विनिर्मुक्त विशिष्ट पुरुष ही ईश्वर है । क्योंकि इन दोषों का सभी पुरुषों के साथ अनादि संबन्ध होता ही है । मुक्त पुरुषों का भी प्रारम्भ में संबन्ध था

ही। पर ईश्वर का कभी भी इन दोषों से न तो लेशमात्र भी संबन्ध था, न तो वर्तमान समय में है और न भविष्य में होने वाला ही है। अतः इन पुरुषों से जो सर्वथा उत्कृष्टतम, सर्वोत्तम है, वही ईश्वर है।

वृत्तिः—क्लिश्नन्तीति क्लेशा अविद्यादयो वक्ष्यमाणाः; विहितनिषिद्धव्यामिश्ररूपाणि कर्माणि; विपच्यन्ते इति विपाकाः कर्मफलानि जात्यायुर्भोगाः; आ-फलविपाकाच्चित्तभूमौ शेरत इत्याशयो वासनाख्यसंस्कारः, तैरपरामृष्टः त्रिष्वपि कालेषु न संस्पृष्टः; पुरुषविशेषः, अन्येभ्यः पुरुषेभ्यो विशिष्यते इति विशेषः, ईश्वर ईशनशीलः, इच्छामात्रेण सकलजगदुद्धरणक्षमः।

यद्यपि सर्वेषामात्मनां क्लेशादिस्पर्शो नास्ति, तथापि चित्तगतास्तेषामुदिश्यन्ते; यथा योद्धृगतो जय-पराजयौ स्वामिनः। अस्य तु त्रिष्वपि कालेषु तथाविधोऽपि क्लेशादिपरामर्शो नास्ति, अतः सविलक्षण एव भगवानीश्वरः। तस्य च तथाविधमैश्वर्यमनादेः सत्त्वोत्कर्षात्, तस्य सत्त्वोत्कर्षस्य प्रकृष्टाज् ज्ञानादेव; न चानयोर्ज्ञानैश्वर्ययोरितरेतराश्रयत्वं परस्परानपेक्षत्वात्।

ते द्वे ज्ञानैश्वर्य्ये ईश्वरसत्त्वे वर्त्तमाने अनादिभूते, तेन तथाविधेन सत्त्वेन तस्यानादिरेव सम्बन्धः; प्रकृति-पुरुषसंयोग-वियोगयोरीश्वरेच्छाव्यतिरेकेणानुपपत्तेः यथेतरेषां प्राणिनां सुख-दुःख-मोहात्मकतया परिणतं चित्तं निर्मले सात्त्विके धर्मानुप्रख्ये[1] प्रतिसङ्क्रान्तं चिच्छायासङ्क्रान्ते संवेद्यं भवति, नैवमीश्वरस्य; तस्य केवल एव सात्त्विकः परिणाम उत्कर्षवान् अनादिसम्बन्धेन भोग्यतया व्यवस्थितः, अतः पुरुषान्तरविलक्षणतया स एव ईश्वरः।

मुक्तात्मनान्तु पुनः पुनः क्लेशादियोगस्तैस्तैः शास्त्रोक्तैरुपायैर्निर्वर्त्तितः; अस्य पुनः सर्वदैव तथाविधत्वान्न मुक्तात्मतुल्यत्वं, न चेश्वराणामनेकत्वं, तेषां तुल्यत्वे भिन्नाभिप्रायत्वात् कार्यस्यैवानुपपत्तेः; उत्कर्षापकर्षयुक्तत्वे य एवोत्कृष्टः, स एवेश्वरः, तत्रैव काष्ठाप्राप्तत्वादैश्वर्य्यस्य ॥२४॥

क्लिश्नन्ति = दुःख देते हैं, पीड़ित करते हैं। इति = इसलिये। क्लेशाः = वे क्लेश हैं, क्लेश कहे जाते हैं। वक्ष्यमाणाः = आगे कहे जाने वाले,

---

१. धर्मात्मप्रख्ये योगिशरीरे प्रतिसंक्रान्तम् (पा०)।

लक्षण बतलाये जाने वाले आविद्यादयः = अविद्या इत्यादि क्लेश हैं। विहितनिषिद्धव्यामिश्ररूपाणि = शास्त्र द्वारा विधान किये गये, कर्त्तव्य रूप से बतलाये गये—पुण्य कर्म, शास्त्र द्वारा निषेधरूप, अकर्त्तव्यरूप बतलाये गये—पाप कर्म एवं पुण्यपापमिश्रितरूप वाले। कर्माणि = कर्म हैं। विपच्यन्ते = पकते हैं, फल प्रदान करते हैं। इति = इसलिये। विपाकाः = विपाक हैं। कर्मफलानि = पूर्वकृत कर्मों के फल। जात्यायुर्भोगाः=जाति, विशिष्ट योनि शरीर की प्राप्ति, आयु एवं सुखदुःख इत्यादि भोग प्रदान करने वाले हैं। चित्तभूमौ = चित्त की भूमि में। आफलविपाकात्=फल के पकने तक, फल प्रदान पर्यन्त। शेरते=शयन करते हैं, विद्यमान रहते हैं। इति=इसलिये। आशयः=आशय हैं, आशय कहे जाते हैं। वासनाख्यसंस्कारः=वासना नाम वाले संस्कार हैं। तैः=उन्हीं चारों क्लेश-कर्म-विवाक एवं वासनाओं से। अपरामृष्टः=न स्पर्श किया गया, सम्बन्धरहित। त्रिषु कालेषु अपि = अतीत-वर्तमान अनागत तीनों कालों में भी। न = नहीं। संस्पृष्टः = संबद्ध हुआ, तीनों कालों में सम्बन्ध न रखने वाला। पुरुषविशेषः = जो विशिष्ट पुरुष है। अन्येभ्यः = अन्य। पुरुषेभ्यः = पुरुषों से। विशिष्यते = अतिशय वाला, पृथक् हो जाता है। इति = इसलिए। विशेषः = विशेष कहते हैं। ईश्वरः = ईश्वर। ईशनशीलः = ईशन स्वभाव वाला, शासन करने वाला, व्याप्त करने वाला है अर्थात्। इच्छामात्रेण = इच्छा मात्र से ही, मानसिक व्यापार द्वारा ही। सकलजगदुद्धरणक्षमः = समस्त संसार का उद्धार करने में समर्थ है अर्थात् जगत् के उद्भव एवं तिरोभाव में सक्षम है। यद्यपि = यद्यपि। सर्वेषां = सभी। आत्मनां = आत्माओं, जीवों, पुरुषों का। क्लेशादिस्पर्शः = क्लेश इत्यादि से स्पर्श, क्लेश-कर्म-विपाक कर्माशय से सम्बन्ध। न = नहीं। अस्ति = है। तथापि = फिर भी। चित्तगताः = चित्तयुक्त होने से, चित्त के साथ सम्बन्ध होने से। तेषां = उनका, उन पुरुषों के लिये। उपदिश्यन्ते = उपदेश दिया जाता है, कहा जाता है अर्थात् क्लेश कर्म-विपाक-आशय चित्त में रहने वाले धर्म हैं और इसी चित्त से सम्बद्ध पुरुष में ये सभी धर्म उपचार सम्बन्ध से कहे जाते हैं। यथा = जैसे। योद्धृगतौ = योद्धागत, सैनिक में रहने वाले, सम्बन्ध रखने वाले। जयपराजयौ = जय और पराजय दोनों ही धर्म। स्वामिनः = स्वामी के ही जाते हैं। अस्य = इस ईश्वर रूप विशिष्ट पुरुष का

तु = तो । त्रिषु कालेषु अपि = तीनों कालों में भी । तथाविधः = उस प्रकार का, अन्य पुरुषों के समान । अपि = भी । क्लेशादिपरामर्शः = क्लेशकर्म इत्यादि का सम्बन्ध । न = नहीं । अस्ति = है । अतः = इसलिये । भगवान् = वह ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यों से युक्त । ईश्वरः = ईश्वर । सविलक्षणः = विशिष्ट लक्षणों से युक्त, विशेष विशेषताओं से समन्वित । एव = ही । च = और । अनादेः = अनादि काल से ही । सत्त्वोकर्षात् = सत्त्वगुण की प्रबलता के कारण । तस्य = उस ईश्वर का । तथाविधं = उस प्रकार का, ईशन शील, निर्विकार रूप । ऐश्वर्य = ऐश्वर्य है । प्रकृष्टात् = अत्यन्त अधिक, अतिशय । ज्ञानात् = ज्ञान से । एव = ही । तस्य = उस ईश्वर के । सत्त्वोत्कर्षस्य = सत्त्वगुण के उत्कर्ष की स्थिति है, सत्त्व की उत्कृष्टता है । च = और । अनयोः = इन दोनों । ज्ञानैश्वर्य्ययोः = ज्ञान एवं ऐश्वर्य में । इतरेतराश्रयत्वं = एक दूसरे का आश्रय-आश्रयी होना, परस्पर आश्रयत्व । न = नहीं है । परस्परानपेक्षत्वात् = एक दूसरे की अपेक्षा न रखने के कारण अर्थात् लोक में ज्ञान से ऐश्वर्य एवं ऐश्वर्य से ज्ञान की प्राप्ति होती है । किंतु ईश्वर में ज्ञान तथा ऐश्वर्य के परस्पर आश्रयत्व का नितान्त अभाव है । ज्ञानैश्वर्य्यें = ज्ञान और ऐश्वर्य । ते = वे । द्वे = दोनों । ईश्वरसत्त्वे = सत्त्वगुणविशिष्ट ईश्वर में । अनादिभूते=अनादि रूपसे । वर्त्तमाने= विद्यमान हैं । तेन = उससे, इसलिये । प्रकृतिपुरुषसंयोगवियोगयोः = प्रकृति एवं पुरुष में संयोग तथा वियोग दोनों की । ईश्वरेच्छाव्यतिरेकेण = ईश्वर की इच्छा के बिना । अनुपपत्तेः = उपपत्ति, सिद्धि न होने के कारण । तथाविधेन = उस प्रकार के । सत्त्वेन = सत्त्व से । तस्य = उस ईश्वर का । अनादिः = अनादि । एव = ही । संबन्धः = संबन्ध है । यथा = जैसे । इतरेषां = अन्य । प्राणिनां = प्राणियों, पुरुषों का । सुखदुःखमोहात्मकतया = सुखदुःखमोहरूप से । परिणतं = परिणाम को प्राप्त हुआ । चित्तं = चित्त । निर्मले = विमल, रजोगुण तथा तमोगुण से विरहित । सात्त्विकगुण विशिष्ट, बहुल । धर्मानुप्रख्ये = धर्म एवं अनुप्रख्या, प्रकाश, ज्ञान में । प्रतिसङ्क्रान्तं = प्रतिसङ्क्रान्त, प्रतिबिम्बित हुआ । चिच्छायासङ्क्रान्ते = चेतनशक्ति पुरुष के प्रतिबिम्बित होने पर, छाया पड़ने पर । संवेद्यं = संवेदनीय, जानने योग्य । भवति = होता है, जाना जाता है । एवं = इस प्रकार का । ईश्वरस्य = ईश्वर का स्वरूप । न = नहीं है अर्थात्

सुखदुःखमोहरूप सभी भोग, बुद्धि के ही हैं। अविवेक के कारण पुरुष इन धर्मों को अपना ही समझ कर सुखदुःखमोह का अनुभव करता है। यथा जपाकुसुमगत रक्तिमा स्वच्छ स्फटिक में आ जाती है। यथा योद्धृगत जयपराजय को राजा अपना मान लेता है। उसी प्रकार अपरिणामी, शुद्ध निर्गुण चेतन पुरुष भी बुद्धिगत सुखदुःखादि भोगों, क्लेशों को अपने में उपचरित कर लेता है। अविवेक के कारण वह सुखी दुःखी होता है। किंतु विशिष्ट पुरुष, ईश्वर इन सब दोषों से असंपृक्त है। तस्य = उस ईश्वर का। केवलः = केवल। सात्त्विकः = सात्त्विक, सत्त्वगुण विशिष्ट। एव = ही। परिणामः = परिणाम है। उत्कर्षवान् = उत्कृष्ट सत्त्वगुण समन्वित वह ईश्वर। अनादिसंबन्धेन = अनादि संबन्ध से, अनादि काल से। भोग्यतया = भोक्तारूप से। व्यवस्थितः = स्थित है। (किंतु यथार्थतः ईश्वर न तो सत्त्व इत्यादि के परिणाम को प्राप्त करता है और न भोक्ता ही है, क्योंकि वह अपरिणामी, त्रिगुणातीत, असङ्ग है)। अतः=इसलिये। पुरुषान्तर-विलक्षणतया = अन्य पुरुषों से विलक्षण, विशिष्ट स्वरूप वाला होने के कारण। सः एव = वह विशिष्ट पुरुष ही। ईश्वरः = ईश्वर है। मुक्तात्मनां = मुक्त आत्माओं, पुरुषों का। तु = तो। पुनः पुनः = बार-बार। क्लेशादियोगः = क्लेश-कर्म-विपाक-कर्माशय से सम्बन्ध होता है। तैः तैः = उन उन। शास्त्रोक्तैः= शास्त्रों द्वारा बतलाये गये। उपायैः = उपायों, साधनों द्वारा। निवर्त्तितः = क्लेश-कर्म इत्यादि को दूर किया जाता है। अस्य पुनः = फिर इस ईश्वर की तो। सर्वदैव = सदा ही। तथाविधत्वात् = उसी प्रकार का, क्लेश-कर्म-विपाक-कर्माशय से रहित होने के कारण, ज्ञान-ऐश्वर्य से युक्त होने के कारण। मुक्तात्म-तुल्यत्वं = मुक्त आत्माओं, पुरुषों के साथ समानता, सादृश्य। न = नहीं हैं। च = और। ईश्वराणां = ईश्वरों का। अनेकत्वं = अनेकत्व, बहुत्व। न = नहीं है। क्योंकि। तेषां = अनेकत्व मानने पर उन ईश्वरों की। तुल्यत्वे = समानता होने पर। भिन्नाभिप्रायत्वात् = अभिप्राय के भिन्न-भिन्न, विविध होने से, ईश्वर की भिन्नता के कारण। कार्य्यस्य = कार्य, प्रयोजन की। एव = ही। अनुपपत्तेः = असिद्धि हो जाने के कारण, अर्थात् कार्य की सिद्धि न होने के कारण एक ही ईश्वर मानना पड़ेगा। उत्कर्षापकर्षयुक्तत्वे = उत्कर्ष एवं अपकर्ष

से युक्त मानने पर, कुछ ईश्वर उत्कृष्ट गुण वाले तथा दूसरे अपकृष्ट गुण वाले हैं, ऐसी दशा में। यः = जो। एव = ही ईश्वर। उत्कृष्टः = उत्कृष्ट गुणों से युक्त है। सः = वह। एव = ही। ईश्वरः = ईश्वर है। तत्र एव = उसी ईश्वर में। ऐश्वर्य्यस्य = ऐश्वर्य की। काष्ठाप्राप्तत्वात् = पराकाष्ठा, चरम अवस्था, परिणति प्राप्त होने के कारण वही ईश्वर है ॥ २४ ॥

एवमीश्वरस्य स्वरूपमभिधाय प्रमाणमाह—

एवं = इस प्रकार से। ईश्वरस्य = ईश्वर के। स्वरूपं = स्वरूप को अभिधाय = कहकर, निरूपण करके। प्रमाणं=प्रमाण, उस ईश्वर के यथार्थ स्वरूप की प्राप्ति के साधन को। आह = कहते हैं।

तत्र निरतिशयं सार्वज्ञ्यबीजम् ॥२५॥

अर्थः—तत्र = उस ईश्वर में सर्वज्ञबीजं = सर्वज्ञता का बीज, हेतु, कारण अर्थात् ज्ञान। निरतिशयं = अतिशयरहित पराकाष्ठा, चरम अवस्था रूप में विद्यमान है। ईश्वर ही ज्ञान की अवधि, सीमा, मर्यादा है। उससे अधिक ज्ञान किसी में भी नहीं है। अतः ज्ञान की पराकाष्ठा होने से वह निरतिशय, सर्वोत्कृष्ट है।

वृत्तिः—तस्मिन् भगवति सर्वज्ञत्वस्य यद्बीजम् अतीतानागतादिग्रहणस्यालपत्वं महत्त्वञ्च मूलत्वाद् बीजमिव बीजम्, तत् तत्र निरतिशयं काष्ठां प्राप्तम्; दृष्टा ह्यल्पत्वमहत्त्वादीनां धर्माणां सातिशयानां काष्ठाप्राप्तिः; यथा परमाणावल्पत्वस्य, आकाशे परममहत्त्वस्य; एवं ज्ञानादयोऽपि चित्तधर्मास्तारतम्येन परिदृश्यमानाः क्वचिन्निरतिशयतामासादयन्ति; यत्र चैते निरतिशयाः, स ईश्वरः।

यद्यपि सामान्यमात्रेऽनुमानस्य[1] पर्य्यवसितत्वात् न विशेषावगतिः सम्भवति, तथापि शास्त्रादस्य सर्वज्ञत्वादयो विशेषा अवगन्तव्याः। तस्य स्वप्रयोजनाभावे कथं प्रकृतिपुरुषयोः संयोग-वियोगौ आपादयतीति नाशङ्कनीयम्, तस्य कारुणिकत्वाद् भूतानुग्रह एव प्रयोजनम्, कल्पप्रलय-महाप्रलयेषु निःशेषान् संसारिण उद्धरिष्यामीति तस्याध्यवसायः; यत् यस्येष्टं तत्तस्य प्रयोजनमिति ॥२५॥

---

१. अनुमानमात्रस्य (पा०)।

तस्मिन् = उस । भगवति = ऐश्वर्य सम्पन्न ईश्वर में । सर्वज्ञत्वस्य = सर्वज्ञता का । यद् बीज = जो बीज, हेतु, कारण अर्थात् ज्ञान है । अतीतानागतादिग्रहणस्य = वह भूत एवं भविष्य इत्यादि पदार्थों के ग्रहण करने की, ज्ञान प्राप्त करने की । अल्पत्वं = अल्पता, न्यूनता, सूक्ष्मता का । च=और । महत्त्वं= महान् विशदता का । मूलत्वात् = मूल, कारण होने से । बीजम् इव = बीज के समान । बीजं = बीज है । तत् = वह सर्वज्ञत्व का बीज, ज्ञान । तत्र=उस ईश्वर में । निरतिशयं = अतिशयरहित अर्थात् । काष्ठां=पराकाष्ठा, चरम अवस्था को । प्राप्तं = प्राप्त किये हुये है, विद्यमान है । हि=क्योंकि । अल्पत्वमहत्त्वादीनां = अति अल्प, न्यून, सूक्ष्म एवं अति महान् अत्यधिक । सातिशयानां = अतिशयसहित पदार्थों के । धर्माणां = धर्मों की, गुणों की । काष्ठाप्राप्तिः = पराकाष्ठा की प्राप्ति, विकास की परम प्रकृष्ट अवस्था । दृष्टा = देखी जाती है अर्थात् लोक में जो जो पदार्थ न्यूनाधिक्य धर्म से युक्त होने से सातिशय होते हैं, वह धर्म अवश्य ही किसी पदार्थ में पराकाष्ठा को प्राप्त कर निरतिशय हो जाता है । यथा—परमाणु में अणुपरिणाम तथा आकाश में महत्परिणाम पराकाष्ठा को प्राप्त कर निरतिशय हो जाता है । सर्वज्ञता का बीज ज्ञान भी न्यूनाधिक्यरूप धर्म वाला होने से सातिशय है । यही ज्ञान ईश्वर में पराकाष्ठा रूप प्राप्त कर निरतिशय हो जाता है । यथा = जैसे । परमाणौ = परमाणु में । अल्पत्वस्य=अल्पत्व की । आकाशे = आकाश में । परमहत्त्वस्य=परम महत्त्व की प्राप्ति होती है । एवं = इसी प्रकार । ज्ञानादयः = ज्ञान इत्यादि । अपि = भी । चित्तधर्माः = चित्त के धर्म । तारतम्येन = तारतम्य रूपसे, क्रमशः । परिदृश्यमानाः = दिखलाई पड़ते हुये, न्यूनाधिक्य रूप से देखे जाते हुये । क्वचित् = कहीं पर किसी पदार्थ में । निरतिशयता = निरतिशयरूप को, पराकाष्ठा रूप को । आसादयन्ति=प्राप्त करते हैं । च = और । यत्र = जहाँ पर जिस पदार्थ में । एते = ये ज्ञान इत्यादि धर्म । निरतिशयाः = निरतिशय रूप, परम प्रकृष्ट रूप को प्राप्त करते हैं । सः = वही । ईश्वरः = ईश्वर हैं । यद्यपि = यद्यपि । समान्यमात्रे=सामान्य मात्रसे, साधारण रूप से । अनुमानस्य=अनुमान का । पर्य्यवसितत्वात्=पर्यवसान होने के कारण, निश्चय हो जाने के कारण । विशेषावगतिः = विशेष ज्ञान । न=नहीं । संभवति=संभव होता है । तथापि=फिर भी ।

शास्त्रात्=शास्त्रों, आगमों से। अस्य=इस ईश्वर के। सर्वज्ञत्वादयः=सर्वज्ञत्व इत्यादि विशेषः=विशेष धर्मों को। अवगन्तव्याः=जानना चाहिये अर्थात् शब्द प्रमाण के आधार पर उस ईश्वर में सर्वज्ञत्व इत्यादि धर्मों की सिद्धि होती है। तस्य=उस ईश्वर का स्वप्रयोजनाभावे=अपने उद्देश्य के अभाव में, सृष्टि की रचना में अपना कोई भी प्रयोजन न होने से। कथं = किस उद्देश्य, किस कारण से। प्रकृतिपुरुषयोः=प्रकृति एवं पुरुष दोनों में। संयोगवियोगौ = संयोग और वियोग दोनों को। आपादयति=संपन्न करता है। इति=इस संबन्ध में। न=नहीं। आशङ्कनीयं = आशङ्का, संदेह करना चाहिये। तस्य=उस ईश्वर का कारुणिकत्वाद् = करुणा, अनुकम्पा से युक्त होने के कारण। भूतानुग्रहः = प्राणियों पर अनुग्रह, दया। एव=ही। प्रयोजनं = प्रकृतिपुरुष के संयोग-वियोग में उद्देश्य है। ईश्वर की भूतों के प्रति अनुग्रह भावना ही सृष्टि में हेतु है। कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु = कल्प के बाद होने वाले प्रलय एवं महाप्रलय में, सृष्टि के तिरोभाव के समय। निःशेषाम्=संपूर्ण, समस्त। संसारिणः=संसारी जीवों का। उद्धरिष्यामि=उद्धार करूँगा, बन्धन से मुक्त करूँगा। इति=इस रूप से। तस्य=उस ईश्वर का। अध्यवसायः=निर्णय, संकल्प है। यद् = जो। यस्य = जिसका। ईष्टं = अभिमत, संकल्प है। तत् = वही। तस्य = उसका। प्रयोजनं=क्रियाकलापों, समस्त चेष्टाओं का उद्देश्य हेतु है। इति=यह अभिप्राय है॥ २५॥

एवमीश्वरस्य प्रमाणमभिधाय प्रभावमाह—

एवं = इस प्रकार से। ईश्वरस्य=ईश्वर की सिद्धि के सम्बन्ध में। प्रमाणं= प्रमाण को। अभिधाय = कह कर। प्रभावं=उस ईश्वर के प्रभाव, ऐश्वर्य, महिमा को। आह=कहते है।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्[1] ॥२६॥

अर्थः—सः=वह ईश्वर। पूर्वेषां=पूर्वजों, सृष्टि के आदि में उत्पन्न ब्रह्मा इत्यादि देवों तथा अङ्गिरा इत्यादि ऋषियों का। अपि=भी। कालेन=समय से। अनवच्छेदात्=अवच्छिन्न, परिमित, घिरा हुआ न होने के कारण। गुरुः = गुरु, श्रेष्ठ है। अर्थात् यह ईश्वर समय की सीमा, परिधि से परिच्छिन्न नहीं है।

1. कालानवच्छेदादिति क्वचित् पठ्यते।

वह समय की सीमा से सर्वथा अतीत, परे है। अतः शाश्वत रूप से सभी समयों में रहने के कारण वह ईश्वर पूर्व काल में सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न देवों तथा ऋषियों का भी गुरु है। क्योंकि ये सभी देव, ऋषि समय की परिधि से अवच्छिन्न है। और ईश्वर तो देश-काल-धर्म इत्यादि की सीमा से बाहर, अतीत है।

वृत्तिः—आद्यानां स्रष्टृणां ब्रह्मादीनामपि स गुरुरुपदेष्टा, यतः स कालेन नावच्छिद्यते, अनादित्वात्। तेषां ब्रह्मादीनां पुनरादिमत्त्वादस्ति कालेनावच्छेदः ॥२६॥

आद्यानां=आदि, काल, सृष्टि के प्रारम्भ के। स्रष्टृणां=सृष्टि की रचना करने वाले। ब्रह्मादीनां=ब्रह्मा इत्यादि देवों का। अपि=भी। (सृष्टि के प्रारम्भ के ऋषियों का भी)। सः=वह ईश्वर। गुरुः=गुरु अर्थात्। उपदेष्टा = उपदेश देनेवाला है। यतः=क्योंकि। अनादित्वाद् = अनादि, शाश्वत होने से। सः=वह ईश्वर। कालेन=समय से। न=नहीं। अवच्छिद्यते=अवच्छिन्न, परिमित, परिवेष्टित होता है। तेषां = उन। ब्रह्मादीनां=ब्रह्मा इत्यादि देवों तथा ऋषियों का। पुनः=फिर, तो। आदिमत्वात् = आदिमान्, आदि, प्रारम्भ, उत्पत्ति होने के कारण। कालेन=समय से। अवच्छेदः=बाधित, परिमित, सीमित होना है॥ २६॥

एवं प्रभावमुक्त्वा उपासनोपयोगाय वाचकमाह—

एवं—इस प्रकार से। प्रभावं—ईश्वर के ऐश्वर्य को। उक्त्वा=कह करके। उपासनोपयोगाय=उपासना के लिए उपयोगी, सहायक। वाचकं=उस ईश्वर के वाचक, बतलाने वाले नाम को। आह = कहते हैं।

तस्य वाचकः प्रणवः ॥२७॥

अर्थः—तस्य=उस ईश्वर का। वाचकः=वाचक, बोधक, बतलाने वाला नाम। प्रणवः=ओउम् है। सर्वज्ञत्व इत्यादि धर्मों से समन्वित ईश्वर रूप विशिष्ट पुरुष का वाचक प्रणव, ओउम् है। 'प्रकर्षेण नूयते स्तूयतेऽनेनेति प्रणवः' इस शब्द के द्वारा ईश्वर की विशेष रूप से स्तुति की जाती है। इसलिये प्रणव शब्द ईश्वर का वाचक है। ईश्वर समस्त प्राणियों की रक्षा करता है। अतः 'अवतीति ओउम्' यह ओउम् शब्द ईश्वर का वाचक है।

वृत्तिः—इत्थमुक्तस्वरूपस्येश्वरस्य वाचकोऽभिधायकः, प्रकर्षेण नूयते स्तूयतेऽनेनेति नौति स्तौतीति वा प्रणव ओङ्कारः, तयोश्च वाच्य-वाचकलक्षणः सम्बन्धो नित्यः सङ्केतेन प्रकाश्यते, न तु केनचित् क्रियते; यथा पितापुत्रयोर्विद्यमान एव सम्बन्धोऽस्यायं पिता, अस्यायं पुत्र इति केनचित् प्रकाश्यते ॥२७॥

इत्थं = इस प्रकार से। उक्तस्वरूपस्य = कहे गये स्वरूप वाले, वर्णित स्वरूप वाले। ईश्वरस्य=ईश्वर, पुरुषविशेष का। प्रणव शब्द। वाचकः = वाचक अर्थात्। अभिधायकः=अभिधायक, अभिधान, नाम बतलाने वाला है। प्रकर्षेण=प्रकृष्ट रूप से, अच्छी प्रकार से। नूयते स्तूयते=प्रार्थना, स्तुति की जाती है। अनेन = इस शब्द के द्वारा। इति=इसलिये ईश्वर की सम्यक् रूप से स्तुति का साधन होने से यह शब्द प्रणव है। वा=अथवा। नौति स्तौति = ईश्वर की प्रार्थना, स्तुति करता है। इति = इसलिए ईश्वर की स्तुति करने वाले शब्द को प्रणव कहते हैं। प्रणवः = प्रणव। ओंकारः–ओंकार, ओउम् को कहते हैं। च=और। तयोः=उन दोनों ईश्वर-प्रणव का। वाच्य-वाचकलक्षणः=वाच्यवाचकरूप, प्रकाश्यप्रकाशरूप, अभिधेय-अभिधानरूप। नित्यः=नित्य, शाश्वत, अविभाज्य। संबन्धः=संबन्ध। सङ्केतेन=संकेत द्वारा। प्रकाश्यते = प्रकट, व्यक्त किया जाता है। यह ईश्वर-प्रणव का सम्बन्ध। केनचित्=किसी के द्वारा। न तु=न तो। क्रियते=किया जाता है, नवीन रूप से बनाया जाता है। यथा=जैसे। पितापुत्रयोः=पिता और पुत्र में। विद्यमानः = विद्यमान रहने वाला। एव=ही। सम्बन्धः=सम्बन्ध। 'अस्य = इस पुत्र का। अयं = यह। पिता=पिता है। अस्य=इस पिता का। अयं=यह। पुत्रः=पुत्र है'। इति=इस रूप से। केनचित्=किसी के द्वारा। प्रकाश्यते=प्रकाशित, प्रकट किया जाता है। जिस प्रकार पिता-पुत्र में विद्यमान नित्य सम्बन्ध संकेत द्वारा व्यक्त किया जाता है। उसी प्रकार ईश्वर-प्रणव में नित्य सम्बन्ध है, कृतक नहीं ॥ २७ ॥

उपासनमाह—

उपासनं = उपासना के स्वरूप को। आह=कहते हैं।

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥२८॥

अर्थः—तत् = उस प्रणव का। जपः=जप, पाठ करना। तथा। तत् = उस प्रणव के। अर्थ=वाच्य, अभिधेय ईश्वर की। भावनं=भावना, निरन्तर, अनवरत रूप से चिन्तन करना ही। असंप्रज्ञात समाधि के लिये उपयोगी है। प्रणव के जप एवं ईश्वर स्वरूप के सतत चिन्तन ध्यान से शीघ्र ही निर्बीज समाधि की सिद्धि होती है तथा यह सरल उपाय है।

वृत्तिः—तस्य सार्द्धत्रिमात्रिकस्य[1] प्रणवस्य, जपो यथावदुच्चारणम्, तद्वाच्यस्य चेश्वरस्य भावनं पुनः पुनश्चेतसि निवेशनमेकाग्रताया उपायः; अतः समाधिसिद्धये योगिना प्रणवो जप्य; तदर्थ ईश्वरश्च भावनीय इत्युक्तं भवति ॥२८॥

तस्य=उस। सार्द्धत्रिमात्रिकस्य = अर्धसहित तीन मात्रा वाले। प्रणवस्य= प्रणव का। जपः = जप अर्थात्। यथावत्=अच्छी प्रकार, यथार्थ रूप से। उच्चारणं=उच्चारण करना। च=और। तद्वाच्यस्य=उस प्रणव के वाच्य, अभिधेय। ईश्वरस्य=ईश्वर का। भावनं=भावना करना अर्थात्। पुनः पुनः= बार बार। चेतसि=चित्त में। निवेशनं=प्रवेश करना, ईश्वर के स्वरूप का चित्त में प्रवेश करना सदा चिन्तन, ध्यान करना ही। एकाग्रतायाः=चित्त की एकाग्रता, निरोधसमाधि का। उपायः=सरल उपाय, साधन है। अतः=इसलिये। समाधिसिद्धये=समाधि की सिद्धि के लिये। योगिना=योगी के द्वारा। प्रणवः= प्रणव। जप्यः = जपा जाना चाहिए। च=और। तद् अर्थः = उस प्रणव का अर्थ, वाच्य, अभिधेय। ईश्वरः = ईश्वर का। भावनीयः=ध्यान किया जाना चाहिए। इति उक्तं भवति=यह अभिप्राय है अर्थात् योगी की असंप्रज्ञात समाधि की सिद्धि के लिए प्रणव का जप तथा ईश्वर का सदैव ध्यान करना चाहिये ॥ २८ ॥

उपासनायाः फलमाह—

उपासनायाः=उपासना के। फलं=फल को। आह=बतलाते हैं।

---

१. त्रिमात्रिकस्य (पा०)। ओंकारस्य सार्धत्रिमात्रिकत्वं बहुत्रोक्तम्—'अकारश्च तथोकारो मकारश्चार्धमात्रया'''' (अग्निपु० ३७२।२२)।

ततः प्रत्यक्चेतना[1]ऽधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥२९॥

अर्थः—ततः=उस प्रणव के जप तथा ईश्वर स्वरूप चिन्तन से। प्रत्यक्-चेतनाऽधिगमः=अन्तःस्थित आन्तरिक चित् पुरुष का ज्ञान, प्राप्ति, साक्षात्कार होता है। च=और। अन्तरायाभावः अपि=अन्तराय, समाधि की बाधाओं का अभाव, निवारण भी होता है। इस साधन से अपने वास्तविक चिन्मात्र स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन, साक्षात्कार तथा सभी प्रकार के विघ्नों का अभाव हो जाता है।

वृत्तिः—तस्माज्जपात्तदर्थभावनायाश्च योगिनः प्रत्यक्चेतनाऽधिगमो भवति, विषयप्रातिकूल्येन स्वान्तःकरणाभिमुखमञ्चति या चेतना दृक्शक्तिः सा प्रत्यक्चेतना, तदधिगमो ज्ञानं भवतीत्यर्थः। अन्तराया वक्ष्यमाणाः, तेषामभावः शक्तिप्रतिबन्धोऽपि भवति ॥२९॥

तस्मात्=उस प्रणव के। जपात्=जप से। च=और। तदर्थ-भावनायाः=उसके वाच्य अर्थ ईश्वर के ध्यान से। योगिनः=योगी की। प्रत्यक् चेतना=अन्तःचेतन, अन्तरात्मा, चित् रूप अपने ही स्वरूप की। अधिगमः= प्राप्ति। भवति=होती है। अपने चेतन स्वरूप का साक्षात्कार होता है। विषयप्रातिकूल्येन=विषयों से प्रतिकूल, उपरति होने से। स्वान्तःकरणाभिमुखं= अपने अन्तःकरण की ओर। या=जो। चेतना=चेतना अर्थात्। दृक्शक्तिः=दर्शन शक्ति। अञ्चति=जाती है। सा=वही। प्रत्यक् चेतना=प्रत्यक् चेतना है अर्थात् बाह्य विषयों का परित्याग कर अन्तःकरण की ओर गमन करने वाली दर्शन-शक्ति ही प्रत्यक् चेतना है। तद्=उसी का। अधिगमः=अर्थात्। ज्ञानं=ज्ञान, साक्षात्कार। भवति=होता है। इति=यह। अर्थः=अभिप्राय है। अन्तरायाः= बाधायें, विघ्न। वक्ष्यमाणाः=आगे कहे जाने वाले हैं। तेषां=उन विघ्नों का। अभावः=अभाव होता है अर्थात्। शक्तिप्रतिबन्धः=शक्ति का रोकना। अपि= भी। भवति=होता है अर्थात् प्रत्यक् चेतना का साक्षात्कार हो जाने पर अन्तराय समाधि में बाधा नहीं उपस्थित करते ॥ २९ ॥

---

१. चेतनाधिगम इत्यत्र चेतना-अधिगम इत्येवंरूपेण पदच्छेदो भोजेन कृतः। अन्यैस्तु चेतन-अधिगम इत्येवंरूपेण क्रियते।

अथ के अन्तराया इत्याशङ्कायामाह—

अथ=अब । के=कौन । अन्तरायाः=विघ्न, बाधायें समाधि की सिद्धि में हैं । इति=ऐसी । आशङ्कायां=आशङ्का, संशय होने पर । आह=उन विघ्नों को कहते हैं ।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्ध-भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥३०॥

अर्थ—व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्ध— भूमिकत्वानवस्थितत्वानि = व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व एवं अनवस्थितत्व रूप से । चित्तविक्षेपाः = चित्त के विक्षेप, चञ्चल बनाने वाले, बाह्य विषयों में लगाने वाले हैं । ते = वे ही व्याधि इत्यादि विक्षेप । अन्तरायाः = अन्तराय, समाधि की सिद्धि में विघ्न हैं ।

वृत्तिः—नवैते रजस्तमोबलात् प्रवर्त्तमानाश्चित्तस्य विक्षेपा भवन्ति, तैरेकाग्रताविरोधिभिश्चित्तं विक्षिप्यत इत्यर्थः । तत्र व्याधिर्धातुवैषम्यनिमित्तो ज्वरादिः । स्त्यानमकर्मण्यता चित्तस्य । उभयकोटयालम्बनं ज्ञानं संशयः, योगः साध्यो न वेति । प्रमादोऽनवधानता, समाधिसाधनेष्वौदासीन्यम् । आलस्यं काय-चित्तयोर्गुरुत्वं, योगविषये प्रवृत्त्यभावहेतुः । अविरतिश्चित्तस्य विषयसम्प्रयोगात्मा गर्द्धः । भ्रान्तिदर्शनं शुक्तिकायां रजतवद्विपर्ययज्ञानम् । अलब्धभूमिकत्वं कुतश्चिन्निमित्तात् समाधिभूमेरलाभोऽसम्प्राप्तिः । अनवस्थितत्वं लब्धायामपि भूमौ चित्तस्य तत्राप्रतिष्ठा । ते एते समाधेरेकाग्रताया यथायोगं प्रतिपक्षत्वादन्तराया इत्युच्यन्ते ॥३०॥

रजस्तमोबलात्=रजोगुण एवं तमो गुण के बल से । प्रवर्त्तमानाः = प्रवृत्त होने वाले । एते = ये व्याधि, स्त्यान इत्यादि । नव = नव । चित्तस्य = चित्त के । विक्षेपाः = विक्षेप । भवन्ति = होते हैं । एकाग्रताविरोधिभिः = चित्त की एकाग्रता का विरोध करने वाले, बाधा पहुँचाने वाले । तैः= उन व्याधि, स्त्यान, संशय आदि के द्वारा । चित्तं = चित्त । विक्षिप्यते = विक्षिप्त किया जाता है, बाह्य विषयों में लगाया जाता है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है । तत्र = उन अन्तरायों में । धातुवैषम्यनिमित्तः = वात-पित्त-

कफ़-रूप त्रिधातुओं की विषमता, न्यूनाधिक्य से उत्पन्न। ज्वरादिः = ज्वर, शीत, अतिसार इत्यादि ही। व्याधिः = व्याधि नामक अन्तराय, विघ्न हैं। चित्तस्य = चित्त की। अकर्मण्यता = कार्य करने की असमर्थता, अक्षमता ही। स्त्यानं = स्त्यान नामक अन्तराय है। उभयकोटचालम्बनं = उभय, दोनों कोटियों का आलम्बन, स्पर्श करने वाला। ज्ञानं = ज्ञान। संशयः=संशय है। यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वा। अनवधानता = असावधानी, योग सिद्धि के लिए बतलाये गये साधनों का अच्छी प्रकार से पालन न करना ही। प्रमादः = प्रमाद है अर्थात्। समाधिसाधनेषु = समाधिसिद्धि के साधनों में। औदासीन्यं = उदासीनता दिखलाना ही प्रमाद है। कायचित्तयोः = शरीर तथा चित्त दोनों का। गुरुत्वं = गुरु होना, चेष्टा में मन्थर होना ही। आलस्यं = आलस्य है। जो। योगविषये = योग साधना के सम्बन्ध में। प्रवृत्त्यभावहेतुः = चेष्टाओं के अभाव का कारण है। चित्तस्य = चित्त का। विषयसम्प्रयोगात्मा = विषय के साथ संप्रयोग, संयोग, सम्बन्ध रूप। गर्द्धः = तृष्णा, अभिकांक्षा ही। अविरतिः = वैराग्य का अभाव रूप अविरति है। शुक्तिकायां = शुक्ति में। रजतवत् = रजत की प्रतीति के समान। विपर्य्ययज्ञानं = विपरीत, विलोम, मिथ्या ज्ञान ही। भ्रान्तिदर्शनं भ्रान्तिदर्शन है। कुतश्चित् = किसी। निमित्त, हेतु, कारण से। समाधिभूमेः समाधि की भूमि का। अलाभः = लाभ न होना। असंप्राप्तिः = प्राप्ति न होना ही। अलब्धभूमिकत्वं = अलब्धभूमिकत्व नाम वाला विघ्न है। भूमौ = समाधिभूमि के। लब्धायां = प्राप्त हो जाने पर। अपि = भी। चित्तस्य = चित्त की। तत्र = उस समाधि भूमि में। अप्रतिष्ठा= प्रतिष्ठित, स्थित न होना ही। अनवस्थितत्वं = अनवस्थितत्व नामक समाधि का अन्तराय है। ते = वे। एते = ये। व्याधि-स्त्यान इत्यादि सभी। समाधेः = समाधि की। एकाग्रतायाः = एकाग्रता के। यथायोगं = योग के अनुकूल, योगानुसार। प्रतिपक्षत्वात् = प्रतिकूल, विपक्ष, बाधक होने के कारण। अन्तरायाः = अन्तराय, विघ्न। इति = इस रूप से। उच्यन्ते = कहे जाते हैं॥ ३०॥

चित्तविक्षेपकारकानन्यानप्यन्तरायान् प्रतिपादयितुमाह—

चित्तविक्षेपकारकान् = चित्त को विक्षिप्त, विविध प्रकार से बाह्य विषयों

में लगाने वाले। अन्यान् = अन्य, दूसरे। अन्तरायान् = विघ्नों का। अपि = भी। प्रतिपादयितुं = प्रतिपादन करने के लिये, वर्णन करने के लिये। आह = कहते हैं।

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥३१॥

अर्थः—दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासाः = दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास एवं प्रश्वास ये पाँचों ही। विक्षेपसहभुवः = विक्षेप के साथ होने वाले हैं अर्थात् व्याधि, स्त्यान, संशय इत्यादि नव विक्षेपों के साथ आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक रूप त्रिविध दुःख, अभिलाषा पूरी न होने पर मन में उत्पन्न क्षोभरूप दौर्मनस्य, समाधि में सहायक आसन के समय शरीर के अङ्गों में उत्पन्न कम्परूप श्वास तथा प्रश्वास ये पाँचों ही समाधि में विघ्न उपस्थित करने वाले हैं। अतः व्याधिस्त्यान इत्यादि विक्षेपों के सहायक हैं।

वृत्तिः—कुतश्चिन्निमित्तादुत्पन्नेषु विक्षेपेषु एते दुःखादयः प्रवर्त्तन्ते। तत्र दुःखं चित्तस्य रजसः परिणामो बाधनालक्षणः, यद्बाधात् प्राणिनः तदुपघाताय प्रवर्त्तन्ते। दौर्मनस्यं बाह्याभ्यन्तरैः कारणैर्मनसो दौःस्थ्यम्। अङ्गमेजयत्वं सर्वाङ्गीणो वेपथुः, आसनमनःस्थैर्य्यस्य बाधकः। प्राणो यद् वाह्यं वायुमाचामति स श्वासः, यत् कौष्ठ्यं वायुं निःश्वसिति स प्रश्वासः। एते विक्षेपैः सह प्रवर्त्तमाना यथोदिताभ्यास-वैराग्याभ्यां निरोद्धव्या इत्येषामुपदेशः ॥३१॥

कुतश्चिद् = किसी। निमित्तात् = निमित्त, कारण से। उत्पन्नेषु = उत्पन्न हुये। विक्षेपेषु = व्याधि आदि नव विक्षेपों में। एते = ये। पाँचों। दुःखादयः = दुःख, दौर्मनस्य इत्यादि। प्रवर्तन्ते = प्रवृत्त होते हैं, विक्षेपों के सहायक बन जाते हैं। तत्र = उन पाँचों में। बाधनालक्षणः = बाधा उपस्थित करने वाला। चित्तस्य = चित्त का। रजसः = रजो गुण का। परिणामः = परिणाम। दुःखं = दुःख है। यत् = जिसकी। बाधात् = बाधा से, जिससे बाधित, पीड़ित होने से। प्राणिनः = सभी प्राणी। तद् उपघाताय = उनके विनाश, निवृत्ति के लिये। प्रवर्त्तन्ते = प्रवृत्त होते हैं, प्रयास करते हैं। बाह्याभ्यन्तरैः = बाह्य एवं अन्तः। कारणैः = कारणों से। मनसः = मन का। दौःस्थ्यं = विषाद-युक्त, उदासीन होना ही। दौर्मनस्यं = दौर्मनस्य है। सर्वाङ्गीणः = सभी अङ्गों

में। वेपथुः = कम्पन होना। अङ्गमेजयत्वं=अङ्गमेजयत्व है। जो। आसनमनः-स्थैर्य्यस्य = आसन एवं मन की स्थिरता का। बाधकः=बाधक, बाधा पहुँचाने वाला है। प्राणः = प्राण। यद् = जब। बाह्यं = बाहरी। वायुं=वायु को। आचामति = पीता है, नासिका के भीतर ग्रहण करता है। सः = वही। श्वासः = श्वास है। यत् = जब। कौष्ठ्यं = कोष्ठसंबन्धी, भीतर उदर की। वायुं = वायु को। निःश्वसिति = बाहर निकलता है। सः=वह। प्रश्वासः= प्रश्वास है अर्थात् प्राणक्रिया द्वारा जो बाहरी वायु नासिकारन्ध्र से भीतर प्रवेश करती है, वह श्वास है और जो हृदयस्थ वायु नासिकारन्ध्र से बाहर जाती है, वह प्रश्वास है। एते = ये दुःख-दौर्मनस्य इत्यादि। विक्षेपैः सह = व्याधि-स्त्यान इत्यादि विक्षेपों के साथ। प्रवर्त्तमानाः=प्रवृत्त होते हुये, सहकारी होते हुये, समाधि में विघ्न पहुँचाते हुये दुःख आदि का। यथा=जैसा पूर्व में। उदिताभ्यासवैराग्याभ्यां = कहे गये, वर्णन किये गये अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा। निरोद्धव्याः = निरोध किया जाना चाहिये, समाधि में बाधक दुःख इत्यादि को अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा रोकना चाहिये। इति = इसलिए। एषां = इन दुःख-दौर्मनस्य इत्यादि का। उपदेशः = उपदेश, निरूपण किया गया ॥ ३१ ॥

सोपद्रवविक्षेपप्रतिषेधार्थमुपायान्तरमाह—

सोपद्रवविक्षेपप्रतिषेधार्थं=उपद्रव सहित अर्थात् दुःख-दौर्मनस्य-अङ्गमेजयत्व-श्वास-प्रश्वासरूप पञ्च विघ्नों सहित व्याधि-स्त्यान-संशय इत्यादि नव विक्षेपों के प्रतिषेध, निवारण के लिये। उपायान्तरं = दूसरे उपाय को। आह = कहते हैं।

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥३२॥

अर्थः—तत् प्रतिषेधार्थं = दुःख-दौर्मनस्य आदि पञ्च विघ्नों सहित व्याधि-स्त्यान आदि नव विक्षेपों के प्रतिषेध, निवृत्ति, निरोध, दूर करने के लिये। एकतत्त्वाभ्यासः = ईश्वर रूप एक तत्त्व का अभ्यास, सतत चिन्तन करना चाहिये। ईश्वर रूप एक ही आलम्बन में चित्त की एकाग्रता का अभ्यास करना

चाहिये। राजा भोज देव के अनुसार विक्षेपों की निवृत्ति के लिए किसी भी अभिमत एक तत्त्व, पदार्थ में चित्त के निवेश का अभ्यास करना चाहिये।

वृत्तिः—तेषां विक्षेपाणां प्रतिषेधार्थमेकस्मिन् कस्मिंश्चिदभिमते तत्त्वेऽभ्यासश्चेतसः पुनः पुनर्निवेशनं कार्यः, यद्बलात् प्रत्युदितायामेकाग्रतायां ते विक्षेपाः प्रणाशमुपयान्ति ॥३२॥

तेषां = उन। विक्षेपाणां = विक्षेपों के। प्रतिषेधार्थं = प्रतिषेध, निरोध के लिये। कस्मिंश्चित्=किसी। एकस्मिन् = एक। अभिमते = अभीष्ट, अनुकूल। तत्त्वे=तत्त्व, पदार्थ में। अभ्यासः = अभ्यास करना चाहिये अर्थात्। चेतसः=चित्त का। पुनः पुनः = बार-बार। निवेशनं = उसी तत्त्व में प्रवेश। कार्य्यः = करना चाहिये। यद् = जिसके। बलात् = बल से। एकाग्रतायां = एकाग्रता के। प्रति उदितायां = उदित, प्राप्त, सिद्ध होने पर। ते = वे। विक्षेपाः = व्याधि-स्त्यान इत्यादि विक्षेप, विघ्न। प्रणाशं = विनाश, लय को। उपयान्ति = प्राप्त हो जाते हैं॥ ३२॥

इदानीं चित्तसंस्कारापादकपरिकर्मकथनमुपायान्तरमाह—

'इदानीं = अब। चित्तसंस्कारापादकपरिकर्मकथनं = चित्त के संस्कारों का प्रतिपादन करने वाले परिकर्म, चित्त को निर्मल बनाने वाले कर्मों का कथन करने के लिये, बतलाने के लिये। उपायान्तरं = दूसरे उपाय को। आह = कहते हैं। चित्त की एकाग्रता हेतु रागद्वेषक्रोधमोहलोभ से रहित प्रसन्न, प्रसादयुक्त चित्त को विमल, स्वच्छ बनाने वाले दूसरे उपाय को बतलाते हैं।

मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षाणां सुख-दुःख-पुण्या-पुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥३३॥

अर्थः—सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां = सुख, दुःख, पुण्य, पाप विषय वालों का अर्थात् सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा तथा पापात्मा पुरुषों में। मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां=क्रमशः मित्रता, दया, मुदिता (हर्ष, प्रसन्नता) एवं उपेक्षा (उदासीनता) की। भावनातः = भावना करने से, विचार रखने से। चित्तप्रसादनं = चित्त प्रसन्न होता है, रागद्वेष आदि से विनिर्मुक्त होता है अर्थात् सुखी प्राणियों में

मित्रता की भावना, दुःखियों में दया की भावना, पुण्यात्माओं में प्रसन्नता की भावना तथा पापियों में उदासीनता की भावना रखने से चित्त प्रसन्न हो जाता है, राग-द्वेष-क्रोध-मोह-लोभ इत्यादि कलुषित भावों से मुक्त हो जाता है ।

वृत्तिः—मैत्री सौहार्दम् । करुणा कृपा । मुदिता हर्षः । उपेक्षा औदासीन्यम् । एता यथाक्रमं सुखितेषु दुःखितेषु पुण्यवत्सु अपुण्यवत्सु च विभावयेत् । तथा हि—सुखितेषु साधुषु एषां सुखित्वमिति मैत्रीं कुर्यात्, न तु ईर्ष्याम् । दुःखितेषु कथं तु नामैषां दुःखनिवृत्तिः स्यात् इति कृपामेव कुर्य्यात्, न ताटस्थ्यम् । पुण्यवत्सु पुण्यानुमोदनेन हर्षमेव कुर्यात्, न तु किमेते पुण्यवन्त इति विद्वेषम् । अपुण्यवत्सु चौदासीन्यमेव भावयेत्, नानुमोदनं न वा द्वेषम् । सूत्रे सुख-दुःखादिशब्दैस्तद्वन्तः प्रतिपादिताः । तदेवं मैत्र्यादिपरिकर्मणा चित्ते प्रसीदति सुखेन समाधेराविर्भावो भवति ।

परिकर्म चैतत् बाह्यं कर्म, यथा गणिते मिश्र[1]कादिव्यवहारो गणितनिष्पत्तये सङ्कलितादिकर्मोपकारकत्वेन प्रधानकर्मनिष्पत्तये भवति, एवं द्वेष-रागादिप्रतिपक्ष-भूतमैत्र्यादिभावनया समुत्पादितप्रसादं चित्तं सम्प्रज्ञातादिसमाधियोग्यं सम्पद्यते । राग-द्वेषावेव मुख्यतया विक्षेपमुत्पादयतः, तौ चेत् समूलमुन्मूलितौ स्यातां, तदा प्रसन्नत्वात् मनसो भवत्येकाग्रता ॥३३॥

सौहार्दं = सुहृद भाव ही । मैत्री = मैत्री, मित्रता है । कृपा = प्राणियों पर कृपा, दया करना ही । करुणा = करुणा है । हर्षः = प्रसन्नता, प्रसन्न होना ही । मुदिता = मुदिता है । औदासीन्यं = उदासीनता ही । उपेक्षा = उपेक्षा है । एताः = ये मैत्री-करुणा—मुदिता—उपेक्षा की भावनायें । यथाक्रमं = क्रमशः । सुखितेषु=सुखी प्राणियों में । दुःखितेषु = दुःखी प्राणियों में । पुण्यवत्सु=पुण्यवान् पुरुषों में । च = और । अपुण्यवत्सु = पुण्यरहित, पापी पुरुषों में । विभावयेत् = भावना करनी चाहिये, विचार रखने चाहिये । तथाहि=जैसे कि । सुखितेषु = सुखी । साधुषु = साधु, सज्जन पुरुषों में एषां =

---

१. "गणितनिष्पत्तये जिज्ञासितान्तिमफलीभूतसंख्यासिद्धयर्थं मिश्रकादिव्यवहारः, खण्डशोऽङ्कानां मिश्रणं विरुद्धसमानाङ्कानां छेदनम्, अनुगुणाङ्कानां गुणनं विभाजनम् इत्यादिरूपो व्यवहारः" (भोजवृत्तिकिरणम्) ।

इन पुरुषों में सुखित्वं = सुख है। इति = ऐसा विचार कर। मैत्रीं = मित्रता की भावना। कुर्य्यात् = करनी चाहिये। ईर्ष्या = ईर्ष्या की भावना को। तु = तो। न = नहीं करनी चाहिये। दुःखितेषु = दुःखी प्राणियों में। कथं नु नाम = किसी प्रकार से। एषां = इन दुःखी प्राणियों के। दुःखनिवृत्ति = दुःख का निराकरण, निवारण। स्यात् = होवे। इति = इस रूप से। कृपां = दया की भावना को। एव = ही कुर्य्यात् = करनी चाहिये। ताटस्थ्यं = तटस्थता। न = नहीं। पुण्यवत्सु = पुण्यवान् पुरुषों में। पुण्यानुमोदनेन = पुण्य के अनुमोदन, प्रशंसा द्वारा। हर्षं = हर्ष, प्रसन्नता। एव = ही। कुर्य्यात् = करनी चाहिये। तु = किंतु। एते = ये। पुण्यवन्तः = पुण्यात्मा पुरुष। किं = क्या है। इति=इस रूप से। विद्वेषं = द्वेष। न = नहीं करना चाहिये। सूत्रे = इस सूत्र में। सुखदुःखादिशब्दैः = सुख-दुःख इत्यादि शब्दों के द्वारा। तद्वन्त = उनसे युक्त अर्थात् सुख से युक्त सुखी, दुःख से युक्त दुःखी, पुण्य से युक्त पुण्यात्मा, पाप से युक्त पापी पुरुषों का। प्रतिपादिताः = प्रतिपादन, कथन किया गया है। तद्एवं = इसी प्रकार से। मैत्र्यादिपरिकर्मणा = मित्रता इत्यादि परिकर्मों के द्वारा। चित्ते = चित्त के। प्रसीदति = प्रसन्न हो जाने से, रागद्वेष से रहित हो जाने पर। सुखेन-सुखपूर्वक, सुकर रूप से। समाधेः = समाधि का। आविर्भावः = उद्भूति, प्राप्ति। भवति = होती है। च = और। एतत् = यह मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा रूप। परिकर्म = परिकर्म। बाह्यं = बाहरी। कर्म = कर्म हैं, चित्तशुद्धि के बाह्य साधन हैं। यथा = जैसे। गणिते = गणितविद्या में। मिश्रकादिव्यवहारः = अङ्कों का मिश्र, योग, जोड़ इत्यादि व्यवहार। गणितनिष्पत्तये = गणित की निष्पत्ति, सिद्धि, निर्णय के लिये होता है। सङ्कलितादिकर्मोपकारकत्वेन = संकलन, योग, अङ्कों का जोड़ इत्यादि, कर्म, क्रियाओं के उपकारक, सहायक होने के कारण। प्रधानकर्मनिष्पत्तये = मुख्य फल की सिद्धि के लिये। भवति = होता है। एवं = इसी प्रकार से। द्वेषरागादिप्रतिपक्षभूतमैत्र्यादिभावनया = द्वेष, राग आदि के प्रतिपक्ष, विलोम में विद्यमान अर्थात् द्वेष, राग इत्यादि का विनाश, निराकरण करने वाली मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा की भावनाओं के द्वारा। समुत्पादितप्रसादं = उत्पन्न हुई प्रसन्नता। निर्मलता वाला। चित्तं = चित्त। संप्रज्ञातादिसमाधियोग्यं = संप्रज्ञात इत्यादि समाधि के

योग्य, अनुकूल । संपद्यते—हो जाता है । रागद्वेषौ = राग और द्वेष । एव = ही । मुख्यतया = मुख्यरूप से । विक्षेपं = चित्त के विक्षेप, विषय की उन्मुखता को । उत्पादयतः = उत्पन्न करते हैं । चेत् = यदि । तौ = वे रागद्वेष दोनों । समूलं = मूल, कारण सहित । उन्मूलितौ = उन्मूलित, विनष्ट । स्यातां = हो जावें । तदा = तब । प्रसन्नत्वात् = रागद्वेष से रहित प्रसन्नता, विमलता होने से । मनसः = मन की । एकाग्रता = एकाग्रता । भवति = होती है । रागद्वेष से रहित, स्वच्छ विमल चित्त एकाग्र हो जाता है ॥ ३३ ॥

उपायान्तरमाह—

उपायान्तरं = चित्तकी एकाग्रता के दूसरे उपाय को । आह = कहते हैं ।

प्रच्छर्दन-विधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥३४॥

अर्थः—वा = अथवा । प्राणस्य = प्राणवायु के । प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां = बाहर निकालने, रेचक द्वारा तथा भीतर रोकने, धारण करने कुम्भक द्वारा चित्त की एकाग्रता होती हैं । प्राणवायु के रेचक एवं कुम्भक व्यापार द्वारा चित्त एकाग्र होता है ।

वृत्तिः—प्रच्छर्दनं कोष्ठस्य वायोः प्रयत्नविशेषान्मात्राप्रमाणेन बहिर्निःसारणम् । मात्राप्रमाणेनैव प्राणस्य वायोर्बहिर्गतिविच्छेदो विधारणा[1], सा च द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां, बाह्यस्याभ्यन्तरापूरणेन पूरितस्य वा तत्रैव निरोधेन । तदेवं रेचक-पूरक-कुम्भकस्त्रिविधः प्राणायामः चित्तस्य स्थितिमेकाग्रतायां निबध्नाति, सर्वासामिन्द्रियवृत्तीनां प्राणवृत्तिपूर्वकत्वात्, मनः-प्राणयोश्च स्वव्यापा[2]रपरस्परमेकयोगक्षेमत्वात्, जीयमाणः[3] प्राणः समस्तेन्द्रियवृत्तिनिरोधद्वारेण चित्तस्यैकाग्रतायां प्रभवति । समस्तदोषक्षयकारित्वञ्चास्यागमे[4] श्रूयते; दोषकृताश्च सर्वा विक्षेपवृत्तयः; अतो दोषनिर्हरणद्वारेणाप्यस्यैकाग्रतायां सामर्थ्यम् ॥ ३४ ॥

---

१. विधारणेति आकारान्तोऽयं शब्दोऽत्र पठ्यते । अन्ये तु अकारान्तो नपुंसकलिङ्गकोऽयमिति मन्यन्ते । केषुचित्संस्करणेषु विधारणमित्येव सठ्यते ।

२. स्वव्यापारे परस्परमेक (पा०)

३. क्षीयमाणः (पा०) ।

४. द्र० प्राणायामैर्दहेद् दोषान् (मनु० ६।७२) ।

कोष्ठस्य = कोष्ठस्थित, उदरस्थ, हृदयस्थ । वायोः = वायु का । प्रयत्नविशेषात् = विशेष प्रयत्न से, प्रयासपूर्वक । मात्राप्रमाणेन = कुछ निश्चित मात्रा में । बहिः = बाहर । निःसारणं = निकालना ही । प्रच्छर्दनं = प्रच्छर्दन है । अन्तःवायु की नासिकारन्ध्र से कुछ मात्रा में प्रयत्नपूर्वक बाहर निकालना ही प्रच्छर्दन है । मात्राप्रमाणन = मात्राप्रमाण से, निश्चित मात्रा में । एव = ही । प्राणस्य = प्राण अर्थात् वायोः = वायु का । बहिः = बाहर की । गतिविच्छेदः = गति का रोकना ही । विधारणा = विधारणा है, अर्थात् प्रयत्नपूर्वक प्राणवायु की बहिर्गति में विच्छेद कर अन्तः में ही धारण करना विधारणा है । च = और । सा = वह विधारणा । द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां = दो प्रकार से होती है अर्थात् । बाह्यस्य = बाहरी प्रणवायु का । आभ्यन्तरापूरणेन = भीतर ही पूरक द्वारा पूरण करना । वा = अथवा । पूरितस्य = पूरण की गई वायु का । तत्रैव = उसी तरह । निरोधेन = निरोध, रोकने से । तद् एवं = इस प्रकार से । रेचकपूरक-कुम्भक = रेचक, पूरक एवं कुम्भक रूप से । त्रिविधः = तीन प्रकार का । प्राणायामः = प्राणायाम । चित्तस्य = चित्त की । स्थितिं = स्थित को । एकाग्रतायां = एकाग्रता में । निबध्नाति = बाँधता है अर्थात् त्रिविध रूप प्राणायाम चित्त को स्थिर, एकाग्र बनाता है । सर्वासां = सभी । इन्द्रियवृत्तीनां=इन्द्रियों की वृत्ति का । प्राणवृत्तिपूर्वकत्वात् = प्राण के व्यापार पूर्वक होने से अर्थात् प्राण के व्यापार युक्त होने पर ही सभी इन्द्रियाँ व्यापार युक्त होती हैं । मनःप्राणयोः च = मन और प्राण का । स्वव्यापारपरस्परं = अपने अपने व्यापार में परस्पर एक दूसरे का । एकयोगक्षेमत्वात् = एक ही योग और क्षेम वाला होने के कारण । क्षीयमाणः = प्राणायाम द्वारा क्षीण होता हुआ । प्राणः = प्राण । समस्तेन्द्रियवृत्तिनिरोधद्वारेण = सभी इन्द्रियों के व्यापार के निरोध, रुक जाने से । चित्तस्य = चित्त की । एकाग्रतायां = एकाग्रता में । प्रभवति = समर्थ होता है अर्थात् प्राणव्यापार के कारण इन्द्रियाँ सक्रिय होकर चित्त का विक्षेप करती हैं । प्राणायाम से प्राणवायु में क्षीणता होने से इन्द्रियाँ अपने व्यापार से उपरत हो जाती हैं । अतः चित्त एकाग्र हो जाता है । च = और । आगमे = आगम, वेदशास्त्रों में । समस्तदोषक्षयकारित्वं = सभी प्रकार के दोषों का क्षय किया

जाना । अस्य = इस प्राणायाम का । श्रूयते = सुना जाता है अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से सभी दोष दूर हो जाते हैं ऐसा शास्त्रों का वचन है । च = और । सर्वाः = सभी । विक्षेपवृत्तयः = विक्षेप की वृत्तियाँ । दोषकृताः = राग-द्वेष आदि दोषों के द्वारा की, गई, उत्पन्न की गई हैं । अतः = इसलिये । दोषनिर्हरणद्वारेण = दोषों के हरण, विनाश, निवारण के द्वारा । अपि = भी । अस्य = इस प्राणायाम की । एकाग्रतायां = चित्त की एकाग्रता में । सामर्थ्यं = सामर्थ्य, शक्ति सम्पन्नता है ।। ३४ ।।

इदानीमुपायान्तरप्रदर्शनोपक्षेपेण सम्प्रज्ञातस्य समाधेः पूर्वाङ्गं कथयति—

इदानीं = अब । उपायान्तरप्रदर्शनोपक्षेपेण = दूसरे उपाय के प्रदर्शन, वर्णन के उपक्षेप, अनुपयोगिता होने के कारण । संप्रज्ञातस्य = संप्रज्ञात । समाधेः = समाधि के । पूर्वाङ्गं = पूर्वाङ्ग को । कथयति = कहते हैं ।

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना स्थितिनिबन्धिनी ।।३५।।

अर्थः—वा = अथवा । विषयवती = शब्दस्पर्शरूपरसगन्धरूप दिव्यविषयों को ग्रहण करने वाली । प्रवृत्तिः = उत्कृष्ट वृत्ति, योगी की चित्तवृत्ति । उत्पन्ना= उत्पन्न होकर । स्थितिनिबन्धिनी = स्थिति को बाँधने वाली होती है, चित्त को एकाग्र करने वाली होती है अर्थात् शब्दस्पर्श आदि दिव्य विषयों का अनुभव, साक्षात्कार करने वाली चित्तवृत्ति भी चित्त की एकाग्रता में सहायक होती है ।

वृत्तिः—मनस इति वाक्यशेषः[1] । विषयाः गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्दाः, ते विद्यन्ते फलत्वेन यस्याः सा विषयवती प्रवृत्तिर्मनसः स्थैर्यं करोति । तथा हि, नासाग्रे चित्तं धारयतो दिव्यगन्धसंविदुपजायते । तादृशस्येव जिह्वाग्रे रससंवित्, तालव्ग्रे रूपसंवित्, जिह्वामध्ये स्पर्शसंवित्, जिह्वामूले शब्दसंवित् । तदेवं तत्तदिन्द्रिय-द्वारेण तस्मिंस्तस्मिन् विषये दिव्ये जायमाना संवित् चित्तस्यैकाग्रताया हेतुर्भवति, अस्ति योगस्य फलमिति योगिनः समाश्वासोत्पादनात् ।। ३५ ।।

मनसः इति वाक्यशेषः = मनसः यह वाक्य का शेष है अर्थात्

---

१. एतेन गम्यते यद् भोजमते सूत्रे मनस इति पदं न पठ्यते ।

'मानसः' का संबन्ध सूत्र के साथ होना चाहिये था। गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाः = गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द रूप से। विषयाः = विषय हैं। ते = वे ही पञ्च विद्यन्ते = विद्यमान हैं। फलत्वेन = फलरूप से। यस्याः = जिसके, जिस चित्त-वृत्ति के। सा = वह। विषयवती = गन्ध-रस आदि विषयों वाली। प्रवृत्तिः = चित्त की वृत्ति। मनसः = मन की। स्थैर्य्यं = स्थिरता, एकाग्रता को। करोति = करती है, मन को स्थिर बनाती है। तथाहि = जैसे कि। नासाग्रे = नासिका के अग्र भाग पर। चित्तं = चित्तवृत्ति को। धारयतः = धारण करने पर। दिव्यगन्धसंवित् = दिव्य, सूक्ष्म गन्ध का ज्ञान। उपजायते = उत्पन्न होता है। तादृशस्य = उस प्रकार का। इव = समान, ही। जिह्वाग्रे = जिह्वा के अग्रभाग पर चित्तवृत्ति को धारण करने पर। रससंवित् = दिव्य रस का ज्ञान। ताल्वग्रे = तालु के अग्रभाग में। रूपसंवित् = दिव्य रूप का ज्ञान। जिह्वा-मध्ये = जिह्वा के मध्य में। स्पर्शसंवित् = दिव्य स्पर्श का ज्ञान। जिह्वामूले = जिह्वा के मूल भाग में चित्तवृत्ति धारण करने पर। शब्दसंवित् = दिव्य शब्द का ज्ञान होता है। तद् एवं = इस प्रकार से। तत् तत् इन्द्रियद्वारेण = उन उन इन्द्रियों के द्वारा। तस्मिन् = उस। दिव्ये = दिव्य, सूक्ष्म गन्ध-रस इत्यादि। विषये = विषय में। जायमाना = उत्पन्न हुआ। संवित् = ज्ञान चित्तस्य = चित्त की। एकाग्रतायाः = एकाग्रता, स्थिरता का, में। हेतुः = कारण, सहायक। भवति = होता है। समाश्वासोत्पादनात् = आश्वासन, विश्वास उत्पन्न होने से। योगिनः = योगी को। योगस्य = योग का। फलं = फल। अस्ति = होता है, प्राप्त होता है। इति = ऐसा अर्थात् दिव्य विषयों को ग्रहण करने से विश्वास उत्पन्न होता है और इस विश्वास से योग के फल की प्राप्ति होती है ॥ ३५ ॥

एवंविधमेवोपायान्तरमाह—

एवं विधं = इस प्रकार के। एव = ही। उपायान्तरं = दूसरे उपाय को चित्त की एकाग्रता के दूसरे साधन को। आह = कहते हैं।

विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

अर्थः—वा = अथवा। विशोका = शोक रहित। ज्योतिष्मती = ज्योति

मंय, प्रकाशरूप उत्पन्न हुई चित्तवृत्ति मन की एकाग्रता में सहायक होती है ।

वृत्तिः—प्रवृत्तिरुत्पन्ना चित्तस्य स्थितिनिबन्धिनीति वाक्यशेषः । ज्योतिः-शब्देन सात्त्विकः प्रकाश उच्यते, स प्रशस्तो भूयानतिशयवांश्च विद्यते यस्याः सा ज्योतिष्मती प्रवृत्तिः । विशोका विगतः सु[1]खमयसत्त्वाभ्यासवशाच्छोको रजः-परिणामो यस्याः सा विशोका चेतसः स्थितिनिबन्धिनी । अयमर्थः—हृत्पद्म-सम्पुटमध्ये प्रशान्तकल्लोलक्षीरोदधिप्रख्यं चित्तस्य सत्त्वं भावयतः प्रज्ञालोकात् सर्ववृत्तिक्षये चेतसः स्थैर्य्यमुत्पद्यते ॥ ३६ ॥

प्रवृत्तिरुत्पन्ना चित्तस्य स्थितिनिबन्धिनी = उत्पन्न हुई चित्तवृत्ति चित्त की स्थिति को बाँधने वाली होती है। इति = यह । वाक्यशेषः = वाक्य का शेष है अर्थात् शोक रहित एवं प्रकाशमय उत्पन्न हुई वृत्ति चित्त को एकाग्र करने वाली होती है । ज्योतिःशब्देन = ज्योति शब्द के द्वारा । सात्त्विकः = सात्त्विक, सत्त्वगुण वाला । प्रकाशः = प्रकाश । उच्यते = कहा जाता है । सः = वही सत्त्वगुण विशिष्ट प्रकाश । प्रशस्तः = प्रशस्त । भूयान् = और भी अधिक । च = और । अतिशयवान् = अतिशय, अत्यधिक रूपसे । विद्यते = विद्यमान है । यस्याः = जिस वृत्ति का अर्थात् जिस वृत्ति में अतिशय रूप से सात्त्विक प्रकाश विद्यमान है। सा = वह । ज्योतिष्मती = ज्योतिष्मती । प्रवृत्तिः = चित्त की वृत्ति है । सुखमयत्वाभ्यासवशात् = सुखमय अभ्यास के बल से। विगतः = दूर हो गया है । शोकः = शोक, दुःख । रजःपरिणामः = रजो-गुण का परिणाम, कार्य । यस्याः = जिस वृत्ति का । वह । विशोका = विशोका चित्तवृत्ति है। सा = वह । विशोका = विशोका, दुःखरहित चित्तवृत्ति । चेतसः= चित्त की । स्थितिनिबन्धिनी = स्थिरता को बाँधने वाली, एकाग्र करने वाली होती है । अयम् अर्थः = यह अभिप्राय है । हृत्पद्मसम्पुटमध्ये = हृदय रूप कमल सम्पुट के मध्य में । प्रशान्तकल्लोलक्षीरोदधिप्रख्यं = शान्त हुई तरङ्गों वाले दुग्धसागर के प्रशान्त प्रकाश, ज्ञान के समान । चित्तस्य = चित्तके । सत्त्वं = प्रख्या, प्रकाशरूप चित्तका । भावयतः = भावना करते हुये । प्रज्ञा आलोकात् =

---

१. सुखमयत्वाभ्यास (पा०)

प्रकृष्ट ज्ञान के प्रकाश से । सर्ववृत्तिक्षये = सभी वृत्तियों के क्षय, लय हो जाने पर । चेतसः = चित्त की । स्थैर्य्यं = स्थिरता, एकाग्रता । उत्पद्यते = उत्पन्न होती है ।। ३६ ।।

उपायान्तरप्रदर्शनद्वारेण सम्प्रज्ञातसमाधेर्विषयं दर्शयति—

उपायान्तरप्रदर्शनद्वारेण = अन्य उपाय के प्रदर्शन, वर्णन, के द्वारा । संप्रज्ञातसमाधेः = संप्रज्ञात समाधि के । विषयं = विषय को । दर्शयति = दिखलाते हैं ।

वीतरागविषयं वा चित्तम् ।। ३७ ।।

अर्थः—वा = अथवा । वीतरागविषयं = रागरहित सनक, दत्तात्रेय, कृष्ण, व्यास, शुकदेव इत्यादि योगियों के चित्त को विषय बनाने वाला । चित्तं = चित्त भी एकाग्रता प्राप्त करता है ।

वृत्तिः—मनसः स्थितिनिबन्धनं भवतीति शेषः । वीतरागः परित्यक्तविषयाभिलाषः, तस्य यच् चित्तं परिहृतक्लेशं तद् आलम्बनीकृतं चेतसः स्थितिहेतुर्भवति ।।३७।।

मनसः = मन की । स्थितिनिबन्धनं = स्थिति, एकाग्रता को बाँधने वाला । भवति = होता है । इति शेषः = यह शेष है अर्थात्-इसका सूत्र के साथ संबन्ध होना चाहिये । वीतरागः = वीतराग अर्थात् । परित्यक्तविषयाभिलाषः = जिसने विषयों की अभिलाषा, तृष्णा त्याग दी है । तस्य = उस पुरुष का । यत् = जो । परिहृतक्लेशं = अविद्या, अस्मिता आदि सभी प्रकार के क्लेशों का परिहार, निवारण करने वाला । चित्तं = चित्त है । तद् = वही । आलम्बनीकृतं = आलम्बन, आश्रय, विषय बनाया गया चित्त । चेतसः = चित्त की । स्थिति = स्थिरता, एकाग्रता का । हेतुः = कारण । भवति = होता है । अर्थात् क्लेश, रागरहित योगी के चित्तका आलम्बन बनाने वाला साधक का अपना चित्त एकाग्र हो जाता है ।। ३७ ।।

एवंविधमुपायान्तरमाह—

एवं विधं = इसी प्रकार के । उपायान्तरं = चित्त की एकाग्रता के दूसरे उपाय को । आह = कहते हैं ।

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा॥ ३८ ॥

अर्थः—वा = अथवा। स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं = स्वप्न एवं निद्रावस्था के ज्ञानालम्बन से भी चित्त एकाग्र होता है अर्थात् स्वप्नावस्था में सात्त्विक ज्ञान के विषय भगवत्प्रतिमा इत्यादि पदार्थ तथा निद्रावस्था में सात्त्विक ज्ञान का विषय अपना ही स्वरूपभूत पदार्थ का आलम्बन, आश्रय ग्रहण करने से, विषय बनाने से चित्त स्थिर होता है।

वृत्तिः—प्रत्यस्तमितबाह्येन्द्रियवृत्तेर्मनोमात्रेणैव यत्र भोक्तृत्वमात्मनः स स्वप्नः, निद्रा पूर्वोक्तलक्षणा, तदालम्बनं स्वप्नालम्बनं निद्रालम्बनं वा ज्ञानमालम्ब्य-मानं चेतसः स्थितिं करोति ॥ ३८ ॥

प्रति अस्तमितबाह्येन्द्रियवृत्तेः—इन्द्रियों की बाह्यवृत्ति, व्यापार, विषयों में गमन करना, के अस्तमित, अस्त विलीन हो जाने पर। मनोमात्रेण= केवल मन के द्वारा, मानसिक व्यापार से। एव = ही। यत्र = जहाँ पर, जिस समय। आत्मनः = आत्मा का। भोक्तृत्वं = भोक्ता रूप होता है। सः = वही। स्वप्नः = स्वप्न है। निद्रा = निद्रा। पूर्वोक्तलक्षणा = पहले १।१० में कही गई लक्षण वाली है, जिसके स्वरूप का निरूपण पहले किया जा चुका है। तद् आलम्बनं = वही आलम्बन, आश्रय अर्थात्। स्वप्नालम्बनं = स्वप्नावस्था के पदार्थों का आलम्बन। वा = अथवा। निद्रालम्बनं = निद्रावस्था के पदार्थों का आलम्बन। इस प्रकार। आलम्ब्यमानं = अवलम्बन, विषय बनाया जाने वाला। ज्ञानं = स्वप्नावस्था तथा निद्रावस्था का ज्ञान। चेतसः = चित्त की। स्थितिं = स्थिरता को। करोति = करता है, चित्त को एकाग्र बनाता है ॥ ३८ ॥

नानारुचित्वात् प्राणिनां यस्मिन् कस्मिंश्चिद्वस्तुनि योगिनः श्रद्धा भवति, तस्य ध्यानेनापीष्टसिद्धिरिति प्रतिपादयितुमाह—

प्राणिनां = प्राणियों की। नानारुचित्वात् = विविध प्रकार की रुचि होने के कारण। यस्मिन् = जिस। कस्मिंश्चित् = किसी। वस्तुनि = वस्तु में। योगिनः = योगी की। श्रद्धा = श्रद्धा, विश्वास होता है। तस्य = उस वस्तु के। ध्यानेन = ध्यान के द्वारा। अपि = भी। सिद्धिः = फल की प्राप्ति होती है।

इति = इसी का। प्रतिपादयितुं = प्रतिपादन वर्णन करने के लिये। आह = कहते हैं।

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥

अर्थः- -वा = अथवा। यथाभिमतध्यानात् = अपने अभीष्ट के ध्यान से अर्थात् योगी को जो स्वरूप अभिमत, अभीष्ट, इष्ट हो, उसी अनुकूल, अभिलषित पदार्थ के ध्यान से चित्त एकाग्र होता है।

वृत्तिः—यथाऽभिप्रेते वस्तुनि बाह्ये चन्द्रादावभ्यन्तरे नाडीचक्रादौ वा भाव्यमाने चेतः स्थिरीभवति ॥ ३९ ॥

यथा अभिप्रेते = यथा अभिलषित, रुचि के अनुसार। वस्तुनि = वस्तु में। बाह्ये = बाह्य वस्तु। चन्द्रादौ = चन्द्रमा इत्यादि में। वा = अथवा अभ्यन्तरे = अन्तः, आन्तरिक। नाडीचक्रादौ = नाडी, चक्र इत्यादि में भाव्यमाने = भावना करने पर, ध्यान लगाने पर। चेतः = चित्त। स्थिरीभवति = स्थिर, एकाग्र होता है ॥ ३९ ॥

एवमुपायान् प्रदर्श्य फलदर्शनायाह—

एवं = इस प्रकार से। उपायान् = उपायों को। प्रदर्श्य = दिखलाकर, वर्णन करके। फलदर्शनाय = फल दिखलाने, वर्णन करने के लिए। आह = कहते हैं।

परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥

अर्थः—अस्य=इस योगी के चित्त का। परमाणुपरममहत्त्वान्तः = परमाणु तक तथा परम् महान् तक। वशीकारः = वशीकार, वशीकरण होता है, अर्थात् एकाग्रता के उपायों के अभ्यास से इस योगी का चित्त अणु, सूक्ष्म पदार्थों में परम अणु तक तथा महान् पदार्थों में आकाश रूप परम महान् तक अर्थात् सभी सूक्ष्म एवं स्थूल विषयों में वशीकार होता है, बिना किसी प्रतिघात, बाधा के चित्त का वशीकार होता है। स्थितिप्राप्त, एकाग्रचित्त को किसी भी विषय पर धारण करने की अवस्था ही वशीकार है।

वृत्तिः—एभिरुपायैश्चित्तस्य स्थैर्य्यं भावयतो योगिनः सूक्ष्मविषयभावनाद्वारेण परमाण्वन्तो वशीकारोऽप्रतिघातरूपो जायते, न क्वचित् परमाणुपर्यन्ते[1] सूक्ष्मे विषयेऽस्य मनः प्रतिहन्यते इत्यर्थः। एवं स्थूलमाकाशादिपरममहत्त्वपर्य्यन्तं भावयतो न क्वचिच्चेतसः प्रतिघात उत्पद्यते, सर्वत्र स्वातन्त्र्यं भवतीत्यर्थः ॥४०॥

एभिः=इन। उपायैः=उपायों, साधनों से। चित्तस्य=चित्त की। स्थैर्य्यं= स्थिरता, एकाग्रता। भावयतः = भावना, ध्यान करते हुए। योगिनः = योगी का। सूक्ष्मविषयभावनाद्वारेण=सूक्ष्मविषय की भावना, विचार द्वारा। परमाण्वन्तः=परम अणु तक। वशीकारः=वशीकार अर्थात्। अप्रतिघातरूपः= बाधा, रुकावट का अभाव। जायते=उत्पन्न होता है अर्थात्। अस्य=इस योगी का। मनः=मन, चित्त। परमाणुपर्य्यन्ते=परम अणु तक। सूक्ष्मे=सूक्ष्म। विषये= विषय में क्वचित्=कहीं पर भी। न=नहीं। प्रतिहन्यते=विघ्नित, बाधित होता है। इति अर्थः=यह अभिप्राय है। एवं=इसी प्रकार। स्थूलं = स्थूल। आकाशादिपरममहत्त्वपर्य्यन्तं = आकाश इत्यादि परम महान् पदार्थों तक। भावयतः = भावना, ध्यान, विचार करते हुए। चेतसः = चित्त की। क्वचित् = कहीं पर भी। प्रतिघातः = बाधा। न = नहीं। उत्पद्यते = उत्पन्न होती है। सर्वत्र = सभी जगह, सभी विषयों में। स्वातन्त्र्यं = स्वतंत्रता, निर्बाधगति। भवति = होती है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है ॥ ४० ॥

एवमेभिरुपायैः संस्कृतस्य चेतसः कीदृग्रूपं भवतीत्याह—

एवं = इस प्रकार। एभिः = इन। उपायैः = उपायों के द्वारा। संस्कृतस्य = संस्कृत, शुद्ध, एकाग्र। चित्तस्य = चित्त का। कीदृक् = किस प्रकार का। रूपं = स्वरूप। भवति = होता है। इति = इसी को। आह = कहते हैं।

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थ-तदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

अर्थः—क्षीणवृत्तेः = क्षीण वृत्ति वाले, वाह्य विषयों से उपरत चित्त की। अभिजातस्य = स्वच्छ स्फटिक। मणेः = मणि के। इव = समान। ग्रहीतृ= ग्रहीता, ग्रहण करने वाला, चेतन पुरुष। ग्रहण = बुद्धि एवं इन्द्रियों। ग्राह्येषु = ग्रहण किये जाने वाले, सूक्ष्म एवं स्थूल विषयों में। तत् स्थ = उनमें

---

१. परमाण्वन्ते (पा०)।

स्थिति, एकाग्रता। तथा। तदञ्जनता = तद्रूपता उन विषयों की आकारिता, तदाकाराकारिता का होना ही। समापत्तिः = समापत्ति, संप्रज्ञात समाधि है। यथा शुभ्र, विमल स्फटिक मणि के समक्ष जो भी वस्तु जाती है, मणि उसी के आकार की हो जाती है। इसी प्रकार वृत्तियों से रहित स्वच्छ निरुद्ध चित्त की ग्रहीता, ग्रहण एवं ग्राह्य के साथ एकाग्रता तथा एकरूपता होती है, यही संप्रज्ञात समाधि है।

वृत्तिः—क्षीणा वृत्तयो यस्य स क्षीणवृत्तिः तस्य ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्येषु आत्मेन्द्रियविषयेषु तत्स्थ-तदञ्जनता समापत्तिर्भवति। तत्स्थत्वं तत्र एकाग्रता, तदञ्जनता तन्मयत्वं, क्षीणभूते चित्ते विषयस्य भाव्यमानस्यैवोत्कर्षः, तथाविधा समापत्तिः तद्रूपः परिणामो भवतीत्यर्थः। दृष्टान्तमाह, अभिजातस्येव मणेः—यथा अभिजातस्य निर्मलस्फटिकमणेस्तत्तदुपाधिवशात् तत्तद्रूपापत्तिः, एवं निर्मलस्य चित्तस्य तत्तद्भावनीयवस्तूपरागात्तत्तद्रूपापत्तिः।

यद्यपि ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्येषु इत्युक्तं, तथापि भूमिकाक्रमवशात् ग्राह्य-ग्रहण-ग्रहीतृषु इति बोध्यम्; यतः प्रथमं ग्राह्यनिष्ठ एव समाधिः, ततो ग्रहणनिष्ठः, ततोऽस्मिता[1] मात्ररूपो ग्रहीतृनिष्ठः, केवलस्य पुरुषस्य ग्रहीतुर्भाव्यत्वासम्भवात्। ततश्च स्थूल-सूक्ष्मग्राह्योपरक्तं चित्तं तत्र समापन्नं भवति, एवं ग्रहणे ग्रहीतरि च समापन्नं बोद्धव्यम्॥ ४१॥

क्षीणाः = क्षीण, नष्ट हो गई हैं। वृत्तयः = वृत्तियाँ। यस्य = जिसकी। सः = वह। क्षीणवृत्तिः = क्षीण हो गई वृत्तियों वाला, विषयों से उपरत हुआ चित्त है। तस्य = उस चित्त की। ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु = ग्रहीता, ग्रहण करने वाला, विषय ग्रहण करने के साधन अन्तःकरण एवं इन्द्रियाँ, तथा ग्रहण के योग्य, ग्रहण किये जाने वाले स्थूल और सूक्ष्म विषय अर्थात् ग्रहीता, ग्रहण, ग्राह्यरूप। आत्मेन्द्रियविषयेषु = आत्मा, चेतन पुरुष, बुद्धि सहित इन्द्रियों, कारणों एवं स्थूल सूक्ष्म विषयों में। तत् स्थ = उनमें स्थित होना अर्थात् स्थिरता, एकाग्रता प्राप्त करना। तथा। तदञ्जनता = तद्रूपता, तादा-

---

१. अस्मितारूपः (पा०)।

की प्राप्ति ही। समापत्तिः = संप्रज्ञात समाधि हैं। तत्स्थत्वं = तत्स्थत्व का अर्थ है। तत्र = उन विषयों में। एकाग्रता = चित्त की एकाग्रता, स्थिरता होना। और तदञ्जनता = तदञ्जनता का अभिप्राय है। तन्मयत्वं = तन्मय, तद्रूपता, विषयों के ही रूप का होना। क्षीणभूते = वृत्तियों के क्षीण हुये, वृत्तिरहित। चित्ते = चित्त में। भाव्यमानस्य = ध्यान किये जाने वाले। विषयस्य = विषय की। एव = ही। उत्कर्षः = प्रबलता होती है। तथाविधा= उसी प्रकार की, ध्येय विषय के अनुरूप। समापत्तिः=समापत्ति अर्थात्। तद्रूप = उसी रूप का। परिणामः = परिणाम। भवति = होता है। इति अर्थः = यह तात्पर्य है। दृष्टान्तं = दृष्टान्त, उदाहरण। आह = कहते हैं। अभिजातस्य = स्वच्छ स्फटिक। मणेः = मणि के। इव = समान। यथा = जैसे। अभिजातस्य = अभिजात का अर्थात्। निर्मलस्फटिकमणेः = निर्मल, स्वच्छ, मलिनता रहित स्फटिकमणि की। तत्तत् = जपाकुसुम, पीतकुसुम, नीलपुष्प इत्यादि उन, उन। उपाधिवशात् = उपाधि के कारण। तत्तत् = जपाकुसुम, पीतकुसुम, नीलपुष्प, इत्यादि उन, उन। रूपापत्तिः = रूपों की प्राप्ति, तादात्म्यप्राप्ति होती है। एवं = इसी प्रकार। निर्मलस्य = विषयों से उपरत, वृत्तिरहित, स्वच्छ, निर्मल। चित्तस्य की। तत्तत् = ग्रहीता, ग्रहण, ग्राह्य उन, उन। भावनीय = भावना, ध्यान की जाने वाली। वस्तूपरागात् = वस्तुओं के उपराग से। तत्तत् = ग्रहीता, ग्रहण, ग्राह्य उन, उन। रूपापत्तिः = स्वरूपों की प्राप्ति होती है। यद्यपि = यद्यपि। ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु = ग्रहीता-ग्रहण-ग्राह्यरूप विषयों में चित्त की एकाग्रता एवं तादात्म्यप्राप्ति होती है। इति उक्तं = ऐसा सूत्र में कहा गया है। तथापि = फिर भी। भूमिकाक्रमवशात् = भूमिका के क्रम के अनुसार। ग्राह्यग्रहणग्रहीतृषु = ध्येय स्थूल-सूक्ष्मविषय, विषय ग्रहण करने के साधन अन्तःकरण तथा इन्द्रिय एवं ग्रहीता चेतन पुरुष में चित्त की एकाग्रता तथा तद्रूपता होती है। इति = ऐसा। बोध्यं = समझना चाहिए। यतः = क्योंकि। प्रथमं = पहले। ग्राह्यनिष्ठः = ग्राह्यनिष्ठ, स्थूल-सूक्ष्म विषयों में होने वाली। एव = ही। समाधिः = समाधि होती है। ततः = उसके बाद। ग्रहणनिष्ठः = ग्रहणनिष्ठ, अन्तःकरण इन्द्रियों में होने वाली समाधि होती है

ततः = उसके पश्चात् । अस्मितामात्ररूपः = केवल अस्मिता रूप, चित्त में पुरुष की सत्तामात्र की प्रतीति अर्थात् । ग्रहीतृनिष्ठः = ग्रहीता चेतनपुरुष मात्र में होने वाली, पुरुष के विशुद्ध स्वरूप को प्रकाशित करने वाली समाधि होती है। क्योंकि । केवलस्य = केवलरूप, शुद्ध, निर्गुण, चिन्मात्र । पुरुषस्य = पुरुष का । ग्रहीतुः = ग्रहीता का । भाव्यत्वासंभवात् = भावना, ध्यान किया जाना संभव न होने के कारण अर्थात् अस्मिता के बिना ग्रहीता पुरुष का ज्ञान न होने से वृत्ति-रहित स्वच्छ चित्त में अस्मिता सहित पुरुष का ज्ञान होता है । च = और । ततः = इस प्रकार । स्थूलसूक्ष्मग्राह्योपरक्तं = स्थूल तथा सूक्ष्म ग्रहण किये जाने वाले विषयों से उपरञ्जित, युक्त हुआ । चित्तं = चित्त । तत्र = उन ग्राह्य विषयों में । समापन्नं = समापन्न, संप्रज्ञात समाधि वाला, एकाग्र एवं तद्रूप । भवति = होता है । एवं = इसी प्रकार । ग्रहणे = अन्तःकरण एवं इन्द्रियरूप विषयों में चित्त समापत्ति वाला होता है । च = और, इनके पश्चात् । ग्रहीतरि = ग्रहीता चेतन पुरुष में । समापन्नं = चित्त को समाहित, संप्रज्ञात समाधि वाला एकाग्र एवं तद्रूप । बोद्धव्यं = समझना चाहिए अर्थात् क्षीणवृत्तियों वाला चित्त सर्वप्रथम स्थूल पुनः सूक्ष्म विषयों में एकाग्रता तथा तद्रूपता को प्राप्त करता है । अनन्तर ग्रहण रूप अन्तःकरण तथा इन्द्रियों में और अन्त में शुद्ध चिन्मात्र पुरुष में चित्त की एकाग्रता तथा तद्रूपता का लाभ प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥

इदानीमुक्ताया एव समापत्तेश्चातुर्विध्यमाह—

इदानीं = अब । उक्तायाः = कही गई. निर्दिष्ट की गई । समापत्तेः = समापत्ति के । एव = ही । चातुर्विध्यं = चार प्रकार, भेद । आह = कहते हैं ।

शब्दार्थज्ञानविकल्पैः सङ्कीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥ ४२ ॥

अर्थः—ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्यविषयक त्रिविध समापत्तियों में । शब्दार्थज्ञान-विकल्पैः = शब्द, अर्थ एवं ज्ञान के विकल्पों से । संकीर्णा = मिश्रित, मिली हुई । समापत्तिः = समापत्ति, समाधि । सवितर्का = सवितर्क, वितर्कानुगत है अर्थात् जिस समाधि में शब्द, अर्थ एवं ज्ञान की पृथक् रूप से प्रतीति न होकर, अभेद रूप से प्रतीति हो, वहाँ पर सवितर्क संप्रज्ञात समाधि होती है । यथा-गो

शब्द का कण्ठतालु से उच्चारण तथा श्रोत्रेन्द्रिय से ग्रहण किया जाता है। गो. अर्थ गोशाला में रहने वाला शृङ्गसास्नायुक्त एक पदार्थ है। गो ज्ञान भी गो व्यक्ति विषयक तदाकाराकारित चित्त का परिणाम है। इस प्रकार शब्द-अर्थ-ज्ञान तीनों ही परस्पर नितान्त भिन्न हैं। इन विद्यमान विकल्पों, भेदों की मिश्रित, अभिन्न एक ही रूप में प्रतीति होना सविकल्प संप्रज्ञात समाधि है। इसी को सविकल्प संप्रज्ञात समापत्ति कहते हैं।

वृत्तिः—श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यः स्फोटरूपो वा शब्दः, अर्थो जात्यादिः, ज्ञानं सत्त्वप्रधाना बुद्धिवृत्तिः, विकल्प उक्तलक्षणः, तैः सङ्कीर्णा; यस्याम् एते शब्दादयस्त्रयः परस्पराध्यासेन[1] विकल्परूपेण प्रतिभासन्ते गौरिति शब्दो गौरित्यर्थो गौरिति ज्ञानम् इत्यनेनाकारेण सा सवितर्का समापत्तिरुच्यते ॥ ४० ॥

श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यः = श्रोत्रेन्द्रिय कर्ण के द्वारा ग्रहण किया जाने वाला। वा = अथवा। स्फोटरूपः = स्फोट, ध्वनिरूप। शब्दः = शब्द है। जात्यादिः = सास्नादिमत् गोत्व जाति वाला। अर्थः = पदार्थ है। सत्त्वप्रधाना = सत्त्वगुण विशिष्ट, बहुल। बुद्धिवृत्तिः = बुद्धि, चित्त की वृत्ति, विषयाकाराकारित चित्त-वृत्ति। ज्ञानं = ज्ञान है। विकल्पः = विकल्प। उक्तलक्षणः = १।९ में कहे गये लक्षण वाला है। तैः = शब्द-अर्थ-ज्ञान उन सबसे। संकीर्णा = संकीर्ण सम्मिश्रित, मिली हुई, एक रूप सी। यस्यां = जिसमें। एते = ये। शब्दादयः = शब्द इत्यादि अर्थात् शब्द-अर्थ-ज्ञान। त्रयः = तीनों ही। परस्पराध्यासेन = परस्पर अध्यास रूप से, मिले हुये से। विकल्परूपेण = विकल्प रूप से। प्रतिभासन्ते = प्रतीत होते हैं। गौः इति = गौ यह। शब्दः = श्रोत्रगृहीत शब्द है। गौः इति = गौ यह। अर्थः = सास्नादियुक्त पदार्थ है। गौः इति = गौ यह। ज्ञानं = विषयाकाराकारित चित्तवृत्ति ज्ञान है। इति = इस रूप से। अनेन = इस विकल्प, मिश्रित रूप से। आकारेण = आकार से जहाँ पर प्रतीति होती है। सा = वह। समापत्तिः = समाधि। सवितर्का = सवितर्क, वितर्कानुगत। उच्यते = कही जाती है ॥ ४२ ॥

---

१. परस्पराध्यासेन प्रतिभासन्ते (पा०)।

उक्तलक्षणविपरीतां निर्वितर्कामाह—

उक्तलक्षणविपरीतां = कहे गये सवितर्क समापत्ति के लक्षण से भिन्न स्वरूप वाली। निर्वितर्कां = निर्वितर्क समापत्ति को। आह = कहते हैं।

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवाऽर्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥४३॥

अर्थः—**स्मृतिपरिशुद्धौ** = स्मृति की परिशुद्धि, निवृत्ति, लोप हो जाने पर। स्वरूपशून्या = अपने **स्वरूप** से शून्य, ज्ञान से भी रहित चित्तवृत्ति। एव =ही। अर्थमात्रनिर्भासा=केवल ध्येय पदार्थ को ही प्रकाशित करने वाली। निर्वितर्का= निर्वितर्क समापत्ति होती है अर्थात् स्मृति का अभाव हो जाने से तथा अपने स्वरूप का भी ज्ञान न **रखने** वाली चित्तवृत्ति जब वितर्कों से रहित केवल ध्येय पदार्थ का ही **ज्ञान प्रदान** करती है, तब उसे निर्वितर्क संप्रज्ञात समाधि कहते हैं।

वृत्तिः—शब्दार्थस्मृतिप्रविलये सति प्रत्युदितस्पष्टग्राह्याकारप्रतिभासि[1]तया न्यग्भूतज्ञानांशत्वेन स्वरूपशून्येव निर्वितर्का समापत्तिः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थस्मृतिप्रविलये सति = शब्द एवं उसके अर्थ की स्मृति का लोप, अभाव हो जाने पर। न्यग्भूतज्ञानांशत्वेन = ज्ञान अंश के न्यून हो जाने से। स्वरूपशून्या इव = अपने स्वरूप की भी प्रतीति न कराने वाली चित्तवृत्ति। प्रत्युदितस्पष्टग्राह्याकारप्रतिभासितया = उत्पन्न हुई ग्राह्य, ध्येय विषय के स्वरूप को सुस्पष्टरूप से प्रकाशित करने वाली चित्तवृत्ति। निर्वितर्का = निर्वितर्क। समापत्तिः = समाधि है। बुद्धि में केवल ध्येय विषय का ही शेष रहना निर्वितर्क संप्रज्ञात समाधि है॥ ४३ ॥

भेदान्तरं प्रतिपादयितुमाह—

भेदान्तरं = समापत्ति के दूसरे भेद का। प्रतिपादयितुं = प्रतिपादन, वर्णन के लिये। आह = कहते हैं।

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥४४॥

---

१. प्रतिभासिततया (पा०)।

अर्थ:—एतया एव = इसी सवितर्क एवं निर्वितर्क समापत्ति के वर्णन से। सूक्ष्मविषया = सूक्ष्म विषय संबन्धी, सूक्ष्म तन्मात्राओं एवं अन्तःकरण संबन्धी। सविचारा = सविचार, विचारानुगत समापत्ति। च = और। निर्विचारा = निर्विचार समापत्ति का। व्याख्याता = व्याख्यान, वर्णन किया गया अर्थात् जैसे स्थूल महाभूतों एवं इन्द्रियों के विषय में शब्द-अर्थ-ज्ञान रूप विकल्पों को ग्रहण करने वाली समापत्ति सवितर्क तथा इन वितर्कों से रहित केवल ध्येय पदार्थ को ही ग्रहण करने वाली समापत्ति निर्वितर्क है। उसी प्रकार सूक्ष्म तन्मत्राओं एवं अन्तःकरण के संबन्ध में देश-काल-धर्म सहित की गई समापत्ति सविचार एवं इन धर्मों से रहित केवल तन्मात्रा तथा अन्तःकरणरूप सूक्ष्मविषयक समापत्ति निर्विचार है।

वृत्तिः—एतयैव सवितर्कया निर्वितर्कया च समापत्त्या सविचारा निर्विचारा च व्याख्याता; कीदृशी ? सूक्ष्मविषया—सूक्ष्मः तन्मात्रेन्द्रियादिर्विषयो यस्याः सा तथोक्ता।

एतेन पूर्वस्याः स्थूलविषयत्वं प्रतिपादितं भवति। सा हि महाभूतेन्द्रियालम्बना[1], शब्दार्थविषयत्वेन शब्दार्थविकल्पसहितत्वेन देशकालधर्माद्यवच्छिन्नः सूक्ष्मोऽर्थः प्रतिभाति यस्यां सा सविचारा। देशकालधर्मादिरहितो धर्मि[2]मात्रतया सूक्ष्मार्थस्तन्मात्रेन्द्रियरूपः प्रतिभाति यस्यां सा निर्विचारा ॥ ४४ ॥

एतया = इस। एव = ही। सवितर्कया = सवितर्क। च = और। निर्वितर्कया = निर्वितर्क। समापत्त्या = समापत्ति के द्वारा। सविचारा = सविचार। च = और। निर्विचारा = निर्विचार समापत्ति की। व्याख्याता = व्याख्या की गई। कीदृशी = किस प्रकार की। सूक्ष्मविषया = सूक्ष्मविषय वाली अर्थात्। सूक्ष्मः = सूक्ष्म। तन्मात्रेन्द्रियादिः = तन्मात्रा एवं इन्द्रिय इत्यादि हैं। विषयः = विषय। यस्याः = जिस समापत्ति के। सा=वह समापत्ति। तथा = उस प्रकार से। उक्ता = कही गई है। एतेन = इसके द्वारा। पूर्वस्याः = पहले की, सवितर्क तथा निर्वितर्क। स्थूलविषयत्वं = स्थूल विषय वाली का। प्रतिपादितं =

---

१. महाभूतालम्बना (पा०)।

२. धर्ममात्रतया (पा०)।

प्रतिपादन, वर्णन। भवति = होता है। सा हि = वह तो। महाभूतेन्द्रियालम्बना = महाभूतों तथा इन्द्रियों का आलम्बन ग्रहण करने वाली, विषय बनाने वाली। शब्दार्थविषयत्वेन = शब्द एवं उसके अर्थ रूप विषय से। शब्दार्थविकल्पसहितत्वेन = शब्द, अर्थ इत्यादि विकल्पों, विचारों सहित। देशकालधर्माद्यवच्छिन्नः = देश, काल, धर्म इत्यादि से अवच्छिन्न, युक्त, संबद्ध, सहित। सूक्ष्मः = सूक्ष्म। अर्थः = अर्थ, पदार्थ। यस्यां = जिस समापत्ति में। प्रतिभाति= प्रकाशित, ज्ञात होता है। सा = वह। सविचारा = सविचार समापत्ति, विचारानुगत समाधि है। देशकालधर्मादिरहितः = देश, काल, धर्म इत्यादि से रहित। धर्मिमात्रतया = केवल धर्मी रूप से। तन्मात्रेन्द्रियरूपः = तन्मात्रा तथा इन्द्रिय रूप। सूक्ष्मार्थः = सूक्ष्म अर्थ, पदार्थ। यस्यां = जिस समापत्ति में। प्रतिभाति = प्रकाशित होता है। सा = वह। निर्विचार = निर्विचार समापत्ति है। तन्मात्रा, इन्द्रिय इत्यादि सूक्ष्म विषयों में देश, काल, धर्म आदि का ज्ञान कराने वाली समापत्ति सविचार एवं इन धर्मों, विकल्पों से रहित शुद्ध, केवल धर्मी का ही ज्ञान प्रदान कराने वाली समापत्ति निर्विचार है ॥ ४४ ॥

अस्या एव सूक्ष्मविषयायाः किम्पर्यन्तः सूक्ष्मविषय इत्याह—

अस्याः = इस। सूक्ष्मविषयायाः = सूक्ष्म विषयों वाली सविचार एवं निर्विचार समापत्ति के। एव = ही। सूक्ष्मविषयः = सूक्ष्म विषय। किंपर्य्यन्तः = कहाँ तक, किस सीमा तक है। इति = इसीको। आह = कहते हैं।

सूक्ष्मविषयत्वञ्चालिङ्गपर्य्यवसानम् ॥ ४५ ॥

अर्थः—च = और। सूक्ष्मविषयत्वं = सूक्ष्म विषयता, विषय की सूक्ष्मता। अलिङ्गपर्य्यवसानं = अलिङ्ग पर्यन्त, प्रकृति तक है अर्थात् सविचार एवं निर्विचार समापत्तियों के विषय की परम सूक्ष्मता अलिङ्ग, विलय को न प्राप्त होने वाली प्रकृति ही है। प्रकृति से सूक्ष्म कोई भी पदार्थ नहीं है। उसका लय भी किसी में नहीं होता। सभी कार्यों की वही मूल है। पृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाश रूप पञ्च स्थूल महाभूतों का लय क्रमशः गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्द रूप पञ्च तन्मात्राओं में, इन्द्रिय सहित पञ्च तन्मात्राओं का लय अहंकार में, अहंकार का लय महत्तत्त्व बुद्धि में और बुद्धि का लय प्रकृति में होता है। प्रकृति का

विलय किसी में भी नहीं होता। अतः वह अलिङ्ग, सबका मूल एवं सूक्ष्मतम है। प्रकृति की सूक्ष्मता के सम्बन्ध में श्रुति कहती है—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥ कठ १।३।१०-११। अतः

प्रकृति पर्यन्त किसी भी सूक्ष्म पदार्थ को विषय बनाकर की गई समापत्ति को सविचार तथा निर्विचार समझना चाहिये।

वृत्तिः—सविचार-निर्विचारयोः समापत्त्योर्यत् सूक्ष्मविषयत्वमुक्तं तदलिङ्ग-पर्य्यवसानं न क्वचिल्लीयते न वा किञ्चित् लिङ्गति गमयतीत्यलिङ्गं प्रधानं, तत्पर्य्यन्तं सूक्ष्मविषयत्वम्। तथा हि—गुणानां परिणामे चत्वारि पर्वाणि—विशिष्टलिङ्गम्, अविशिष्टलिङ्गं, लिङ्गमात्रम्, अलिङ्गं चेति। विशिष्टलिङ्गं भूतेन्द्रियाणि[1], अविशिष्टलिङ्गं तन्मात्रान्तःकरणानि, लिङ्गमात्रं बुद्धिः, अलिङ्गं प्रधानमिति नातः परं सूक्ष्ममस्तीत्युक्तं भवति॥ ४५॥

सविचारनिर्विचारयोः = सविचार एवं निर्विचार। समापत्त्योः = समापत्तियों के। यत् = जो। सूक्ष्मविषयत्वं = सूक्ष्म विषय। उक्तं = कहे गये हैं। तद् = वह विषय की सूक्ष्मता। अलिङ्गपर्य्यवसानं = अलिङ्ग, प्रकृति तक अन्त होने वाला है अर्थात् सूक्ष्म विषयों की चरम काष्ठा प्रकृति ही है। न = नहीं। क्वचित्=किसी में। लीयते = लीन होती है। वा = अथवा। न = नहीं। किञ्चित् = किसी छिपे हुये, अन्तर्हित पदार्थ का। लिङ्गति = ज्ञान कराती हैं, हेतु बनती है अर्थात्। गमयति = ज्ञान प्रदान करती है। इति = इसीलिये। अलिङ्गः = प्रकृति का नाम अलिङ्ग है (न लीनमर्थं गमयतीति) अर्थात्। प्रधानं= इसी प्रकृति को प्रधान कहते हैं। तत्पर्य्यन्तं = उसी प्रकृति पर्यन्त ही। सूक्ष्म-विषयत्वं = विषयों की सूक्ष्मता है। तथाहि = जैसे कि। गुणानां = गुणों के। परिणामे=परिणाम में। चत्वारि=चार। पर्वाणि=भाग होते हैं। विशिष्टलिङ्गं= १-विशिष्टलिङ्ग। अविशिष्टलिङ्गं=२-अविशिष्टलिङ्ग। लिङ्गमात्र=३-लिङ्गमात्र।

---

१. भूतानि, अविशिष्टलिङ्गं तन्मात्रेन्द्रियाणि (पा०)।

च=और । अलिङ्गं= ४-अलिङ्ग । इति = इस रूप से चार भेद होते हैं । विशिष्टलिङ्गं = विशिष्टलिङ्ग । भूतेन्द्रियाणि = पञ्च स्थूल महाभूत तथा इन्द्रियाँ हैं । अविशिष्टलिङ्गं = अविशिष्ट लिङ्ग । तन्मात्रान्तःकरणानि = पञ्च सूक्ष्म तन्मात्रायें एवं अन्तःकरण हैं । लिङ्गमात्रं = लिङ्गमात्र, केवल लिङ्गरूप । बुद्धिः = बुद्धि है । अलिङ्गं = अलिङ्ग । प्रधानं = प्रधान, प्रकृति है । इति = इस रूप से चार भेद हैं । अतः = इस प्रकृति से । परं = बढ़कर, अधिक । सूक्ष्मं = सूक्ष्म । कोई भी पदार्थ । न = नहीं । अस्ति = है । इति उक्तं भवति = यही अभिप्राय है । प्रकृति ही सूक्ष्मतम है ॥ ४५ ॥

एतासां समापत्तीनां प्रकृते प्रयोजनमाह—

प्रकृते = प्रकृत विषय में, समाधि के सम्बन्ध में । एतासां = इन चारों । समापत्तीनां = सवितर्क-निर्वितर्क-सविचार-निर्विचार समापत्तियों का । प्रयोजनं= प्रयोजन, उद्देश्य, उपयोगिता को । आह = कहते हैं ।

ता एव सबीजः समाधिः ॥ ४६ ॥

अर्थः—ताः = वही सवितर्क-नितितर्क-सविचार-निर्विचार समापत्तियाँ । एव = ही । सबीजः = सबीज, संप्रज्ञात । समाधिः = समाधि हैं । चित्त में किसी न किसी ध्येय पदार्थ के विद्यमान होने के कारण ये चारों ही समापत्तियाँ सबीज समाधि हैं ।

वृत्तिः—ता एव उक्तलक्षणाः समापत्तयः, सबीजः सह बीजेनालम्बनेन वर्त्तत इति सबीजः सम्प्रज्ञातः समाधिरित्युच्यते, सर्वासां सालम्बनत्वात् ॥ ४६ ॥

ताः एव = वहीं । उक्तलक्षणाः = लक्षण कही गई, वर्णन की गई । समापत्तयः = सवितर्क-निर्वितर्क-सविचार-निर्विचार समापत्तियाँ । सबीजः = सबीज अर्थात् । बीजेन सह = बीज, ध्येय पदार्थ के साथ । आलम्बनेन = आलम्बन, आश्रय के साथ । वर्त्तते = विद्यमान हैं । इति = इसलिये । सबीजः = सबीज, बीज, ध्येय सहित । संप्रज्ञातः = संप्रज्ञात । समाधिः = समाधि । इति = इस नाम, रूप से । उच्यते = कही जाती है । सर्वासां = सभी चारों समापत्तियों का । सालम्बनत्वात् = आलम्बन, आश्रय, ध्येय सहित होने के कारण अर्थात इन

चारों समापत्तियों में ध्यातव्य विषय विद्यमान रहता है। अतः इन सभी को सबीज अथवा संप्रज्ञात समाधि कहते हैं ॥ ४६ ॥

अथेतरासां समापत्तीनां निर्विचारफलत्वाद् निर्विचारायाः फलमाह—

अथ = अब। इतरासां = अन्य तीन। समापत्तीनां = सवितर्क-निर्वितर्क-सविचार समापत्तियों का। निर्विचारफलत्वात् = निर्विचार समापत्ति फल होने के कारण अर्थात् अवितर्क इत्यादि की क्रमशः परिणति निर्विचार समापत्ति में होने के कारण। निर्विचारायाः = निर्विचार समापत्ति के। फलं = फल को। आह = कहते हैं।

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ ४७ ॥

अर्थः—निर्विचारवैशारद्ये = निर्विचार समापत्ति के वैशारद्य अर्थात् रजोगुण एवं तमोगुण रूप कलुष के दूर हो जाने पर, उद्भूत सत्त्व गुण के उत्कर्ष के कारण बुद्धि के विमल, स्वच्छ हो जाने पर। अध्यात्मप्रसादः = अध्यात्म, आत्मा की प्रसन्नता होती है। निर्विचार समाधि के अभ्यास से चित्त से समस्त दोष दूर होकर केवल सत्त्वगुण, प्रकाश की स्थिति हो जाती है। आत्मा प्रसन्न हो जाती है तथा सभी विषयों का यथार्थ ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

वृत्तिः—निर्विचारत्वं व्याख्यातं (१।४४), वैशारद्यं नैर्मल्यं, सवितर्कां स्थूलविषयामपेक्ष्य निर्वितर्कायाः प्राधान्यं, ततोऽपि सूक्ष्मविषयायाः सविचारायाः, ततोऽपि निर्विचारायाः, तस्यास्तु निर्विकल्परूपायाः प्रकृष्टाभ्यासवशाद्वैशारद्ये नैर्मल्ये सत्यध्यात्मप्रसादः समुपजायते। चित्तं क्लेशवासनारहितं स्थितिप्रवाहयोग्यं भवति। एतदेव चित्तस्य वैशारद्यं यत् स्थितौ दार्ढ्यम् ॥ ४७ ॥

निर्विचारत्वं = निर्विचार समापत्ति का। व्याख्यातं = १।४४ में व्याख्यान, वर्णन किया गया। वैशारद्यं = वैशारद्य का अभिप्राय है। नैर्मल्यं = निर्मलता, बुद्धि की स्वच्छता। स्थूलविषयां = पञ्च महाभूत एवं इन्द्रिय रूप स्थूल विषय वाली। सवितर्कां = सवितर्क समाधि की। अपेक्ष्य = अपेक्षा, तुलना में। निर्वितर्कायाः = निर्वितर्क समाधि की। प्राधान्यं = प्रधानता, महत्त्व है। ततः अपि = उस निर्वितर्क समाधि की अपेक्षा से भी। सूक्ष्मविषयायाः = पञ्च तन्मात्रा अन्तःकरण रूप सूक्ष्म विषयों वाली। सविचारायाः = सविचार समापत्ति की

विशेषता, प्रधानता है। ततः अपि = उस सविचार समापत्ति की अपेक्षा से भी। निर्विचारायाः = निर्विचार समापत्ति की प्रधानता, श्रेष्ठता है। तस्याः तु = और उस। निर्विकल्परूपायाः = निर्विकल्प रूप निर्विचार समापत्ति के। प्रकृष्टाभ्यासवशात् = अतिशय, अत्यधिक अभ्यास के द्वारा। वैशारद्ये = वैशारद्य अर्थात्। नैर्मल्ये सति = अत्यन्त निर्मल, समस्त दोषों के दूर हो जाने पर, सत्त्वगुण की प्रबलता से विमलता की प्राप्ति होने पर। अध्यात्मप्रसादः = अध्यात्म का प्रसाद, आत्मा की प्रसन्नता। समुपजायते = उत्पन्न होती है। क्लेशवासनाओं का लोप हो जाने पर। चित्तं = चित्त। स्थितिप्रवाहयोग्यं = स्थिर प्रवाह के योग्य, एकाग्र। भवति = होता है। एतत् = यह। एव = ही। चित्तस्य = चित्त, बुद्धि की। वैशारद्यं = विशदता, विमलता है। यत् = जो, कि। स्थितौ = स्थिरता, एकाग्रता में। दार्ढ्यं = चित्त की दृढ़ता होती है ॥ ४७ ॥

तस्मिन् सति किं भवतीत्याह—

तस्मिन् सति = उस चित्त को वैशारद्य की सिद्धि हो जाने पर। किं = पश्चात् क्या। भवति = होता है, किस फल की प्राप्ति होती है। इति = इसी को। आह = कहते हैं।

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ॥ ४८ ॥

अर्थः—तत्र = उस समय, निर्विचार समापत्ति के अत्यन्त निर्मल हो जाने पर। प्रज्ञा = साधक, योगी की प्रज्ञा, बुद्धि। ऋतम्भरा = ऋत, सत्य, यथार्थ को धारण करने वाली होती हैं अर्थात् संशय, विपर्यय इत्यादि समस्त दोषों से रहित बुद्धि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करने वाली होती है। अतीत-वर्तमान-अनागत, दूरस्थ, निकटस्थ, अन्तर्हित, व्यवहित, स्थूल, सूक्ष्म सभी पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को ग्रहण करने वाली प्रज्ञा ही ऋतम्भरा है।

वृत्तिः—ऋतं सत्यं बिभर्त्ति कदाचिदपि न विपर्ययेणाच्छाद्यते सा ऋतम्भरा प्रज्ञा तस्मिन् भवतीत्यर्थः। तस्माच्च प्रज्ञालोकात् सर्वं यथावत् पश्यन् योगी प्रकृष्टं योगं प्राप्नोति ॥ ४८ ॥

जो प्रज्ञा । ऋतं = ऋत अर्थात् । सत्यं = सत्य को । बिभर्त्ति = धारण करती हैं । कदाचित् = कभी । अपि = भी । विपर्य्ययेण = विपर्यय, मिथ्या ज्ञान द्वारा । न = नहीं । आच्छाद्यते = आवृत्त, ढकी जाती है । सा = वह । ऋतम्भरा प्रज्ञा = ऋतम्भरा नाम की प्रज्ञा, वस्तु के यथार्थ, सत्यभूत स्वरूप को प्रकाशित करने वाली बुद्धि । तस्मिन् = उस चित्त के, निर्विचार समापत्ति के निर्मल हो जाने पर । भवति = उद्भूत, उत्पन्न होती है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है । च = और । तस्मात् = उस । प्रज्ञालोकात् = ऋतम्भरा प्रज्ञा के आलोक, प्रकाश से । सर्वं = अतीत-वर्तमान-अनागत, दूरस्थ, निकटस्थ, अन्तर्हित, व्यवहित, स्थूल, सूक्ष्म सभी पदार्थों को । यथावत् = यथार्थरूप से, भली भाँति, स्वरूपतः । पश्यन् = देखता हुआ । योगी = योगी । प्रकृष्टं = अत्यन्त उत्कृष्ट, श्रेष्ठ । योगं = योग को । प्राप्नोति=प्राप्त करता है । ऋतम्भरा प्रज्ञा से योगी सभी वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप का दर्शन करता है और इस प्रकार उसे योग की सिद्धि होती है ॥ ४८ ॥

अस्याः प्रज्ञान्तराद्वैलक्षण्यमाह—

अस्याः = इस ऋतम्भरा प्रज्ञा की । प्रज्ञा अन्तरात्=अन्य प्रज्ञा, बुद्धि से । वैलक्षण्यं = विलक्षणता, भेद को । आह = कहते हैं । ऋतम्भरा प्रज्ञा की उद्भूति निर्विचार समापत्ति की अत्यन्त निर्मलता के पश्चात् होती है । अतः सफल दोष से विनिर्मुक्त होने के कारण यह प्रज्ञा वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करने वाली होती है । इसके द्वारा अतीत-वर्तमान-अनागत, परोक्ष-अपरोक्ष, स्थूल-सूक्ष्म, व्यक्त-अनभिव्यक्त सभी पदार्थों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है । किंतु सामान्य प्रज्ञा का स्वरूप भिन्न होता है । अतः उसका वर्णन करते हैं ।

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया[1] विशेषार्थत्वात् ॥ ४९ ॥

अर्थः—श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यां=आप्तश्रुति, वेदशास्त्रों के वाक्यों से तथा अनुमान, हेतु के ज्ञान से उत्पन्न होने के कारण दोनों ही प्रज्ञायें अर्थात् श्रुतिजन्य तथा अनुमानजन्य दोनों ही प्रज्ञायें, बुद्धियाँ । सामान्य-विषया=सामान्य विषय वाली हैं, वस्तु के सामान्य स्वरूप का ज्ञान प्रदान

---

१. केषुचिद् वृत्तिसंस्करणेषु 'प्रज्ञाभ्यां सामान्यविषया' इति सूत्रपाठो दृश्यते; पाठोऽयमसमीचीनः ।

कराने वाली हैं। आगम एवं अनुमान प्रमाण से पदार्थ के सामान्य, साधारण स्वरूप का ही ज्ञान होता है, विशिष्ट का नहीं। किंतु। विशेषार्थत्वात् = ऋतम्भरा प्रज्ञा विशेष अर्थ वाली होने के कारण सामान्य प्रज्ञा से भिन्न है अर्थात् इस प्रज्ञा के द्वारा भूत-वर्तमान-भविष्य, विप्रकृष्ट, समीपस्थ, परोक्ष, अपरोक्ष, स्थूल, सूक्ष्म सभी पदार्थों का विशिष्ट, यथार्थ ज्ञान होता है। विशेष का ज्ञान कराने के कारण ही यह ऋतम्भरा प्रज्ञा अन्य श्रुतिजन्य तथा अनुमानजन्य प्रज्ञाओं से भिन्न एवं श्रेष्ठ है।

वृत्तिः—श्रुतमागमज्ञानम्, अनुमानमुक्तलक्षणं (१।७); ताभ्यां या जायते प्रज्ञा सा सामान्यविषया। न हि शब्दलिङ्गयोरिन्द्रियवद्विशेषप्रतिपत्तौ सामर्थ्यम्, इयं पुनर्निर्विचारवैशारद्यसमुद्भवा प्रज्ञा ताभ्यां विलक्षणा, विशेषविषयत्वात्; अस्यां हि प्रज्ञायां सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्टानामपि विशेषः स्फुटेनैव रूपेण भासते; अतस्तस्यामेव योगिना परः प्रयत्नः कर्त्तव्य इत्युपदिष्टं भवति ॥४९॥

आगमज्ञानं = आगम ज्ञान, वेदशास्त्रों से उत्पन्न ज्ञान को। श्रुतं =श्रुत कहते हैं। उक्तलक्षणं = १।७ में कहे गये लक्षण वाला। अनुमानं = अनुमान है। ताभ्यां = आगम तथा अनुमान उन दोनों से। या = जो। प्रज्ञा = बुद्धि। जायते = उत्पन्न होती है। सा = वह। सामान्यविषया = सामान्य विषय वाली होती है वस्तु के सामान्य स्वरूप का ज्ञान कराने वाली होती है। हि = क्योंकि। शब्दलिङ्गयोः = शब्द एवं हेतु की अर्थात् आगम एवं अनुमान प्रमाण की। इन्द्रियवत् = इन्द्रियों के समान अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण की तरह। विशेषप्रतिपत्तौ= विशेष ज्ञान में, वस्तु के विशिष्ट स्वरूप को ग्रहण करने में। न = नहीं। सामर्थ्यं = सामर्थ्य, शक्ति है। निर्विचारवैशारद्यसमुद्भवा = निर्विचार समापत्ति की निर्मलता से उत्पन्न होने वाली। इयं पुनः प्रज्ञा = यह ऋतम्भरा प्रज्ञा तो। ताभ्यां = आगमजन्य तथा अनुमानजन्य उन दोनों बुद्धियों से। विलक्षणा = विलक्षण, भिन्न स्वरूप वाली है। विशेषविषयत्वात् = विशेष विषय वाली होने के कारण अर्थात् वस्तु के विशिष्ट स्वरूप का ज्ञान कराने के कारण। हि = क्योंकि। अस्यां = इसी। प्रज्ञायां = ऋतम्भरा प्रज्ञा में। सूक्ष्म-व्यवहितविप्रकृष्टानां = सूक्ष्म, व्यवधानयुक्त, छिपे हुये तथा दूरस्थ वस्तुओं का। अपि = भी।

विशेषः = विशेष स्वरूप । स्फुटेन रूपेण = अत्यन्त सुस्पष्ट रूप से । एव = ही । भासते = प्रकाशित होता है, ज्ञात होता है । अतः = इसलिये । तस्यां = उस ऋतम्भरा प्रज्ञा में । एव = ही । योगिना = योगी के द्वारा । परः = परम, अत्यधिक । प्रयत्नः = प्रयास । कर्त्तव्यः = करना चाहिए । इति = इसलिये । उपदिष्टं भवति = यह उपदेश दिया गया । सर्व साधिका, असंप्रज्ञात समाधि को सिद्ध करने वाली ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति के लिये योगी को प्रयास करना चाहिये, यही उपदेश का अभिप्राय है ।। ४९ ।।

अस्याः प्रज्ञायाः फलमाह—

अस्याः = इस । प्रज्ञायाः = ऋतम्भरा प्रज्ञा के । फलं = फल को । आह = कहते हैं ।

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ।। ५० ।।

अर्थः—तत् = उस ऋतम्भरा प्रज्ञा से । जः=उत्पन्न होने वाले । संस्कारः= संस्कार । अन्यसंस्कारप्रतिबन्धी = अन्य संस्कारों के बाधक, दूर करने वाले, विनाश करने वाले होते हैं अर्थात् निर्विचार समापत्ति से उद्भूत ऋतम्भरा प्रज्ञा के संस्कार अति प्रबल होने के कारण चित्त में विद्यमान अन्य सभी संस्कारों का विनाश कर देते हैं ।

वृत्तिः—तया प्रज्ञया जनितो यः संस्कारः सोऽन्यान् संस्कारान् व्युत्थानजान् समाधि-जाँश्च संस्कारान् प्रतिबध्नाति स्वकार्य्यकरणाक्षमान् करोतीत्यर्थः; यतस्त-त्त्वरूपतयाऽनया जनिताः संस्कारा बलवत्त्वादतत्त्वरूपप्रज्ञाजनितान् संस्कारान् बाधितुं शक्नुवन्ति; अतस्तामेवं प्रज्ञामभ्यसेदित्युक्तं भवति ।। ५० ।।

तया = उस । प्रज्ञया = ऋतम्भरा प्रज्ञा से । जनित = उत्पन्न हुआ । यः = जो । संकारः = संस्कार है । सः = वह । अन्यान् = चित्त में विद्यमान अन्य, दूसरे । संस्कारान् = संस्कारों को । व्युत्थानजान् = चित्त के व्युत्थान, विक्षेप से उत्पन्न हुये । च = और । समाधिजान् = संप्रज्ञात समाधि से उत्पन्न हुये । संस्कारान् = संस्कारों को । प्रतिबध्नाति = रोकता है, बाधित कर देता है अर्थात् । स्वकार्य्यकरणाक्षमान् = उनको अपना कार्य करने में असमर्थ, शक्ति-हीन । करोति = कर देता है, बना दता है अर्थात ऋतम्भरा प्रज्ञाजन्य संस्कार

अन्य संस्कारों को फल की उत्पत्ति में निर्बल बना देता है। इति अर्थः = यही अभिप्राय है। यतः = क्योंकि। तत्त्वरूपतया = तत्त्वस्वरूप, वस्तु के यथार्थ स्वरूप को ग्रहण करने वाली। अनया = इस ऋतम्भरा प्रज्ञा से। जनिताः = उत्पन्न हुये। संस्काराः = संस्कार। बलवत्त्वात् = अत्यन्त प्रबल होने के कारण। अतत्त्वरूपप्रज्ञाजनितान् = अतत्त्वस्वरूपप्रज्ञा, वस्तु के यथार्थ स्वरूप को न ग्रहण करने वाली, विपर्यय, संशययुक्त प्रज्ञा से उत्पन्न हुये। संकारान् = संस्कारों को। बाधितुं = बाधित, विनष्ट करने में। शक्नुवन्ति = समर्थ होते हैं। अतः = इसलिए। तां = उस। प्रज्ञां = ऋतम्भरा प्रज्ञा का। एव = ही। अभ्यसेत् = अभ्यास करना चाहिये। इति उक्तं भवति = यह अभिप्राय है ॥ ५० ॥

एव सम्प्रज्ञातसमाधिमभिधायासम्प्रज्ञातं वक्तुमाह—

एवं = इस प्रकार। संप्रज्ञातसमाधि = संप्रज्ञात समाधि को। अभिधाय = कहकर, वर्णन करके। असंप्रज्ञातं = असंप्रज्ञात समाधि को। वक्तुं = कहने के लिये, वर्णन करने के विचार से। आह = कहते हैं।

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥ ५१ ॥

अर्थः—तस्य = उस संप्रज्ञात समाधि का। अपि = भी। निरोधे = निरोध हो जाने पर अर्थात् कारण में लय को प्राप्त हो जाने पर। सर्वनिरोधात् = सभी प्रकार के संस्कारों का सम्यक् निरोध, पूर्ण रूप से अभाव हो जाने पर। निर्बीजः = निर्बीज, असंप्रज्ञात। समाधिः = समाधि होती है। सभी संस्कारों का पूर्ण रूप से अभाव हो जाने पर, बीजविहीन, संस्काररहित निर्बीज समाधि होती है, यही असंप्रज्ञातसमाधि है। इसी से कैवल्य, अपवर्ग की प्राप्ति होती है।

वृत्तिः—तस्यापि सम्प्रज्ञातस्य निरोधे विलये सति सर्वासां चित्तवृत्तीनां कारणे प्रविलयाद् या या संस्कारमात्राद्वृत्तिरुदेति, तस्यां 'नेति नेति' केवलं पर्युदसनान्निर्बीजः समाधिर्भवति[1] यस्मिन् सति पुरुषः स्वरूपनिष्ठः शुद्धो भवति ॥ ५१ ॥

---

१. समाधिराविर्भवति (पा०)।

तस्य = उस। संप्रज्ञातस्य = संप्रज्ञात के। अपि = भी अर्थात् संप्रज्ञात समाधि के संस्कारों का भी। निरोधे = निरोध अर्थात्। विलये सति = अपने कारण में लीन हो जाने पर। सर्वासां = सभी। चित्तवृत्तीनां = चित्त की वृत्तियों का। कारणे = अपने कारण में। प्रविलयात् = विलय हो जाने से अर्थात्। या या = जो जो। वृत्तिः = वृत्ति। संस्कारमात्रात् = संस्कार मात्र से। उदेति = उत्पन्न होती है। तस्यां = उसमें, उस वृत्ति के संबन्ध में। न इति न इति = यह वृत्ति अपना स्वरूप नहीं है, अपना स्वरूप नहीं हैं, इस रूप से। केवलं = केवल। पर्य्युदसनात् = त्याग करने से, दूर करने से। निर्बीजः = संस्कार रहित। समाधिः = समाधि। भवति = होती है। यस्मिन् सति = जिसकी सिद्धि हो जाने पर अर्थात् समस्त संस्कार निरोध रूप निर्बीज समाधि में। पुरुषः = पुरुष योगी। स्वरूपनिष्ठः = अपने ही स्वरूप में स्थित होने वाला। शुद्धः = शुद्ध, केवल, चिन्मात्र। भवति = होता है अर्थात् पुरुष अपने ही स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यही कैवल्यदशा है॥ ५१॥

तदत्राधिकृतस्य योगस्य लक्षणं चित्तवृत्तिनिरोधपदानां व्याख्यानम्, अभ्यास-वैराग्यलक्षणस्योपायद्वयस्य स्वरूपं भेदञ्चाभिधाय, सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातभेदेन योगस्य मुख्यामुख्यभेदमुक्त्वा, योगाभ्यासप्रदर्शनपूर्वकं विस्तारेणोपायान् प्रदर्श्य सुगमो-पायप्रदर्शनपरतया ईश्वरस्य स्वरूप-प्रमाण-प्रभाववाचकोपासनानि तत्फलानि च निर्णीय, चित्तविक्षेपान् तत्सहभुवश्च दुःखादीन् विस्तरेण च तत्प्रतिषेधो-पायानेकतत्त्वाभ्यास-मैत्र्यादिप्राणायामादीन् सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातपूर्वाङ्गभूतविषयवती प्रवृत्तिरित्यादीनाख्यायोपसंहारद्वारेण च समापत्ति[1] लक्षणफलसहितां स्वस्वविषय-सहितां[2] चोक्त्वा सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातयोरुपसंहारमभिधाय सबीजपूर्वकनिर्बीजसमा-धिरभिहित इति व्याकृतो योगपादः।

तत् = इस प्रकार। अत्र = इस समाधि पाद में। अधिकृतस्य = प्रारम्भ किये गये। योगस्य = योग का। लक्षणं = लक्षण, स्वरूप। चित्तवृत्तिनिरोध-

---

१. समापत्तीः सलक्षणाः सफलाः (पा०)।

२. सहिताश्चोक्त्वा (पा०)।

पदानां = चित्त की वृत्तियों का निरोध एवं उनके भेदों का । व्याख्यानं = व्याख्यान, वर्णन । अभ्यासवैराग्यलक्षणस्य = अभ्यास तथा वैराग्य रूप वाले । उपायद्वयस्य = दो उपायों का अर्थात् चित्तवृत्तियों के निरोध के दो उपाय अभ्यास और वैराग्य का । स्वरूपं = स्वरूप, लक्षण । च = और । भेदं = भेद, प्रकार को । अभिधाय = कहकर, बतला कर । संप्रज्ञातासंप्रज्ञातभेदेन = संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात भेद से । योगस्य = योग के । मुख्यामुख्यभेदं = प्रधान एवं गौण भेद को । उक्त्वा = कहकर । योगाभ्यासप्रदर्शनपूर्वकं = योग के अभ्यास प्रदर्शन पूर्वक, योग के अभ्यास के लिये । विस्तारेण = विस्तार के साथ । उपायान् = उपायों, साधनों को । प्रदर्श्य = दिखलाकर, वर्णन करके । सुगमोपायप्रदर्शनपरतया = सुगम, सरल उपाय को बतलाने के विचार से । ईश्वरस्य = ईश्वर के । स्वरूपप्रमाणप्रभाववाचकोपासनानि = स्वरूप, लक्षण, प्रमाण, सिद्धि के हेतु, ऐश्वर्य, महिमा, वाचक, अभिधान, नाम तथा उपासना, उपासना के स्वरूप को । च = और । तत्फलानि = उनके फलों का । निर्णीय = निर्णय, वर्णन करके । चित्तविक्षेपान् = चित्त के व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद इत्यादि नव विक्षेपों को : च = और । तत्तत्सहभुवः = उन्हीं उन्हीं विक्षेपों के साथ होने वाले । दुःखादीन् = दुख, दौर्मनस्य इत्यादि विघ्नों की । विस्तरेण = विस्तार पूर्वक । च = और । तत्प्रतिषेधोपायान् = उन विक्षेपों एवं विघ्नों के निषेध, दूर करने वाले उपायों को । एकतत्त्वाभ्यासमैत्र्यादिप्राणायामादीन् = एक ही तत्त्व का अभ्यास करना, मैत्री, करुणा, मुदिता आदि तथा प्राणायाम इत्यादि उपायों को । संप्रज्ञातासंप्रज्ञातपूर्वाङ्गभूतविषयवती = संप्रज्ञात एवं असंप्रज्ञात के पूर्व अङ्ग के रूप में विद्यमान । प्रवृत्तिः = प्रवृत्ति । इत्यादीन् = इत्यादि को । आख्याय = कहकर वर्णन करके । च = और । उपसंहारद्वारेण = उपसंहार के रूप में । लक्षणफलसहितां = लक्षण एवं फल के साथ । समापत्ति = समापत्ति को । च = और । स्वस्वविषयसहितां = अपने अपने विषय के साथ । उक्त्वा = कहकर अर्थात् समापत्तियों के लक्षण, फल एवं विषय का निरूपण करके । संप्रज्ञातासंप्रज्ञातयोः = संप्रज्ञात एवं असंप्रज्ञात दोनों समाधियों के । उपसंहारं = उपसंहार को । अभिधाय = कह करके । सबीजपूर्वकनिर्बीजसमाधिः = सबीज समाधि पूर्वक निर्बीज समाधि, सबीज समाधि की सिद्धि के

पश्चात् ही निर्बीज समाधि की सिद्धि होती है। अभिहितः = कही गई, निर्बीज समाधि का वर्णन किया गया। इति = इस प्रकार से। योगपादः = योगपाद, समाधिपाद का। व्याकृतः = व्याख्यान, वर्णन किया गया॥ १॥

इति धारेश्वर[1]-भोजदेवविरचितायां राजमार्त्तण्डाभिधायां पातञ्जलवृत्तौ समाधिपादः[2]॥ १॥

* इति समाधिपादः *

---

१. महाराजाधिराजभोजदेव (पा०)।

२. योगाख्यः प्रथमः पादः (पा०)।

अथ साधनपादः

ते ते दुष्प्रापयोगर्द्धि-सिद्धयो येन दर्शिताः ।
उपायाः स जगन्नाथस्त्र्यक्षोऽस्तु प्रार्थिताप्तये ॥

तदेवं प्रथमे पादे समाहितचित्तस्य सोपायं योगम् अभिधाय व्युत्थितचित्तस्यापि कथमुपायाभ्यासपूर्वको योगः स्वास्थ्य[1]मुपयातीति तत्साधनानुष्ठानप्रतिपादनाय क्रियायोगमाह—

तदेवं = इस प्रकार से । प्रथमे = प्रथम । पादे = समाधि पाद में । समाहितचित्तस्य = एकाग्र चित्त का अर्थात् एकाग्र चित्त वाले पुरुष के लिये । सोपायं = उपाय साधन सहित । योगं = योग को । अभिधाय = कह करके, वर्णन करके । व्युत्थितचित्तस्य = व्युत्थान, विक्षेप युक्त चित्त वाले पुरुष के लिये । अपि = भी । कथं = किस प्रकार । उपायाभ्यासपूर्वकः = उपायों के अभ्यास से, साधनों के सेवन से । योगः = योग । स्वास्थ्यं = स्वस्थता, सिद्धि को । उपयाति = प्राप्त होता है । इति = इस विचार से । तत्साधनानुष्ठानप्रतिपादनाय = उस योग की सिद्धि के उपाय एवं अभ्यास का वर्णन करने के लिये । क्रियायोगं = क्रियायोग को । आह = कहते हैं अर्थात् प्रथम समाधि पाद में एकाग्र चित्त वाले पुरुष के लिये योगसिद्धि के उपायों का वर्णन किया गया । इस द्वितीय साधन पाद में सामान्य, विक्षिप्त चित्त वाले पुरुष के लिये योगप्राप्ति के उपायों का वर्णन किया जाता है ।

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ १ ॥

अर्थः—तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि = तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान भक्तिविशेष, शरणागति, सभी कर्मफलों की समर्पण बुद्धि ही । क्रियायोगः = क्रियायोग है । ये क्रियायें योग की सिद्धि में साधन हैं, अतएव इनको क्रियायोग अथवा कर्मयोग कहते हैं ।

---

१. सात्म्यम् (पा०) ।

वृत्तिः—तपः शास्त्रान्तरोपदिष्टं कृच्छ्रचान्द्रायणादि,[1] स्वाध्यायः प्रणवपूर्वाणां मंत्राणां जपः, ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां तस्मिन् परमगुरौ फलनिरपेक्षतया समर्पणम्। एतानि क्रियायोग इत्युच्यते ॥ १ ॥

शास्त्रान्तरोपदिष्टं = दूसरे शास्त्रों में वर्णन किये गये। चान्द्रायणादि = चान्द्रायण इत्यादि। तपः=तप हैं। प्रणवपूर्वाणां = प्रणवपूर्वक, ओंकार के साथ। मन्त्राणां = मन्त्रों का। जपः = जप, पाठ करना। स्वाध्यायः = स्वाध्याय है। सर्वक्रियाणां = सभी कर्मों का। फलनिरपेक्षतया = फल की अभिलाषा, कामना न रखते हुए। तस्मिन् = उस। परमगुरौ = सर्वश्रेष्ठ गुरु, ईश्वर में। समर्पणं= समर्पित करना। ईश्वरप्रणिधानं = ईश्वरप्रणिधान है। एतानि = इन्हीं तप, स्वाध्याय, ईश्वरसमर्पणबुद्धि को। क्रियायोगः = क्रियायोग, कर्मयोग। इति = इस रूप से। उच्यते = कहते हैं ॥ १ ॥

स किमर्थमित्याह—

सः = वह क्रियायोग। किम् अर्थं = किस प्रयोजन, उद्देश्य की सिद्धि के लिये है। इति = इस प्रयोजन को। आह = कहते हैं।

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥

अर्थः—वह क्रियायोग। समाधिभावनार्थः = समाधि की सिद्धि के लिये। च = तथा। क्लेशतनूकरणार्थः = क्लेशों को तनु, क्षीण, दुर्बल करने के लिए होता है अर्थात् तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधानरूप क्रियायोग के अभ्यास से समाधि की सिद्धि तथा अविद्या-अस्मिता इत्यादि क्लेशों का अभाव होता है।

वृत्तिः—क्लेशा वक्ष्यमाणाः, तेषां तनूकरणं स्वकार्यकरणप्रतिबन्धः, समाधिरुक्तलक्षणः (१।१९), तस्य भावना चेतसि पुनः पुनर्निवेशनं, सा अर्थः प्रयोजनं यस्य स तथोक्तः। एतदुक्तं भवति—एते तपःप्रभृतयोऽभ्यस्यमानाश्चित्तगतान् अविद्यादीन् क्लेशान् शिथिलीकुर्वन्तः समाधेरुपकारकतां भजन्ते; तस्मात् प्रथमं क्रियायोगविधानपरेण[2] योगिना भवितव्यमित्युपदिष्टम् ॥ २ ॥

---

१. चान्द्रायणादि (पा०)।

२. प्रथमतः क्रियायोगावधानपरेण (पा०)।

वक्ष्यमाणाः = आगे वर्णन किये जाने वाले। क्लेशाः = क्लेश हैं। तेषां = उन्हीं क्लेशों का। तनूकरणं = तनु क्षीण करना अर्थात्। स्वकार्यकरणप्रतिबन्धः = उन क्लेशों के अपने कार्यकरण का अवरोध अर्थात् फल उत्पादकत्व को नष्ट कर देना ही तनूकरण है। समाधिः = समाधि। उक्तलक्षणः = १।१७ में कहे गये लक्षण वाली है। तस्य = उसी समाधि की। भावना = ध्यान, चिन्तन अर्थात्। चेतसि = चित्त में। पुनः पुनः = बार-बार। निवेशनं = प्रवेश करना। सा = वही भावना। अर्थः = अर्थ अर्थात्। प्रयोजनं = प्रयोजन, उद्देश्य है। यस्य = जिसका। सः = वह। तथोक्तः = उस प्रकार से कहा गया है अर्थात् समाधि की भावना क्रियायोग का उद्देश्य है। इसीलिये सूत्र में 'समाधिभावनार्थः' कहा गया है। एतद् उक्तं भवति = यह अभिप्राय है। अभ्यस्यमानाः = अभ्यास किये गये। एते = ये। तपःप्रभृतयः = तप इत्यादि, तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधान। चित्तगतान् = चित्त में विद्यमान रहने वाले। अविद्यादीन् = अविद्या इत्यादि अर्थात् अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश। क्लेशान् = क्लेशों को। शिथिलीकुर्वन्तः = शिथिल, क्षीण करते हुए। समाधेः = समाधि की। उपकारकतां = उपकारिता, उपयोगिता को। भजन्ते = प्राप्त होते हैं। तस्मात् = इसलिये। प्रथमं = सबसे पहले। क्रियायोगविधानपरेण = क्रियायोग के विधानपूर्वक, क्रियायोग के अभ्यास द्वारा। योगिना = योगी के द्वारा। भवितव्यं = होना चाहिये अर्थात् योगी को क्रियायोग का अभ्यास करना चाहिये। इति = इस विचार से। उपदिष्टं = क्रियायोग का उपदेश, वर्णन किया गया है ॥ २ ॥

क्लेशतनूकरणार्थ इत्युक्तं, तत्र के क्लेशा इत्याह—

क्लेशतनूकरणार्थः = क्लेशों को क्षीण करने के लिये। इति उक्तं = क्रियायोग को कहा गया। तत्र = उस सम्बन्ध में। के = कौन। क्लेशाः = क्लेश हैं। इति = इसी को। आह = कहते हैं।

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः[1] ॥ ३ ॥

अर्थः—अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः = अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश (पञ्चविध)। क्लेशाः = क्लेश होते हैं।

---

१. पञ्च क्लेशाः (पा०)।

वृत्तिः—अविद्यादयो वक्ष्यमाणलक्षणाः पञ्च, ते बाधनालक्षणं परितापमुपजनयन्तः क्लेशशब्दवाच्या भवन्ति; ते हि चेतसि प्रवर्त्तमानाः संस्कारलक्षणं[1] गुणपरिणामं द्रढयन्ति ॥ ३ ॥

वक्ष्यमाणलक्षणाः = आगे लक्षण कहे जाने वाले, वर्णन किये जाने वाले। अविद्यादयः = अविद्या इत्यादि। पञ्च = पाँच हैं। ते = वे अविद्या आदि पाँचों। बाधनालक्षणं = बाधा पहुँचाने वाले, पीड़ा स्वरूप। परितापं=परिताप, दुःख को। उपजनयन्तः = उत्पन्न करते हुये। क्लेशशब्दवाच्याः = क्लेश शब्द से वाच्य। भवन्ति = होते हैं अर्थात् क्लेश नाम से कहे जाते हैं। हि=क्योंकि। ते = वे पञ्च क्लेश। चेतसि = चित्त में। प्रवर्त्तमानाः = विद्यमान रहते हुये। संस्कारलक्षणं = संस्कार, वासना रूप। गुणपरिणामं = गुणों के परिणाम को। द्रढयन्ति=दृढ़ करते हैं, स्थिर बनाते हैं ॥ ३ ॥

सत्यपि सर्वेषां तुल्यक्लेशत्वे मूलभूतत्वादविद्यायाः प्राधान्यं प्रतिपादयितुमाह—

सर्वेषां = सभी में। तुल्यक्लेशत्वे = क्लेशों के समान। सति = होने पर। अपि = भी। मूलभूतत्वात् = मूल, प्रमुख कारण होने से। अविद्यायाः = अविद्या की। प्राधान्यं = प्रधानता, मुख्यता का। प्रतिपादयितुं = प्रतिपादन, वर्णन करने के लिये। आह = कहते हैं।

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥

अर्थः—प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणां = प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न एवं उदार नामक चार अवस्थाओं में रहने वाले। उत्तरेषां = उत्तर, बाद की अर्थात् बाद में निरूपण, वर्णन की जाने वाली अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश नाम वाले उत्तर के चार क्लेशों का। अविद्या = अविद्या नामक प्रथम क्लेश। क्षेत्रं= क्षेत्र, प्रसवभूमि, मूल कारण है अर्थात् अविद्या ही अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का मूल कारण है। इन चारों ही की प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न तथा उदार चार अवस्थायें हैं। यह चतुर्विध अवस्था अविद्या की नहीं है। अविद्या तो सभी का मूल है और उसके अभाव होने पर सभी का अभाव हो जाता है।

---

१. संसारलक्षणं (पा०)।

वृत्तिः—अविद्या मोहः, अनात्मन्यात्माभिमान इति यावत्, सा क्षेत्रं प्रसवभूमिः उत्तरेषाम् अस्मितादीनां प्रत्येकं प्रसुप्त-तन्वादिभेदेन चतुर्विधानाम्; अतो यत्राविद्या विपर्य्ययज्ञानरूपा शिथिली भवति, तत्र क्लेशानाम् अस्मितादीनां नोद्भवो दृश्यते, विपर्य्ययज्ञानसद्भावे च तेषामुद्भवदर्शनात स्थितमेव मूलत्वमविद्यायाः ।

प्रसुप्त-तनु-विच्छिन्नोदाराणामिति । तत्र ये क्लेशाश्चित्तभूमौ स्थिताः प्रबोधकाभावे स्वकार्य्यं नारभन्ते, ते प्रसुप्ता इत्युच्यन्ते । यथा बालावस्थायां बालस्य हि वासनारूपाः स्थिताः अपि क्लेशाः प्रबोधकसहकार्य्यभावे नाभिव्यज्यन्ते ।

तनवो ये स्वस्वप्रतिपक्षभावनया शिथिलीकृतकार्य्यसम्पादनशक्तयो वासनाऽवशेषतया चेतस्यवस्थिताः प्रभूतां सामग्रीमन्तरेण स्वकार्य्यमारब्धुमक्षमाः, यथाभ्यासवतो योगिनः ।

ते विच्छिन्ना ये न केनचिद् बलवता क्लेशेनाभिभूतशक्तयस्तिष्ठन्ति । यथा द्वेषावस्थायां रागः, रागावस्थायां वा द्वेषः, न ह्यनयोः परस्परविद्धयोर्युगपत् सम्भवोऽस्ति ।

उदारा ये प्राप्तसहकारिसन्निधयः स्वं स्वं कार्य्यमभिनिर्वर्त्तयन्ति, यथा सदैव योगपरिपन्थिनः ।

व्युत्थानदशायाम् एषां प्रत्येकं चतुर्विधानामपि मूलभूतत्वेन स्थिताऽप्यविद्या अन्वयित्वेन प्रतीयते; न हि क्वचिदपि क्लेशानां विपर्य्ययान्वयनिरपेक्षाणां स्वरूपमुपलभ्यते; तस्मात्[1] मिथ्याज्ञानरूपायाम्[2] अविद्यायां सम्यग्ज्ञानेन निवर्त्तितायां दग्धबीजकल्पानाम् एषां न क्वचित् प्ररोहोऽस्ति; अतोऽविद्यानिमित्तत्वमविद्यान्वयश्चैतेषां निश्चीयते; अतः सर्वेऽपि अविद्याव्यपदेशभाजः । सर्वेषां च क्लेशानां चित्तविक्षेपकारित्वाद् योगिना प्रथममेव तदुच्छेदे यत्नः कार्य्य इति ॥ ४ ॥

अविद्या = अविद्या । मोहः = मोह, अज्ञान है । अनातमनि = अनात्म वस्तु

१. तस्यां च (पा०) ।

२. मिथ्यारूपायाम् (पा०) ।

में। आत्माभिमानः = आत्मा का अभिमान होना, आत्मभिन्न वस्तु को ही आत्मा मान लेना। इति यावत् = यही रूप अविद्या का है। सा = वही अविद्या। क्षेत्रं = क्षेत्र अर्थात्। प्रसवभूमिः = उत्पत्ति स्थान, मूल कारण है। उत्तरेषां = सूत्र में बाद में निरूपण किये जाने वाले। अस्मितादीनां = अस्मिता इत्यादि का अर्थात् अविद्या ही अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश का मूल कारण है। प्रत्येकं = अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश प्रत्येक। प्रसुप्ततन्वादि-भेदेन = प्रसुप्त, तनु आदि (विच्छिन्न, उदार) भेद से। चतुर्विधानां = चार प्रकारों, अवस्था वालों का (अविद्या ही मूल कारण है)। अतः = इसलिये। यत्र = जिस समय, जिस पुरुष में। विपर्य्ययरूपा = मिथ्या ज्ञान वाली। अविद्या = अविद्या। शिथिली भवति = शिथिल हो जाती है। तत्र = उस समय, उस पुरुष में। अस्मितादीनां = अस्मिता इत्यादि। क्लेशानां = क्लेशों की। उद्भवः = उत्पत्ति। न = नहीं। दृश्यते = देखी जाती है। च = और। प्रसुप्त-तनुविच्छिन्नोदाराणामिति = प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न उदार रूप अवस्थाओं वाले। तेषां = उन अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश चारों क्लेशों की। उद्भव-दर्शनात् = उत्पत्ति दिखलाई पड़ने के कारण। अविद्यायाः = अविद्या का। मूलत्वं = सभी का मूल कारण होना। स्थितमेव = सुदृढ़, सिद्ध होता ही है। तत्र = उन चारों अवस्थाओं में। ये = जो। क्लेशाः = क्लेश। चित्तभूमौ = चित्त की भूमि में। स्थिताः = विद्यमान हैं। प्रबोधकाभावे = प्रबोधक, उद्दीप्त, उद्बुद्ध करने वाले कारणों के अभाव में। स्वकार्य्यं = अपने कार्य को। न = नहीं। आरभन्ते = प्रारम्भ करते हैं। ते = वे क्लेश। प्रसुप्ताः = प्रसुप्त अवस्था वाले हैं। इति = इस रूप से। उच्यन्ते = कहे जाते हैं। यथा = जैसे। बाला-वस्थायां = बाल्यावस्था, शैशव काल में। बालस्य हि = बालक के ही। वासना-रूपाः = वासना, संस्काररूप से। स्थिताः = विद्यमान रहते हुये। अपि = भी। क्लेशाः = क्लेश—अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश। प्रबोधकसहकार्य्यभावे = प्रबुद्ध, जगाने वाले सहकारी कारण के अभाव में। न = नहीं। अभिव्यज्यन्ते = अभिव्यक्त होते हैं अर्थात् शैशव अवस्था में शिशु में अस्मिता आदि क्लेश विद्यमान रहते हैं। परन्तु सहकारी कारण के बिना वे व्यक्त नहीं होते हैं। इन्हीं क्लेशों को प्रसुप्त कहते हैं। तनवः = वे क्लेश तनु हैं। ये = जो।

स्वस्वप्रतिपक्षभावनया = अपनी-अपनी प्रतिकूल भावना के द्वारा, प्रतिकूल भावनाओं के चिन्तन द्वारा। शिथिलीकृतकार्य्यसंपादनशक्तयः = कार्य को उत्पन्न करने वाली शक्ति के शिथिल, क्षीण हो जाने वाले। वासनाऽवशेषतया = केवल वासना रूप से शेष बचे हुये। चेतसि = चित्त में। अवस्थिताः = विद्यमान रहने वाले। प्रभूतां = अत्यधिक, पर्याप्त। सामग्रीं = सामग्री, सहकारी कारण के। अन्तरेण = बिना। स्वकार्य्यं = अपने कार्य को। आरब्धुं = आरम्भ करने में। अक्षमाः = असमर्थ रहते हैं। यथा = जैसे। अभ्यासवतः = अभ्यास, प्रतिकूल भावना का चिन्तन करने वाले। योगिनः = योगी का अर्थात् प्रतिकूल भावना के सदैव चिन्तन से जो क्लेश केवल वासना रूप ही शेष रह जाते हैं और अपना कार्य उत्पन्न करने में असमर्थ होते हैं उनको तनु क्लेश कहते हैं। ते = वे क्लेश। विच्छिन्नाः = विच्छन्न दशा वाले हैं। ये = जो। केनचिद् = किसी। बलवता = बलवान्, शक्तिशाली। क्लेशेन = दूसरे क्लेश से। अभिभूतशक्तयः = अभिभूत की गई शक्ति वाले होकर, अन्य बलवान् क्लेश से दबाये जाकर। तिष्ठन्ति = चित्त में विद्यमान रहते हैं। यथा = जैसे। द्वेषावस्थायां = द्वेष की अवस्था में। रागः = (द्वेष से अभिभूत) राग चित्त में रहता है। वा = अथवा। रागावस्थायां = राग की दशा में। द्वेषः = (राग से अभिभूत) द्वेष चित्त में विद्यमान रहता है। हि = क्योंकि। अनयोः = इन दोनों। परस्परविरुद्धयोः = परस्पर विलोम धर्म वाले क्लेशों की। युगपत् = एक साथ, एक ही समय में। सम्भवः = उत्पत्ति, स्थिति। न = नहीं। अस्ति = है। एक ही काल में विपरीत धर्म वाले क्लेशों की स्थिति नहीं हो सकती। उदाराः = वे क्लेश उदार कहे जाते हैं। ये = जो। प्राप्तसहकारिसन्निधयः = (उद्बुद्ध करने वाले) सहकारी कारण के संसर्ग, सम्बन्ध को प्राप्त करने वाले, सहायक कारण के सम्पर्क को प्राप्त करके। स्वं स्वं = अपने अपने। कार्य्यं = कार्य में। अभिनिर्वर्त्तयन्ति = प्रवृत्त होते हैं। यथा = जैसे। सदैव = सदा ही। योगपरिपन्थिनः = योग सिद्धि के विघ्न, बाधायें हैं। व्युत्थानदशायां = व्युत्थान की दशा में। एषां = इन। चतुर्विधानां = चारों ही प्रकार की प्रसुप्त-तनु-विच्छिन्न-उदार अवस्था वाले। प्रत्येकं = अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश प्रत्येक क्लेशों का। अपि = भी। मूलभूतत्वेन = मूलरूप, कारण रूप से। स्थिता = स्थित,

विद्यमान होने पर । अपि = भी । अविद्या = अविद्या । अन्वयित्वेन = अन्वय रूप से । प्रतीयते = प्रतीत होती है । अर्थात् अविद्या ही सभी क्लेशों का मूल है एवं सभी अवस्थाओं में उनका शेष चारों क्लेशों के साथ सम्बन्ध रहता ही है । हि = क्योंकि । क्वचित् = कहीं पर । अपि = भी । विपर्य्ययान्वयनिरपेक्षाणां = विपर्यय, अविद्या के सम्बन्ध की अपेक्षा न रखने वाले, अविद्या के सम्बन्ध के बिना । क्लेशानां = अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश क्लेशों का । स्वरूपं = स्वरूप, स्थिति । न = नहीं । उपलभ्यते = प्राप्त होती है । तस्मात्= इसलिये । मिथ्याज्ञानरूपायां = मिथ्या ज्ञान स्वरूप । अविद्यायां = अविद्या का । सम्यग्ज्ञानेन = सम्यक् ज्ञान, तत्त्व ज्ञान द्वारा । निर्वर्त्तितायां = निराकरण, अभाव हो जाने पर । दग्धबीजकल्पानां = भस्म हुए बीज के समान । एषां = इन अस्मिता आदि क्लेशों का । क्वचित् = कहीं पर । प्ररोहः = अंकुर । न = नहीं । अस्ति = है अर्थात् कारण बीज के भस्म हो जाने पर उसका कार्य अंकुर नहीं उत्पन्न होता, वैसे ही कारणरूपा अविद्या के नष्ट हो जाने पर उसके कार्य अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश रूप चारों क्लेशों का स्वतः ही पूर्ण अभाव हो जाता है । अतः = इस लिये । एतेषां = इन अस्मिता आदि क्लेशों का । अविद्यानिमित्तत्वं = अविद्या के निमित्त, अविद्या से उत्पन्न होना । च = और । अविद्यान्वयत्वं = अविद्या के साथ अन्वय । निश्चीयते = निश्चित होता है अर्थात् क्लेशों का निमित्त, मूल कारण अविद्या है तथा क्लेशों का अविद्या के साथ अन्वय सम्बन्ध है—तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम् । अतः = इसलिये । सर्वेऽपि = सभी अस्मिता-राग-द्वेग-अभिनिवेशचतुर्विध क्लेश । अविद्याव्यपदेशभाजः = अविद्या नाम के भागी हैं अर्थात् सभी क्लेशों को अविद्या नाम से ही कहा जाता हैं । च = और । सर्वेषां = सभी । क्लेशानां = अविद्या आदि पञ्च क्लेशों का चित्तविक्षेपकारित्वाद् = चित्त में विक्षेप उत्पन्न करने के कारण । योगिना = योगी के के द्वारा । प्रथममेव = सबसे पहले । तद्=उन्हीं क्लेशों के । उच्छेदे = विनाश में, विनाश के लिये । यत्नः = प्रयास । कार्य्यः = करना चाहिये । इति = यह अभिप्राय है । क्लेश ही चित्त में विक्षेप उत्पन्न करने वाले होते हैं । अतः सर्वप्रथम साधना, अभ्यास द्वारा इन्हीं क्लेशों का समूल विनाश करना चाहिये ।। ४ ।।

अविद्यालक्षणमाह—

अविद्यालक्षणं = अविद्या के स्वरूप को। आह=कहते हैं।

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचि-
सुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ५ ॥

अर्थः—अनित्याशुचिदुःखानात्मसु = अनित्य, नश्वर, विनाशशील, अपवित्र, दुःखमय एवं अनात्म वस्तुओं में। नित्यशुचिसुखात्मख्यातिः = नित्य, पवित्र सुखस्वरूप एवं आत्मरूप ज्ञान, बुद्धि होना ही। अविद्या = अविद्या है अर्थात् प्रपञ्चात्मक, विनाशशील जगत् को नित्य मानना, अस्थिस्नायुमज्जा इत्यादि से निर्मित अपवित्र शरीर को पवित्र मानना, दुःखमय भोगों को सुखस्वरूप समझना तथा आत्मा से भिन्न, अचेतन नश्वर शरीर; इन्द्रिय इत्यादि को आत्मा मान लेना ही अविद्या है।

वृत्तिः—अतस्मिंस्तत्प्रतिभासोऽविद्येत्यविद्यायाः सामान्यलक्षणम्; तस्या एव भेदप्रतिपादनम्—अनित्येषु घटादिषु नित्यत्वाभिमानोऽविद्येत्युच्यते। एवमशुचिषु कायादिषु शुचित्वाभिमानः, दुःखेषु विषयेषु सुखाभिमानः[1]; अनात्मशरीरे आत्माभिमानः।[2] एतेनापुण्ये पुण्यभ्रमोऽनर्थेऽर्थभ्रमो व्याख्यातः॥ ५ ॥

अतस्मिन् = अयथार्थ में, वस्तु का जो अपना स्वरूप ही नहीं है, जो धर्म उसमें विद्यमान नहीं है। तत्प्रतिभासः = उसी के समान, यथार्थ रूप में उन्हीं धर्मों की प्रतीति, ज्ञान होना ही। अविद्या = अविद्या है। इति = इस रूप से, यह। अविद्यायाः = अविद्या का। सामान्यलक्षणं = सामान्य लक्षण, स्वरूप है। तस्याः = उसी अविद्या का। एव=ही। भेदप्रतिपादनं = प्रस्तुत सूत्र में भेद का प्रतिपादन, वर्णन किया गया है। अनित्येषु = अनित्य, विनाशशील। घटादिषु= घट इत्यादि पदार्थों में। नित्यत्वाभिमानः = नित्यत्व का अभिमान, नित्य का ज्ञान ही। अविद्या = अविद्या। इति = इस रूप से। उच्यते = कही जाती है। एवं=इसी प्रकार से। अशुचिषु = अपवित्र। कायादिषु = शरीर इत्यादि में। शुचित्वाभिमानः = पवित्रता का अभिमान ही अविद्या है। दुःखेषु = दुःख प्रदान

१. सुखत्वाभिमानः (पा०)।
२. आत्मत्वाभिमानः (पा०)।

करने वाले । विषयेषु = विषयों में । सुखाभिमानः = सुख का अभिमान, सुख की प्रतीति करना ही अविद्या है । अनात्मशरीरे = आत्मा से भिन्न अचेतन पाञ्च-भौतिक शरीर में, जो शरीर आत्मा नहीं है, उसमें । आत्माभिमानः = आत्मा का अभिमान, मान लेना ही अविद्या है । एतेन = इस उदाहरण के द्वारा । अपुण्ये = अपुण्य, पापरूप कर्मों में । पुण्यभ्रमः = पुण्य का भ्रम, पुण्य रूप समझना । अनर्थे = अनर्थ, अयथार्थ में । अर्थभ्रमः = अर्थ का भ्रम, यथार्थ का ज्ञान होना ही अविद्या है । व्याख्यातः = व्याख्यान, कथन किया गया, अर्थात् इनको भी अविद्या समझना चाहिये ॥ ५ ॥

अस्मितां लक्षयितुमाह—

अस्मितां = अस्मिता का । लक्षयितुं = लक्षण बतलाने के लिये । आह = कहते हैं ।

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥

अर्थः— दृग्दर्शनशक्त्योः = दृक् शक्ति एवं दर्शन शक्ति का । एकात्मता = एक स्वरूप, अभिन्न होना । इव = सा, समान, ही । अस्मिता = अस्मिता नामक क्लेश है अर्थात दृक् शक्ति पुरुष शुद्ध, चेतन, अपरिणामी, त्रिगुणातीत, निष्क्रिय एवं भोक्तृत्व की योग्यता से युक्त है तथा दर्शन शक्ति बुद्धि अचेतन, परिणामी, त्रिगुणात्मिका सक्रिय एवं भोग्य है । इस प्रकार पुरुष एवं बुद्धि परस्पर अत्यन्त विलक्षण, भिन्न हैं । फिर भी इनमें जो एकरूपता, अभिन्नता की प्रतीति होती है, इसी को अस्मिता नामक क्लेश कहते हैं । विवेकख्याति से दोनों के यथार्थ स्वरूप की उपलब्धि हो जाती है ।

वृत्तिः—दृक्शक्तिः पुरुषः, दर्शनशक्तिः रजस्तमोभ्यामनभिभूतः सात्त्विकः परिणामोऽन्तःकरणरूपः, अनयोर्भोक्तृ-भोग्यत्वेन अजड-जडत्वेनात्यन्तभिन्नरूप-योरेकताभिमानोऽस्मितेत्युच्यते । यथा प्रकृतिर्वस्तुतः कर्तृत्वभोक्तृत्वरहितापि कर्त्र्यहमित्यभिमन्यते,[२] सोऽयमस्मिताख्यो विपर्य्यासः क्लेशः ॥ ६ ॥

---

१. भोक्त्र्यहम् (पा०) ।

२. यथा प्रकृतिवता कर्तृत्वरहितेनापि कर्त्ताहमित्यभिमन्यते (पा०) ।

दृक्शक्तिः = दृक् शक्ति । पुरुषः = पुरुष है अर्थात् पुरुष द्रष्टा है । दर्शन-शक्तिः = दर्शन शक्ति । रजस्तमोभ्यां = रजोगुण एवं तमो गुण से । अनभिभूतः= अभिभूत न किया गया, न दबाया गया । अन्तःकरणरूपः = अन्तःकरणस्वरूप, बुद्धिरूपी । सात्त्विकः = सत्त्वगुण बहुल । परिणामः = परिणाम है अर्थात् सत्त्वगुण विशिष्ट बुद्धि ही दर्शन शक्ति है । भोक्तृभोग्यत्वेन = भोक्ता एवं भोग्य रूप से । अजडजडत्वेन = चेतन एवं अचेतन रूप से । अत्यन्तभिन्नरूपयोः सर्वथा विलक्षण स्वरूप वाले । अनयोः = इन्हीं पुरुष तथा बुद्धि में । एकताभिमानः = एकरूपता, अभिन्नता का अभिमान, प्रतीति ही । अस्मिता = अस्मिता । इति = इस नाम वाला क्लेश । उच्यते = कहा जाता है । यथा = जैसे । प्रकृतिः[1] = प्रकृति, स्वभाव रूप । वस्तुतः = वास्तविक रूप में पुरुष । कर्तृत्वभोक्तृत्वरहि-तापि = कर्ता एवं भोक्ता न रहने पर भी । भोक्ता = भोक्ता । अहं = मैं हूँ । इति=इस रूप से । अभिमन्यते = अभिमान करता है, समझता है अर्थात् स्वभावतः पुरुष शुद्ध, उदासीन, असङ्ग होने से कर्ता, भोक्ता नहीं है, फिर भी अविद्यावशात् प्रकृति से सम्बन्ध को प्राप्त कर वह कर्ता, भोक्ता होने का अभिमान करता है । सः = वही । अयं = यह । अस्मिताख्यः = अस्मिता नाम का । विपर्यासः = विपर्यय, अविद्या रूप । क्लेशः = क्लेश हैं । अविद्या निमित्त होने से यही अस्मिता नामक क्लेश है ।।६।।

रागस्य लक्षणमाह—

रागस्य = राग नामक क्लेश के । लक्षणं = लक्षण को । आह = कहते हैं ।

सुखानुशयी रागः ।। ७ ।।

अर्थः—सुखानुशयी = सुख अनुभव के पश्चात् होने वाली अभिलाषा ही । रागः = राग है अर्थात् किसी पदार्थ के सुखभोग के बाद उसे ही प्राप्त करने की

---

१. प्रकृतिवता कर्तृत्वरहितेनापि (पाठभेद) = कर्ता न होने पर भी पुरुष अविद्या के कारण प्रकृति से सम्बन्ध प्राप्त करके अपने को कर्ता तथा कर्मों के फलों का भोक्ता मानने लगता है ।

जो चित्त में अभिलाषा, अनुरक्ति, आसक्ति होती है, उसे ही राग नामक क्लेश कहते हैं।

वृत्तिः—सुखमनुशेत इति सुखानुशयी, सुखज्ञस्य सुखानुस्मृतिपूर्वकः सुखसाधनेषु तृष्णारूपो गर्द्धो रागसंज्ञकः क्लेशः ॥ ७ ॥

सुखं = सुखपूर्वक। अनुशेते = पश्चात् शयन करती है। अर्थात् सुख अनुभव के पश्चात् जो वासना पुरुष, भोक्ता, अनुभवकर्ता के चित्त में शयन करती है, विद्यमान रहती है, उसी वासना को। सुखानुशयी = सुखानुशयी कहते हैं अर्थात् सुखभोग के बाद चित्त में रहने वाली वासना। सुखज्ञस्य = सुख को जानने, अनुभव, भोग करने वाले पुरुष का। सुखानुस्मृतिपूर्वकः = सुख के स्मरण अनुभव के द्वारा। सुखसाधनेषु = सुख प्रदान करने वाले साधनों, विषयों में। तृष्णारूपः= तृष्णा, अभिलाषा रूपी। गर्द्धः = लोभ, इच्छा, प्राप्त करने की आकांक्षा ही। रागसंज्ञकः = राग नामक। क्लेशः = क्लेश है। ॥७॥

द्वेषलक्षणमाह—

द्वेषलक्षणं = द्वेष नामक क्लेश के लक्षण को। आह = बतलाते हैं।

दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ८ ॥

अर्थः—दुःखानुशयी = दुःख अनुभव के पश्चात् होने वाला क्रोध ही। द्वेषः= द्वेष नामक क्लेश है अर्थात् किसी पदार्थ के सम्बन्ध में दुःख भोग के बाद चित्त में उसके प्रतिकूल, निन्दात्मक क्रोध रूप भावना ही द्वेष है।

वृत्तिः—दुःखमुक्तलक्षणं, तदभिज्ञस्य तदनुस्मृतिपूर्वकं तत्साधनेषु अनभिलषतो[1] योऽयं निन्दात्मकः क्रोधः स द्वेषलक्षणः क्लेशः ॥ ८ ॥

दुःखं = दुःख। उक्तलक्षणं = पूर्व बतलाये गये स्वरूप वाला है। तद् = उस दुःख को। अभिज्ञस्य = जानने वाला, अनुभव करने वाले का। तत् = उसी दुःख की। अनुस्मृतिपूर्वकं = स्मरण के द्वारा। तत्साधनेषु = उस दुःख को प्रदान करने वाले साधनों, विषयों में। अनभिलषतः = अभिलाषा, प्राप्ति की इच्छा न करने

१. अनभिलष्यता योऽयं निरासो (पा०)।

वाले पुरुष का । यः = जो । अयं = यह । निन्दात्मकः = निन्दा स्वरूप वाला । क्रोधः = क्रोध है । सः = वही । द्वेषलक्षणः = द्वेषलक्षण, स्वरूप, नाम वाला । क्लेशः = क्लेश है ॥८॥

अभिनिवेशस्य लक्षणमाह—

अभिनिवेशस्य = अभिनिवेश नामक क्लेश के । लक्षणं = लक्षण को । आह= कहते हैं ।

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः[1] ॥ ९ ॥

अर्थः—स्वरसवाही = स्वभाव से ही सिद्ध, सहज रूप से प्राप्त । विदुषः = विद्वान् पुरुष के चित्त में । अपि = भी । तथा = उसी प्रकार, अज्ञानियों, मूर्खों की ही भाँति । रूढः = रूढ़, विद्यमान रहने वाला, व्याप्त करने वाला, मृत्यु का भय ही । अभिनिवेशः अभिनिवेश नामक क्लेश है अर्थात् जो परम्परा से स्वाभाविक रूप से ही सभी प्राणियों को समान रूप से होने वाला मृत्यु का भय है, वही अभिनिवेश है । यह मरण भय सभी जीवों में, विद्वान् मनुष्यों में भी पाया जाता है । इसीलिए यह स्वरसवाही, स्वभावसिद्ध है । पूर्वजन्म के अनुभवजन्य संस्कार से वहनशील, जन्य होने के कारण यह स्वरसवाही है ।

वृत्तिः—पूर्वजन्मानुभूतमरणदुःखानुभववासनाबलाद्भयरूपः समुपजायमानः शरीरविषयादिभिर्मम वियोगो मा भूदिति अन्वहमनुबन्धरूपः सर्वस्यैव आकृमेर्ब्रह्मपर्य्यन्तं निमित्तमन्तरेण प्रवर्त्तमानोऽभिनिवेशाख्यः क्लेशः ॥ ९ ॥

पूर्वजन्मानुभूतमरणदुःखानुभववासनाबलात् = पूर्व जन्म में अनुभव किये गये मृत्यु के दुःख के अनुभव, स्मरण की गई वासना के बल से अर्थात् पूर्व जन्म में मृत्यु के अवसर उसको असह्य दुःख का अनुभव होने से पुनः इस जन्म में उसी दुःख की अनुभूति, स्मृति होने से । भयरूपः = भय स्वरूप । समुपजायमानः = उत्पन्न होने वाला । शरीरविषयादिभिः = शरीर तथा सुख प्रदान करने वाले विषयों से । मम = मेरा । वियोगः = वियोग । मा = मत । भूत् = होवे । इति= इस रूप से । अन्वहम् = प्रतिदिन, सदैव । अनुबन्धरूपः अनुबन्धस्वरूप । सर्वस्य=

---

१. 'तन्वनुबन्धोऽभिनिवेशः' इति सूत्रपाठः केषुचित् संस्करणेषु दृश्यते । असमीचीनोऽयं पाठः ।

सभी प्राणियों के लिए । एव = ही । आकृमेः = कीट से लेकर । ब्रह्मपर्य्यन्तं = ब्रह्मा तक । अन्तरेण = बिना किसी अन्य । निमित्तं=कारण के ही । प्रवर्त्तमानः= प्रवृत्त होने वाला, सभी में व्याप्त रहने वाला । अभिनिवेशाख्यः = अभिनिवेश नाम का । क्लेशः = क्लेश है ॥९॥

तदेवं व्युत्थानस्य क्लेशात्मकत्वादेकाग्रताऽभ्यासकामेन प्रथमं क्लेशाः परिहर्त्तव्याः; न चाज्ञातानां तेषां परिहारः कर्त्तुं शक्य इति तज्ज्ञानाय तेषाम् उद्देशं लक्षणं क्षेत्रं विभागञ्चाभिधाय स्थूल-सूक्ष्मभेदभिन्नानां तेषां प्रहाणोपाय-विभागमाह—

तदेवं = इसी प्रकार । व्युत्थानस्य = व्युत्थान का । क्लेशात्मकत्वाद् = क्लेशरूप होने के कारण । एकाग्रताऽभ्यासकामेन = चित्त की एकाग्रता के अभ्यास की कामना, इच्छा करने वाले योगी के द्वारा । प्रथमं = सबसे पहले । क्लेशाः = क्लेशों का । परिहर्त्तव्याः = परिहार, विनाश करना चाहिये । च = और । अज्ञातानां = न जाने हुये, स्वरूप का ज्ञान न होने वाले । तेषां = उन क्लेशों का । परिहारः = निवारण, विनाश । कर्त्तुं = करना । न=नहीं । शक्यः = सम्भव है । इति = इसीलिये । तत् = उन क्लेशों के । ज्ञानाय = ज्ञान के लिये । तेषां = उन क्लेशों का । उद्देशं = उल्लेख, नाम कथन, वर्णन । लक्षणं = लक्षण, स्वरूप । क्षेत्रं = क्षेत्र । व्यापकता, विषय । च = और । विभागं = भेद, प्रकार को । अभिधाय = कहकर । स्थूलसूक्ष्मभेदभिन्नानां = स्थूल एवं सूक्ष्म भेद से पृथक् । तेषां = उन क्लेशों के । प्रहाणोपायविभागं = प्रहाण, त्याग, विनाश के उपाय, साधनों के भेद अर्थात् क्लेशों के परित्याग विनाश के विविध उपायों को । आह = कहते हैं ।

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥

अर्थः—ते = वे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश रूप पञ्चविध क्लेश । सूक्ष्माः = सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त हुए । प्रतिप्रसवहेयाः = प्रतिप्रसव, प्रतिकूल परिणाम द्वारा त्यागने योग्य हैं, परित्याग करना चाहिये अर्थात् तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधान रूप क्रियायोग के अभ्यास से क्षीण, सूक्ष्म किये गये,

दग्धबीजरूप पाँचों ही क्लेश असम्प्रज्ञातसमाधि के द्वारा विनष्ट किये जाने चाहिये। जिसमें क्लेशों के आधार चित्त का विलय अपने कारण में हो जाता है। द्रष्टा एवं दृश्य का संयोग समाप्त हो जाता है। बुद्धि के प्रकृति में विलीन हो जाने से केवल शुद्ध पुरुष तथा प्रकृति की स्थिति रह जाती है।

वृत्तिः—ते सूक्ष्माः क्लेशाः, ये वासनारूपेणैव स्थिताः स्ववृत्तिरूपं परिणाममारभन्ते, ते प्रतिप्रसवेन प्रतिलोमपरिणामेन हेयास्त्यक्तव्याः; स्वकारणेऽस्मितायां कृतार्थं सवासनं चित्तं यदा प्रविष्टं भवति, तदा कुतस्तेषां निर्मूलानां सम्भवः ? ॥ १० ॥

ते = वे। सूक्ष्माः = सूक्ष्म, क्रियायोग द्वारा क्षीण किये गये। क्लेशाः = क्लेश कहते हैं। ये = जो। वासनारूपेण = वासना, संस्कार रूप से। एव = ही। स्थिताः = चित्त में विद्यमान रहते हैं। स्ववृत्तिरूपं = अपने-अपने व्यापार रूप। परिणामं = परिणाम को। न = नहीं। आरभन्ते = आरम्भ करते हैं। ते = वे सूक्ष्म क्लेश। प्रतिप्रसवेन = प्रतिप्रसव द्वारा अर्थात्। प्रतिलोमपरिणामेन = उत्पत्ति प्रसव से विलोम, प्रतिकूल परिणाम द्वारा, चित्त को कारण प्रकृति में लीन करने से, निर्बीज, असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा। हेयाः = हेय हैं अर्थात्। त्यक्तव्याः = त्यागने योग्य हैं, विनष्ट किये जाने चाहिये। कृतार्थं = कृतार्थ हुआ, प्रयोजन को सम्पन्न कर देने वाला। सवासनं = वासना, संस्कारों सहित। चित्तं = चित्त, बुद्धि। यदा = जब। स्वकारणे = अपने कारण। अस्मितायां = अस्मिता में। प्रविष्टं = प्रविष्ट। भवति = हो जाता है अर्थात् लय को प्राप्त कर लेता है। तदा = तब, चित्त के कारण में विलीन हो जाने पर। निर्मूलानां = निर्मूल, आधार रहित हुये। तेषां उन पञ्चविध क्लेशों की। कुतः = किस प्रकार। सम्भवः = उत्पत्ति हो सकती है अर्थात् आधार चित्त के बिना क्लेशों की स्थिति कैसे रह सकती है॥ १० ॥

स्थूलानां हानोपायमाह—

स्थूलानां = स्थूल क्लेशों के। हानोपायं = परित्याग के उपाय को। आह = बतलाते हैं।

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥

अर्थः—तद् = उन क्लेशों की। वृत्तयः = वृत्तियाँ, स्थूल वृत्तियाँ, उदार अवस्था वाली वृत्तियाँ। ध्यानहेयाः = ध्यान के द्वारा त्यागने योग्य हैं। जो क्लेश उदारावस्था में। विद्यमान हैं, उनको तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधानरूप क्रियायोग द्वारा एवं उनके प्रतिकूल भावना से उनको सूक्ष्म तथा दग्धबीज वाला बनाना चाहिये। क्लेशों के इन्हीं सूक्ष्म संस्कारों को प्रतिप्रसव परिणाम द्वारा, असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा समूल निर्मूल करना चाहिये। क्लेशों की स्थूल वृत्तियों को ध्यान द्वारा तथा सूक्ष्म संस्कारों को निर्बीज सामाधि द्वारा विनष्ट करना चाहिये। क्लेशों की स्थूल वृत्तियाँ अल्प प्रयास से सूक्ष्म हो जाती हैं।

वृत्तिः—तेषां क्लेशानामारब्धकार्य्याणां याः सुख-दुःख-मोहात्मिका वृत्तयः, ता ध्यानहेयाः, ध्यानेनैव चित्तैकाग्रतालक्षणेन पातव्या इत्यर्थः। चित्तपरिकर्माभ्यासमात्रेणैव स्थूलत्वात्तासां निवृत्तिर्भवति; यथा वस्त्रादौ स्थूलो मलः प्रक्षालनमात्रेणैव निवर्त्तते, [1]यस्तत्र सूक्ष्मांशः स तैस्तैरुपायैरुत्तापनप्रभृतिभिरेव निवर्त्तयितुं शक्यते ॥ ११ ॥

आरब्धकार्य्याणां = अपने-अपने कार्यों को प्रारम्भ करने वाले अर्थात् उदार अवस्था वाले। तेषां = उन। क्लेशानां = क्लेशों की। याः = जो। सुखदुःखमोहात्मिकाः = सुखदुःखमोहस्वरूप वाली। वृत्तयः = वृत्तियाँ हैं। ताः = वे उदारावस्था वाली स्थूल वृत्तियाँ। ध्यानहेयाः = ध्यान द्वारा त्यागने योग्य हैं अर्थात्। चित्तैकाग्रतालक्षणेन = चित्त की एकाग्रता स्वरूप। ध्यानेन = ध्यान द्वारा। एव = ही। हातव्याः = क्लेशों की स्थूल वृत्तियों का परित्याग करना चाहिये। स्थूलत्वात् = स्थूल होने के कारण, उदारावस्था में विद्यमान होने से। तासां = उन क्लेशों की। निवृत्तिः = निराकरण, परिहार, सूक्ष्मत्व की प्राप्ति। चित्तपरिकर्माभ्यासमात्रेण = चित्त के परिकर्म के अभ्यास मात्र से। एव = हि। भवति = होती है अर्थात् अल्प प्रयास से ही स्थूल क्लेशों को सूक्ष्म बनाना सम्भव, सुकर है। यथा = जैसे। वस्त्रादि = वस्त्र इत्यादि पदार्थों में रहने वाला। स्थूलः = स्थूल। मलः = मल, अशुद्धि, कलुष। प्रक्षालनमात्रेण = प्रक्षालन मात्र से, केवल जल द्वारा धोने से। एव = ही। निवर्त्तते = दूर हो जाता है। यः =

---

१. यस्तु तत्र सूक्ष्मः (पा०)।

जो मल। तत्र = उन वस्त्र इत्यादि में। सूक्ष्मांशः = सूक्ष्म अंश रूप से है। सः = वह सूक्ष्म मल। उत्तापनप्रभृतिभिः = तपाना इत्यादि, तपाना तथा साबुन, सोडा इत्यादि क्षार द्रव्यों के प्रयोग से। तैः तैः = उन उन। उपायैः = साधनों द्वारा। निवर्त्तयितुं = दूर करने में। शक्यते = सम्भव है। इसी प्रकार स्थूल क्लेश तो सामान्य साधन, अनुष्ठानों, अल्प प्रयासों से दूर हो जाते हैं, किन्तु सूक्ष्म क्लेश अधिक प्रयास साध्य होते हैं। निर्बीज समाधि द्वारा ही उनका निर्मूल होता है॥ ११॥

एवं क्लेशानां तत्त्वमभिधाय कर्माशयस्य तदभिधातुमाह—

एवं = इस प्रकार। क्लेशानां = क्लेशों के। तत्त्वं = तत्त्व, स्वरूप, प्रभाव, निवृत्ति इत्यादि के उपाय को। अभिधाय = कहकर। कर्माशयस्य = कर्माशय का। तद् = वही, स्वरूप, प्रभाव, निवृत्ति इत्यादि तत्त्व को। अभिधातुं = कहने के लिये। आह = कहते हैं।

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः॥ १२॥

अर्थः—दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः=दृष्ट, वर्तमान जन्म में तथा अदृष्ट, अनागत, भावी जन्म में अनुभव किये जाने वाले। कर्माशयः = कर्माशय, धर्म एवं अधर्म रूपी कर्मों के संस्कार, वासनायें। क्लेशमूलः = क्लेशमूल वाली हैं अर्थात् इस जीवन में तथा भविष्य में भोगे जाने वाले धर्म तथा अधर्म रूपी कर्म वासनाओं के मूल कारण क्लेश ही हैं। पञ्चविध क्लेशों के कारण ही चित्त के साथ इन कर्म संस्कारों का सम्बन्ध होता है।

वृत्तिः—कर्माशय इत्यनेन स्वरूपं तस्याभिहितम्; अतो वासनारूपाण्येव कर्माणि। क्लेलमूल इत्यनेन कारणमभिहितं, यतः कर्मणां शुभाशुभानां क्लेशा एव निमित्तम्। दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय इत्यनेन फलमुक्तम्। अस्मिन्नेव जन्मनि अनुभवनीयो दृष्टजन्मवेदनीयः; जन्मान्तरानुभवनीयोऽदृष्टजन्मवेदनीयः।

तथा हि—कानिचित् पुण्यानि देवताराधनादीनि तीव्रसंवेगेन कृतानि इहैव जन्मनि जात्यायुर्भोगलक्षणं फलं प्रयच्छन्ति। यथा—नन्दीश्वरस्य भगवन्महेश्वराराधनबलादिहैव जन्मनि जात्यादयो विशिष्टाः प्रादुर्भूताः।[1] एवमन्येषां

१. शिलादपुत्रस्य नन्दीश्वरस्य चरितं बहुत्र वर्णितम्—द्र० बृहद्धर्मपु०-२।४ अ०; लिङ्गपु० १।४२ अ०।

विश्वामित्रादीनां[1] तपःप्रभावाज् जात्यायुषी । केषाञ्चिज्जातिरेव; तथा तीव्र-संवेगेन दुष्टकर्मकृतां नहुषादीनां[2] जात्यन्तरादिपरिणामः ; उर्वश्याश्च कार्त्तिकेय-वने लतारूपतया ; एवं व्यस्तसमस्तत्वेन यथायोग्यं योज्यमिति ॥ १२ ॥

कर्माशयः = कर्म आशय । इति अनेन = सूत्र में प्रयुक्त इस शब्द के द्वारा । तस्य = उस कर्म के । स्वरूपं = स्वरूप को । अभिहितं = कहा गया । अतः = इसलिए । वासनारूपाणि = वासनारूप, संस्कार रूप । एव = ही । कर्माणि = कर्म हैं । क्लेशमूलः = क्लेश मूल । इति अनेन = सूत्र में आये हुए इस शब्द के द्वारा । कारणं = उन कर्मों के कारण, मूल को । अभिहितं = कहा गया है । यतः = क्योंकि । शुभाशुभानां = शुभ एवं अशुभ, पुण्य एवं पाप । कर्मणां = कर्मों के । क्लेशाः = अविद्या इत्यादि पञ्चविध क्लेश । एव = ही । निमित्तं = निमित्त, मूलकारण हैं । दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः = दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय । इति अनेन = सूत्र में प्रयुक्त इस शब्द के द्वारा । फलं = फल, कर्मों का फल । उक्तं = कहा गया है अर्थात् शुभ एवं अशुभ कर्मों का फल इस वर्तमान जीवन तथा भविष्य के जीवन में भोगा जाने वाला होता है । अस्मिन् एव = इस ही, वर्तमान । जन्मनि = जन्म में । अनुभवनीयः = अनुभव, भोगे जाने वाले कर्मसंस्कार । दृष्टजन्मवेदनीयः = दृष्टजन्मवेदनीय कहे जाते हैं । जन्मान्तरानुभवनीयः = दूसरे, भावी, जन्म में भोगे जाने वाले कर्माशय । अदृष्टजन्मवेदनीयः = अदृष्टजन्मवेदनीय कहे जाते हैं । तथाहि = जैसे कि । देवताराधनादीनि = देवताओं की उपासना आदि । कृतानि = किये गये । कानिचित् = कुछ, कोई-कोई । पुण्यानि = पुण्य, शुभकर्म । तीव्रसंवेगेन = संवेगों की तीव्रता के कारण । इह एव = इस ही वर्तमान । जन्मनि = जीवन में । जात्यायुर्भोगलक्षणं = जाति, आयु एवं भोगरूप । फलं = फल को । प्रयच्छन्ति = प्रदान करते हैं । यथा =

---

१. महाभारते विश्वामित्रस्य ब्राह्मणत्वलाभो बहुत्र वर्णितः (आदिपर्व ७४।४८; शल्यपर्व ४०।१२-३०) ।

२. नहुषस्य जात्यन्तरपरिणामः उद्योगपर्वणि (१७।१४-१८), वनपर्वणि (अ० १७८-१८१) च वर्णितः ।

जैमे। नन्दीश्वरस्य = नन्दीश्वर के लिये को। इह एव = इस ही, वर्तमान। जन्मनि = जन्म में। भगवन्महेश्वराराधनबलात् = ऐश्वर्य सम्पन्न महेश्वर की उपासना के बल, सामर्थ्य, प्रभाव से। जात्यादयः = जाति इत्यादि, जाति, आयु, भोग। विशिष्टाः = विशिष्ट, श्रेष्ठ, महत्त्वपूर्ण फलों की। प्रादुर्भूताः = प्राप्ति हुई थी। एवं = इसी प्रकार। विश्वामित्रादिनां = विश्वामित्र इत्यादि। अन्येषां = अन्य श्रेष्ठ ऋषियों को। तपःप्रभावात् = तप के प्रभाव से। जात्यायुषी = उत्कृष्ट जाति एवं आयु की प्राप्ति हुई थी। केषाञ्चित् = कुछ पुरुषों को। जातिः एव = केवल जाति की ही प्राप्ति होती है। तथा उस प्रकार से। तीव्रसंवेगेन = संवेगों, संस्कारों की प्रबलता के वशीभूत होकर। दुष्टकर्मकृतां = अशुभ कर्म करने वाले। नहुषादीनां = नहुष आदि को। जात्यन्तरादिपरिणामः = दूसरी जाति में परिवर्तन आदि की प्राप्ति हुई थी। च = और। कार्तिकेयवने = कुमार कार्तिकेय के कुमारवन में। उर्वश्याः = उर्वशी को। लतारूपतया = लता रूप में जाति परिवर्तन की प्राप्ति हुई थी। कुमार वन का प्रभाव था कि यदि कोई स्त्री इसमें प्रवेश करेगी तो वह लता रूप में परिवर्तित हो जायेगी। पुरूरवा से रूठकर इस वन में प्रवेश करने वाली उर्वशी लतारूप में परिवर्तित हो गई थी। एवं = इस प्रकार। व्यस्तसमस्तत्वेन = व्यस्त एवं समस्त रूप में, व्यष्टि तथा समष्टि रूप से। यथायोग्यं = योग्यता के अनुसार। योज्यं = सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। इति = यह अभिप्राय है अर्थात् अपने कर्मों के अनुसार किसी को व्यस्त रूप, जाति-आयु-भोग की प्राप्ति होती है ॥१२॥

इदानीं कर्माशयस्य स्वभेदभिन्नं फलमाह—

इदानीं = अब। कर्माशयस्य = कर्माशय का। स्वभेदभिन्नं = अपने ही स्वरूप के कारण भिन्न, विविध प्रकार के। फलं = फल को। आह = कहते हैं।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ १३ ॥

अर्थः—मूले सति = मूल कारण क्लेश के विद्यमान रहने पर। तद्विपाकः = उस कर्माशय का फल, परिणाम। जात्यायुर्भोगाः = देवत्व, मनुष्यत्व, पशुत्व इत्यादि जाति, आयु-जीवन की अवधि, विशिष्ट शरीर के साथ आत्मा,

पुरुष के सम्बन्ध की समयसीमा, एवं भोग-सुख-दुःख इत्यादि की प्राप्ति होती है अर्थात् क्लेशों के विद्यमान रहने पर शुभाशुभकर्माशय उत्तम-मध्यम-अधम रूप विशेष प्रकार का शरीर, अल्पदीर्घरूप जीवन काल तथा विविध प्रकार के सुख को प्रदान करते हैं।

वृत्तिः—मूलमुक्तलक्षणः क्लेशाः, तेष्वनभिभूतेषु सत्सु कर्मणां कुशलाकुशलरूपाणां विपाकः फलं जात्यायुर्भोगा भवन्ति। जातिर्मनुष्यादिः, आयुश्चिरकालम् एकशरीरसम्बन्धः, भोगा विषया इन्द्रियाणि सुखसंविद् दुःखसंविच्च, सुखदुःखादीनि कर्मकरणभावबोधनव्युत्पत्त्या भोगशब्दस्य। इदमत्र तात्पर्य्यम्—चित्तभूमौ अनादिकालसञ्चिताः कर्मवासना यथा यथा पाकमुपयान्ति, तथा तथा गुणप्रधानभावेन स्थिता जात्यायुर्भोगलक्षणं स्वकार्य्यमारभन्ते ॥ १३ ॥

मूलं = कर्माशयों के मूल के कारण। उक्तलक्षणः = कहे गये लक्षण वाले। क्लेशाः = अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश रूप पञ्चविध क्लेश हैं। तेषु = उन्ही पञ्चविध क्लेशों के। अनभिभूतेषु सत्सु = अभिभव रहित रहने पर अर्थात् क्लेशों के विद्यमान रहने पर। कुशलाकुशलरूपाणां = शुभ एवं अशुभ, पुण्य एवं पाप रूप। कर्मणां = कर्मों के। विपाकः = विपाक, परिणाम अर्थात्। फलं = फल। जात्यायुर्भोगाः = जाति, आयु तथा भोग। भवन्ति = होते हैं। मनुष्यादिः = मनुष्यत्व इत्यादि। जातिः = जाति है। चिरकालं = अधिक समय तक। एकशरीरसम्बन्धः = एक विशिष्ट शरीर के साथ सम्बन्ध ही। आयुः = आयु है। विषयाः = स्पर्श-रूप-रस-गन्ध आदि विषय ही। भोगाः = भोग हैं। इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ-श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-जिह्वा-घ्राण आदि इन्द्रियाँ। सुखसंविद्= सुख का ज्ञान, अनुभव करने वाली। च = और। दुःख-संविद् = दुःख का ज्ञान, अनुभव करने वाली है। अतः इन्द्रियों के विषय शब्दस्पर्श इत्यादि ही भोग हैं। सुखदुःखादीनि=सुख, दुःख इत्यादि का अनुभव करने वाली कर्मकारणभावबोधव्युत्पत्त्या = कर्मों के कारण, साधन इन्द्रियों से ही ज्ञान, अनुभव की उत्पत्ति होने के कारण। भोगशब्दस्य = भोग शब्द का। इदं = यह। अत्र = यहाँ पर। तात्पर्यम् = अभिप्राय है कि। चित्तभूमौ = चित्त की भूमि में। अनादिकालसंचिताः = अनादि काल से संचित, एकत्रित। कर्मवासनाः = शुभ-अशुभ कर्मों

के संस्कार । यथा यथा = जैसे जैसे । पाकं = परिपक्वता, विपाक, परिणाम को । उपयान्ति = प्राप्त होते हैं, फल प्रदान करते हैं । तथा तथा = वैसे वैसे, उसी प्रकार से । गुणप्रधानभावेन = गौण एवं प्रधान भाव से अथवा प्रकृति के सत्त्व-रजस्-तमस् गुणों के रूप से । स्थिताः = विद्यमान रहते हुए कर्मों के संस्कार । जात्यायुर्भोगलक्षणं = जाति, आयु एवं भोग रूप वाले । स्वकार्य्यं = अपने कार्य, फल को । आरभन्ते = प्रारम्भ करते हैं, प्रदान करते हैं ॥ १३ ॥

उक्तानां कर्मफलत्वेन जात्यादीनां स्वकारणकर्मानुसारिणां[1] कार्य्यकर्तृत्वमाह—

कर्मफलत्वेन = कर्मसंस्कारों के फल रूप से । उक्तानां = पहले बतलाये गये । जात्यादीनां = जाति-आयु-भोग आदि का । स्वकारणकर्मानुसारिणां = अपने कारण रूप कर्माशयों के अनुसार । कार्य्यकर्तृत्वं = कार्यों के करने के प्रकार को । आह = कहते हैं ।

ते ह्लाद-परितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ १४ ॥

अर्थः—पुण्यापुण्यहेतुत्वात् = पुण्य एवं अपुण्य, शुभ एवं अशुभ हेतु होने के कारण । ते = वे जाति-आयु-भोग । ह्लादपरितापफलाः = आनन्द एवं दुःख रूप फल वाले होते हैं अर्थात् पुण्य तथा पाप कर्माशयों से उत्पन्न होने के कारण उनके विपाक जाति-आयु-भोग भी उन्हीं के अनुसार हर्ष एवं शोक परिणाम वाले होते हैं । शुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप जो जाति-आयु-भोग होते हैं, वे सुखमय तथा अशुभ कर्मों के परिणाम जाति-आयु-भोग दुःख प्रदान करने वाले होते हैं ।

वृत्तिः—ह्लादः सुखं, परितापो दुःखं, तौ फलं येषां ते तथोक्ताः, पुण्यं कुशलं कर्म, तद्विपरीतमपुण्यं, ते कर्मणी कारणं येषां भावस्तस्मात् । एतदुक्तं भवति—पुण्यकर्मारब्धा जात्यायुर्भोगा ह्लादफलाः, अपुण्यकर्मारब्धास्तु परितापफलाः, एतच्च प्राणिमात्रापेक्षया[2] द्वैविध्यम् ॥ १४ ॥

ह्लादः = ह्लाद । सुखं = सुख को कहते हैं । परितापः = परिताप ।

---

१. कर्मानुसारेण (पा०) ।

२. प्राणिमात्रापेक्षतया (पा०) ।

दुःखं = दुःख को कहते हैं। तौ = वही ह्लाद एवं परिताप दोनों हैं। फलं = फल, परिणाम। येषां = जिनके। ते = वे, जाति-आयु-भोग। तथोक्तः = उस प्रकार के कहे गये हैं अर्थात् सूत्र में 'ह्लादपारितापफलाः' ह्लाद तथा परिताप फल को देने वाले कहे गये हैं। पुण्यं = पुण्य। कुशलं कर्म = कुशल, शुभ कर्म को कहते हैं। तद् विपरीतं = उस कुशल कर्म से विपरीत, भिन्न कर्म को। अपुण्यं = अपुण्य, पापरूप कहते हैं। ते = वही पुण्य तथा अपुण्य दोनों। कर्मणी = कर्म। कारणं = मूल कारण हैं। येषां = जिन जाति-आयु भोगों के। तेषां = उन्ही का। भावः = भाव हैं। तस्मात् = उससे अर्थात् पुण्य तथा अपुण्य कर्मों से उत्पन्न होने के कारण। एतद्उक्तं भवति = इसका यह अभिप्राय है कि। पुण्यकर्मारब्धाः = शुभ कर्मों से प्रारम्भ किये गये। जात्यायुर्भोगाः = जाति-आयु-भोग रूप त्रिविध विपाक। ह्लादफलाः = आनन्द, सुखफल वाले हैं। अपुण्यकर्मारब्धाः = अशुभ कर्मों से प्रारम्भ किये गये जाति-आयु-भोग। तु=तो। परितापफलाः = दुःख रूप फल प्रदान करने वाले होते हैं। च = और। एतत् = यह। प्राणिमात्रापेक्षया = सभी प्राणियों के विचार से। द्वैविध्यं = दो प्रकार का है अर्थात् कर्माशियों के कारण सभी प्राणियों को प्राप्त होने वाले जाति-आयु-भोग-रूप विपाक सुख तथा दुःख रूप से दो प्रकार के होते हैं॥ १४॥

योगिनस्तत् सर्वं दुःखमित्याह—

योगिनः = योगी के लिये। तत्सर्वं = वह सभी विपाक। दुःखं = दुःख रूप ही होते हैं। इति = इसी को। आह = कहते हैं।

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः॥ १५॥

अर्थः—परिणामतापसंस्कारदुःखै = परिणाम दुःख, तापदुःख तथा संस्कार दुःख से। च = और। गुणवृत्तिविरोधात् = सत्त्व रजस्-तमस् तीनों गुणों की वृत्तियों, व्यपारों में परस्पर विरोध होने के कारण। विवेकिनः = विवेकसम्पन्न पुरुष के लिये। सर्वं = सभी कर्मों के फल, विपाक। दुःखमेव = दुखः रूप ही हैं अर्थात् जितने भी कर्मजन्य, स्वकृत कर्मों से प्राप्त होने वाले सुख हैं वे सभी परिणामजन्य, तापजन्य एवं संस्कारजन्य दुःखों से मिश्रित हैं। जगत के सभी

पदार्थ त्रिगुणात्मक हैं और ये गुण परस्पर विरुद्ध धर्म वाले हैं। यथा सत्त्व गुण सुखमय, लघु प्रकाशक, ज्ञानयुक्त; रजोगुण दुःखमय, चञ्चल, उत्तेजक तथा तमोगुण मोहमय, गुरु, निरोधकारी, अज्ञानयुक्त है। अतः निष्केवल सुख की प्राप्ति कभी भी सम्भव नहीं है। सभी भोगों का पर्यवसान दुःख में होता है। सभी भोग विनाशशील होने के कारण सुख के उपभोग काल में भी होने वाले वियोग के कारण तापदुःख वाले होते हैं। पूर्वअनुभूत भोगों के संस्कारों के कारण भोग्य पदार्थ के अभाव में संस्कारजन्य दुःख होता ही है। अतः सभी भोग परिणाम-ताप-संस्काररूप त्रिविध दुःखों से मिश्रित होने से तथा सत्त्व-रजस्-तमस् तीनों गुणों के कार्यों में परस्पर विरोध होने के कारण विवेकी ज्ञानी योगी के लिए सभी भोग दुःख प्रदान करने वाले ही होते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है—

> ते हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
> आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ ५।२२

वृत्तिः—विवेकिनः परिज्ञातक्लेशादिविवेकस्य दृश्यमात्रं सकलमेव भोगसाधनं सविषं स्वाद्वन्नमिव दुःखमेव प्रतिकूलवेदनीयमेवेत्यर्थः ; यस्मादत्यन्ताभिजातो योगी दुःखलेशेनाप्युद्विजते; यथा—अक्षिपात्रमूर्णातन्तुस्पर्शमात्रेणैव महतीं पीडा-मनुभवति, नेतरदङ्गं, तथा विवेकी स्वल्पदुःखानुबन्धेनापि उद्विजते।

कथमित्याह—परिणाम-ताप-संस्कारदुःखैर्विषयाणामुपभुज्यमानानां यथायथं गर्द्धाभिवृद्धेस्तदप्राप्तिकृतस्य सुख-दुःखस्य अपरिहार्यतया दुःखान्तरसाधनत्वाद् नास्त्येव सुखरूपतेति परिणामदुःखत्वम्। उपगृह्यमाणेषु सुखसाधनेषु तत्प्रतिपन्थिनं प्रति द्वेषस्य सर्वदैवावस्थितत्वात् सुखानुभवकालेऽपि तापदुःखं दुष्परिहरमिति तापदुःखता।

संस्कारदुःखन्तु स्वाभिमतानभिमतविषयसन्निधाने सुखसंविद् दुःखसंविच्चोप-जायमाना तथाविधमेव स्वक्षेत्रे संस्कारमारभते, संस्काराच्च पुनस्तथाविधसंविदनु-भव इत्यपरिमितसंस्कारोत्पत्तिद्वारेण [1]सर्वस्यैव दुःखानुवेधाद् दुःखत्वम्। [2]एवमुक्तं

१. द्वारेण संसारानुच्छेदात् सर्वस्यैव दुःखत्वम् (पा०)।

२. इदं वाक्यं क्वचिन्न पठ्यते।

भवति—क्लेशकर्माशयविपाकसंस्कारानुच्छेदात् सर्वस्यैव दुःखत्वम् ।

गुणवृत्तिविरोधाच्चेति—गुणानां सत्त्वरजस्तमसां या वृत्तयः सुख-दुःख-मोह-रूपाः परस्परमभिभाव्याभिभावकत्वेन विरुद्धा जायन्ते, तासां सर्वत्रैव दुःखानुवेधाद् दुःखत्वम् ।

एतदुक्तं भवति—ऐकान्तिकीमात्यन्तिकीञ्च दुःखनिवृत्तिमिच्छतो विवेकिन उक्तरूपकारणचतुष्टयाः सर्वे विषया दुःखरूपतया प्रतिभान्ति; तस्माच्च सर्वकर्म-विपाको दुःखरूप एवेत्युक्तं भवति ॥१५॥

परिज्ञातक्लेशादिविवेकस्य = क्लेशों के विवेक, भेद, स्वरूप को अच्छी-प्रकार, सम्यक् रूप से जानने वाले । विवेकिनः = विवेक सम्पन्न योगी के लिये । दृश्यमात्रं = समस्त दृश्य भोग्य पदार्थ । सकलमेव = सभी । भोगसाधनं = उपभोग के साधन, विषय । सविषं = विषसहित, विषमिश्रित । स्वादु अन्नं = स्वाद युक्त मधुर अन्न की । इव = तरह, समान । दुःखमेव = दुःख रूप ही है । प्रतिकूल-वेदनीयमेव = प्रतिकूल असद्वेदनीय, दुःखरूप अनुभव किया जाने वाला, पीड़ा प्रदान करने वाला ही है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है । ज्ञानी योगी के लिये सभी सुख रूप प्रतीत होने वाले पदार्थ भी विषमिश्रित मधुर भोजन के समान परिणाम में दुःख को ही देने वाले हैं, अतः सभी पदार्थ त्याज्य हैं । यस्मात् = जिससे । अत्यन्ताभिजातः = अत्यन्त श्रेष्ठ, ज्ञानयुक्त । योगी = योगी । दुःख-लेशेन = दुःख के किंचित् सम्पर्क, अत्यल्प संसर्ग से । अपि = भी । उद्विजते = उद्विग्न, व्याकुल हो उठता है । यथा = जैसे । अक्षिपात्रं = आँखों का पात्र, पुतली । ऊर्णातन्तुस्पर्शमात्रेण = ऊर्णनाभि, मकड़ी के ईषत् स्पर्श द्वारा । एव= ही । महतीं=अत्यधिक । पीडां = पीड़ा दुःख का । अनुभवति = अनुभव करती है । इतरदङ्गं = अन्य अङ्ग । न = नहीं, उस प्रकार की पीड़ा का अनुभव नहीं करते । तथा = उसी प्रकार । विवेकी = ज्ञानी, योगी । स्वल्प दुःखानुबन्धेन = थोड़े ही दुःख के सम्बन्ध से । अपि = भी । उद्विजते = पीड़ित हो जाता है । कथं = किस प्रकार अर्थात् योगी सभी भोगों को दुःखमय क्यों समझता है । इति= इसी को । आह = कहते हैं । परिणामतापसंस्कारदुःखैः = परिणामजन्य एवं संस्कारजन्य दुःखों के साथ । उपभुज्यमानानां = उपभोग किये जाते हुये । विषयाणां = विषयों, भोग के साधनों का । यथायथं = जैसे-जैसे । गर्द्धाभिवृद्धेः =

तृष्णा, अभिलाषा की वृद्धि होने से। तद् = उन भोगों के साधन, विषयों की। अप्रातिकृतस्य = अनुपलब्धि से उत्पन्न हुये। सुखदुःखस्य = सुख एवं दुःख के। अपरिहार्य्यतया = दूर न किये जाने योग्य, अवश्यम्भावी होने के कारण। दुःखान्तरसाधनत्वाद् = दूसरे दुःख में साधन होने के कारण अर्थात् अन्य दुःख को उत्पन्न करने के कारण। सुखरूपता = विषयों, भोगों के साधनों की सुखरूपता, सुखमयता। नास्ति एव = नहीं ही है। इति = इस प्रकार। परिणामदुःखत्वं = सभी विषय, भोग दुःख रूप परिणाम वाले हैं अन्त में दुःख ही प्रदान करने वाले हैं अर्थात् भोगों के उपभोग से बराबर तृष्णा बढ़ती जाती है और उनकी प्राप्ति न होने पर दुःख होता ही है। सुखसाधनेषु = सुखप्रदान करने वाले साधनों, विषय भोगों के। उपगृह्यमाणेषु = ग्रहण, उपभोग करते समय। यत्प्रतिपन्थिनं प्रति = उन सुख साधनों के प्रतिपक्षी, बाधा पहुँचाने वाले। द्वेषस्य = द्वेष भावना के। सर्वदा = सदा। एव = ही। अवस्थितत्वात् = विद्यमान रहने के कारण। सुखानुभवकाले = सुख की प्राप्ति के समय। अपि = भी। तापदुःखं = तापदुःख। दुष्परिहरं = दुष्परिहार्य है। इति = यही। तापदुःखता = विषय भोगों का तापदुःख है। संस्कार-दुःखं तु = संस्कार दुःख तो। स्वाभिमतानभिमतविषयसन्निधाने = अपने अभीष्ट-अभिलषित एवं अनभिलषित विषय के सम्बन्ध में। उपजायमाना = उत्पन्न हुआ। सुखसंवित् = सुख ज्ञान। च = तथा। दुःखसंवित् = दुःख का ज्ञान। तथाविधमेव=उसी प्रकार के, सुख एवं दुःख रूप ही। स्वक्षेत्रे = अपने क्षेत्र में, चित्त में उस विषय के सम्बन्ध में। संस्कारं = संस्कार को। आरभते = उत्पन्न करता है। च = और। पुनः = फिर। संस्कारात् = इस संस्कार से। तथाविधसंविदनुभवः = उसी प्रकार के सुख तथा दुःख के ज्ञान की प्रतीति, अनुभव होता है। इति = इस प्रकार से। अपरिमितसंस्कारोत्पत्तिद्वारेण=असंख्य संस्कारों के उत्पन्न होने से। सर्वस्य एव = सभी भोगों की। दुःखानुवेधाद् = दुःख संपृक्त, दुःख से मिश्रण होने के कारण। दुःखत्वं = दुखरूपता ही है। एवमुक्तं भवति = इसका यह अभिप्राय है। क्लेशकर्माशयविपाक-संस्कारानुच्छेदात् = पञ्चविध क्लेशों, शुभाशुभ कर्मों के संस्कार तथा कर्मफल, विपाक के संस्कारों का निर्मूलन, अभाव न होने के कारण। सर्वस्य एव = सभी विषय। दुःखरूपत्वं = दुःख रूप ही हैं। च = और। गुण-

वृत्तिविरोधात् = सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों की वृत्तियों, व्यापारों, कार्यों के परस्पर विपरीत होने के कारण भी। इति = ऐसा है, सभी विषय दुःख रूप ही हैं। गुणानां = गुणों की अर्थात्। सत्त्वरजस्तमसां = सत्त्व-रजस्-तमस् गुणों की। याः = जो। सुखदुःखमोहरूपाः = सुख, दुःख एवं मोह स्वरूप वाली। वृत्तयः= वृत्तियाँ हैं। वे। परस्परं = परस्पर, एक दूसरे को। अभिभाव्याभिभावकत्वेन = = अभिभाव्य एवं अभिभावक रूप से, अभिभूत होने वाली एवं अभिभूत करने वाली। विरुद्धाः प्रतिकूल स्वभाव वाली। जायन्ते = उत्पन्न होती हैं। तासां = उन वृत्तियों का। सर्वत्र एव = सभी विषयों में। दुःखानुवेधात् = दुःख से अनुविद्ध, मिश्रण होने के कारण। दुःखत्वं = सभी विषय दुःख प ही है। एतद् उक्तं भवति = यह अभिप्राय है कि। ऐकान्तिकीं = अनिवार्य, निश्चय रूप से। च=और। आत्यन्तिकीं=सदा के लिये, सार्वकालिक रूप से। दुःखनिवृत्तिम्= दुःख के अभाव को। इच्छतः = इच्छा, कामना करने वाले। विवेकिनः = विवेकी, ज्ञानी योगी के लिये। उक्तरूपकारणचतुष्टयाः = पूर्व बतलाये गये चतुर्विध कारणों से युक्त अर्थात् परिणामजन्य, तापजन्य, संस्कारजन्य दुःखों से मिश्रित होने से तथा त्रिविध गुणों की वृत्तियों के परस्पर विपरीत होने के कारण। सर्वे = सभी। विषयाः = भोग्य पदार्थ। दुःखरूपतया = दुःखस्वरूप, दुःखप्रदान करने वाले। प्रतिभान्ति = प्रतीत होते हैं। च = और। तस्मात् = इसलिये। सर्वकर्मविपाकः = सभी कर्मों के फल। दुःखरूप एव = दुःख रूप ही हैं। दुःख में अवसान होने वाले हैं। इति उक्तं भवति = यह अभिप्राय है ॥ १५ ॥

तदेवमुक्तस्य क्लेशकर्माशयविपाकराशेरविद्याप्रभवत्वाद् अविद्यायाश्च मिथ्याज्ञानरूपतया सम्यग्ज्ञानोच्छेद्यत्वात् सम्यग्ज्ञानस्य च ससाधनहेयोपादेयावधारणरूपत्वात् तदभिधानमाह—

तदेवं = इस प्रकार से। उक्तस्य = पहले वर्णन किये गये। क्लेशकर्माशयविपाकराशेः = क्लेश, कर्म, कर्मसंस्कार एवं विपाक-कर्मफल की राशि, समुदाय का। अविद्याप्रभवत्वाद् = अविद्या से उत्पन्न होने के कारण अर्थात् अविद्या से ही क्लेश, कर्म, संस्कार एवं विपाक की उत्पत्ति होने से। च = और।

अविद्यायाः = अविद्या का। मिथ्याज्ञानरूपतया = मिथ्याज्ञान, विपर्यय स्वरूप होने के कारण। सम्यग्ज्ञानोच्छेद्यत्वात् = सम्यक् ज्ञान, शुद्ध ज्ञान, विवेक ख्याति से विनाश किये जाने योग्य होने के कारण अर्थात् सम्यक् ज्ञान द्वारा ही अविद्या का विनाश सम्भव है। च = और। सम्यग्ज्ञानस्य = यथार्थज्ञान का। ससाधन-हेयोपादेयावधारणरूपत्वात् = साधन सहित त्याज्य, ग्राह्य एवं धारण किये जाने योग्य होने के कारण। तद् = उनके। अभिधानं = अभिधान को। आह = कहते हैं।

हेयं दुःखमनागतम् ॥ १६ ॥

अर्थः—अनागतं = न आया हुआ, भविष्य में भोगा जाने वाला। दुःखं = दुःख। हेयं = परित्याग के योग्य है अर्थात् अतीत, भूतकालीन दुःख तो भोगे जा चुके हैं, वर्तमान कालीन भोगे जा रहे हैं। अतः कर्मसंस्कारों के कारण जिनका विपाक अभी शेष है, ऐसे भविष्यकालीन, अनागत दुःख साधनों द्वारा दूर किये जाने चाहिये।

वृत्तिः—भूतस्यातिक्रान्तत्वात्, अनुभूयमानस्य त्यक्तुमशक्यत्वादनागतमेव संसारदुःखं हातव्यमित्युक्तं भवति ॥ १६ ॥

भूतस्य = भूतकालीन, अतीत के दुःख का। अतिक्रान्तत्वात् = अतिक्रमण, अभाव हो जाने के कारण। अनुभूयमानस्य = अनुभव किये जाते हुये, भोगे जाते हुए वर्तमान कालीन दुःख। त्यक्तुं = बिना फल भोग के त्यागना। अशक्य-त्वात् = सम्भव न होने के कारण। अनागतमेव = अनागत, भविष्य में ही प्राप्त होने वाले। संसारदुःखं = संसार सम्बन्धी दुःख को। हातव्यं = साधनों द्वारा त्यागना चाहिये। इति उक्तं भवति = यह अभिप्राय है ॥ १६ ॥

हेयहेतुमाह—

हेयहेतुं = त्याज्य दुःखों के कारण को। आह कहते हैं।

द्रष्टृ-दृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

अर्थः—द्रष्टृदृश्ययोः = द्रष्टा चेतन पुरुष तथा दृश्य अचेतन प्रकृति में। संयोगः = अविद्याजन्य सम्बन्ध ही। हेयहेतुः = त्याज्य संसार दुःख का कारण है अर्थात् पुरुष नित्य, शुद्ध, चेतन, निर्विकार, अपरिणामी, त्रिगुणातीत तथा

प्रकृति जड़, त्रिगुणात्मिका, प्रसवधर्मा है। सर्वथा भिन्न दोनों का संयोग अविद्या के कारण होता है, यही पुरुष का बन्धन है, जन्म-मृत्यु के चक्र में पुरुष का संसरण होता रहता है। विवेकख्याति होते ही पुरुष अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

वृत्तिः—द्रष्टा चिद्रूपः पुरुषः, दृश्यं बुद्धिसत्त्वं, तयोरविवेकख्यातिपूर्वको योऽसौ संयोगो भोक्तृ-भोग्यत्वेन सन्निधानम्, हेयस्य दुःखस्य गुणपरिणामरूपस्य संसारस्य हेतुः कारणम्, तन्निवृत्त्या संसारनिवृत्तिर्भवतीत्यर्थः ॥ १७ ॥

द्रष्टा = द्रष्टा, देखने वाला। चिद्रूपः = चेतन स्वरूप वाला। पुरुषः = पुरुष है। दृश्यं = दृश्य, भोग्य। बुद्धिसत्त्वं = सत्त्वगुणबहुला बुद्धि है। तयोः = पुरुष और बुद्धि उन्हीं दोनों का। अविवेकख्यातिपूर्वकः = अविवेक ज्ञान द्वारा, परस्पर भेद की प्रतीति न होने से। यः = जो। असौ = वह। संयोगः = संयोग, संबन्ध है अर्थात्। भोक्तृभोग्यत्वेन = भोक्ता एवं भोग्य रूप से, पुरुष भोक्ता एवं बुद्धि का भोग्य रूप से। सन्निधानं = सन्निधि, समीपता, एकरूपता है। (वही संयोग ही) हेयस्य = त्याज्य, त्यागने, छोड़ने योग्य। दुःखस्य = दुःख का अर्थात् गुणपरिणामरूपस्य = सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों का परिणाम, फल, कार्य रूप। संसारस्य = संसार, संसरण का। हेतुः = हेतु अर्थात्। कारणं = कारण है। तत् = उस अविवेक जन्य संयोग की। निवृत्त्या=निवृत्ति, दूर होने से। संसारनिवृत्तिः = संसरणरूप दुःखों का निराकरण, अभाव। भवति = होता है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है अर्थात् संयोग के दूर होते ही उसके कार्यरूप संसार का स्वतः अभाव हो जाता है ॥ १७ ॥

द्रष्टृ-दृश्ययोः संयोग इत्युक्तं, तत्र दृश्यस्य स्वरूपं कार्य्यं प्रयोजनञ्चाह—

दृष्टृदृश्ययोः = द्रष्टा पुरुष तथा दृश्य बुद्धि का। संयोगः = संयोग, सम्बन्ध। इति = उस प्रकार। उक्तं = कहा गया। तत्र = उनमें। दृश्यस्य = दृश्य बुद्धि के। स्वरूपं = स्वरूप। कार्य्यं = कार्य। च = और। प्रयोजनं = प्रयोजन, उद्देश्य, को। आह = कहते हैं।

प्रकाश-क्रिया-स्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं
भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥

अर्थः—प्रकाशक्रियास्थितिशीलं = प्रकाश, क्रिया एवं स्थिति स्वभाव वाला। भूतेन्द्रियात्मकं = भूत एवं इन्द्रियों के स्वरूप वाला तथा। भोगापवर्गार्थं = भोग एवं अपवर्ग प्रयोजन वाला। दृश्यं = दृश्य प्रकृति है अर्थात् प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। अतः सत्त्वगुण के कारण प्रकाशित करना, रजोगुण के कारण क्रिया में प्रवृत्त करना तथा तमोगुण के कारण अवरोध, नियमन करना उसका स्वभाव है। उसी से महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्च तन्मात्राओं, महाभूतों, इन्द्रियों आदि की उत्पत्ति होती है अतः वह भूतेन्द्रिय स्वरूप वाली है यही प्रकृति तरह-तरह के विषय भोगों को पुरुष के लिए प्रस्तुत करती है तथा परम पुरुषार्थ अपवर्ग भी सम्पन्न करती है। अतः वह भोग एवं अपवर्ग प्रयोजन वाली है।

वृत्तिः—प्रकाशः सत्त्वस्य धर्मः, क्रिया प्रवृत्तिरूपा रजसः, स्थितिर्नियमरूपा तमसः, ताः प्रकाश-क्रिया-स्थितयः शीलं स्वाभाविकं रूपं यस्य तत्तथाविधमिति स्वरूपमस्य निर्दिष्टम्।

भूतेन्द्रियात्मकमिति। भूतानि स्थूलसूक्ष्मभेदेन द्विविधानि, पृथिव्यादीनि गन्धतन्मात्रादीनि च, इन्द्रियाणि बुद्धीन्द्रिय-कर्मेन्द्रियान्तःकरणभेदेन त्रिविधानि, उभयमेतद् ग्राह्य-ग्रहणरूपम्, आत्मा स्वरूपाभिन्नः परिणामो यस्य तत्तथाविध-मित्यनेनास्य कार्य्यमुक्तम्। भोगः कथितलक्षणः, अपवर्गो विवेकख्यातिपूर्विका संसारनिवृत्तिः, तौ भोगापवर्गौ अर्थः प्रयोजनं यस्य तत्तथाविधं दृश्यमित्यर्थः॥१८॥

प्रकाशः = प्रकाश। सत्त्वस्य = सत्त्वगुण का। धर्मः = धर्म है। प्रवृत्तिरूपा= प्रवृत्तिरूप, प्रवृत्त करने वाली, गतिशील बनाने वाली। क्रिया = क्रिया, चेष्टा, व्यापार। रजसः = रजोगुण का धर्म है। नियमरूपा, अवरोध उत्पन्न करने वाली। स्थितिः = स्थिरता। तमसः = तमोगुण का धर्म है। प्रकाशप्रवृत्तिस्थिति क्रमशः सत्त्व रजस्-तमस् गुणों के धर्म हैं। ताः = वही त्रिविध धर्म। प्रकाश-क्रियास्थितयः = प्रकाश, क्रिया तथा स्थिति रूप। शीलं = शील अर्थात्। स्वाभाविकं रूपं = स्वाभाविक स्वरूप, अपने वास्तविक स्वरूप हैं। यस्य = जिसके। तत् = वह दृश्य। तथाविधं = उस प्रकार का अर्थात् प्रकाश-क्रिया-स्थिति स्वभाव वाला है। इति = इस रूप से। अस्य = इस दृश्य का। स्वरूपं = स्वरूप का। निर्दिष्टं = निर्देश, कथन किया गया. जाता है। भूतेन्द्रियात्मक-

मिति = भूत एवं इन्द्रियों के स्वरूप वाला दृश्य है अर्थात्। स्थूलसूक्ष्मभेदेन = स्थूल एवं सूक्ष्म के भेद से। भूतानि = भूत। द्विविधानि = दो प्रकार के हैं। पृथिव्यादीनि = पृथिवी इत्यादि, पृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाश स्थूलभूत हैं। च = और। गन्धतन्मात्रादीनि = गन्धतन्मात्रा इत्यादि, गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्द तन्मात्रायें सूक्ष्म भूत हैं। बुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रियान्तःकरणभेदेन = ज्ञानेन्द्रियाँ एवं अन्तःकरण के भेद से। त्रिविधानि = तीन प्रकार की। इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ हैं। एतद् = ये। उभयं = दोनों ही, भूत एवं इन्द्रियाँ। ग्राह्यग्रहणरूपं = ग्राह्य तथा ग्रहण रूप हैं। यस्य = जिस दृश्य के। आत्मा = भूत एवं इन्द्रियाँ आत्मा हैं अर्थात्। स्वरूपाभिन्नः = अपने स्वरूव से भिन्न. पृथक् न होने वाला। परिणामः = परिणाम हैं अर्थात् भूत एवं इन्द्रियाँ अपने से ही व्यक्त होने के कारण दृश्य से भिन्न न होने के कारण स्वरूप परिणाम हैं, क्योंकि कारण से कार्य अभिन्न ही होता है। इसलिये। तत् = वह दृश्य। तथाविधम् = उस प्रकार का है अर्थात् भूत एवं इन्द्रियों के स्वरूप का है। इति = इस प्रकार। अनेन = इसके द्वारा। अस्य = इस दृश्य का। कार्य्यं = कार्य-भूत तथा इन्द्रियों को अभिव्यक्ति। उक्तं = कही गई। भोगः = भोग। कथितलक्षणः = पूर्व बतलाये गये लक्षण वाला है। विवेकख्यातिपूर्विका = विवेक ज्ञानद्वारा, द्रष्टा एवं दृश्य के स्वरूप ज्ञान, भेद प्रतीति द्वारा। संसारनिवृत्तिः = संसार की निवृत्ति, दुःखों का सार्वकालिक अभाव हो जाना ही। अपवर्गः=अपवर्ग, मोक्ष है। तौ = वही दोनों। भोगापवर्गौ = भोग एवं अपवर्ग ही हैं। अर्थः = अर्थ अर्थात्। प्रयोजनं= प्रयोजन, उद्देश्य। यस्य = जिसके। तत् = वह। दृश्यं = दृश्य। तथाविधं=उस प्रकार का है अर्थात् भोग एवं अपवर्ग रूप द्विविध प्रयोजन को सम्पन्न करने वाला है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है॥ १८॥

तस्य दृश्यस्य नानावस्थारूपपरिणामात्मकस्य हेयत्वेन ज्ञातव्यत्वात् तदवस्थाः कथयितुमाह—

नानावस्थारूपपरिणामात्मकस्य = विविध प्रकार के परिणाम, स्वरूप को ग्रहण करने वाले। तस्य = उस। दृश्यस्य = दृश्य का। हेयत्वेन = त्याज्य होने से। ज्ञातव्यत्वात् = जानने के योग्य होने के कारण। तद् = उस दृश्य की।

अवस्थाः = विविध अवस्थाओं को। कथयितुं = बतलाने के लिये। आह = कहते हैं। दृश्य की विविध अवस्थायें होती हैं और वे सभी हेय हैं। अतः दृश्य की उन अवस्थाओं को बतलाते हैं।

विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥ १९ ॥

अर्थः—विशेषाविशेषलिङ्गमात्रलिङ्गानि=विशेष, अविशेष, लिङ्गमात्र एवं अलिङ्ग ये चारों ही। गुणपर्वाणि=त्रिविध गुणों के पर्व, अवस्थायें हैं अर्थात् सत्त्व-रजस्-तमस् गुणों की अवस्थायें १—विशेष स्थूल पञ्चमहाभूत, एकादश इन्द्रियाँ २—अविशेष-सूक्ष्मतन्मात्रायें, ३—लिङ्गमात्र केवल बुद्धि तथा ४—अलिङ्ग-प्रकृति रूप चार अवस्थायें हैं।

वृत्तिः—गुणानां पर्वाण्यवस्थाविशेषाश्चत्वारो ज्ञातव्या इत्युपदिष्टं भवति। तत्र विशेषा महाभूतेन्द्रियाणि, अविशेषास्तन्मात्रान्तःकरणानि, लिङ्गमात्रं बुद्धिः, अलिङ्गमव्यक्तमित्युक्तम्; सर्वत्र त्रिगुणरूपस्याव्यक्तस्यान्वयित्वेन प्रत्यभिज्ञानादवश्यं ज्ञातव्यत्वेन योगकाले चत्वारि पर्वाणि निर्दिष्टानि ॥ १९ ॥

गुणानां = सत्त्व-रजस्-तमस् गुणों की। पर्वाणि = पर्व अर्थात्। अवस्थाविशेषाः = विशेष अवस्थायें। चत्वारः = चार। ज्ञातव्याः = जानने योग्य हैं, जानना, समझना चाहिये। इति = यह। उपदिष्टं भवति = प्रस्तुत सूत्र द्वारा कहा गया अर्थात् गुणों की चार अवस्थायें होती हैं। तत्र=उन चारों अवस्थाओं में से। महाभूतेन्द्रियाणि = आकाश आदि पञ्च स्थूल महाभूत एवं मन सहित एकादश इन्द्रियाँ। विशेषाः = गुणों की विशेष अवस्था हैं। तन्मात्रान्तःकरणानि = शब्द, स्पर्श आदि पञ्चसूक्ष्म तन्मात्रायें एवं अहंकार। अविशेषाः = अविशेष अवस्था हैं। बुद्धिः=महत्तत्त्व। लिङ्गमात्रं = लिङ्गमात्र अवस्था है। अव्यक्तं = अव्यक्त, प्रधान, प्रकृति ही। अलिङ्गं = गुणों की अलिङ्ग अवस्था है। इति = इस रूप से। उक्तं = गुणों की चार अवस्थाओं का कथन किया गया। सर्वत्र = इन सभी चारों अवस्थाओं में। त्रिगुणरूपस्य=त्रिगुणात्मक। अव्यक्तस्य= प्रकृति का। अन्वयित्वेन = सम्बन्ध होने के कारण। प्रत्यभिज्ञानात् = प्रत्यभिज्ञा, पहचान होने के कारण। योगकाले = योग, चित्तवृत्तिनिरोध के समय, योगसाधना के समय। अवश्यं = अवश्य ही। ज्ञातव्यत्वेन = जाननेयोग्य होने के

कारण अर्थात् प्रकृति का सम्बन्ध सभी अवस्थाओं में होता है और साधन के लिये उनके स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है। अतः। चत्वारि = चार। पर्वाणि = अवस्थाओं का। निर्दिष्टानि = निरूपण किया गया ॥ १९ ॥

एवं हेयत्वेन दृश्यस्य प्रथमं ज्ञातव्यत्वात् तदवस्थासहितं व्याख्याय उपादेयं द्रष्टारं व्याख्यातुमाह—

एवं = इस प्रकार। हेयत्वेन = त्याज्य होने के कारण। प्रथमं = सबसे पहले। दृश्य का। ज्ञातव्यत्वेन = स्वरूप ज्ञान आवश्यक होने के कारण। तद् = उस दृश्य की। अवस्थासहितं = अवस्थाओं के साथ। व्याख्याय = व्याख्यान, निरूपण करके। उपादेयं = उपादेय, प्राप्तव्य। द्रष्टारं = द्रष्टा पुरुष को। व्याख्यातुं = कहने के लिए। आह = कहते हैं। द्रष्टा पुरुष के स्वरूप को बतलाते हैं।

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥ २० ॥

अर्थः—दृशिमात्रः = केवल चेतन स्वरूप, ज्ञान रूप। द्रष्टा = द्रष्टा पुरुष है। शुद्धः अपि = सर्वथा शुद्ध होने पर भी, सभी धर्मों से रहित, निर्विकार असङ्ग होने पर भी। प्रत्ययानुपश्यः = बुद्धि की वृत्तियों के अनुसार देखने वाला होता है अर्थात् यद्यपि पुरुष केवल चेतन, ज्ञान रूप है, सभी धर्मों, विशेषणों का उसमें अभाव है, फिर भी अविद्या, अविवेक के कारण बुद्धिरूपी दर्पण में प्रतिविम्बित होकर, बुद्धि के साथ एकता, तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। और इस प्रकार उसकी वृत्तियों के अनुसार ही वह देखने वाला द्रष्टा बन जाता है, बुद्धिगत सभी धर्मों को अपना समझने लगता है। विवेक ख्याति से दृश्य का सम्बन्ध समाप्त होते ही वह द्रष्टा नहीं रह जाता और अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

वृत्तिः—द्रष्टा पुरुषः, दृशिमात्रश्चेतनामात्रं, मात्रग्रहणं धर्मधर्मिनिरासार्थम्। केचिद्धि[1] चेतनामात्मनो धर्ममिच्छन्ति। स शुद्धोऽपि परिणामित्वाद्यभावेन स्वप्रतिष्ठोऽपि, प्रत्ययानुपश्यः प्रत्यया विषयोपरक्तानि विज्ञानानि, तानि अनु

१. चेतना = ज्ञानम्। ज्ञानं खलु आत्मधर्म इति नैयायिका वैशेषिकाश्च।

अव्यवधानेन प्रतिसंक्रमाद्यभावेन पश्यति। एतदुक्तं भवति—जातविषयोपरागायामेव बुद्धौ सन्निधिमात्रेणैव पुरुषस्य द्रष्टृत्वमिति ॥ २० ॥

द्रष्टा = द्रष्टा। पुरुषः = पुरुष है। दृशिमात्रः = दृशिमात्र अर्थात्। चेतनामात्रं = केवल चेतन स्वरूप वाला है। धर्मधर्मिनिरासार्थं = धर्म एवं धर्मी का निराकरण करने के लिये। मात्रग्रहणं = मात्र शब्द का प्रयोग किया गया है। हि = क्योंकि। केचित् = कुछ लोग। चेतनां = चेतना को। आत्मनः = पुरुष का। धर्मं = धर्म। इच्छन्ति = मानते हैं अर्थात् पुरुष धर्मी और चैतन्य उसका धर्म है। पर चेतन पुरुष का स्वरूप ही है, धर्म नहीं। इसी एकता को व्यक्त करने के लिये मात्र शब्द का प्रयोग किया गया है। सः = वह पुरुष। शुद्धः अपि = सर्वथा शुद्ध होने पर भी अर्थात्। परिणामित्वाद्यभावेन = परिणाम, विकार के अभाव में, अपरिणामी, अकर्ता, उदासीन इत्यादि होने पर भी। स्वप्रतिष्ठोऽपि = अपने ही चेतन स्वरूप में प्रतिष्ठित रहने पर भी। प्रत्ययानुपश्यः = बुद्धि की वृत्तियों के अनुरूप देखने वाला होता है। विषयोपरक्तानि = विषयों से अनुरञ्जित, सम्बद्ध। विज्ञानानि = विषयों के ज्ञानवाली, विषयों को ग्रहण करने वाली। प्रत्ययाः = बुद्धिकी वृत्तियाँ। तानि अनु = उन्हीं विषयों से अनुरक्त वृत्तियों के अनुसार अर्थात्। अव्यवधानेन = बिना किसी व्यवधान के। प्रतिसंक्रमाद्यभावेन = प्रतिसंक्रमण इत्यादि के न होने पर भी। पश्यति = देखता है, बुद्धि की वृत्तियों के अनुसार ही देखता है। एतद् उक्तं भवति = यह अभिप्राय है। जातविषयोपरागायां = उत्पन्न हुये विषयों के उपराग वाली, विषयों के राग-सम्बन्ध से युक्त। बुद्धौ = बुद्धि में। एव = ही। सन्निधिमात्रेण = केवल समीपता, सामीप्य के कारण। एव = ही। पुरुषस्य = पुरुष का। द्रष्टृत्वं = द्रष्टा होना है। इति = यह तात्पर्य है अर्थात् बुद्धि के सम्पर्क, सामीप्य लाभ से वह पुरुष भी द्रष्टा हो जाता है, अन्यथा वह चेतन रूप है ॥ २० ॥

स एव भोक्तेत्याह—

सः = वह। एव = ही पुरुष। भोक्ता = भोक्ता है। इति = इसी को। आह = कहते हैं।

तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ॥ २१ ॥

अर्थः—दृश्यस्य = दृश्य का। आत्मा = स्वरूप। तद् अर्थः = उस पुरुष के प्रयोजन के लिये। एव = ही है अर्थात् पुरुष के भोग एवं अपवर्ग रूप द्विविध प्रयोजनों को सम्पन्न करना ही दृश्य का स्वरूप है, उसकी सार्थकता है।

वृत्तिः—दृश्यस्य प्रागुक्तलक्षणस्य य आत्मा यत्[1] स्वरूपं तदर्थ एव; तस्य पुरुषार्थभोक्तृत्वसम्पादनं नाम स्वार्थपरिहारेण प्रयोजनम्; न हि प्रधानं प्रवर्त्तमानम् आत्मनः किञ्चित् प्रयोजनमपेक्ष्य प्रवर्त्तते, किन्तु पुरुषस्य भोक्तृत्वं सम्पादयितुमिति[2] ॥ २१ ॥

प्राक् उक्तलक्षणस्य = पहले बतलाये गये लक्षण वाले। दृश्यस्य = दृश्य का। यः = जो। आत्मा = आत्मा है अर्थात्। यत् = जो। स्वरूपं = स्वरूप है। तदर्थः एव = उस पुरुष के लिये ही है अर्थात्। स्वार्थपरिहारेण = अपने उद्देश्य, प्रयोजन का परिहार, परित्याग कर। तस्य = उस पुरुष का। पुरुषार्थभोक्तृत्वसम्पादनं नाम = भोगरूप पुरुषार्थ को सम्पन्न, पूर्ण करना ही। प्रयोजनं = उद्देश्य है। हि = क्योंकि। प्रवर्त्तमानं = पुरुष के प्रति प्रवृत्त, कार्यरत होने वाली। प्रधानं = प्रकृति। आत्मनः = अपने, स्वकीय। किञ्चित् = किसी। प्रयोजनं = उद्देश्य की। अपेक्ष्य = अपेक्षा करके। न = नहीं। प्रवर्त्तते = प्रवृत्त होती है। किन्तु = परन्तु। पुरुषस्य = पुरुष के। भोक्तृत्वं = भोग को। सम्पादयितुं = सम्पन्न करने के लिए ही। इति = प्रवृत्त होती है, यह अभिप्राय है अर्थात् प्रकृति का अपना कोई भी प्रयोजन नहीं है, वह पुरुष के भोग के लिए ही प्रवृत्त होती है ॥ २१ ॥

यद्येवं पुरुषस्य भोगसम्पादनमेव प्रयोजनं, तदा सम्पादिते तस्मिन् तद् निष्प्रयोजनं विरतव्यापारं स्यात्, तस्मिश्च परिणामशून्ये शुद्धत्वात् सर्वे द्रष्टारो बन्धरहिताः स्युः, ततश्च संसारोच्छेद इत्याशङ्क्याह—

यदि = यदि। एवं = इस प्रकार। पुरुषस्य = पुरुष का। भोगसम्पादनमेव = भोग सम्पन्न करना ही। प्रकृति का। प्रयोजनं = उद्देश्य है। तदा = ऐसी स्थिति

---

१. तत् स्वरूपं; स तदर्थस्तस्य पुरुषस्य (पा०)।

२. भोगं संपादयामीति (पा०)।

में। तस्मिन् = उस भोग के। सम्पादिते = पूर्ण हो जाने पर। तद् = वह प्रधान, प्रकृति। निष्प्रयोजनं = अन्य शेष प्रयोजन के अभाव में। विरतव्यापारं = व्यापार से उपरत। स्यात् = हो जावेगी। च = और। तस्मिन् = उस प्रधान, प्रकृति के। परिणामशून्ये = परिणाम रहित हो जाने पर। सर्वे = सभी। द्रष्टारः = द्रष्टा, पुरुष। शुद्धत्वात् = शुद्ध होने के कारण। बन्धरहिताः=बन्धन से रहित, मुक्त। स्युः = हो जायेंगे। ततश्च = और उनके बाद, इस प्रकार। संसारोच्छेदः = दुःखमय संसार का ही निराकरण, निर्मूल, अभाव हो जायगा। इति = इस प्रकार की। आशङ्क्य = आशङ्का, सन्देह करके। आह = कहते हैं।

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥ २२ ॥

अर्थः—कृतार्थं प्रति = सम्पन्न हुए अर्थ वाले पुरुष के प्रति अर्थात् भोग एवं अपवर्ग रूप द्विविध प्रयोजन की सिद्धि प्राप्त करने वाले पुरुष के प्रति। नष्टमपि = नष्ट होने पर भी। तद् = वह दृश्य। अन्यसाधारणत्वात् = अन्य, दूसरे पुरुषों के लिये साधारण, समान होने के कारण। अनष्टं = नष्ट नहीं होता है, विद्यमान ही रहता है अर्थात् प्रकृति परिणामिनी होने पर भी नित्य है। उसका कभी विनाश नहीं होता। जिस किसी पुरुष का भोग अपवर्ग वह सिद्ध कर देती है अथवा विवेक ख्याति सम्पन्न पुरुष के प्रति वह अपने व्यापार से उपरत हो जाती है, उसे पुनः बन्धनगत नहीं करती। किन्तु अन्य अविवेकी पुरुषों के साथ उसका सम्बन्ध बना ही रहता है। इस प्रकार कभी भी उसका विनाश नहीं होता।

वृत्तिः—यद्यपि विवेकख्यातिपर्य्यन्ताद् भोगसम्पादनात् कमपि कृतार्थं पुरुषं प्रति तन्नष्टं विरतव्यापारं, तथापि सर्वपुरुषासाधारणत्वाद् अन्यान् प्रति अनष्टव्यापारमवतिष्ठते, अतः प्रधानस्य सकलभोक्तृसाधारणत्वाद् न कदाचिदपि विनाशः। एकस्य मुक्तौ वा न सर्वमुक्तिप्रसङ्ग इत्युक्तं भवति ॥ २२ ॥

यद्यपि = यद्यपि। विवेकख्यातिपर्य्यन्ताद् = विवेक ज्ञान उत्पन्न होने तक ही। भोगसम्पादनात् = भोग उपस्थित करने के कारण। उसके पश्चात्। कृतार्थं = अर्थ को प्राप्त कर लेने वाले, प्रयोजन की सिद्धि प्राप्त करने वाले।

कमपि = किसी एक। पुरुषं प्रति = पुरुष के प्रति। तत् = वह दृश्य। नष्टं = नष्ट हो जाता है अर्थात्। विरतव्यापारं = उपरत व्यापार, समाप्त हुये व्यापार वाला होता है अर्थात् उस पुरुष के प्रति प्रकृति अपना व्यापार बन्द कर देती है। तथापि = फिर भी। सर्वपुरुषसाधारणत्वाद् = दृश्य का सभी पुरुषों के लिए समान रूप से होने के कारण। अन्यान् प्रति = अन्य अकृतार्थ अज्ञानी पुरुषों के प्रति। अनष्टव्यापारं = न नष्ट हुए, न उपरत हुए व्यापार वाला वह दृश्य। अवतिष्ठते = विद्यमान रहता है। अज्ञानियों के प्रति प्रकृति का व्यापार चलता ही रहता है। ततः = इसलिए। प्रधानस्य = प्रधान, प्रकृति का। सकलभोक्तृ-साधारणत्वाद् = सभी भोक्ता पुरुषों के लिए साधारण, समान होने के कारण। कदाचिदपि = कभी भी। विनाशः = विनाश। न = नहीं होता। वा=अन्यथा। एकस्य = किसी एक पुरुष के। मुक्तौ = मुक्त हो जाने पर। सर्वमुक्तिप्रसङ्गः = सभी पुरुषों की मुक्ति का प्रसङ्ग, दोष। न = नहीं है। इति उक्तं भवति = यह अभिप्राय है ।। २२ ।।

दृश्य-द्रष्टारौ व्याख्याय संयोगं व्याख्यातुमाह—

दृश्यद्रष्टारौ = दृश्य तथा द्रष्टा का। व्याख्याय = व्याख्यान, वर्णन करके। संयोगं = दोनों के संयोग को। व्याख्यातुं = वर्णन करने के लिये। आह = कहते हैं।

स्व-स्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ।। २३ ।।

अर्थः—स्वस्वामिशक्त्योः = स्वशक्ति दृश्य रूप एवं स्वामिशक्ति पुरुष रूप इन दोनों को। स्वरूपोपलब्धिहेतुः = स्वरूप की प्राप्ति, ज्ञान का हेतु, कारण। संयोगः = संयोग है अर्थात् भोग्य होने से दृश्य स्वशक्ति वाला तथा भोक्ता होने से पुरुष स्वामिशक्ति वाला है। इन्हीं दोनों के भोग्य एवं भोक्ता रूप से स्वरूप की उपलब्धि का हेतु संयोग है। यही संयोग, भोग्यभोक्तृभावसम्बन्ध संसार का कारण है।

वृत्तिः—कार्यद्वारेणास्य लक्षणं करोति। स्वशक्तिर्दृश्यस्य स्वभावः, स्वामिशक्तिर्द्रष्टुः स्वरूपं, तयोर्द्वयोरपि संवेद्य-संवेदकत्वेन व्यवस्थितयोर्या स्वरूपोपलब्धि-

स्तस्याः कारणं यः, स संयोगः ; स[1] च सहजो भोग्य-भोक्तृभावस्वरूपानन्यः, न हि तयोर्नित्ययोर्व्यापकयोः स्वरूपादतिरिक्तः कश्चित् संयोगः, यदेव भोग्यस्य भोग्यत्वं भोक्तुश्च भोक्तृत्वमनादिसिद्धं स एव संयोगः ॥ २३ ॥

कार्यद्वारेण = कार्य के माध्यम से । अस्य = इस संयोग का । लक्षणं = लक्षण, स्वरूप । करोति = बतलाते हैं । स्वशक्तिः = स्वशक्ति । दृश्यस्य = दृश्य, बुद्धि इत्यादि का । स्वभावः = अपना ही स्वभाव, स्वरूप है । स्वामिशक्तिः = स्वामिशक्ति । द्रष्टुः = द्रष्टा पुरुष का । स्वरूपं=स्वरूप है । तयोः द्वयोः = उन्हीं दोनों दृश्य-द्रष्टा का । संवेद्यसंवेदकत्वेन = संवेद्य एवं संवेदक रूप से, ज्ञेय एवं ज्ञाता रूप से । व्यवस्थितयोः = विद्यमान रहने वाले दृश्य द्रष्टा की । यः = जो । स्वरूपोपलब्धिः = स्वरूप का ज्ञान है । तस्याः = उस उपलब्धि, उस ज्ञान प्राप्ति का । यः = जो । कारणं = हेतु है । सः = वही । संयोगः = संयोग है । च = और । सः = वह संयोग । सहजः = सहज स्वाभाविक । [2]भोग्यभोक्तृभावस्व-रूपानन्यः = भोग्य एवं भोक्ता भाव रूप से अन्य, भिन्न नहीं है अर्थात् दृश्य एवं द्रष्टा का संयोग भोग्य-भोक्ता रूप ही है । हि = क्योंकि । नित्ययोः = नित्य । व्यापकयोः = व्यापक । तयोः = उन दोनों दृश्य द्रष्टा का । स्वरूपाद् = स्वरूप, भोग्यभोक्ता से । अतिरिक्तः = पृथक्, भिन्न । कश्चित् = कोई । संयोगः = संयोग । न = नहीं है । यदेव = जो ही । भोग्यस्य = भोग्यदृश्य की । भोग्यत्वं = भोग्यत्व रूप होना, भोग्यता । च = और । भोक्तुः = भोक्ता द्रष्टा पुरुष का । भोक्तृत्वं = भोक्ता होना । अनादिसिद्धं = अनादि काल से ही सिद्ध है । सः एव = वही । संयोगः = संयोग है ॥ २३ ॥

तस्यापि कारणमाह—

तस्य = उस संयोग का । अपि = भी । कारणं = कारण, हेतु । आह = बतलाते हैं ।

---

१. स च सहजभोग्यभोक्तृभावस्वरूपान्नान्यः (पा०) ।

२—भोग्यभोक्तृभावस्वरूपान् नान्यः (पाठभेद) = दृश्य एवं द्रष्टा का संयोग भोग्य एवं भोक्ता रूप से पृथक् नहीं है ।

तस्य हेतुरविद्या ॥ २४ ॥

अर्थः—तस्य = उस दृश्य एवं द्रष्टा के परस्पर संयोग का। हेतुः=कारण। अविद्या = अविद्या है। अपरिणामी, त्रिगुणातीत, असङ्ग, केवल चिन्मात्र पुरुष का अचेतन, परिणामिनी प्रकृति के साथ संयोग में अनादि अविद्या ही कारण है।

वृत्तिः—या पूर्वं विपर्य्यासात्मिका मोहरूपाऽविद्या व्याख्याता (२।४–५), सा तस्य विवेकख्यातिरूपस्य संयोगस्य कारणम् ॥ २४ ॥

या = जिसका। पूर्वं = पहले २।४-५ सूत्र में। विपर्य्यासात्मिका = विपर्यय स्वरूप वाली। मोहरूपा = मोह, अज्ञान रूप। अविद्या = अविद्या का। व्याख्याता = व्याख्यान, निरूपण किया गया है। सा = वही अविद्या। तस्य = उस। अविवेकख्यातिरूपस्य = भेद रूप से प्रतीति न कराने वाले। संयोगस्य = दृश्य तथा द्रष्टा के संयोग का। कारणं = कारण है ॥ २४ ॥

हेयं[1] हानिक्रिया-कर्मोच्यते; किं पुनस्तद्धानम् इत्याह—

हेयं = त्याज्य। हानिक्रियाकर्म = हानि करने वाले कर्म, साधन को। उच्यते = कहते हैं, वर्णन करते हैं। पुनः = फिर। तद् = वह। हानं = हानि। किं = क्या है, हानि का क्या स्वरूप है? इति = इसी के उत्तर में। आह = कहते हैं।

तदभावे संयोगभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम् ॥ २५ ॥

अर्थः—तद् अभावे = उस अविद्या का अभाव हो जाने से। संयोगाभावः = दृश्य एवं द्रष्टा के परस्पर संयोग का अभाव हो जाना ही। हानं = हान है अर्थात्, दुःखों का ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक अभाव है। तद् = वही। दृशेः = द्रष्टा पुरुष का। कैवल्यं = केवल, चिन्मात्रस्वरूप, मोक्ष है अर्थात् विवेकख्याति उत्पन्न होने से अविद्या का पूर्ण अभाव हो जाता है, अविद्या का अभाव होने से तत्कृत, तज्जन्य सभी दुःखों का कारण दृश्य-द्रष्टा का संयोग स्वतः समाप्त हो जाता है। यही संयोग का अभाव ही दुःख की निश्चित रूप से तथा सार्वकालिक

---

१. 'हेयं···कर्मोच्यते' इति वाक्यं पूर्वसूत्रव्याख्यानान्ते केषुचित् संस्करणेषु पठितम्।

निवृत्ति है। इस प्रकार केवल, विशुद्ध चिन्मात्र पुरुष अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, यही कैवल्य, मोक्ष है।

वृत्तिः—अविद्यायाः स्वरूपविरुद्धेन सम्यग्ज्ञानेन उन्मूलिताया योऽयमभावस्तस्मिन् सति तत्कार्य्यस्य संयोगस्याप्यभावः, तत् हानमित्युच्यते। अयमर्थः—नैतस्य[1] अमूर्त्तवस्तुनः विभागो युज्यते, किन्तु जातायां विवेकख्यातौ अविवेकनिमित्तः संयोगः स्वयमेव निवर्त्तत इति तस्य हानं, यदेव च संयोगस्य हानं तदेव नित्यं केवलस्यापि पुरुषस्य कैवल्यं व्यपदिश्यते। तदेवं दृश्यसंयोगस्य स्वरूपं कारणं कार्य्यञ्चाभिहितम् ॥ २५ ॥

स्वरूपविरुद्धेन = अपने स्वरूप से भिन्न, प्रतिकूल। सम्यग्ज्ञानेन = सम्यक् ज्ञान द्वारा। सत्त्वपुरुषान्यताख्याति द्वारा। उन्मूलितायाः = समूल, निःशेष रूप से विनाश की गई। तस्याः = उस। अविद्यायाः = समस्त दुःखों का मूलरूप अविद्या का। यः = जो। अयं = यह। अभावः = अभाव है। तस्मिन् सति = उस अविद्या का अभाव हो जाने पर। तत्कार्य्यस्य = उस अविद्या जन्य कार्य। सयोगस्य = दृश्यद्रष्टा के परस्पर संयोग, एकरूपता, कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि का। अपि = भी। अभावः = अभाव हो जाता है। तत् = वही संयोग का अभाव। हानं = त्रिविध दुःखों का ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक अभाव है। इति = इस रूप से। उच्यते = कहा जाता है। अयम् अर्थः = यह अभिप्राय है। एतस्य = इस। अमूर्त्तवस्तुनः = अमूर्तवस्तु अविद्या का। विभागः = विभाग, पृथक्करण विनाश। न = नहीं। युज्यते = सम्भव है। किन्तु = परन्तु। विवेकख्यातौ = प्रकृति पुरुष के विवेक ज्ञान के। जातायां = उत्पन्न होते ही। अविवेकनिमित्तः = अविद्याके कारण उत्पन्न हुआ। संयोगः = सत्त्व-पुरुष का परस्पर संयोग। स्वयमेव = स्वतः ही, अपने आप ही। निवर्त्तते = निवृत्त, दूर हो जाता है। इति = यही। तस्य = उस संयोग का। हानं=हान, अभाव, सदा के लिये संबन्ध विच्छेद है। च = और। यदेव = जो ही। संयोगस्य = सत्त्वपुरुष के संयोग का। हानं = हानि है। तदेव = वही। कैवल्यस्य = केवल, शुद्ध,

---

१. नैतस्य मूर्तद्रव्यवत् परित्यागो युज्यते (पा०)।

निर्विकार त्रिगुणातीत । पुरुषस्य = पुरुष का । नित्यं = सार्वकालिक । कैवल्यं = मोक्ष । व्यपदिश्यते = कहा जाता है । तद् = वह । एवं = इसलिए, इस प्रकार से । दृश्यसंयोगस्य = दृश्य का द्रष्टा के साथ संयोग का । स्वरूपं = स्वरूप । कारणं = कारण, अनादि अविद्या । च = तथा । कार्य्यं = फल, संयोग के फल का । अभिहितं = वर्णन किया गया ॥ २५ ॥

अथ हानोपायकथनद्वारेण उपादेयकारणमाह—

अथ = अब । हानोपायकथनद्वारेण = दृश्यद्रष्टा के परस्पर संयोग के हान, निवृत्ति के उपाय निरूपण के द्वारा । उपादेयकारणं = उपादेय कारण को । आह = बतलाते हैं ।

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २६ ॥

अर्थः—अविप्लवा = दोषरहित एवं निश्चल । विवेकख्यातिः = दृश्य एवं द्रष्टा का विवेकज्ञान, भेद ज्ञान ही । हानोपायः = हान, मोक्ष का उपाय है । प्रकृति एवं पुरुष के यथार्थ स्वरूप की प्रतीति ही समस्त दुःखों के आत्यन्तिक अभाव में कारण है । विवेक ज्ञान होते ही प्रकृतिकृत सभी दुःखों का सम्बन्ध पुरुष से समाप्त हो जाता है ।

वृत्तिः—अन्ये गुणाः, अन्यः पुरुष इत्येवंविधस्य विवेकस्य या ख्यातिः साऽस्य हानस्य दृश्यदुःखपरित्यागस्योपायः[1] कारणं, कीदृशी ? अविप्लवा—न[2] विद्यते विप्लवो विच्छेदोऽन्तराऽस्युत्थानरूपो[3] यस्याः स अविप्लवा ।

इदमत्र तात्पर्य्यम्—प्रतिपक्षभावनाबलादविद्याप्रलये निवृत्तकर्तृत्व-भोक्तृत्वाभिमानाया रजस्तमोमलानभिभूताया बुद्धेरन्तर्मुखा या चिच्छायासङ्क्रान्तिः सा

१. दृश्यपरित्यागस्य (पा०) ।

२. द्र० "भोजव्याख्यानं तु—'न विद्यते विप्लवो विच्छेदो व्युत्थानरूपो यस्याः, अन्ये गुणा अन्यः पुरुष इति प्रतिपक्षभावनाबलाद् अविद्या प्रविलये निवृत्त-ज्ञातृत्वकर्तृत्वाभिमानाया रजस्तमोम्लानाभिभूताया बुद्धेरन्तर्मुखा या चिच्छक्तिसंक्रान्तिः सा विवेकख्यातिरित्युच्यते" (शिवानन्दकृतयोगचिन्तामणि, पृ० २०) ।

३. व्युत्थान रुपः (पा०)

विवेकख्यातिरुच्यते ; तस्यां च सन्ततत्वेन प्रवृत्तायां सत्यां दृश्यस्याधिकारनिवृत्ते-र्भवत्येव कैवल्यम् ॥ २६ ॥

गुणाः = गुण, प्रकृति सम्बन्धी त्रिगुणात्मक विषय, भोग्यपदार्थ। अन्ये = भिन्न, पृथक् हैं। पुरुषः = द्रष्टा पुरुष। अन्यः = प्रकृति से भिन्न, पृथक् है, केवल, चिद्रूप, त्रिगुणरहित, अपरिणामी, अकर्ता इत्यादि है। इति एवं विधस्य= इस रूप से, इस प्रकार के। विवेकस्य = परस्पर भेद की। या = जो। ख्यातिः= ज्ञान, प्रतीति होती है। सा = वही, दृश्यद्रष्टा की विवेकख्याति, भेदज्ञान। अस्य = इस। हानस्य = हान का, समस्त दुःखों के सार्वकालिक अभाव, मोक्ष का अर्थात्। दृश्यदुःखपरित्यागस्य = दृश्यप्रकृतिसम्बन्धी सभी दुःखों के परित्याग, अभाव का। उपायः = उपाय साधन अर्थात्। कारणं = कारण है। कीदृशी ? = वह विवेक ख्याति किस प्रकार की है ?। अविप्लवा = अविप्लवा है अर्थात् यस्याः = जिस विवेकख्याति का। विप्लवाः = विप्लव। न = नहीं। विद्यते = विद्यमान है अर्थात्। अन्तराऽन्तराऽभ्युत्थानरूपः = मध्य-मध्य में चित्त का अभ्यु-त्थान रूप। विच्छेद (नहीं विद्यमान है) अर्थात् चित्त को बाह्य विषयों में ले जाने वाले विघ्न उपस्थित नहीं होते। सः = वही विच्छेद का अभाव रूप ज्ञान। अविप्लवा = अविप्लवा अविवेकख्याति है। अत्र = इसका। इदं = यह। तात्पर्य्यं= अभिप्राय है। प्रतिपक्षभावनाबलात् = प्रतिकूल भावनाओं का सदा चिन्तन करने से। अविद्याप्रलये = अविद्या का विलय, अभाव हो जाने से। निवृत्तकर्त्तृत्व-भोक्तृत्वाभिमानायाः = कर्त्री एवं भोक्त्री की भावना से रहित हुई। बुद्धेः = बुद्धि की। या = जो। अन्तर्मुखा = बाह्यविषयों के परित्याग से अन्तर्मुखी हुई। चिच्छायासङ्क्रान्तिः = चेतन पुरुष के छाया की संक्रान्ति, चेतन के प्रतिबिम्बरूप बुद्धि की परिणति है। सा = वही। विवेकख्यातिः = विवेकख्याति। उच्यते = कही जाती है। च=और। सन्ततत्वेन = सतत, निरन्तर रूप से। तस्यां = उसी विवेकख्याति के। प्रवृत्तायां सत्यां = प्रवृत्त रहने पर, निर्बाध रूप से विद्यमान रहने पर। दृश्यस्य=दृश्य, प्रकृति सम्बन्धी सभी विषयों के। अधिकारनिवृत्तेः = अधिकार की निवृत्ति, निराकरण हो जाने पर, भेद ज्ञान से विषयों का भोग्य रूप से ग्रहण न होने पर। कैवल्यं = पुरुष का कैवल्य, मोक्ष, सभी दुःखों से

सम्बन्ध विच्छेद। भवति एव = होता ही है ॥ २६ ॥

उत्पन्नविवेकख्यातेः पुरुषस्य यादृशी प्रज्ञा भवति तां कथयन् विवेकख्यातेरेव स्वरूपमाह--

उत्पन्नविवेकख्यातेः=विवेकज्ञान उत्पन्न हो जाने पर। पुरुषस्य = पुरुष की। यादृशी = जिस प्रकार की। प्रज्ञा = प्रज्ञा, बुद्धि। भवति = होती है। तां = उस प्रज्ञा का। कथयन् = स्वरूप बतलाते हुये। विवेकख्यातेः = विवेकख्याति के। एव = ही। स्वरूपं = स्वरूप को। आह = कहते हैं।

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमौ[1] प्रज्ञा ॥ २७ ॥

अर्थः—तस्य = विवेक ज्ञान सम्पन्न उस पुरुष की। प्रान्तभूमौ (भूमिः) = प्रान्तभूमि, उत्कृष्टतम अवस्था में अथवा उत्कृष्टतम अवस्था वाली। प्रज्ञा = प्रज्ञा, बुद्धि। सप्तधा = सातप्रकार, सातविषयों वाली होती है। विवेक ज्ञान से अविद्या का पूर्ण अभाव हो जाने से सात प्रकार की उत्कृष्ट अवस्थाओं वाली प्रज्ञा होती है।

क—कार्यविमुक्तप्रज्ञा :

१. ज्ञेयशून्यावस्था
२. हेयशून्यावस्था
३. प्राप्यप्राप्तावस्था
४. चिकीर्षाशून्यावस्था।

ख—चित्तविमुक्तिप्रज्ञा :

१. चित्तकृतार्थता अवस्था
२. गुणलीन अवस्था
३. आत्मस्थिति अवस्था।

वृत्तिः—[2]तस्योत्पन्नविवेकज्ञानस्य, ज्ञातव्य-विवेकरूपा प्रज्ञा प्रान्तभूमौ

---

१. प्रान्तभूमिः प्रज्ञेति अन्यैः पठ्यते।

२. अत्रत्या भोजवृत्तिः शिवानन्देन अनुसृता--"तद् व्याख्यानं तु उत्पन्नविवेकख्यातेः पुंसः प्रान्तभूमौ सकलसालम्बन-समाधिपर्यन्तप्रज्ञा सप्तविधा भवति। तत्र कार्यविमुक्तिरूपा चतुर्विधा...." (योगचिन्तामणि, पृ० ७८-७९)।

सकल[1]सालम्बनसमाधिपर्य्यन्ते सप्तप्रकारा भवन्तीत्यर्थः ।

तत्र कार्य्यविमुक्तिरूपाश्चतुःप्रकाराः,—ज्ञातं मया ज्ञेयं ज्ञातव्यं किञ्चिदस्ति, क्षीणा मे क्लेशा न किञ्चित् क्षेतव्यमस्ति, अधिगतं मया ज्ञानं, प्राप्ता मया विवेकख्यातिरिति प्रत्ययान्तरपरिहारेण तस्यामवस्थायाम् ईदृश्येव प्रज्ञा जायते । ईदृशी प्रज्ञा कार्य्यविषयं निर्मलं ज्ञानं, कार्य्यविमुक्तिरित्युच्यते ।

चित्तविमुक्तिस्त्रिधा—चरितार्था मे बुद्धिः, गुणा हृताधिकारा गिरिशिखर-निपतिता इव ग्रावाणी न पुनः स्थितिं यास्यन्ति स्वकारणे, प्रविलयाभिमुखानां गुणानां मोहाभिधानमूलकारणाभावाद् निष्प्रयोजनत्वाच्चामीषां कुतः प्ररोहो भवेत् ? [2]स्वस्थीभूतश्च मे समाधिः, तस्मिन् सति स्वरूपप्रतिष्ठोऽहमिति । ईदृशी त्रिप्रकारा चित्तविमुक्तिः । तदेवमीदृश्यां सप्तविधभूमिप्रज्ञायामुपजातायां पुरुषः केवल इत्युच्यते ।। २७ ।।

उत्पन्नविवेकज्ञानस्य=उत्पन्न हुये विवेक ज्ञान वाले, दृश्य द्रष्टा भेदज्ञान वाले । तस्य = उस साधक पुरुष की । ज्ञातव्यविवेकरूपा = जानने योग्य विवेक रूपी । सकलसालम्बनसमाधिपर्य्यन्ते = समस्त आलम्बन-सहित समाधि की सिद्धि तक । प्रान्तभूमौ = प्रान्तभूमि में अथवा उत्कृष्टतम अवस्था वाली । प्रज्ञा = बुद्धि । सप्तप्रकाराः=सात प्रकार की । भवन्ति=होती है । इत्यर्थः=यह अभिप्राय है । विवेकख्याति उत्पन्न होने से उत्कृष्ट अवस्था वाली प्रज्ञा सात प्रकार की होती है । कोई भी विषय इसके लिये ज्ञातव्य नहीं रहते । अतः यही प्रान्तभूमिप्रज्ञा है, यही योगी की जीवन्मुक्त दशा है । तत्र = उन सात भेदों में । कार्यविमुक्ति-रूपाः=कार्य्यविमुक्तिरूप प्रज्ञा । चतुः प्रकाराः=चार प्रकार की होती है । ज्ञेयं= जानने योग्य समस्त विषय । मया = मेरे द्वारा । ज्ञातं =जान लिये गये । किञ्चित् = कुछ । ज्ञातव्यं = जानने के लिए । न = नहीं । अस्ति = शेष है । मे =हमारे । क्लेशाः = अविद्याअस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश रूप पञ्चविध क्लेश । क्षीणाः=क्षीण, नष्ट हो गये हैं । किञ्चित् =कुछ । क्षेतव्यं = क्षीण करने

---

१. सकलालम्बनसमाधिभूमिपर्यन्तं (पा०) ।

२. सात्मीभूतश्च (पा०) ।

के लिए। न = नहीं। अस्ति = शेष है। मया = मेरे द्वारा। ज्ञानं = ज्ञान। अधिगतं = प्राप्तकर लिया गया। मया = मेरे द्वारा। विवेकख्यातिः = प्रकृतिपुरुष भेदज्ञान। प्राप्ता = प्राप्त कर लिया गया। इति = इस रूप से। प्रत्ययान्तरपरिहारेण = दूसरे विषयों के परिहार, निराकरण, अभाव के द्वारा। तस्यां = उस। अवस्थायां = अवस्था में। ईदृशी = इस प्रकार की, कार्य विमुक्तिरूप चार प्रकार की। एव = ही। प्रज्ञा = बुद्धि। जायते = उत्पन्न होती है। ईदृशी = इस प्रकार की, कार्य विमुक्ति रूप चार प्रकार की। प्रज्ञा = प्रज्ञा। कार्य्यविषयं = कार्य विषय सम्बन्धी। निर्मलं = विमल। ज्ञानं = ज्ञान। कार्य्यविमुक्तिः = कार्यविमुक्ति। इति = इस नाम से। उच्यते = कही जाती है। चित्त-विमुक्तिः = चित्त विमुक्ति नामक प्रज्ञा। त्रिधा = तीन प्रकार की होती है। मे = मेरी। बुद्धिः-बुद्धि। चरितार्था= पुरुष के प्रयोजन को सम्पन्न कर चुकी है। गुणाः = गुण। हृताधिकाराः = अधिकार, फल प्रदान करने की शक्ति से रहित हो गये हैं। गिरिशिखरनिपतिता = पर्वत की चोटी से गिरे हुये। ग्रावाणीः = पाषाण की। इव = तरह। पुनः स्थितिं = अपनी पूर्व स्थिति को। न = नहीं। यास्यन्ति = प्राप्त करेंगे। इसी प्रकार। मोहाभिधानमूलकारणाभावात् = अविद्या नामक मूल कारण का अभाव हो जाने से। स्वकारणे = अपने कारण, प्रकृति में। प्रविलयाभिमुखानां = लय की ओर उन्मुख हुये, विलय को प्राप्त होते हुये। गुणानां = गुणों का। निष्प्रयोजनत्वात् = कुछ भी प्रयोजन शेष न रहने से। अमीषां = कृतार्थ हुये इन गुणों का। कुतः = कैसे। अंकुरः = अंकुर, उद्भव। भवेत् = हो सकता है। च = और। मे = मेरी। समाधिः = समाधि। स्वस्थीभूतः = स्वस्थरूप को, सिद्धि को प्राप्त कर ली है अर्थात् चित्त की सभी वृत्तियों का सम्यक् निरोध हो चुका है। तस्मिन् सति = उस समस्त वृत्तिनिरोध रूप समाधि की सिद्धि हो जाने पर। अहं = मैं। स्वरूपप्रतिष्ठः = अपने केवली, चिन्मात्ररूप में विद्यमान हूँ। इति = इस रूप से। ईदृशी = इस प्रकार की। त्रिप्रकारा = तीन भेद वाली प्रज्ञा। चित्तविमुक्तिः = चित्तविमुक्ति प्रज्ञा है। तदेवं = इस प्रकार, इसलिए। ईदृश्यां = इस प्रकार की। सप्तविधभूमिप्रज्ञायां = सात प्रकार की उत्कृष्ट

अवस्था वाली बुद्धि के। उपजातायां = उत्पन्न होने पर। पुरुषः = पुरुष। केवलः = केवली, विशुद्ध, चिन्मात्र, प्रकृति के सम्बन्ध से रहित। उच्यते = कहा जाता है ॥ २७ ॥

विवेकख्यातिः संयोगाभावहेतुरित्युक्तं, तस्यास्तु उत्पत्तौ किं निमित्तम् इत्याह—

विवेकख्यातिः = प्रकृतिपुरुषभेदज्ञान। संयोगाभावहेतुः = दृश्य द्रष्टा के परस्पर संयोग के अभाव का कारण। इति उक्तं = इस रूप से कहा गया। तु = किन्तु। तस्याः=उस विवेकख्याति के। उत्पत्तौ = उत्पत्ति में। किं = क्या। निमित्तं = कारण है। इति = इस कारण को। आह = कहते हैं।

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥ २८ ॥

अर्थः—योगाङ्गानुष्ठानात् = यम, नियम इत्यादि अष्टविध योग के अङ्गों का अनुष्ठान, आचरण करने से। अशुद्धिक्षये = चित्तगत सभी दोषों का पञ्चविध क्लेशों का अभाव होने से। आविवेकख्यातेः = विवेकख्याति, प्रकृति-पुरुष-भेदज्ञान के उदय पर्यन्त। ज्ञानदीप्तिः = ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है। योग के अङ्गों का सतत सेवन करने से चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है, चित्त का विक्षेप नहीं होता। अविद्या-अस्मिता इत्यादि क्लेशों की निवृत्ति हो जाने से ज्ञान के आलोक की प्राप्ति होती है।

वृत्तिः—योगाङ्गानि वक्ष्यमाणानि, तेषामनुष्ठानाज् ज्ञानपूर्वकाभ्यासाद् आविवेकख्यातेरशुद्धिक्षये चित्तसत्त्वस्य प्रकाशावरण[1]रूपक्लेशात्मकाशुद्धिक्षये या ज्ञानदीप्तिः, तारतम्येन सात्त्विकः परिणामो विवेकख्यातिपर्यन्तस्तस्याः ख्यातेर्हेतुरित्यर्थः ॥ २८ ॥

योगाङ्गानि = योग के अङ्ग। वक्ष्यमाणानि = आगे वर्णन किये जाने वाले है। तेषां = उन योगाङ्गों के। अनुष्ठानात् = अनुष्ठान से अर्थात्। ज्ञानपूर्वकाभ्यासात् = ज्ञानपूर्वक अभ्यास, सतत सेवन करने से। आविवेकख्यातेः = विवेक ज्ञान के उत्पन्न होने तक। अशुद्धिक्षये = सभी प्रकार की अशुद्धियों का विनाश

---

१. प्रकाशावरणलक्षणक्लेशरूपाशुद्धिक्षये (पा०)।

हो जाने से अर्थात् । चित्तसत्त्वस्य = सत्त्वगुण बहुल चित्त का । प्रकाशावरणरूप-क्लेशात्मकाशुद्धिक्षये = ज्ञान का आवरण करने वाले अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश रूप पञ्चविध क्लेश रूपी अशुद्धियों का अभाव हो जाने से । या = जो । ज्ञानदीप्तिः = ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है अर्थात् । विवेकख्याति-पर्यन्तः = विवेकज्ञान के उदय होने तक । तारतम्येन = क्रमशः । सात्त्विकः = रजोगुण एवं तमोगुण से अनभिभूत प्रकाशात्मक सत्त्वगुणविशिष्ट । परिणामः = चित्त का परिणाम होता है अर्थात् योगाङ्गों के अनुष्ठान से पञ्चविधक्लेशों का अभाव हो जाता है और दोष रहित विमल चित्त का केवल सात्त्विक परिणाम होता है । इस तरह ज्ञान के आलोक की प्राप्ति होती है । तस्याः = उस । ख्यातेः = विवेकख्याति, प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञान का । हेतुः = योगाङ्ग के अभ्यास से सात्त्विक परिणाम को प्राप्त होने वाला चित्त कारण है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है ॥ २८ ॥

योगाङ्गानामनुष्ठानादशुद्धिक्षय इत्युक्तं, कानि पुनस्तानि योगाङ्गानीति तेषामुद्देशमाह—

योगाङ्गानां = योग के अङ्गों के । अनुष्ठानात् = अनुष्ठान, आचरण से । अशुद्धिक्षयः = सभी अशुद्धियों, क्लेशों का अभाव होता है । इति उक्तं = यह कहा गया । पुनः = फिर । तानि = वे । कानि = कौन-कौन । योगाङ्गानि = योग के अङ्ग हैं । इति = इसलिये । तेषां = उन योगाङ्गों के । उद्देशं = नाम को । आह = कहते हैं ।

यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २९ ॥

अर्थ:—यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयः = यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि नाम वाले योग के । अष्टौ = आठ । अङ्गानि = अङ्ग हैं । योग सिद्धि के यम, नियम, आसन इत्यादि आठ साधन हैं ।

वृत्तिः—इह कानिचित् समाधेः साक्षादुपकारकाणि, यथा धारणादीनि;

कानिचित् प्रतिपक्षभूतहिंसादिवितर्कोन्मूलनद्वारेण समाधिमुपकुर्वन्ति, यथा यमादयः; तत्र आसनादीनामुत्तरोत्तरमुपकारकत्वं, तद् यथा—सत्यासनजये प्राणायामस्थैर्यम्; एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ २९ ॥

इह = इन आठ अङ्गों में। कानिचित् = कुछ अङ्ग। समाधेः = समाधि के। साक्षात् = प्रत्यक्ष रूप से। उपकारकाणि = उपकारक, सहायक हैं। यथा = जैसे। धारणादीनि = धारण, ध्यान इत्यादि। कानिचित् = कुछ अङ्ग। प्रतिपक्षभूतहिंसादिवितर्कोन्मूलनद्वारेण = बाधक रूप से विद्यमान हिंसा इत्यादि वितर्कों का भली भाँति विनाश करके। समाधिं = समाधि का। उपकुर्वन्ति = उपकार करते हैं, समाधि की सिद्धि में सहायता पहुँचाते हैं। यथा = जैसे। तत्र = उनमें, वितर्कों का विनाश करने वाले, समाधि सिद्धि के बाह्यसाधनों में। यमादयः = यम, नियम इत्यादि। आसनादीनां = आसन, प्राणायाम इत्यादि का। उत्तरोत्तरोपकारकत्वं = क्रमशः उत्तर काल के अङ्गों का उपकारक, सहायक होना सिद्ध होता है। तद् यथा = जैसे कि। आसनजये सति = आसन जय हो जाने पर, आसन का स्थिर एवं सुखरूप सिद्ध हो जाने पर ही। प्राणायाम की स्थिरता, सिद्ध होती है। एवं = इसी प्रकार से। उत्तरत्रापि = पश्चात् के योग के अङ्गों में भी। योज्यं = संयोजना करनी चाहिये अर्थात् प्राणायाम की सिद्धि से प्रत्याहार तथा प्रत्याहार से ध्यान की सिद्धि होती है ॥ २९ ॥

क्रमेणैषां स्वरूपमाह—

एषां = योग के इन अष्टाङ्गों के। स्वरूपं = स्वरूप का। क्रमेण=क्रमशः। आह = निरूपण करते हैं।

अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः ॥ ३० ॥

अर्थः—अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहाः=अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह नाम वाले पञ्चविध। यमाः = यम हैं। अष्टाङ्गयोग का प्रथम अङ्ग यम पाँच प्रकार का होता है।

वृत्तिः—तत्र प्राणवियोगप्रयोजनव्यापारो हिंसा, सा च सर्वानर्थहेतुः, तद-

भावोऽहिंसा। हिंसायाः सर्वप्रकारेणैव परिहार्य्यत्वात् प्रथमं तदभावरूपाया अहिंसाया निर्देशः। सत्यं वाङ्मनसोर्यथार्थत्वम्। स्तेयं परस्वापहरणं, तदभावोऽस्तेयम्, ब्रह्मचर्यमुपस्थसंयमः[1]। अपरिग्रहो भोगसाधनानामनङ्गीकारः। ते एतेऽहिंसादयः पञ्च यमशब्दवाच्या योगाङ्गत्वेन निर्दिष्टाः॥ ३०॥

तत्र = उन पञ्चविध यमों में। प्राणवियोगप्रयोजनव्यापारः = शरीर से प्राण को वियुक्त, पृथक् करने के उद्देश्य से किया गया कार्य, चेष्टा। हिंसा = हिंसा है। च = और। सा = वही हिंसा। सर्वानर्थहेतुः = सभी अनर्थों का मूल कारण है। तद् अभावः = उसी हिंसा का अभाव। अहिंसा = अहिंसा है। सर्वप्रकारेण = सभी प्रकार से। एव = ही। हिंसायाः = हिंसा का। परिहार्य्यत्वात् = परित्याग के योग्य, हिंसा के त्याज्य होने के कारण। प्रथमं = सबसे पहले। तद् अभावरूपायाः = उस हिंसा के अभावरूपी। अहिंसायाः = अहिंसा का। निर्देशः = उल्लेख किया गया। वाङ्मनसोः = वाणी तथा मन का। यथार्थत्वं = अर्थ के अनुरूप रहना अर्थात् अर्थ का जैसे स्वरूप है उसी के अनुसार वाणी से कहना तथा मन से वैसा मनन करना ही। सत्यं = सत्य है। परस्वापहरणं = दूसरे के धन का अपहरण करना ही। स्तेयं = स्तेय, चोरी है। तद् अभावः = उस स्तेय का अभाव, दूसरे के धन, सत्त्व का अपहरण न करना ही। अस्तेयं = अस्तेय है। उपस्थसंयमः = उपस्थ इन्द्रिय के संयम को। ब्रह्मचर्य्यं = ब्रह्मचर्य कहते हैं। भोगसाधनानां = उपभोग, आनन्द प्रदान करने वाले साधनों का। अनङ्गीकारः=स्वीकार न करना, ग्रहण न करना ही। अपरिग्रहः= अपरिग्रह है। यमशब्दवाच्याः = यमशब्द के द्वारा कहे जाने वाले। ते = वे। एते = ये, यह। अहिंसादयः = अहिंसा इत्यादि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। पञ्च = पाँच। योगाङ्गत्वेन = योग सिद्धि में अङ्ग, सहायक रूप से। निर्दिष्टाः = वर्णन किये गये हैं॥ ३०॥

एषां विशेषमाह—

एषां = इन पञ्चविध यमों के। विशेषं = विशेषस्वरूप को। आह = बतलाते हैं।

---

१. नियमः (पा०)।

जाति-देश-काल-समयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥३१॥

अर्थः—जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः = अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह नामक पाँचो यम, ब्राह्मणत्व आदि जाति, तीर्थ आदि देश, एकादशी-चतुर्दशी इत्यादि काल एवं ब्राह्मण भोजन इत्यादि समय के अनवच्छिन्न अर्थात् इनके प्रतिबन्ध, सीमा से रहित। सार्वभौमाः = सभी भूमि, अवस्थाओं में होने वाले। महाव्रतं = महाव्रत हो जाते हैं अर्थात् जाति-देश-काल-समय की परिधि से रहित पालन किये जाने पर यम ही महाव्रत हो जाते हैं।

वृत्तिः—जातिर्ब्राह्मणत्वादिः, देशस्तीर्थादिः, कालश्चतुर्दश्यादिः, समयो ब्राह्मणप्रयोजनादिः, एतैश्चतुर्भिरनवच्छिनाः पूर्वोक्ता अहिंसादयो यमाः सर्वासु क्षिप्तादिषु चित्तभूमिषु भवा महाव्रतमित्युच्यते; तद् यथा—ब्राह्मणं न हनिष्यामि, तीर्थे न कञ्चन हनिष्यामि, चतुर्दश्यां न हनिष्यामि, देवब्राह्मणप्रयोजनव्यतिरेकेण कमपि न हनिष्यामि इत्येवं चतुर्विधावच्छेदव्यतिरेकेण किञ्चित् क्वचित् कदचित् कस्मिंश्चिदर्थे न हनिष्यामीत्यनवच्छिन्नाः। एवं सत्यादिषु यथायोगं योज्यम्।

इत्थमनियतीकृताः सामान्येनैव प्रवृत्ता महाव्रतमित्युच्यते, न पुनः [1]परकीय-परिच्छिन्नावधारणम् ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणत्वादिः = ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व इत्यादि। जातिः = जाति है। तीर्थादिः = तीर्थ इत्यादि स्थान। देशः = देश है। चतुर्दश्यादिः = चतुर्दशी, एकादशी इत्यादि। कालः = काल है। ब्राह्मणप्रयोजनादिः = ब्राह्मण प्रयोजन इत्यादि। समयः = समय है। एतैः = इन। चतुर्भिः = जाति-देश-काल-समय चारों से। अनवच्छिनाः = न घिरे हुए, न रोके गये। पूर्वोक्ताः = पहले वर्णन किये गये। अहिंसादयः = अहिंसा इत्यादि, अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य अपरि-ग्रह। यमाः = यम। सर्वासु = सभी। क्षिप्तादिषु = क्षिप्त इत्यादि, क्षिप्त-मूढ़-विक्षिप्त-एकाग्र-निरुद्ध। चितभूमिषु = चित्त की भूमियों में। भवाः = होने वाले, पालन किये जाने पर। महाव्रतं = महाव्रत। इति = इस रूप, नाम से। उच्यते = कहे जाते हैं। तद् यथा = जैसे कि। ब्राह्मणं = ब्राह्मण का। न हनिष्यामि =

---

१. न पुनः परिच्छिन्नावधारणम् (पा०)।

वध नहीं करूंगा। तीर्थे = तीर्थ स्थान में। कञ्चन = किसी को। न हनिष्यामि नहीं मारूँगा। चतुर्दश्यां = चतुर्दशी तिथिकाल में। न हनिष्यामि = किसी का वध नहीं करूँगा। देवब्राह्मणप्रयोजनव्यतिरेकेण = देव तथा ब्राह्मण के उद्देश्य के बिना, देव तथा ब्राह्मण के प्रयोजन के अतिरिक्त अर्थात् इनसे भिन्न प्रयोजन में। कमपि = किसी भी जीव को। न हनिष्यामि = हत्या नहीं करूँगा। इत्येवं = इस प्रकार। चतुर्विधावच्छेदव्यतिरेकेण = चार प्रकार के बाधकों के बिना, इन चार प्रकार के विधान रूप बाधाओं सीमाओं के अभाव में। किञ्चित् = किसी प्राणी को। क्वचित् = किसी भी स्थान पर। कदाचित् = किसी भी काल में। कस्मिश्चित् = किसी। अर्थे = प्रयोजन के लिए। न हनिष्यामि = वध नहीं करूँगा। इति = इस रूप से, यही। अनवच्छिन्नाः = जाति-देश-काल-समय की सीमा से रहित, निस्सीम अहिंसा का पालन है। अतएव यह अहिंसा महाव्रत है। एवं = इसी प्रकार। सत्यादिषु =सत्य इत्यादि में अर्थात् सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह में। यथायोगं = सम्बन्ध के अनुसार। योज्यं = संयोजना, सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। इत्थं = इस प्रकार से। अनियतीकृताः = बिना निश्चय किए गए, सीमा से न बँधे हुए, नियंत्रित न किये गए। सामान्येन = सामान्य, साधारण, स्वाभाविक रूप से। एव=ही। प्रवृत्ताः=प्रवृत्त हुये, पालन किये गये, अहिंसा इत्यादि यम ही। महाव्रतं =महाव्रत। इति = इस रूप, नाम से। उच्यते = कहे जाते हैं। पुनः = फिर। न परकीयपरिच्छिन्नावधारणं = दूसरी आवरण सीमा को न ग्रहण करना ही, इसरूप से पालन किए गये अहिंसा इत्यादि यम की ही संज्ञा महाव्रत है ॥३१॥

नियमानाह—

नियमान् = योग के द्वितीय अङ्ग नियम को। आह = कहते हैं।

शौच-सन्तोष-तपः-स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥३२॥

अर्थः—शौचसन्तोपतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि = शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान ये पाँच। नियमाः = नियम हैं। योग का द्वितीय अङ्ग नियम, शौचसन्तोष इत्यादि रूप से पाँच प्रकार का होता है।

वृत्तिः—शौचं द्विविधं—बाह्यमाभ्यन्तरञ्च; बाह्यं मृज्जलादिभिः कायादिप्रक्षालनम्, आभ्यन्तरं मैत्र्यादिभिश्चित्तमलानां प्रक्षालनम्। सन्तोषस्तुष्टिः। शेषाः प्रागेव (२।१) कृतव्याख्यानाः। एते शौचादयो नियमशब्दवाच्याः॥ ३२॥

शौचं = शौच, पवित्रता। द्विविधं = दो प्रकार की होती है। बाह्यं = बाहरी पवित्रता। च = और। आभ्यन्तरं = आन्तरिक शौच, अन्तःकरण की पवित्रता। मृज्जलादिभिः = मिट्टी, जल इत्यादि से। कायादिप्रक्षालनं = शरीर इत्यादि के अङ्गों का धोना, स्वच्छ करना। बाह्यं = बाहरी स्वच्छता, पवित्रता है। मैत्रादिभिः = मैत्री इत्यादि अर्थात् मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा के द्वारा। चित्तमलानां = चित्त में रहने वाले राग-द्वेष, क्रोध-द्रोह-ईर्ष्या-असूया-मद-मोह-मत्सर-लोभ इत्यादि मलों, कलुषों, अशुद्धियों का। प्रक्षालनं = स्वच्छ, निराकरण करना ही। आभ्यन्तरं = आन्तरिक स्वच्छता, पवित्रता है। तुष्टिः = तुष्टि ही। सन्तोषः = सन्तोष है। अर्थात् स्वकर्तव्य का पालन करते हुये, प्रबन्ध के अनुसार प्राप्त फल से सन्तुष्ट हो जाना, किसी प्रकार की तृष्णा का न होना ही सन्तोष है। शेषाः = शेष नियम के तीन प्रकार तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान। प्रागेव = पहले ही (सूत्र २।१ में)। कृतव्याख्यानाः = किये गये व्याख्यान, वर्णन वाले हैं। एते=ये। शौचादयः = शौच इत्यादि, शौच-सन्तोष-तप-स्वाध्याय-ईश्वर-प्रणिधान पाँचों ही। नियमशब्दवाच्याः = नियम शब्द के द्वारा कहे जाने योग्य हैं। नियम नाम से प्रसिद्ध हैं॥ ३२॥

कथमेषां योगाङ्गत्वमित्याह—

कथं = किस प्रकार से। एषां = इन शौच इत्यादि पाँचों का। योगाङ्गत्वं = योग की सिद्धि में सहायकरूपता है। इत्याह = इसी साहाय्य को कहते हैं।

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्॥ ३३॥

अर्थः—वितर्कबाधने = यम, नियमों के पालन करने में हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य, परिग्रह इत्यादि वितर्कों से बाधा उपस्थित होने पर। प्रतिपक्षभावनं = बराबर प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिए अर्थात् उन्हीं वितर्कों में

दोषदर्शन करना चाहिए। वितर्कों से बाधित होने पर उन्हीं में दोषों की भावना का चिन्तन करना चाहिए।

वृत्तिः—वितर्क्यन्ते इति वितर्का योगपरिपन्थिनो हिंसादयः, तेषां प्रतिपक्ष-भावने सति यदा बाधा भवति, तदा योगः सुकरो भवतीति भवत्येव यम-नियम-योर्योगाङ्गत्वम् ॥ ३३ ॥

वितर्क्यन्ते = जिनके द्वारा विपरीत, प्रतिकूल तर्क, कल्पनाएँ की जाती हैं। इति वितर्काः = उनको वितर्क कहते हैं। योगपरिपन्थिनः = योग की सिद्धि में प्रतिबन्धक, बाधक स्वरूप। हिंसादयः = हिंसा इत्यादि, हिंसा-असत्य-स्तेय-अब्रह्मचर्य-परिग्रह हैं। तेषां = उन वितर्कों की। प्रतिपक्षभावने सति = प्रतिकूल-भावना करने पर, दोषदर्शन के विचार करते रहने पर। यदा = जब। बाधा = वितर्कों की बाधा, निराकरण, निवृत्ति। भवति = हो जाती है। तदा = तब। योगः = योग की सिद्धि। सुकरः = सरल। भवति = हो जाती है। इति = इसलिए। यमनियमयोः = यम और नियम का। योगाङ्गत्वं योग की सिद्धि में अङ्ग, साधन रूप। भवत्येव=होता ही है। योग के अङ्ग के रूप में यमनियमों की सिद्धि होती ही है ॥ ३३ ॥

इदानीं वितर्काणां स्वरूपं भेदप्रकारं फलञ्च क्रमेणाह—

इदानीं = अब। वितर्काणां = वितर्कों के। स्वरूपं = स्वरूप। भेदप्रकारं = भेदप्रकार। च = और। फल = फल को। क्रमेण = क्रमशः। आह = कहते हैं, वर्णन करते हैं।

वितर्का हिंसादयः कृत-कारितानुमोदिता लोभ-क्रोध-मोह-पूर्वका मृदु-मध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्ष-भावनम् ॥ ३४ ॥

अर्थः—हिंसादयः = हिंसा इत्यादि हिंसा-असत्य-स्तेय-अब्रह्मचर्य-परिग्रह रूप। वितर्काः = वितर्क हैं। कृतकारितानुमोदिताः = वे वितर्क तीन प्रकार

के हैं। १—कृत—स्वयं किए गए। २—कारित—प्रेरणा देकर दूसरों से कराये गए। ३—अनुमोदिताः = दूसरों के हिंसा इत्यादि वितर्कों का अनुमोदन करना, अपनी अनुमति से समर्थन करना ही अनुमोदित वितर्क हैं। लोभक्रोध-मोहपूर्वकाः = ये वितर्क लोभ-क्रोध-मोहपूर्वक हैं, लोभजन्य, क्रोधजन्य तथा मोहजन्य हैं। लोभ क्रोध तथा मोह से उत्पन्न होने वाले ये वितर्क हैं। मृदुमध्याधिमात्राः = मृदु, मध्य, अधिमात्र भेद, प्रकार वाले ये वितर्क हैं। दुःखाज्ञानानान्तफलाः = ये वितर्क अनन्त दुःख एवं अनन्त अज्ञान रूप फल प्रदान करने वाले हैं। इति = इस प्रकार के विचार। प्रतिपक्षभावनं = वितर्कों की प्रतिकूल भावना है, उनमें विद्यमान दोषों का दर्शन चिन्तन है अर्थात् ये अहिंसा इत्यादि वितर्क सदैव दुःख एवं अज्ञान ही प्रदान करते हैं, कभी भी इनसे सुख तथा ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। यही विचार वितर्कों की प्रतिकूल भावना है।

वृत्तिः—एते पूर्वोक्ता हिंसादयः प्रथमं त्रिधा भिद्यन्ते, कृत-कारितानुमोदन-भेदेन ; तत्र स्वयं निष्पादिताः कृताः ; 'कुरु कुरु' इति प्रयोजकव्यापारेण समुत्पादिताः कारिताः; अन्येन क्रियमाणाः साध्वङ्गीकृता अनुमोदिताः। एतच्च त्रैविध्यं परस्परं व्यामोहनिराकरणावधारणायोच्यते, अन्यथा मन्दमतिरेवं मन्येत—मया त्वियं न कृतेति नास्ति मे दोषः। एतेषां कारणप्रतिपादनाय लोभ-क्रोध-मोहपूर्वका इति।

यद्यपि लोभः प्रथमं निर्दिष्टः,[1] तथाऽपि सर्वक्लेशानां मोहस्य अनात्मनि आत्माभिमानलक्षणस्य निदानत्वात्, तस्मिन् सति स्व-परविभागपूर्वकत्वेन लोभ-क्रोधादीनामुद्भवाद् मूलत्वमवसेयं, मोहपूर्विका दोषजातिरित्यर्थः। लोभस्तृष्णा, क्रोधः कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकः प्रज्वलनात्मकश्चित्तधर्मः।

प्रत्येकं कृतादिभेदेन त्रिप्रकारा अपि हिंसादयो मोहादिकारणत्वेन त्रिधा भिद्यन्ते। एषामेव पुनरवस्थाभेदेन त्रैविध्यमाह, मृदु-मध्याधिमात्राः। मृदवो मन्दाः, न तीव्रा नापि मन्दा मध्याः, अधिमात्रास्तीव्राः। पाश्चात्त्या नवभेदाः, इत्थं त्रैविध्ये सति सप्तविंशतिर्भवति। मृद्वादीनामपि प्रत्येकं मृदु-मध्याधिमात्र-

---

१. लोभक्रोधौ प्रथमं निर्दिष्टौ (पा०)

भेदात् त्रैविध्यं सम्भवति, तद् यथायोगं योज्यम् । तद् यथा—मृदुमृदुः मृदुमध्यः, मृदुतीव्र इति ।

एषां फलमाह—दुःखाज्ञानानन्तफलाः, दुःखं प्रतिकूलतयाऽवभासमानो राजसश्चित्तधर्मः । अज्ञानं मिथ्याज्ञानं संशय-विपर्य्ययरूपम्; ते दुःखाज्ञाने अनन्तमपरिच्छिन्नं फलं येषां ते तथोक्ताः । इत्थं तेषां स्वरूपकारणादिभेदेन ज्ञातानां प्रतिपक्षभावनया योगिना परिहारः कर्त्तव्य इत्युपदिष्टं भवति ॥ ३४ ॥

एते = ये । पूर्वोक्ताः = पहले निरूपण किये गये । हिंसादयः = हिंसा इत्यादि पन्च वितर्क । प्रथमं = सबसे पहले । कृतकारितानुमोदितभेदेन = कृत, कारित तथा अनुमोदित भेद, प्रकार से । त्रिधा = तीन प्रकार से । भिद्यन्ते = विभक्त होते हैं । तत्र = उन तीन भेदों में । स्वयंनिष्पादिताः = स्वयं, अपनी ही इच्छा से निष्पन्न, पूरे किये वितर्क । कृताः = कृत हैं । 'कुरु कुरु' = करो, करो । इति = इस । प्रयोजकव्यापारेण = प्रेरणा प्रदान करने वाले व्यापार, चेष्टा से । समुत्पादिताः = दूसरों द्वारा उत्पन्न करने वाले व्यापार, चेष्टा से । समुत्पादिताः = दूसरों द्वारा उत्पन्न कराये गये हिंसा इत्यादि वितर्क । कारिताः = कारित हैं । अन्येन = दूसरे मनुष्य के द्वारा । क्रियमाणाः = की गई हिंसा इत्यादि को । साधु = अच्छे हैं, इस रूप से । अङ्गीकृताः = स्वीकार की गई, समर्थन की गई हिंसा इत्यादि । अनुमोदिताः = अनुमोदित वितर्क हैं । च = और । एतत् = यह । त्रैविध्यं = वितर्कों के तीन प्रकार के भेद । परस्परं = परस्पर । व्यामोहनिराकरणावधारणाय = मोह, भ्रम, अज्ञान के निवारण, निवृत्ति के ज्ञान के लिये । उच्यते = कहे जाते हैं अर्थात् वितर्कों के स्वरूप के सम्बन्ध में भ्रम, सन्देह दूर करने के लिए ही तीन भेद कहे जाते हैं । अन्यथा = नहीं तो । मन्दमतिः = अज्ञानी मनुष्य । एवं = इस प्रकार । मन्येत = मान लेगा कि । मया = मेरे द्वारा । तु = तो । इयं = यह हिंसा । न = नहीं । कृता = की गई । इति = इसलिए । मे = मेरा । दोषः = दोष, अपराध, पाप, इस हिंसा में । न = नहीं । अस्ति = है । एतेषां = इन वितर्कों के । कारणप्रतिपादनाय = कारण का प्रतिपादन करने के लिए, इनकी उत्पत्ति बतलाने के लिये । लोभक्रोधमोहपूर्वकाः इति = सूत्र में लोभक्रोध-मोहपूर्वक कहा गया है अर्थात् लोभ, क्रोध, मोह को

इनकी उत्पत्ति का कारण कहा गया है। यद्यपि = यद्यपि। लोभः = लोभ का। प्रथमं = वितर्क की उत्पत्ति में कारण रूप से पहले। निर्दिष्टः = उल्लेख किया गया है। तथापि = फिर भी। अनात्मनि = आत्मा से भिन्न वस्तु में। आत्माभिमानलक्षणस्य = आत्मा का अभिमान करने वाले। सर्वक्लेशानां = अविद्या, अस्मिता इत्यादि पञ्चविध क्लेशों का। मोहस्य = मोह का, अविद्या का। निदानत्वात् = कारण के रूप में होने से। तस्मिन् सति = उस मोह की स्थिति बनी रहने पर। स्वपरविभागपूर्वकत्वेन = स्व एवं पर के विभाग पूर्वक लोभ-क्रोधादीनां = लोभ, क्रोध इत्यादि का। उद्भवाद् = मोह से उत्पन्न होने के कारण। मूलत्वं = मोह को ही लोभ, क्रोध का मूल कारण के रूप में। अवसेयं = निर्णय करना चाहिये। दोषजातिः = सभी प्रकार के दोष। मोहपूर्विका = मोहपूर्वक, मोह से उत्पन्न होने वाले हैं। इत्यर्थः = यह अभिप्राय है। लोभः = लोभ। तृष्णा = तृष्णा है, तृष्णा को ही लोभ कहते हैं। कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकः = कर्त्तव्य एवं अकर्त्तव्य में विवेकबुद्धि, भेदज्ञान का नाश करने वाला। प्रज्वलनात्मकः = दाहात्मक, जलाने वाला, संतप्त करने वाला। क्रोधः = क्रोध। चित्तधर्मः = चित्त का धर्म है। कृतादिभेदेन = कृत इत्यादि भेद से अर्थात् कृत, कारित, अनुमोदित भेद से। त्रिप्रकाराः = तीन प्रकार वाले। हिंसादयः = हिंसा, असत्य इत्यादि पञ्च वितर्क। अपि = भी। प्रत्येकं = प्रत्येक। मोहादिकारणत्वेन = लोभ-क्रोध-मोह से उत्पन्न होने के कारण। पुनः। त्रिधाः = तीन प्रकार से। भिद्यन्ते = विभक्त हो जाते हैं अर्थात् कृत-कारित-अनुमोदित तीन प्रकार के वितर्क लोभ-क्रोध-मोह से उत्पन्न होने के कारण पुनः तीन प्रकार के हो जाते हैं। इस प्रकार इनके ९ भेद होते हैं। १. लोभकृतवितर्क, २. क्रोधकृतवितर्क, ३. मोहकृतवितर्क। ४. लोभकारितवितर्क, ५. क्रोधकारितवितर्क, ६. मोहकारितवितर्क, ७. लोभानुमोदित वितर्क। ८. क्रोधानुमोदितवितर्क, ९. मोहानुमोदितवितर्क। एषामेव = इन नवविध वितर्कों का ही। पुनः = फिर। अवस्थाभेदेन = अवस्था, मात्रा के भेद से। मृदुमध्याधिमात्राः = मृदु, मध्य, अधिमात्र (तीव्र) रूप से। त्रैविध्यं = तीन प्रकार। आह = बतलाते हैं। मृदवः = मृदु अवस्था वाले वितर्क। मन्दाः = मन्द होते हैं। मध्याः = मध्य

अवस्था वाले हिंसा इत्यादि वितर्क। न तीव्राः = तीव्र नहीं होते। नापि मन्दाः = और मन्द भी नहीं होते। अधिमात्राः = अधिमात्र अवस्था वाले वितर्क। तीव्राः = तीव्र होते हैं। पाश्चात्त्याः = पूर्व के बतलाये गये। नवभेदाः = ९ भेद वाले वितर्क। इत्थं = इस प्रकार से अर्थात् मृदु-मध्य-अधिमात्र अवस्था भेद से। त्रैविध्ये सति = तीन प्रकार होने से। सप्तविंशतिः = सत्ताइस प्रकार के। भवन्ति = हो जाते हैं। मृदु आदीनां = मृदु-मध्य-अधिमात्र भेद से तीन प्रकार को। (२७ प्रकार के) वितर्कों का। अपि = पुनः, भी। मृदुमध्याधिमात्रभेदात् = मृदु-मध्य अधिमात्र भेद से। प्रत्येकं = प्रत्येक का। त्रैविध्यं = तीन भेद। सम्भवति = सम्भव है। तद्=वह। यथायोगं = सम्बन्ध के अनुसार। योज्यं = संयोजना करनी चाहिये, जोड़ना चाहिये। तद् यथा = वह इस प्रकार से, जैसे। मृदुमृदु = मृदुमृदुवितर्क। मृदुमध्यः = मृदुमध्यवितर्क। मृदुतीव्रः = मृदुतीव्रवितर्क अथवा मृदु अधिमात्र वितर्क। इति = इस रूप से सम्बन्धित करना चाहिये। एषां = इन वितर्कों के। फलं = फल, परिणाम को। आह = कहते हैं। दुःखाज्ञानानन्तफलाः = ये वितर्क अनन्त दुःख तथा अनन्त अज्ञान रूप फल को देने वाले होते हैं। दुखं = दुःख। प्रतिकूलतया = प्रतिकूल रूप, अनिष्ट रूप, असद्वेदनीय रूप से। अवभासमानः = प्रतीत होने वाला, अनुभव किया जाने वाला। राजसः = रजोगुण सम्बन्धी। चित्तधर्मः = चित्त का धर्म है। संशयविपर्य्ययरूपं = संशय तथा विपर्यय स्वरूप वाला, सन्देह तथा विपरीत स्वरूप वाला। मिथ्याज्ञानं = मिथ्या ज्ञान ही। अज्ञानं = अज्ञान है। दुःखाज्ञाने = दुःख तथा अज्ञान। ते = वे दोनों। अनन्तं = अनन्त अर्थात् अपरिच्छिन्नं = अपरिच्छिन्न, अपरिमित, असीमित। फलं = फल, परिणाम हैं। येषां = जिन वितर्कों के। ते = वे वितर्क। तथोक्ताः = उस प्रकार के अर्थात् सूत्र में "दुःखाज्ञानानन्तफलाः" असीस दुःख और अज्ञान रूप फल को प्रदान करने वाले बतलाये गये हैं। इत्थं = इस प्रकार। स्वरूपकारणादिभेदेन = स्वरूप, प्रकार, उत्पत्ति के कारण, अवस्था भेद, फल इत्यादि के भेद से। ज्ञातानां = जाने गये, अच्छी प्रकार स्वरूपतः ग्रहण किये गये। तेषां = उन हिंसा इत्यादि पञ्च वितर्कों का। प्रतिपक्षभावनया = प्रतिकूल भावना द्वारा, दोषदर्शन द्वारा। परिहारः = वितर्कों का परिहार, निराकरण, निवृत्ति।

कर्त्तव्यः = करना चाहिये। इति = इसलिये। उपदिष्टं भवति = इन वितर्कों का सविस्तार उपदेश, वर्णन किया गया है ॥ ३४ ॥

एषाम् अभ्यासवशात् प्रकर्षमागच्छताम् अनुनिष्पादिन्यः सिद्धयो यथा भवन्ति तथा क्रमेण प्रतिपादयितुमाह--

प्रकर्ष = उत्कर्ष को। आगच्छतां = प्राप्त होते हुये। एषां = इनके। अभ्यासवशात् = अभ्यास करने से, साधना के बल से। अनुनिष्पादिन्यः = वितर्कों के निराकरण के पश्चात् उत्पन्न होने वाली। सिद्धयः = सिद्धियाँ। यथा = जिस प्रकार, जैसे। भवन्ति = प्राप्त हो जाती हैं। तथा = उसी प्रकार, वैसे ही। क्रमेण = क्रमशः। प्रतिपादयितुं = प्रतिपादन, वर्णन करने के लिये। आह = कहते हैं।

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ ३५ ॥

अर्थः—अहिंसाप्रतिष्ठायां = योगी में अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर। तत्सन्निधौ = उस योगी के समीप। वैरत्यागः = परस्पर सभी प्राणी अपनी जन्म-जात शत्रुता का परित्याग कर देते हैं अर्थात् जाति, देश, काल, समय की सीमा से ऊपर उठकर अहिंसा का पालन करने वाले योगी में जब यह अहिंसा की भावना दृढ़ स्थिति को प्राप्त कर लेती हैं, तब उस योगी के समीप सहज, स्वाभाविक विरोधी अहिनकुल, गज-सिंह इत्यादि जीव वैर, द्वेषभाव को छोड़कर मित्रत्व भाव से विचरण करते हैं।

वृत्तिः--तस्य अहिंसां भावयतः, सन्निधौ सहजविरोधिनामप्यहिनकुलादीनां वैरत्यागो निर्मत्सरतयावस्थानं भवति, हिंस्रस्वभावा अपि हिंसां त्यजन्तीत्यर्थः[1] ॥ ३५ ॥

अहिंसां = अहिंसा को। भावयतः = भावना, पालन करने वाले। तस्य = उस योगी के। सन्निधौ = समीप। अहिनकुलादीनां = अहिनकुल इत्यादि। सहजविरोधिनां = सहज स्वभाव से, जन्मजात विरोधी जीवों का। अपि = भी वैरभाव का त्याग, शत्रुता का परित्याग अर्थात्। निर्मत्सरतया = द्वेषभाव से

---

१. हिंस्रा अपि हिंस्रत्वं परित्यजन्तीत्यर्थः (पा०)।

रहित होकर, ईर्ष्याभाव छोड़कर। अवस्थानं = स्थिति। भवति = होती है। हिंस्रस्वभावाः = हिंसक स्वभाव वाले जीव। अपि = भी। हिंसां = परस्पर हिंसा की भावना को। त्यजन्ति = छोड़ देते हैं। इत्यर्थः = यह अभिप्राय है॥ ३५ ॥

सत्याभ्यासवतः किं भवतीत्याह—

सत्याभ्यासवतः = सत्य का सतत सेवन करने वाले योगी को। किं = किस फल की प्राप्ति। भवति = होती हैं। इत्याह = इसे बतलाते हैं।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥

अर्थः—सत्यप्रतिष्ठायां = योगी में सत्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर। क्रियाफलाश्रयत्वं = क्रिया के फल का आश्रय भाव हो जाता है अर्थात् जाति-देश काल-समय से अनवच्छिन्न पालन किए जाते हुए सत्य की सुदृढ़ स्थिति हो जाने पर योगी में क्रिया से उत्पन्न होने वाले फल का आश्रय होता हैं। बिना कार्य किये ही फल प्राप्ति की शक्ति उसमें उद्भूत हो जाती है तथा वरदान से दूसरों को अभिमत फल प्रदान करने की शक्ति उसमें आ जाती है।

वृत्तिः—क्रियमाणा हि क्रिया यागादिकाः फलं स्वर्गादिकं प्रयच्छन्ति[1]। तस्य तु सत्याभ्यासवतो योगिनस्तथा सत्यं प्रकृष्यते, यथा क्रियायामकृतायामपि योगी फलमप्नोति; तद्वचनाद् यस्य कस्यचित् क्रियामकुर्वतोऽपि क्रिया फलं भवतीत्यर्थः ॥ ३६ ॥

क्रियमाणाः हि = की गई, सम्पन्न की गई। यागादिकाः = यज्ञ इत्यादि। क्रियाः = क्रियायें, अनुष्ठान। स्वर्गादिकं = स्वर्ग इत्यादि। फलं = फल को। प्रयच्छन्ति = प्रदान करते हैं। सत्याभ्यासवतः = सत्य का ही सदैव अभ्यास, पालन करनेवाले। तस्य = उस। योगिनः = योगी का। तु = तो। सत्यं = सत्य का पालन। तथा = उस प्रकार का। प्रकृष्यते = उत्कृष्ट, उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेता है। यथा = जैसा कि। क्रियायां = कर्मों, अनुष्ठानों के। अकृतायां = न करने पर। अपि भी। योगी = योगी। फलं = स्व इच्छित

---

१. यागादिका फलं स्वर्गादिकं प्रयच्छति (पा०)।

फल को । आप्नोति = प्राप्त कर लेता है । तद् वचनाद् = सत्याभ्यासी उस योगी के वचन, वरदान से । क्रियां = कर्म को । अकुर्वतः = न करने वाले । यस्य कस्यचित् = जिस किसी पुरुष को । अपि = भी । क्रियाफलं = कर्म करने की फल प्राप्ति । भवति = होती है । इत्यर्थः = यह अभिप्राय है ॥ ३६ ॥

अस्तेयाभ्यासवतः फलमाह—

अस्तेयाभ्यासवतः = अस्तेय का अभ्यास करने वाले योगी को । फलं = प्राप्त होने वाले फल को । आह=कहते हैं ।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥

अर्थः—अस्तेयप्रतिष्ठायां = योगी में अस्तेय की दृढ़ स्थिति हो जाने पर । सर्वरत्नोपस्थानं = उसके लिए सभी प्रकार के रत्नों की उपस्थिति, अभिव्यक्ति होती है अर्थात् पृथिवी में निहित, जल के अन्तराल में अन्तर्हित, विप्रकृष्ट देश में विद्यमान तथा व्यवधानयुक्त सभी रत्न उस अस्तेयनिष्ठ योगी को प्राप्त हो जाते हैं ।

वृत्तिः—अस्तेयं यदाभ्यस्यति, तदास्य तत्प्रकर्षान्निरभिलाषस्यापि सर्वतो दिव्यानि रत्नानि उपतिष्ठन्ते ।। ३७ ।।

यदा = जब । अस्तेयं=अस्तेयं का । अभ्यसति = योगी अभ्यास, सदैव पालन करता है । तदा = तब । तत्प्रकर्षात् = उस अस्तेय अभ्यास की उत्कर्ष अवस्था का दृढ़ स्थिति प्राप्त करने पर । निरभिलाषस्य = अभिलाषा, कामना, इच्छा न रखने वाले । तस्य = उस अस्तेय साधक योगी के लिये । अपि = भी । सर्वतः = सभी स्थानों पर । दिव्यानि = दिव्य, अतिरमणीय, अमूल्य । रत्नानि= रत्न । उपतिष्ठन्ते = उपस्थित, व्यक्त, प्राप्त हो जाते हैं ।। ३७ ।।

ब्रह्मचर्याभ्यासस्य फलमाह--

ब्रह्मचर्याभ्यासस्य = ब्रह्मचर्य के अभ्यास से । फलं = प्राप्त होने वाले फल को । आह = कहते हैं ।

ब्रह्मचर्य्यप्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः ॥ ३८ ॥

अर्थः—ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां = योगी में ब्रह्मचर्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर । वीर्य्यलाभः = सभी प्रकार की शक्तियों का लाभ, प्राप्ति होती है ।

वृत्तिः—यः किल ब्रह्मचर्य्यमभ्यस्यति तस्य तत्प्रकर्षान्निरतिशयं वीर्य्यं सामर्थ्यमाविर्भवति; वीर्य्यनिरोधे हि ब्रह्मचर्य्यस्य प्रकर्षाच्छरीरेन्द्रियमनःसु वीर्य्यं प्रकर्षमागच्छति ॥ ३८ ॥

किल = निश्चय रूप से। यः = जो योगी। ब्रह्मचर्य्यं = ब्रह्मचर्य का। अभ्यस्यति = अभ्यास करता है। तस्य = उस योगी के लिए। तत्प्रकर्षात् = उस ब्रह्मचर्य के उत्कर्ष, दृढ़ अवस्था प्राप्त कर लेने पर। निरतिशयं = अतिशय-रहित, अपरिमित, अत्यधिक। वीर्य्यं = वीर्य अर्थात्। सामर्थ्यं = सामर्थ्य, शक्ति। आविर्भवति = उत्पन्न होती है। हि = क्योंकि। वीर्य्यनिरोधे = वीर्य के निरोध, रोकने पर, संयम करने पर। ब्रह्मचर्य्यस्य = ब्रह्मचर्य के। प्रकर्षात् = आधिक्य, प्रबलता से। शरीरेन्द्रियमनःसु = शरीर, इन्द्रिय तथा मन में। वीर्य्यं = वीर्य, शक्ति, सामर्थ्य, पराक्रम। प्रकर्षं = उत्कर्ष, प्रबल अवस्था को। आगच्छति = प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥

अपरिग्रहस्य फलमाह—

अपरिग्रहस्य = अपरिग्रह के अभ्यास से उत्पन्न होने वाले। फलं = फल को। आह = कहते हैं।

अपरिग्रहस्थैर्य्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ॥ ३९ ॥

अर्थः—अपरिग्रहस्थैर्य्ये = योगी में अपरिग्रह की दृढ़ स्थिति हो जाने पर। जन्मकथन्ता = किस प्रकार का जन्म था। सम्बोधः = अच्छी प्रकार से ज्ञान हो जाता है अर्थात् योगी में अपरिग्रह की प्रकृष्ट अवस्था हो जाने पर उसका पूर्व जन्म किस प्रकार का था, किस योनि में जन्म हुआ था, किस प्रकार के कर्मों को किया था तथा भावी जन्म के स्वरूप का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। अतीत-वर्तमान-अनागत जन्मों के स्वरूप तथा प्रकार के विषय में जिज्ञासा होने पर उनका भली प्रकार से बोध होता है।

वृत्तिः—कथमित्यस्य[1] भावः कथन्ता, जन्मनः कथन्ता जन्मकथन्ता, तस्याः सम्बोध. सम्यग्ज्ञानं, जन्मान्तरे कोऽहमासन् कीदृशः किंकार्य्यकारीति जिज्ञासायां

---

१. कथमो भावः (पा०)।

सर्वमेव सम्यग् जानातीत्यर्थः। न केवलं भोगसाधनपरिग्रह एव परिग्रहः; यावदात्मनः शरीरपरिग्रहोऽपि परिग्रहः, भोगसाधनत्वाच्छरीरस्य; तस्मिन् सति रागानुबन्धाद् बहिर्मुखायामेव प्रवृत्तौ न तात्त्विकज्ञानप्रादुर्भावः।

यदा पुनः शरीरादिपरिग्रहनैरपेक्ष्येण माध्यस्थ्यमवलम्बते, तदा मध्यस्थस्य रागादित्यागात् सम्यग्[1] ज्ञानहेतुर्भवत्येव पूर्वापरजन्मसम्बोधः ॥ ३९ ॥

कथमित्यस्य भावः कथन्ता = कथं इस शब्द का भाव कथन्ता है। जन्मकथन्ता शब्द का अर्थ है; जन्मनः कथन्ता = जन्म की प्रकारता। तस्याः = उसी जन्म की प्रकारता का। सम्बोधः = सम्बोध अर्थात्। सम्यग्ज्ञानं = अच्छी प्रकार ज्ञान होता है। यहाँ पर सर्वप्रथम 'जन्मकथन्तासम्बोधः' समास का विग्रह किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि पूर्व जन्म किस प्रकार का था, उसी का भली-भाँति ज्ञान होता है। जन्मान्तरे = पूर्व जन्म में। अहं = मैं। कः कौन। आसम् = था। अर्थात् किस योनि में उत्पन्न हुआ था। कीदृशः = किस प्रकार का था। किं कार्य्यकारी = किस प्रकार के कार्यों को करने वाला था। इति = इस प्रकार की। जिज्ञासायां = जिज्ञासा, जानने की इच्छा करने पर। सर्वमेव = सभी बातों को। सम्यक् = अच्छी प्रकार से। जानाति = जानता है। इत्यर्थः = यह अभिप्राय है। न केवलं = यहाँ पर न केवल। भोगसाधनपरिग्रहः एव = उपभोग के साधनों का संग्रह ही। परिग्रहः = परिग्रह हैं, परिग्रह कहा जाता है। यावत् = अपितु, जब तक। आत्मनः = स्वकीय। शरीरपरिग्रहः = शरीर का परिग्रह। अपि = भी। परिग्रहः = परिग्रह है। शरीरस्य = शरीर का। भोगसाधनत्वात् = समस्त उपभोगों का साधन होने के कारण। शरीर द्वारा ही सभी पदार्थों का उपभोग सम्पन्न होता है, अतः शरीर भी परिग्रह ही है। तस्मिन् सति = परिग्रह रूप शरीर के विद्यमान रहने पर। रागानुबन्धात् = राग, वासना के अनुबन्धन, आकर्षण के कारण। प्रवृत्तौ = चित्त की वृत्तियों के। बहिर्मुखायामेव = बहिर्मुखी, बाह्य विषयों की ओर गमन करने के कारण। तात्त्विकज्ञानप्रादुर्भावः = यथार्थ, सम्यक् ज्ञान की

---

१. रागादित्यागात्मको ज्ञानहेतुः (पा०)

उत्पत्ति। न = नहीं होती। यदा = जब। पुनः=पुनः, फिर। शरीरादिपरिग्रहनैर-पेक्ष्येण = शरीर इत्यादि के परिग्रह की अपेक्षा न रखने से। माध्यस्थ्यं = मध्यस्थ, उदासीन भाव का। अवलम्बते = वह योगी अवलम्बन करता है, शरीर रक्षा की चिन्ता न करने से यह देह विद्यमान रहे अथवा विनष्ट हो जावे, इस प्रकार अभिलाषा रहित समभावना का ग्रहण जब योगी करता है। तदा = तब। मध्यस्थस्य = उदासीन योगी के लिये। रागादित्यागात्मकः = विषयों तथा शरीर के सम्बन्ध में राग, वासना, अभिलाषा इत्यादि भावनाओं का परित्याग कर देने वाला अपरिग्रह। ज्ञानहेतुः = ज्ञान की उत्पत्ति में कारण। भवति एव = होता ही है। पूर्वापरजन्मसम्बोधः = पूर्व तथा अपर जन्मों का भली प्रकार ज्ञान होता ही है॥ ३९॥

उक्ता यमानां सिद्धयः; अथ नियमानामाह—

यमानां = यमों के पालन से प्राप्त होने वाली। सिद्धयः = सिद्धियाँ। उक्ताः = कहीं गयी। अथ = अब। नियमानां = नियमों के पालन से प्राप्त होने वाली सिद्धियों को। आह = कहते हैं।

शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः॥ ४०॥

अर्थः—शौचात् = शौच के पालन से, योगी में शौच की दृढ़ स्थिति हो जाने से। स्वाङ्गजुगुप्सा = अपने अङ्गों में घृणा की भावना तथा। परैः = दूसरे मनुष्यों के अङ्गों से। असंसर्गः = संसर्ग, संयोग का अभाव होता है। शौच की भावना से शरीर के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है। अतः अपने शरीर के अङ्गों में वैराग्य की भावना तथा अन्य मनुष्यों के साथ संसर्ग की इच्छा नहीं होती।

वृत्तिः—यः शौचं भावयति, तस्य स्वाङ्गेष्वपि कारणस्वरूपपर्य्यालोचनद्वारेण जुगुप्सा घृणा समुपजायते; अशुचिरयं कायो नात्राग्रहः कार्य्य इतिः अमुनैव हेतुना परैरन्यैश्च कायवद्भिरसंसर्गः सम्पर्काभावः, संसर्गपरिवर्जनमित्यर्थः। यः किल स्वमेव कायं जुगुप्सते तत्तदवद्यदर्शनात्, स कथं परकीयैस्तथाभूतैश्च कायैः संसर्ग-मनुभवति ?॥ ४०॥

यः = जो योगी । शौचं = शौच, बाह्य-अन्तः पवित्रता की । भावयति = भावना, पालन करता हैं । तस्य = उस योगी को । कारणस्वरूपपर्य्यालोचन-द्वारेण = शरीर के कारण के यथार्थ स्वरूप का सम्यक् दर्शन, ज्ञान हो जाने से । स्वाङ्गेषु = अपने अङ्गों में । अपि = भी । जुगुप्सा = जुगुप्सा अर्थात् । घृणा = घृणा । समुपजायते = उत्पन्न होती है । अयं = यह । कायः = शरीर, देह । अशुचिः = अपवित्र है । अत्र = इस शरीर में । आग्रहः = आशक्ति । न = नहीं । कार्य्यः = करनी चाहिये । इति = इस प्रकार अपने ही अङ्गों में जुगुप्सा की भावना उत्पन्न होती है । च = और । अमुना एव = इस ही, इसी । हेतुना = कारण से शरीर के स्वरूप ज्ञान से । परैः = पर अर्थात् । अन्यैः = अन्य मनुष्यों के । कायवद्भिः = शरीरों से । असंसर्गः = असंसर्ग अर्थात् । सम्पर्काभावः = सम्पर्क, संयोग का अभाव होता है । संसर्गपरिवर्जनं = संसर्ग, सङ्ग का परित्याग होता है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है । तत्तद् = शरीर में उन-उन । अवद्यदर्शनात् = दोषों के दर्शन के कारण । यः किल = निश्चय ही जो योगी । स्वयमेव = अपने ही । कायं = शरोर से । जुगुप्सते = घृणा करता है । च = और । सः = वही योगी । तथाभूतैः = उसी प्रकार के, उन्हीं दोषों से युक्त । परकीयैः = दूसरे मनुष्यों के । कायैः = शरीरों के साथ । कथं = किस प्रकार से । संसर्गं = ससर्ग सुख का । अनुभवति ? = अनुभव कर सकता है ? अर्थात् इस प्रकार का योगी दूसरे के शरीर के अङ्गों से घृणा ही करेगा, उसके सम्बन्ध में कभी भी सुख का अनुभव नहीं करेगा ।। ४० ।।

शौचफलान्तरमाह—

शौचफलान्तरं = शौच पालन से प्राप्त होने वाले दूसरे फल को । आह = कहते हैं ।

सत्त्वशुद्धि-सौमनस्यैकाग्रतेन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ।।४१

अर्थ—च = और । सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्रतेन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि = शौच के पालन से, योगी में शौच की दृढ स्थिति हो जाने से बुद्धि की शुद्धता, मन की प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियजय तथा आत्मा के साक्षात्कार की योग्यता उत्पन्न होती है अर्थात् जलप्रक्षालन से बाह्य तथा मैत्री-

करुणा-मुदिता-उपेक्षा इत्यादि भावनाओं से राग-द्वेष-क्रोध-लोभ-मोह इत्यादि अन्तः के कलुष, दोष दूर हो जाते हैं। इस प्रकार शौच के अभ्यास से बुद्धि विमल हो जाती है, चित्त समाहित हो जाता है। इन्द्रियों पर विजय हो जाती है तथा आत्मा के स्वरूप दर्शन की योग्यता आ जाती है।

वृत्तिः—भवन्तीति वाक्यशेषः। सत्त्वं प्रकाश-सुखाद्यात्मकं, तस्य शुद्धी रजस्तमोभ्यामनभिभवः। सौमनस्यं खेदाननुभवेन मानसी प्रीतिः। एकाग्रता नियतविषये चेतसः स्थैर्य्यम्। इन्द्रियजयो विषयपराङ्मुखाणामिन्द्रियाणाम् आत्मन्यवस्थानम्। आत्मदर्शने विवेकख्यातिरूपे, चित्तस्य योग्यत्वं समर्थत्वम्। शौचाभ्यासवत एव एते सत्त्वशुद्ध्यादयः क्रमेण प्रादुर्भवन्ति; तथा हि—सत्त्वशुद्धेः सौमनस्यं, सौमनस्यादेकाग्रता, एकाग्रताया इन्द्रियजयः, तस्मादात्मदर्शनयोग्यतेति ॥ ४१ ॥

भवन्ति इति वाक्यशेषः = 'भवन्ति' यह वाक्य शेष है, सूत्र के साथ इसका सम्बन्ध होना चाहिये अर्थात् शौच के अभ्यास से क्रमशः इन फलों की प्राप्ति होती है। सत्त्वं = बुद्धि। प्रकाशसुखाद्यात्मकं = प्रकाश तथा सुख इत्यादि स्वरूप वाली है अथात् 'सत्वं लघुप्रकाशकमिष्ट' सत्त्व गुण लघु तथा पदार्थों को प्रकाशित करने वाला है। अतः सत्त्वगुण विशिष्ट होने के कारण बुद्धि प्रकाशित करने वाली, पदार्थों को ग्रहण करने वाली तथा सुख स्वरूप है। रजस्तमोभ्यां = रजोगुण तथा तमोगुण से। अनभिभवः = अभिभूत न होना ही। तस्य = उस बुद्धि की। शुद्धिः = शुद्धता है। खेदाननुभवेन = खेद का अनुभव, प्रतीति न होने से। मानसी प्रीतिः = मानसिक प्रसन्नता होना ही। सौमनस्यं = सौमनस्य है। नियतविषये = निश्चित विषय में। चेतसः = चित्त की। स्थैर्य्य = स्थिरता ही। एकाग्रता = एकाग्रता है। विषयपराङ्मुखाणां = शब्दस्पर्शरसगन्धरूप विषयों से पराङ्मुख, प्रतिकूल, दूर हुई, विषयों का परित्याग करने वाली। इन्द्रियाणां = इन्द्रियों की। आत्मनि = आत्मा में। अवस्थानं = स्थित होना, प्रतिष्ठित होना ही। इन्द्रियजयः = इन्द्रियजय है। विवेकख्यातिरूपे = प्रकृतिपुरुषभेदज्ञान रूप। आत्मदर्शने = आत्मा के साक्षात्कार में। चित्तस्य = चित्त की। समर्थत्वं = सामर्थ्य होना ही।

योग्यत्वं = योग्यता है, योगी में आत्म-साक्षात्कार कीयोग्यता है। शौचाभ्यासवतः = शौच का अभ्यास करने वाले योगी को। एव= ही। एते = ये। सत्त्वशुद्ध्यादयः = बुद्धि की शुद्धता इत्यादि। क्रमेण = क्रमशः। प्रादुर्भवन्ति = उत्पन्न होते हैं। तथाहि = जैसे की। सत्त्वशुद्धेः = बुद्धि की शुद्धता हो जाने पर। सौमनस्यं = मन की प्रसन्नता होती हैं। सौमनस्यात् = मन की प्रसन्नता होने से। एकाग्रता = चित्त की एकाग्रता होती है। एकाग्रतायाः = चित्त की एकाग्रता से। इन्द्रियजयः = इन्द्रियजय होता है, इन्द्रियाँ वश में ही जाती हैं। तत्पश्चात् = उस इन्द्रियजय से। आत्मदर्शनयोग्यता = आत्मा के साक्षात्कार की योग्यता उत्पन्न होती है। इति = इस प्रकार शौच के अभ्यास से इन फलों की प्राप्ति होती है ॥ ४१ ॥

सन्तोषाभ्यासस्य[1] फलमाह—

सन्तोषाभ्यासस्य = सन्तोष का पालन करने वाले योगी को प्राप्त होने वाले। फलं = फल को। आह = कहते हैं।

सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः ॥ ४२ ॥

अर्थः—सन्तोषात् = संतोष के अभ्यास, पालन से। अनुत्तमः = सर्वोत्तम, सर्व श्रेष्ठ। सुखलाभः = सुख, आनन्द की प्राप्ति हीती है।

वृत्तिः—सन्तोषप्रकर्षेण योगिनस्तथाविधमान्तरं सुखमाविर्भवति, यस्य बाह्यं विषयसुखं[2] शतांशेनापि न समम् ॥ ४२ ॥

सन्तोषप्रकर्षेण = सन्तोष के उत्कर्ष, प्रबलता, दृढ़ स्थिति से। योगिनः = योगी को। तथाविधं = उस प्रकार का। आन्तरं = अन्तः। सुखं = सुख, आनन्द। आविर्भवति = उत्पन्न होता है, अनुभव होता है। तस्य = जिस सुख के। शतांशेन = सौवें भाग के। समं = बराबर, समान। बाह्यं = बाहरी। विषयसुखं = विषयों के उपभोग से प्राप्त होने वाला सुख। न=नहीं है ॥ ४२ ॥

तपसः फलमाह—

१. सन्तोषाभ्यासवतः (पा०)।

२. बाह्यं सुखं लेशेनापि (पा०)।

तपसः = तप के अभ्यास से प्राप्त होने वाले। फलं = फल को। आह = कहते हैं।

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ ४३ ॥

अर्थः—तपसः = तप के अभ्यास से। अशुद्धिक्षयात् = रागद्वेषक्रोधमोह, तथा अविद्या इत्यादि क्लेश रूपी अशुद्धियों का विनाश हो जाने से। कायेन्द्रियसिद्धिः = शरीर तथा इन्द्रिय सम्बन्धी सिद्धियों की प्राप्ति होती हैं। तप के प्रभाव से लावण्य, सौन्दर्य, वज्रसंहतत्त्व, अणिमा, महिमा इत्यादि कायसंपत् तथा सूक्ष्म-विप्रकृष्ट-व्यवहित-अन्तर्हित, अतीत-वर्तमान-अनागत सभी विषयों को ग्रहण करने वाली इन्द्रियसंपत् की सिद्धि होती है।

वृत्तिः—तपः समभ्यस्यमानं चेतसः क्लेशादिलक्षणाशुद्धिक्षयद्वारेण कायेन्द्रियाणां सिद्धिप्रकर्षमादधाति। अयमर्थः—चान्द्रायणादिना चित्तक्लेशक्षयः, तत्क्षयादिन्द्रियादीनां सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्टदर्शनादिसामर्थ्यमाविर्भवति, कायस्य यथेच्छमणुत्व-महत्त्वादीनि ॥ ४३ ॥

समभ्यस्यमानं = अच्छी प्रकार से अभ्यास किया जाता हुआ। तपः = तप। चेतसः = चित्त से। क्लेशादिलक्षणाशुद्धिक्षयद्वारेण = अविद्या, अस्मिता इत्यादि पञ्चविध क्लेश रूपी अशुद्धियों के विनाश द्वारा। कायेन्द्रियाणां = शरीर तथा इन्द्रियों की। सिद्धिप्रकर्षं = सिद्धि की उत्कृष्ट अवस्था को। आदधाति = धारण करता है, प्रदान करता है। अयमर्थः = यह अभिप्राय है। चान्द्रायणादिना = चान्द्रायण इत्यादि व्रत, तप के सेवन से। चित्तक्लेशक्षयः = चित्त में रहने वाले अविद्या इत्यादि क्लेशों का विनाश होता है। तत्क्षयात् = चित्त से क्लेशों का अभाव हो जाने से। इन्द्रियादीनां = इन्द्रिय इत्यादि की। सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टदर्शनसामर्थ्यं = सूक्ष्म, व्यवधान युक्त दूर देश विद्यमान पदार्थों को देखने की सामर्थ्य, शक्ति, योग्यता। आविर्भवति = उत्पन्न होती हैं। कायस्य = शरीर की। यथेच्छं = इच्छा के अनुसार। अणुत्वमहत्त्वादीनि = अणु रूप सूक्ष्म रूप तथा महद् रूप प्राप्त करने की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है ॥ ४३ ॥

स्वाध्यायस्य फलमाह—

स्वाध्यायस्य = स्वाध्याय के अभ्यास करने से प्राप्त होने वाले। फलं = फल को। आह = बतलाते हैं।

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ॥ ४४ ॥

अर्थः—स्वाध्यायात् = स्वाध्याय का अभ्यास करने से, स्वाध्याय की दृढ़ स्थिति होने से। इष्टदेवतासम्प्रयोगः = अभीष्ट, अभिमत देवता की भली प्रकार प्राप्ति, अच्छी प्रकार साक्षात्कार होता है। स्वाध्याय से इष्टदेवता का प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

वृत्तिः—अभिप्रेतमन्त्रजपादिलक्षणे स्वाध्याये प्रकृष्यमाणे योगिन इष्टया अभिप्रेतया[1] देवतया सम्प्रयोगो भवति, सा देवता प्रत्यक्षा भवतीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

अभिप्रेतमन्त्रजपादिलक्षणे = अभिमत, अभीष्ट मन्त्र के जप, पाठ इत्यादि रूप। स्वाध्याये = स्वाध्याय के। प्रकृष्यमाणे = उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त कर लेने पर। योगिनः = योगी का। इष्टायाः = इष्ट अर्थात्। अभिप्रेतायाः = अभिमत, अभिलषित। देवतायाः = देवता का। सम्प्रयोगः = संयोग, सम्बन्ध। भवति = होता है। सा = वह। देवता = देवता। प्रत्यक्षा भवति = उस स्वाध्यायी योगी के लिए प्रत्यक्ष होती है। इत्यर्थः = यह अभिप्राय है। स्वाध्याय से प्रसन्न होकर वह देव उस योगी को प्रत्यक्ष दर्शन देता है ॥ ४४ ॥

ईश्वरप्रणिधानस्य फलमाह—

ईश्वरप्रणिधानस्य = ईश्वरप्रणिधान से प्राप्त होने वाले। फलं = फल को। आह = बतलाते हैं।

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ ४५ ॥

अर्थः—ईश्वरप्रणिनात् = ईश्वरप्रणिधान से ईश्वर में विशेषभक्ति होने से; शरणागति, समस्त कर्मों की समर्पण बुद्धि से। समाधिसिद्धिः = समाधि की सिद्धि होती है। ईश्वरप्रणिधान से सभी बाधाओं, अन्तरायों का निराकरण हो जाता है और शीघ्र ही योगी को सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि हो जाती है।

---

१. इष्टाया अभिप्रेताया देवतायाः (पा०)।

वृत्तिः—ईश्वरे यत् प्रणिधानं भक्तिविशेषस्तस्मात् समाधेरुक्तलक्षणस्याविर्भावो भवति, यस्मात् स भगवानीश्वरः प्रसन्नः सन्नन्तरायरूपाम् क्लेशान् परिहृत्य समाधिं सम्बोधयति ।। ४५ ।।

ईश्वरे = ईश्वर में । यत् = जो । प्रणिधानं = प्रणिधान है अर्थात् । भक्तिविशेषः = विशेष प्रकार की भक्ति है । तस्मात् = उस भक्ति विशेष वाली । समाधेः = समाधि का । आविर्भावः = उदय, उत्पत्ति । भवति = होती है । यस्मात् = क्योंकि । सः = वह । भगवान् = समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न । ईश्वरः = ईश्वर । प्रसन्नः सन् = योगी की भक्ति से प्रसन्न होकर । अन्तरायरूपान् = व्यवधान, विघ्नरूपी । क्लेशान् = अविद्या इत्यादि पञ्चविध क्लेशों का । परिहृत्य = परिहार, दूर करके । समाधिं = समाधि का । सम्बोधयति = अच्छी प्रकार से उस योगी के लिये बोध कराता है, उसकी सम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध करता है ।। ४५ ।।

यमनियमानुक्त्वा आसनमाह––

यमनियमान् = यम और नियमों का । उक्त्वा = वर्णन करके । आसनं = योग के तृतीय सङ्ग, आसन को । आह = कहते हैं ।

स्थिरसुखमासनम् ।। ४६ ।।

अर्थः—स्थिरसुखं = स्थिरभाव से, निश्चल रूप से तथा सुखपूर्वक बैठने को । आसनं = आसन कहते हैं । अथवा जिसके द्वारा स्थिरता तथा सुख की प्राप्ति हो, वह आसन है ।

वृत्तिः––आस्यतेऽनेनेत्यासनं पद्मासन-दण्डासन-स्वस्तिकादि; तद् यदा स्थिरं निष्कम्पं, सुखमनुद्वेजनीयञ्च भवति तदा योगाङ्गतां भजते ।। ४६ ।।

अनेन = इसके द्वारा । आस्यते = स्थिरभाव से तथा सुखपूर्वक बैठा जाता है । इति = इसलिये । आसनं = इसे आसन कहते हैं । यथा । पद्मासनदण्डासनस्वस्तिकादि = पद्मासन, दण्डासन, स्वस्तिकासन इत्यादि । तद् = वह आसन । यदा = जब । स्थिरं = स्थिर अर्थात् । निष्कम्पं = कम्परहित, निश्चल । च = और । सुखं = सुखस्वरूप अर्थात् । अनुद्वेजनीयं = पीड़ा न देने वाला ।

भवति = होता है। तदा = तब वह आसन। योगाङ्गतां योग के अङ्ग के रूप में, योगसिद्धि में सहायक रूप को। भजते = प्राप्त होता है, निश्चल तथा सुख-रूप आसन ही योग की सिद्धि में सहायता प्रदान करता है ॥ ४६ ॥

तस्यैव स्थिर-सुखप्राप्त्यर्थमुपायमाह--

तस्यैव = उसी आसन की। स्थिरसुखप्राप्त्यर्थं = स्थिरता तथा सुख प्राप्ति के लिये। उपायं = उपाय को। आह = बतलाते हैं।

प्रयत्नशैथिल्यानन्त्य[1]समापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

अर्थः—प्रयत्नशैथिल्यानन्त्यसमापत्तिभ्यां = शारीरिक चेष्टाओं की शिथिलता, न्यूनता तथा अनन्त आकाश में चित्त को समाहित, एकाग्र करने से वह आसन सिद्ध होता है अर्थात् स्थिर तथा सुखस्वरूप होता है। इस अनन्त शब्द के अनन्त आकाश अनन्त परमात्मा, ईश्वर, अनन्त शेषनाग इत्यादि अर्थ किये जाते हैं। आसन की स्थिरता एवं सुख रूपता के लिए किसी स्थिर पदार्थ में ध्यान लगाना चाहिये और इस प्रकार भगवान् अनन्त शेषनाग ही सबसे अधिक स्थिर हैं, जिनके सुस्थिर सहस्रों फणों पर समस्त ब्रह्माण्ड स्थित है। पर भोज-राज ने अनन्त शब्द का अर्थ आकाश ही लिया है।

वृत्तिः—तदासनं प्रयत्नशैथिल्येन आनन्त्यसमापत्त्या च स्थिरं सुखं भवतीति सम्बन्धः। यदा-यदा 'आसनं बध्नामीति' इच्छां करोति, प्रयत्नशैथिल्येऽपि अक्लेशेनैव तदा तदासनं सम्पद्यते, यदा चाकाशादिगते आनन्त्ये चेतसः समापत्तिः क्रियतेऽवधानेन[2] तादात्म्यमापद्यते, तदा देहाहङ्काराभावान्नासनं दुःखजनकं भवति। अस्मिंश्चासनजये सति समाध्यन्तरायभूता न प्रभवन्ति अङ्गमेजय-त्वादयः ॥ ४७ ॥

तदा = तब। आसनं = आसन। प्रयत्नशैथिल्येन = शरीरगत प्रयत्नों,

---

१. द्र०—तत्र आनन्त्येति भावप्रत्ययान्तपाठ इति भोजदेवः·······अनन्तसमापत्तिभ्यामिति भावप्रत्ययरहितः सूत्रपाठ इति भाष्यसंप्रदायः (शिवानन्दकृत योग-चिन्तामणि, पृ० १५२)।

२. अव्यवधानेन (पा०)।

प्रयासों, चेष्टाओं की शिथिलता, कम करने से। च = और। आनन्त्यसमापत्त्या = अनन्त आकाश में ध्यान लगाने से। स्थिरं = स्थिर, निश्चल। सुखं = सुखमय पीडा न देने वाला। भवति = होता है। इति सम्बन्धः = यह सम्बन्ध, अभिप्राय है।

यदा यदा = जब-जब। 'आसनं बध्नामि' = आसन बाँधता हूँ, लगाता हूँ, अभ्यास करता हूँ। इति = इस रूप से। इच्छां = इच्छा को। करोति = योगी करता है। तदा तदा = तब तब। प्रयत्नशैथिल्येऽपि = शारीरिक चेष्टाओं के शिथिल हो जाने पर भी। अक्लेशेन = बिना क्लेश, पीड़ा के। एव = ही। आसनं = आसनं। सम्पद्यते = सिद्ध हो जाता है, स्थिर तथा सुखरूप हो जाता है। च = और। यदा = जिस समय। आकाशादिगते = आकाश इत्यादि सम्बन्धी। आनन्त्ये = अनन्त पदार्थ में। चेतसः = चित्त की। समापत्तिः = ध्यान, एकाग्रता। क्रियते = की जाती है अर्थात्। अव्यवधानेन = बिना किसी व्यवधान, बाधा के। तादात्म्यं = तद्‌रूपता, तदाकाराकारिता। आपद्यते = प्राप्त हो जाती है। तदा = तब, उस समय। देहाहङ्काराभावात् = कर्तृत्व, भोक्तृत्व इत्यादि देहगत अहं भाव के अभाव, निराकरण हो जाने से। आसनं = आसन। दुःखजनकं=दुःखदायी, दुःख उत्पन्न करने वाला। न = नहीं। भवति= होता है। च = और। अस्मिन् = इस। आसनजये सति = आसन की सिद्धि हो जाने पर अर्थात् स्थिर एवं सुखरूप आसन के हो जाने पर। समाध्यन्तरायभूताः = समाधि की सिद्धि में बाधा पहुँचाने वाले। अङ्गमेजयत्वादयः = दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व इत्यादि। न = नहीं। प्रभवन्ति = उत्पन्न होते हैं अर्थात् आसन की सिद्धि हो जाने पर अङ्गों में कम्पन, दुःख, दौर्मनस्य इत्यादि समाधि के विघ्न उपस्थित नहीं होते हैं ॥ ४७ ॥

तस्यैवानुनिष्पादि[1]फलमाह—

तस्यैव = उसी आसन की सिद्धि के। अनुनिष्पादितं = पश्चात् प्राप्त होने वाले। फलं = फल को। आह = कहते हैं।

---

१. अनुनिष्पादितं (पा०)।

ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥ ४८ ॥

अर्थः—ततः = उस आसन की सिद्धि हो जाने से। द्वन्द्वानभिघातः = शीत-ऊष्ण, क्षुत्पिपासा इत्यादि द्वन्द्वों से आघात, पीड़ा नहीं होती। स्थिर एवं सुखरूप आसन के हो जाने पर योगी को शीत-ऊष्ण आदि द्वन्द पीड़ित नहीं करते।

वृत्तिः—तस्मिन्नासनजये सति द्वन्द्वैः शीतोष्णक्षुत्तृष्णादिभिर्योगी नाभिहन्यत इत्यर्थः ॥ ४८ ॥

तस्मिन् = उस स्थिर एवं सुखमय। आसनजये सति = आसन की सिद्धि हो जाने पर। शीतोष्णक्षुत्तृष्णादिभिः = शीत-ऊष्ण, क्षुधापिपासा इत्यादि। द्वन्द्वैः = द्वन्द्वों से। योगी = योगी। न = नहीं। अभिहन्यते = पीड़ित होता है। इत्यर्थः = यह अभिप्राय है। आसनजय से बिना पीड़ा के द्वन्द्वों को सहन करने की शक्ति योगी में उत्भूत हो जाती है तथा द्वन्द्व उसके चित्त को चञ्चल बनाकर योग-सिद्धि में विघ्न उपस्थित नहीं करते। ॥ ४८ ॥

आसनजयादनन्तरं प्राणायाममाह—

आसनजयात् = आसन की सिद्धि हो जाने के। अनन्तरं = पश्चात् अभ्यास किये जाने वाले। प्राणायामं = प्राणायाम को। आह = कहते हैं।

तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥४९॥

अर्थः—तस्मिन् सति = स्थिर तथा सुखस्वरूप उस आसन की सिद्धि हो जाने पर। श्वासप्रश्वासयोः = श्वास, प्राण वायु का शरीर में प्रवेश करना तथा प्रश्वास, प्राण वायु का शरीर से बाहर निकलना, श्वास-प्रश्वास की। गति-विच्छेदः = गति, स्वाभाविक गति, आगमन-निर्गमन का रोक देना, धारण करना ही। प्राणायामः = प्राणायाम है। आसन की सिद्धि हो जाने के बाद श्वास एवं प्रश्वास रूप प्राणवायु की स्वाभाविक गति का धारण करना ही प्राणायाम है।

वृत्तिः—आसनस्थैर्य्ये सति तन्निमित्तकप्राणायामलक्षणो योगाङ्गविशेषोऽनुष्ठेयो भवति। कीदृशः? श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदलक्षणः; श्वास-प्रश्वासौ

निरुक्तौ (१।३१), तयोस्त्रिधा रेचन-स्तम्भन[1] पूरणद्वारेण बाह्याभ्यन्तरेषु स्थानेषु गते प्रवाहस्य विच्छेदो धारणं, प्राणायाम उच्यते ॥ ४९ ॥

आसनस्थैर्य्ये सति = आसन के स्थिर, निष्कम्प हो जाने पर। तन्निमित्तक-प्राणायामलक्षणः = उस आसन की सिद्धि के पश्चात् होने वाला प्राणायाम रूप। योगाङ्गविशेषः = योग का विशेष अङ्ग। अनुष्ठेयः = अनुष्ठान, अभ्यास के योग्य। भवति = होता है अर्थात् आसनजय के पश्चात् ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये, इससे पूर्व नहीं। कीदृशः ? = उस प्राणायाम का स्वरूप किस प्रकार का है ? श्वासप्रश्वासयोः = श्वास तथा प्रश्वास की। गतिविच्छेदलक्षणः= स्वाभाविक गति का निरोधरूप, धारण लक्षण वाला वह प्राणायाम है अर्थात् श्वास तथा प्रश्वास के स्वच्छन्द प्रवाह को रोकना, धारण करना ही प्राणायाम है। श्वासप्रश्वासौ = श्वास तथा प्रश्वास दोनों का। निरुक्तौ १।३१ = प्रथम पाद के ३१ वें सूत्र में वर्णन किया गया है अर्थात् "प्राणो यद् बाह्यं वायुमाचामति स श्वासः, यत्कौष्ठ्यं वायुं निःश्वसिति स प्रश्वासः"—बाह्य प्राणवायु का शरीर के भीतर नासिका रन्ध्र से प्रवेश श्वास तथा अन्तः प्राण वायु का नासिकारन्ध्र से बाहर जाना ही प्रश्वास है। तयोः = उन श्वास-प्रश्वास दोनों की। रेचनस्तम्भनपूरणद्वारेण = रेचक-स्तम्भक-पूरक द्वारा। त्रिधा = तीन प्रकार से। बाह्याभ्यन्तरेषु = बाह्य-नासिकाग्र भाग, आभ्यन्तर-अन्तः, भीतर हृदय, नाभि चक्र इत्यादि। स्थानेषु = शरीर के स्थानों में। गतेः = गति का अर्थात्। प्रवाहस्य = प्रवाह, स्वच्छन्द, स्वाभाविक प्रवाह का। विच्छेदः = विच्छेद अर्थात्। धारणं = धारण करना। प्राणायामः = प्राणायाम। उच्यते = कहा जाता है। शरीर के बाह्य अथवा अन्तः स्थानों में श्वास-प्रश्वास रूप प्राण-वायु का धारण करना ही प्राणायाम है ॥ ४९ ॥

तस्यैव सुखावगमाय विभज्य स्वरूपं कथयति—

तस्यैव = उसी प्राणायाम के। सुखावगमाय = सुखपूर्वक, सुगमता, सरलता से समझने के लिये। विभज्य = विभाग करके। स्वरूपं = स्वरूप को। कथयति = कहते हैं।

---

[1] [illegible] (पाठ) ।

स तु बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिदेशकालसङ्ख्याभिः
परिदृष्टो दीर्घ-सूक्ष्मः ।। ५० ।।

अर्थ—सः तु = वह प्राणायाम तो । बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिः = बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति तथा स्तम्भवृत्ति वाला होता है । जो । देशकालसङ्ख्याभिः=देश—शरीर के नासिकाग्र, हृदयकमल इत्यादि बाह्य-आभ्यन्तर प्रदेश । काल—प्राण-धारण की अवधि तथा । सङ्ख्याभिः—संख्या—श्वासप्रश्वास की स्वाभाविक गति की संख्या द्वारा । परिदृष्टः = भली प्रकार देखा जाता हुआ, परीक्षित होता हुआ । दीर्घसूक्ष्मः = दीर्घ तथा सूक्ष्म, अधिक अवधि तक तथा हलका होता जाता है ।

वृत्तिः—बाह्यवृत्तिः श्वासो रेचकः, अन्तर्वृत्तिः प्रश्वासः पूरकः, आन्तर-स्तभवृत्तिः[1] कुम्भकः, तस्मिन् जलमिव कुम्भे निश्चलतया प्राणा अवस्थाप्यन्ते इति कुम्भकः । त्रिविधोऽयं प्राणायामः देशेन कालेन सङ्ख्यया चोपलक्षितो दीर्घ-सूक्ष्मसंज्ञो भवति ।

देशोपलक्षितो यथा नासाद्वादशान्तादि ।[2] कालोपलक्षितो यथा षट्त्रिंशन्मात्रा-दिप्रमाणः । सङ्ख्ययोपलक्षितो यथा इयतो वारान् कृत एतावद्भिः श्वास-प्रश्वासैः प्रथम उद्घातो भवतीति एतज्-ज्ञानाय सङ्ख्याग्रहणमुपात्तम् । उद्घातो नाम नाभिमूलात् प्रेरितस्य वायोः शिरस्यभिहननम्[3] ।। ५० ।।

बाह्यवृत्तिः = बाह्य वृत्ति वाला । श्वासः = श्वास । रेचकः = रेचक कहा जाता है । अन्तर्वृत्तिः = आभ्यन्तरवृत्ति वाला । प्रश्वासः = प्रश्वास । पूरकः = पूरक कहा जाता है । आन्तरस्तम्भवृत्तिः = आन्तरस्तम्भवृत्तिवाला । कुम्भकः = कुम्भक कहा जाता है अर्थात् शरीर के बाह्य अथवा आभ्यन्तर, किसी प्रदेश पर प्राण की स्वाभाविक गति का धारण करना स्तम्भवृत्ति है और यही कुम्भक

---

१. अन्तस्तम्भवृतिः (पा०) ।

२. नासादेशान्तादिः, नासादेशान्तादौ (पा०) ।

३. द्र०—प्राणापानव्यानोदानसमानानां सकृद् उद्गमनं मूर्धानमाहत्य निवृत्ति-श्चोद्घातः (मोक्षकाण्डोद्धृतं देवलवचनम्, पृ० १७०) ।

प्राणायाम है। तस्मिन् = उसमें, कुम्भक दशा में। कुम्भे = कुम्भ, घट में। जलमिव = जल के समान। प्राणाः = प्राण, वायु। निश्चलतया = स्थिरता पूर्वक। अवस्थाप्यन्ते = स्थापित किये जाते हैं। इति = इस लिये। कुम्भकः = इसे कुम्भक कहते हैं। त्रिविधः = तीन प्रकार का। अयं = यह। प्राणायामः = प्राणायाम। देशेन = देश से। कालेन = काल से। च = और। सङ्ख्यया = संख्या के द्वारा। उपलक्षितः = अच्छी प्रकार से देखा गया, परीक्षित किया जाता हुआ। दीर्घसूक्ष्मसंज्ञः = दीर्घ तथा सूक्ष्म रूप का। भवति = होता है। देशोपलक्षितः = देश के द्वारा देखा जाता हुआ। यथा = जैसे। नासाप्रदेशान्तादि=नासिका देश के अग्र भाग में प्राण वायु धारण की गई है। कालोपलक्षितः= काल, समय के द्वारा देखा जाता हुआ। यथा = जैसे। षट्त्रिंशन्मात्रादिप्रमाणः = समय की छत्तीस मात्रा के प्रमाण में प्राण वायु धारण की गई। सङ्ख्यया = संख्या के द्वारा। उपलक्षितः = देखा जाता हुआ। यथा = जैसे। इयतः = इतनी। वारान् = बार, इतनी संख्या में। एतावद्भिः = इतने। श्वासप्रश्वासैः = श्वासप्रश्वासों के द्वारा। कृतः = किया गया। प्रथमः = पहला। उद्घातः = उद्घात। भवति = होता है। इति = इस प्रकार संख्या के द्वारा परीक्षा की जानी चाहिये। एतज्ज्ञानाय = इसी ज्ञान के लिये, श्वासप्रश्वास के उद्घात ज्ञान के लिये ही। सङ्ख्याग्रहणं = संख्या का ग्रहण, विचार। उपात्तं = बतलाया गया है। नाभिमूलात् = नाभिमूल से। प्रेरितस्य = प्रेरित की गई। वायोः = प्राणवायु का। शिरसि = शिर में। अभिहननं = अभिघात, संघर्ष करना ही। उद्घातो नाम = उद्घात शब्द का अर्थ है॥ ५० ॥

त्रीन् प्राणायामानभिधाय चतुर्थमभिधातुमाह—

त्रीन् = तीन प्रकार के। प्राणायामान् = प्राणायामों को। अभिधाय = कहकर, वर्णन करके। चतुर्थं = चतुर्थ प्रकार के प्राणायाम को। अभिधातुं = कहने के लिये। आह = कहते हैं।

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः[1] ॥ ५१ ॥

---

१. २।५०–५१ सूत्रयोर्यद्व्याख्यानं कृतं शिवानन्देन तत् सर्वथा भोजानुसारीति दृश्यते।

अर्थः—बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी = बाह्य तथा आभ्यन्तर विषयों का आक्षेप अतिक्रमण, परित्याग करने वाला प्राणायाम। चतुर्थः = चतुर्थ प्रकार का है।

वृत्तिः—प्राणस्य बाह्यो विषयो नासाद्वादशान्तादिः[1] आभ्यन्तरो विषयो हृदयनाभिचक्रादिः, तौ द्वौ विषयौ आक्षिप्य पर्य्यालोच्य* यः स्तम्भरूपी गतिविच्छेदः स चतुर्थः प्राणायामः। तृतीयस्मात् कुम्भकाद् अयमस्य विशेषः—स बाह्याभ्यन्तरविषयौ अपर्य्यालोच्यैव सहसा तप्तोपलनिपतितजलन्यायेन युगपत् स्तम्भवृत्त्या[2] निष्पाद्यते; अस्य तु विषयद्वयाक्षेपको[3] निरोधः। अयमपि पूर्ववद् देशकालसङ्ख्याभिरुपलक्षितो द्रष्टव्यः ॥ ५१ ॥

प्राणस्य = प्राण वायु के। बाह्यः = बाहरी। विषयः = विषय। नासादेशान्तादिः = नासिकाग्र इत्यादि देश, स्थान हैं। आभ्यन्तरः = भीतरी। विषयः = विषय। हृदयनाभिचक्रादिः = हृदय, नाभिचक्र इत्यादि हैं। तौ = उन। द्वौ = दोनों बाह्य तथा आभ्यन्तर। विषयौ = विषयों को। आक्षिप्य = आक्षेप, परित्याग करके अर्थात्। पर्य्यालोच्य = भली प्रकार सम्यक् रूप से विचार करके। यः = जो। स्तम्भरूपी = स्तम्भन, धारण रूप। गतिविच्छेदः = श्वास प्रश्वास प्राणवायु की गति का निरोध है। सः = वह। चतुर्थः = चतुर्थ प्रकार का। प्राणयामः = प्राणायाम है। तृतीयस्मात् = तृतीय प्रकार के प्राणायाम। कुम्भकाद् = कुम्भक से। अस्य = इस चतुर्थ प्रकार के प्राणायाम का। अयं = यह। विशेषः = विशेषतः, भेद है। सः = वह तृतीय प्रकार का कुम्भक प्राणायाम। बाह्याभ्यन्तरविषयौ = बाह्य तथा आभ्यन्तर विषयों का। अपर्य्यालोच्य = बिना पर्यालोचन, विचार के। एव = ही। सहसा = एकाएक। तप्तोपलनिपतिजलन्यायेन = संतप्त, तपे हुए पत्थर पर गिरे हुए जल के समान। युगपत् = एक साथ। स्तम्भवृत्त्या = स्तम्भवृत्ति के द्वारा। निष्पाद्यते = सम्पन्न,

---

१. नासाप्रवेशान्तादिः, नासाद्वादशान्तादौ (पा०)।

२. निष्पद्यते (पा०)।

३. विषयापेक्षको, विषयद्वयापेक्षको (पा०)।

सिद्ध होता है। अस्य = इस चतुर्थ प्रकार के प्राणायाम का। तु = तो। विषय-द्वयाक्षेपकः = बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकारके विषयों का आक्षेप; परित्याग रूप। निरोधः = निरोध होता है अर्थात दोनों प्रकारके विषयों के परित्याग के बाद प्राणवायु की धारणा होती है। अयं = यह चतुर्थ प्रकार का प्राणायाम। अपि—भी। पूर्ववद् = पूर्वके रेचक-पूरक-कुम्भक के समान। देशकाल-सङ्ख्याभिः = देश, काल तथा संख्याके द्वारा। उपलक्षितः = परीक्षित किया जाता हुआ। द्रष्टव्यः = दीर्घ तथा सूक्ष्म रूप से देखना चाहिये अथात् यह चतुर्थ प्रकार का प्राणायाम भी देश-काल-संख्याके द्वारा भली प्रकार से देखा जाता हुआ क्रमशः दीर्घ सूक्ष्म होता जाता है ॥ ५१ ॥

चतुर्विधस्यास्य फलमाह—

चतुर्विधस्य = चार प्रकार वाले। अस्य = इस प्राणायाम के। फलं = फल को। आह = बतलाते हैं अर्थात् चतुर्विध प्राणायाम के अभ्यास से प्राप्त होने वाले फलका निरूपण करते हैं।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥

अर्थः—ततः = चतुर्विध उस प्राणायाम के अभ्यास से। प्रकाशावरणं = प्रकाश, ज्ञान का आवरण, निरोधक। क्षीयते = क्षीण हो जाता है अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान का अवरोध करने वाले ढकने वाले, अविद्या, अस्मिता इत्यादि क्लेशों का क्रमशः क्षय होता जाता है और इस प्रकार प्रकृति-पुरुषविवेकख्याति की उपलब्धि होती है।

वृत्तिः—ततः तस्मात् प्राणायामात् प्रकाशस्य चित्तसत्त्वगतस्य यदावरणं क्लेशरूपं तत् क्षीयते विनश्यतीत्यर्थः ॥ ५२ ॥

ततः तस्मात् = ततः का अर्थ है तस्मात् उस। प्राणायामात् = प्राणायाम के अभ्यास से। प्रकाशस्य = प्रकाशका अर्थात्। चित्तसत्त्वगतस्य = सत्त्वगुण-विशिष्ट चित्त में रहने वाला। क्लेशरूपं = अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष अभिनिवेश नाम वाला क्लेशरूपी। यत् = जो। आवरणं = आवरण, अवरोधक, ढकने वाला है। तत् = वह आवरण। क्षीयते = क्षीण होता है अर्थात्। विनश्यति = नष्ट हो जाता है। इत्यर्थः = यह अभिप्राय है। अविद्या ही ज्ञानका आवरण है

और प्राणायामके अभ्यास से आवरण स्वरूप इस अविद्या का क्रमशः विनाश होता जाता है ।। ५३ ।।

फलान्तरमाह—

फलान्तरं = प्राणायाम के अभ्यास से प्राप्त होने वाले दूसरे फल को। आह = कहते हैं।

धारणासु च योग्यता मनसः ।। ५३ ।।

अर्थः—च = और प्राणायाम के अभ्यास से। धारणासु = धाराणाओं में। मनसः = मन की। योग्यता = योग्यता हो जाती है अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से किसी भी अभिमत पदार्थ में मन को एकाग्र करने की सामर्थ्य आ जाती है। बिना प्रयास के अनायास ही मन चञ्चलता का परित्याग करके ध्येय पदार्थ में स्थिर हो जाता है।

वृत्तिः—धारणा वक्ष्यमाणलक्षणा, तासु प्राणायामैः क्षीणदोषं मनो यत्र धार्य्यते तत्र तत् स्थिरीभवति न विक्षेपं भजते ।। ५३ ।।

वक्ष्यमाणलक्षणा ३।१ = आगे तृतीय पाद के प्रथम सूत्र में स्वरूप निरूपण, वर्णन किये जाने वाली। धारणा = धारणा है। तासु = उन धाराणाओं में। प्राणायामैः = प्राणायाम के अभ्यास द्वारा। क्षीणदोषं = क्षीण हुये दोषों वाला, अविद्या इत्यादि मलिनताओं से रहित। मनः = मन। यत्र = जिस पदार्थ में। धार्य्यते = धारण किया जाता है, स्थिर, एकाग्र किया जाता है। तत्र = उसी पदार्थ में। तत् = वह क्षीण दोषों वाला मन। स्थिरीभवति = स्थिर, एकाग्र हो जाता है। विक्षेपं = विक्षेप को। न = नहीं। भजते = प्राप्त होता है ।। ५३ ।।

प्रत्याहारस्य लक्षणमाह—

प्रत्याहारस्य = प्रत्याहार के। लक्षण = लक्षण, स्वरूप को। आह = कहते हैं।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ।। ५४ ।।

अर्थः—स्वविषयासम्प्रयोगे = अपने विषय के साथ सम्प्रयोग, सम्बन्ध न होने पर। इन्द्रियाणां=इन्द्रियों का। चित्तस्वरूपानुकारः इव = चित्त स्वरूप के अनुसार सा हो जाना ही। प्रत्याहारः = प्रत्याहार है अर्थात् अपने अपने विषयों का परित्याग करने वाली इन्द्रियाँ जो चित्त के स्वरूप सी, तद्रूप सी, हो जाती हैं, वही प्रत्याहार है।

वृत्तिः—'इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रतीपमाह्रियन्तेऽस्मिन्' इति प्रत्याहारः, स च कथं निष्पद्यत इत्याह—चक्षुरादीनामिन्द्रियाणां स्वविषयो रूपादिः, तेन सम्प्रयोगः तदाभिमुख्येन वर्त्तनं, तदभावस्तदाभिमुख्यं परित्यज्य स्वरूपमात्रेऽव-स्थानं तस्मिन् सति चित्तमात्रानुकारिणीन्द्रियाणि भवन्ति, यतश्चित्तमनुवर्तमानानि मधुकरराजमिव [1]मक्षिकाः सर्वाणीन्द्रियाणि प्रतीयन्ते, अतश्चित्तनिरोधे तानि प्रत्याहृतानि भवन्ति, तेषां तत्स्वरूपानुकारः प्रत्याहार उक्तः ॥ ५४ ॥

इन्द्रियाणि = श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-रसन-घ्राण इत्यादि इद्रियाँ। विषयेभ्यः=शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध रूप अपने अपने विषयों से। प्रतीपं = विपरीत प्रतिकूल, विमुख। आह्रियन्ते = लाई जाती हैं। अस्मिन् = इसमें, इस साधना, व्यापार में। इति = इसलिये। प्रत्याहारः = उसे प्रत्याहार कहते हैं। च = और। सः = वह प्रत्याहार। कथं = किस प्रकार। निष्पद्यते = निष्पन्न, प्राप्त, सिद्ध होता है। इत्याह = इसी को कहते हैं। चक्षुरादीनां = चक्षु इत्यादि। इन्द्रि-याणां = इन्द्रियों के। स्वविषयः=अपने अपने विषय। रूपादिः = रूप इत्यादि हैं। तेन = उस विषय से। सम्प्रयोगः = सम्प्रयोग अर्थात्। तदाभिमुख्येन = उस विषय के अभिमुख, ओर, तरफ। वर्त्तनं = व्यवहार, गमन करना है। तद् अभावः = उसका अभाव अर्थात् सम्प्रयोग का अभाव, विलोम असम्प्रयोग है। वह असम्प्रयोग। तद् आभिमुख्यं = उन रूप इत्यादि विषयों की ओर गमन को। परित्यज्य = छोड़कर। स्वरूपमात्रे = अपने शुद्ध, केवल स्वरूप में। अवस्थानं= अवस्थित, विद्यमान होना है। तस्मिन् सति = विषयों का परित्याग करके अपने स्वरूप में विद्यमान रहने पर। चित्तमात्रानुकारीणि = केवल, शुद्धि, निर्विकार चित्तका अनुगमन करने वाली। इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ हो जाती हैं। यतः =

---

१. मधुमक्षिकाः (पा०)।

जिससे, जिस कारण से, मधुकरराजमिव मक्षिकाः = रानी मधुमक्षिका का सदैव अनुगमन करने वाली मधुमक्षिकाओं के समान ही। चित्तमनुवर्तमानानि=चित्त का अनुवर्तन, अनुगमन करने वाली। सर्वाणि = सभी। इन्द्रियाणि-इन्द्रियाँ। प्रतीयन्ते = अपने अपने रूप इत्यादि विषयों से प्रतिकूल, विमुख लाई जाती हैं। अतः = इसलिये। चित्तनिरोधे = चित्त की वृत्तियों के निरोध हो जाने पर। तानि = वे श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-रसन-घ्राण इत्यादि इन्द्रियाँ। प्रत्याहृतानि = शब्द-स्पर्श-रूपरसगन्ध इत्यादि विषयों से प्रतिकूल, विमुख लाई गई, दूर की गई। भवन्ति = होती हैं। तेषां = उन इन्द्रियों का। तत्स्वरूपानुकारः = चित्त के स्वरूप के अनुसार हो जाना ही। प्रत्याहारः = प्रत्याहार, योग का एक अङ्ग विशेष। उक्तः = कहा गया है ॥ ५४ ॥

प्रत्याहारफलमाह—

प्रत्याहारफलं = प्रत्याहार के अभ्यास से प्राप्त होने वाले फल को। आह= कहते हैं।

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्[1] ॥ ५५ ॥

अर्थः—ततः = उस प्रत्याहार के अभ्यास से। इन्द्रियाणां = श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-रसन-घ्राण इत्यादि इन्द्रियों की। परमा = परम, अत्यन्त अधिक, उत्कृष्ट, पूर्णरूप से। वश्यता = वशीकारिता होती है अर्थात् इन्द्रियाँ सर्वथा उस योगी के वश में हो जाती हैं, उन पर पूर्ण निग्रह हो जाता है।

वृत्तिः—अभ्यस्यमाने हि प्रत्याहारे तथा वश्यानि आयत्तानीन्द्रियाणि सम्पद्यन्ते, यथा बाह्यविषयाभिमुखतां नीयमानान्यपि न यान्ति इत्यर्थः ॥ ५५ ॥

प्रत्याहारे = प्रत्याहार के। अभ्यस्यमाने हि = अभ्यास किये जाने पर, उसकी दृढ़ स्थिति हो जाने पर। इन्द्रियाणि = सभी इन्द्रियाँ। तथा = उस प्रकार से, इतना अधिक। वश्यानि = वश में। आयत्तानि = आयत्त, आधीन, निगृहीत। सम्पद्यन्ते = हो जाती हैं। यथा = कि। बाह्यविषयाभिमुखतां =

---

१. २।५४-५५ सूत्रयोर्यद् व्याख्यानं कृतं शिवानन्देन तत् सर्वथा भोजानुसारीति दृश्यते।

बाह्य विषयों की ओर । नीयमानानि = ले जाये जाने पर । अपि = भी । न = नहीं । यान्ति = जाती हैं । इत्यर्थः = यह अभिप्राय है अर्थात् प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियाँ इतनी अधिक वश में हो जाती हैं कि बाह्य विषयों में ले जाने पर भी नहीं जातीं । वे सर्वथा विषयों से उपरत ही रहती हैं ।। ५५ ।।

तदेवं [1]प्रथमपादोक्तलक्षणस्यायोगस्याङ्गभूतक्लेशतनूकरणफलं क्रियायोगमभिधाय, क्लेशानामुद्देशं स्वरूपं कारणं क्षेत्रं फलञ्चोक्त्वा, कर्मणामपि भेदं कारणं स्वरूपं फलञ्चाभिधाय, विपाकस्य कारणं स्वरूपञ्चाभिहितम् ।

ततस्त्याज्यत्वात् क्लेशादीनां ज्ञानव्यतिरेकेण त्यागस्य अशक्यत्वाज् ज्ञानस्य च शास्त्रायत्तत्वाच् शास्त्रस्य हेय-हानकारणोपादेयोपादानकारणबोधकत्वेन चतुर्व्यूहत्वाद् हेयस्य हानव्यतिरेकेण स्वरूपानिष्पत्तेर्हानसहितं चतुर्व्यूहं स्वस्वकारणसहितमभिधाय, उपादेयकारणभूताया विवेकख्यातेः कारणभूतानामन्तरङ्ग-बहिरङ्गभावेन स्थितानां यमादीनां स्वरूपं फलसहितं व्याकृत्य, आसनादीनां धारणापर्य्यन्तानां परस्परमुपकार्य्योपकारकभावेनावस्थितानामुद्देशमभिधाय, प्रत्येकं लक्षणकरणपूर्वकं फलमभिहितम् ।

तदयं योगो यम-नियमादिभिः प्राप्तबीजभावः, आसन-प्राणायामैरङ्कुरितः, प्रत्याहारेण पुष्पितः, ध्यान-धारणा-समाधिभिः फलिष्यतीति व्याख्यातः साधनपादः ।

तदेवं = इस प्रकार । प्रथमपादोक्तयोगस्य = प्रथम समाधिपाद में वर्णन किये गये 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' १।२ योग के । अङ्गभूतक्लेशतनूकरणं = अङ्गस्वरूप तथा अविद्याअस्मिता २।३ इत्यादि क्लेशों को क्षीण करने वाले । क्रियायोगं = क्रियायोग २।१ तप-स्वाध्याय-ईश्वर-प्रणिधान को । अभिधाय = कहकर । क्लेशानां = पञ्चविध क्लेशों का । उद्देशं = नाम २।३ अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश । स्वरूपं = स्वरूप, लक्षण । कारणं = क्लेशों का कारण । क्षेत्रं = क्षेत्र । च = और । फलं = फल को । उक्त्वा = २।१२ कहकर के । कर्मणां = कर्मों के । अपि = भी । भेदं = प्रकार । कारणं = कारण । स्वरूपं = लक्षण । च = और । फलं = फल को । अभिधाय = २।१४ कहकर ।

---

१. पादोक्तयोगस्य (पा०) ।

विपाकस्य = विपाक, कर्मफलका २।१३। कारणं = कारण। च = और। स्वरूपं = लक्षण। अभिहितं = कहा गया। ततः = इसलिये। क्लेशादीनां = क्लेश इत्यादि के। त्याज्यत्वात् = परित्याग के योग्य होने के कारण। ज्ञानव्यतिरेकेण = ज्ञान के बिना। त्यागस्य = क्लेशों का त्याग। अशक्यत्वात् = सम्भव न होने से। च = और। ज्ञानस्य = ज्ञान का। शास्त्रायत्तत्वात् = शास्त्र के आधीन होने से, शास्त्र के अनुशीलन से प्राप्त होने के कारण। हेयहानकारणोपादेयोपादानकारणबोधकत्वेन = त्याज्य, त्यागका कारण, उपाय, उपादेय, ग्राह्य तथा उपादान के कारण का ज्ञान, बोध के कारण। शास्त्रस्य = शास्त्र का। चतुर्व्यूहत्वाद् = चतुर्व्यूह रूप, चतुर्विध होने के कारण। हानव्यतिरेकेण = हान, परित्याग के बिना। हेयस्य = त्याज्य, नाश किये जाने योग्य का। स्वरूपानिष्पत्तेः = स्वरूप न सिद्ध होने के कारण। हानसहितं = हान के सहित, साथ-साथ। चतुर्व्यूहं = चतुर्विध, चारों प्रकारों को। स्वस्वकारणसहितं = अपने अपने कारणों के सहित। अभिधाय = कह करके। उपादेयकारणभूतायां = उपादेय कारण स्वरूप। विवेकख्यातेः = विवेकख्याति भेदज्ञान का। कारणभूतानां = कारण रूप में विद्यमान। अन्तरङ्गबहिरङ्गभावेन = धारण-ध्यान-समाधि अन्तरङ्ग तथा यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार बहिरङ्ग रूप से। स्थितानां = विद्यमान। यमादीनां = यम-नियम इत्यादि योग के अङ्गों का। फलसहितं = फल के साथ। स्वरूपं = स्वरूप, लक्षण को अर्थात् विशेष अङ्ग के अभ्यास से किस फल की प्राप्ति होती है, इस रूप से। व्याकृत्य = व्याख्यान करके। आसनादीनां = आसन इत्यादि का। धारणापर्य्यन्तानां = धारणापर्य्यन्त। परस्परं = परस्पर। उपकार्योपकारकभावेन = उपकार्य एवं उपकारक भाव से। अवस्थितानां = विद्यमान योगाङ्गों को अर्थात् आसन की सिद्धि पर प्राणायाम, प्राणायाम की सिद्धि पर प्रत्याहार एवं प्रत्याहार की सिद्धि पर धारणा की सिद्धि होती है। उद्देशं = नाम। अभिधाय = कह करके। प्रत्येकं = प्रत्येक योग के अङ्ग का। लक्षणकरणपूर्वकं = लक्षण-स्वरूप बतलाकर। फलं = योगाङ्गों के अभ्यास से प्राप्त होने वाले फल का। अभिहितं = वर्णन किया गया। तत् = वह। अयं = यह। योगः = योग। यमनियमादिभिः = यम-नियम इत्यादि के द्वारा। प्राप्तबीजभावः = बीजभाव को प्राप्त करके। आसन-

प्राणायामैः = आसन तथा प्राणायाम के द्वारा। अङ्कुरितः = अङ्कुरित हुआ। प्रत्याहारेण = प्रत्याहार के द्वारा। पुष्पितः = पुष्पित हुआ, पुष्प को धारण किये हुये। ध्यानधारणसमाधिभिः = धारणाध्यान समाधि के द्वारा। फलिष्यति = कैवल्य रूप फल को प्रदान करेगा। इति = इस रूप से। साधनपादः = द्वितीय साधनपाद की। व्याख्यातः = व्याख्या की गई।

इति धारेश्वर[1] भोजविरचितायां राजमार्त्तण्डाभिधायां
पातञ्जलवृत्तौ साधनपादः ॥ २ ॥

❀ इति साधनपादः ❀

१. महाराजश्रीभोज (पा०)।

अथ विभूतिपादः

यत्पादपद्मस्मरणादणिमादिविभूतयः ।
भवन्ति भविनामस्तु भूतनाथः स भूतये ॥

तदेवं पूर्वोद्दिष्टं धारणाद्यङ्गत्रयं निर्णेतुं संयमसंज्ञाभिधानपूर्वकं बाह्याभ्यन्तरादिसिद्धिप्रतिपादनाय लक्षयितुमुपक्रमते । तत्र धारणायाः स्वरूपमाह—

तदेवं = इस प्रकार से । पूर्वोदिष्टं = पहले कहे गये । धारणाङ्गत्रयं = धारणा इत्यादि, धारणा-ध्यान-समाधि अङ्ग रूप से तीनों का । निर्णेतुं = निर्णय करने के लिये । संयमसंज्ञाभिधानपूर्वकं = सँयम नामक संज्ञा का अभिधान करके अर्थात् धारणा-ध्यान-समाधि की संयम संज्ञा करके । बाह्याभ्यन्तरादिसिद्धिप्रतिपादनाय = बाह्य, अन्तः इत्यादि सिद्धियों का वर्णन करने के लिये अर्थात् योगाङ्गों के अनुष्ठान से प्राप्त होने वाली बाह्य तथा अन्तः सिद्धियों के निरूपण के उद्देश्य से । लक्षयितुं = धारणा-ध्यान-समाधि का लक्षण, स्वरूप बतलाने के लिये । उपक्रमते = प्रारम्भ करते हैं । तत्र = उनमें, धारणा-ध्यान-समाधि में । धारणायाः = धारणा के । स्वरूप = स्वरूप, लक्षण को । आह = कहते हैं ।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥

अर्थः—चित्तस्य = चित्त का, चित्त की वृत्ति का । देशबन्धः = आकाश, सूर्य, चन्द्र, देव, प्रतिमा इत्यादि बाह्य पदार्थ तथा नाभिचक्र, हृदयकमल इत्यादि शरीर के भीतरी स्थान, किसी एक देश में बाँधना, लगाना, स्थिर करना ही । धारणा = धारणा है । किसी एक देश में चित्तवृत्ति का स्थिर करना ही धारणा नामक योग का एक विशिष्ट अङ्ग है ।

वृत्तिः—देशे नाभिचक्र-नासाग्रादौ चित्तस्य [1]बन्धो विषयान्तरपरिहारेण यत् स्थिरीकरणं, सा चित्तस्य धारणोच्यते । अयमर्थः—मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मवा-

---

१. संवन्धः (पा०) ।

सितान्तः करणेन यम-नियमवता जितासनेन परिहृतप्राणविक्षेपेण प्रत्याहृतेन्द्रिय-ग्रामेण निर्बाधे प्रदेश ऋजुकायेन जितद्वन्द्वेन योगिना नासाग्रादौ सम्प्रज्ञातस्य समाधेरभ्यासाय चित्तस्य स्थिरीकरणं कर्त्तव्यमिति ।। १ ।।

देशे = देश में अर्थात् । नाभिचक्रनासाग्रादौ = नाभिचक्र, नासिका के अग्र भाग इत्यादि में । चित्तस्य = चित्त का, चित्त की वृत्ति का । बन्धः = बाँधना, स्थिर करना अर्थात् । विषयान्तरपरिहारेण = दूसरे विषयों के परित्याग के द्वारा । यत् = जो । स्थिरीकरणं = स्थिर करना है । सा = वह । चित्तस्य = चित्त की । धारणा = धारणा । उच्यते = कही जाती है अर्थात् अन्य विषयों, पदार्थों से चित्त को हटाकर केवल एक ही बाह्य अथवा अन्तः देश में चित्त का स्थिर करना ही धारणा है । अयमर्थः = यह अभिप्राय है । मैत्र्यादिचित्तपरिकर्म-वासितान्तःकरणेन = मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा-इत्यादि चित्त के परिकर्मों से शुद्ध हुए अन्तःकरण वाले । यमनियमवता = अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरि-ग्रह रूप पञ्च यम तथा शौच-सन्तोष-तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधान रूप पञ्च नियमों का पालन करने वाले । जितासनेन = आसन पर विजय प्राप्त कर लेने वाले, स्थिर तथा सुखरूप आसन की सिद्धि कर लेने वाले । परिहृतप्राणवि-क्षेपेण = प्राण वायु के विक्षेप का परिहार करने वाले अर्थात् प्राणायाम की सिद्धि वाले । प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामेण = शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धरूप विषयों से श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-रसन-घ्राणरूप इन्द्रियसमूहों का प्रत्यावर्त, लौटा लेने वाले । जितद्वन्द्वेन = शीत-ऊष्ण, क्षुधापिपासा इत्यादि द्वन्द्वों को जीत लेने वाले । योगिना = योगी के द्वारा । निर्बाधे = बाधा रहित । प्रदेशे = स्थान में । ऋजु-कायेन = सरल शरीर के द्वारा, शरीर को सीधा रखते हुए । नासाग्रादौ = नासिका के अग्र भाग इत्यादि में । सम्प्रज्ञातस्य = सम्प्रज्ञात । समाधेः = समाधि के । अभ्यासाय = अभ्यास, सिद्धि के लिए । चित्तस्य = चित्तको । स्थिरीकरणं = स्थिर करना, स्थिरता, एकाग्रता । कर्त्तव्यं = करना चाहिए । इति = यह अभिप्राय है ।। १ ।।

धारणामभिधाय ध्यानमभिधातुमाह—

धारणां = धारणा का स्वरूप । अभिधाय = कहकर के । ध्यानं = ध्यान

को । अभिधातुं = बतलाने के लिए । आह = कहते हैं ।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।। २ ।।

अर्थः—तत्र = उसी बाह्य आकाश, चन्द्र, प्रतिमा इत्यादि में अथवा अन्तः नाभिचक्र, हृदयकमल इत्यादि ध्येय पदार्थ में। प्रत्ययैकतानता = प्रत्यय की एकतानता, चित्तवृत्ति का अनवरत, एकतान रूप से लगे रहना, एकाग्रता ही। ध्यानं = ध्यान है। ध्येय पदार्थ में सदैव धाराप्रवाह रूप से एक ही वृत्ति का बना रहना, अन्य वृत्ति का उदय न होना ही ध्यान है। ध्येयमात्र में चित्तवृत्ति का एकाग्र हो जाना ही ध्यान है।

वृत्तिः—तत्र तस्मिन् प्रदेशे, यत्र चित्तं धृतं तत्र, प्रत्ययस्य ज्ञानस्य, या एकतानता विसदृशपरिणामपरिहारद्वारेण यदेव धारणायाम् अवलम्बनीकृतं, तदवलम्बनतयैव निरन्तरमुत्पत्तिः सा ध्यानमुच्यते ।। २ ।।

तत्र तस्मिन् = उस । प्रदेशे = प्रदेश, स्थान, ध्येय पदार्थ में, बाह्य अथवा अन्तः विषय में । यत्र = जिसमें । चित्तं = चित्त को । धृतं = लगाया गया, धारण, एकाग्र किया गया है । तत्र = उसी ध्येय पदार्थ में । प्रत्ययस्य = प्रत्यय की अर्थात् । ज्ञानस्य = ज्ञान की । या = जो । एकतानता = एक ही धाराप्रवाह, एकाग्रता है अर्थात् । विसदृशपरिणामपरिहारद्वारेण = विलोम, भिन्न, विपरीत परिणाम के परित्याग द्वारा, अन्य विषयों की ओर चित्तवृत्ति का गमन न करना अर्थात् । धारणायां = धारणा की अवस्था में । यदेव = जिस ही ध्येय पदार्थ को । अवलम्बनीकृतं = आलम्बन, आश्रय बनाया गया, जिस विषय में चित्त को स्थिर किया गया था । तद् एव = उस ही पदार्थ, विषय का । अवलम्बनतया = आश्रय, आधार के रूप से । निरन्तरं = सदैव । उत्पत्तिः = उत्पत्ति होती है, धाराप्रवाह रूप से उसी विषय की सदा ही प्रतीति होती है । सा = उसी को । ध्यानं = ध्यान । उच्यते = कहते हैं ।

चरमयोगाङ्गं समाधिमाह—

चरमयोगाङ्गं = योग के सर्व श्रेष्ठ अन्तिम अङ्ग । समाधि = समाधि को । आह = बतलाते हैं ।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।। ३ ।।

अर्थः—अर्थमात्रनिर्भासं = केवल ध्येय पदार्थ की ही प्रतीति कराने वाला तथा । स्वरूपशून्यमिव = चित्त के अपने स्वरूप का भी अभाव सा हो जाना । तदेव = वही ध्यान । समाधिः = समाधि है अर्थात् ध्यान की परिपक्व अवस्था ही समाधि है जिसमें केवल ध्येय पदार्थ की ही प्रतीति होती है और चित्त का अपना स्वरूप शून्य सा हो जाता है । सामान्य ध्यान की दशा में ध्याता, ध्यान, ध्येय की पृथक्-पृथक् प्रतीति होती है। पर समाधि की अवस्था में चित्त में केवल ध्येय पदार्थ ही एकतानता, निरन्तर रूप में प्रकाशित होता रहता है ।

वृत्तिः—तदेवोक्तलक्षणं ध्यानं, [1]यत्रार्थमात्रनिर्भासम् अर्थाकारसमावेशादुद्-भूतार्थरूपं, [2]न्यग्भूतज्ञानस्वरूपत्वेन स्वरूपशून्यतामिवापद्यते, स समाधिरित्युच्यते, [3]सम्यक् आधीयत एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः ।। ३ ।।

तदेव = वही । उक्तलक्षणं = बतलाये गये लक्षण वाला ३।२ । ध्यानं = ध्यान । यत्र = जिस ध्यान में । अर्थमात्रनिर्भासं = केवल ध्येय पदार्थ को प्रकाशित करने वाला । अर्थाकारसमावेशात् = ध्यान में ध्येय पदार्थ के आकार का समावेश, प्रवेश होने से । उद्भूतार्थरूपं = उत्पन्न हुए ध्येय पदार्थ के स्वरूप वाला अर्थात् जिस ध्यान में केवल ध्येय पदार्थ का ही स्वरूप निरन्तर विद्यमान हो । न्यग्भूतज्ञानस्वरूपत्वेन = ज्ञान के स्वरूप के लुप्त हो जाने से, अभिभूत हो जाने से । स्वरूपशून्यतामिव = चित्त का स्वयं अपना स्वरूप भी शून्य सा, तिरोहित सा । आपद्यते = प्राप्त हो जाता है । अर्थात् जिसमें चित्त के ध्याता स्वरूप का अभाव हो जाता है । सः = वह ध्यान । समाधिः = समाधि । इति = इस रूप से । उच्यते = कहा जाता है । विक्षेपान् = विक्षेपों का । परिहृत्य = परिहार करके, दूर करके । मनः = मन । यत्र = जिसमें । सम्यक् = अच्छी

---

१. यथार्थमात्र (पा०) ।

२. रूपमश्रुतं ज्ञानस्वरूपत्वेन (पा०) ।

३. द्र० "अन्ये तु सम्यगाधीयते एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परित्यज्य यत्र मनः समाधिरित्याहुः" (योगचिन्तामणि, पृ० २४२) ।

प्रकार से । आधीयते = स्थापित, धारण किया जाता है अर्थात् । एकाग्रीक्रियते= एकाग्र किया जाता है । सः = वही । समाधिः = समाधि है । जिस ध्यान में सभी विक्षेपों से चित्त को हटाकर केवल एक ही ध्येय में उसे स्थिर किया जाता है, वही ध्यान की प्रौढ़ अवस्था समाधि है ।। ३ ।।

उक्तलक्षणस्य योगाङ्गत्रयस्य व्यवहाराय स्वशास्त्रे तान्त्रिकीं संज्ञां कर्त्तुमाह—

उक्तलक्षणस्य = कहे गये लक्षण वाले । योगाङ्गत्रयस्य = योग के तीन अङ्गों का, धारणा-ध्यान-समाधि का । व्यवहाराय = व्यवहार के लिए । स्वशास्त्रे = अपने शास्त्र, योगशास्त्र में । तान्त्रिकीं = तंत्र, प्रस्तुत शास्त्र सम्बन्धी । संज्ञां = संज्ञा, परिभाषा । कर्तुं = करने के लिए । आह = कहते हैं ।

त्रयमेकत्र संयमः ।। ४ ।।

अर्थः—एकत्र = किसी एक ध्येय विषय, पदार्थ में । त्रयं = तीनों का, धारणा-ध्यान-समाधि तीनों का एक साथ, समुदाय रूप से होना ही । संयमः = संयम है । संयम योगशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है । उसका अभिप्राय है कि किसी एक ही ध्येय पदार्थ में धारणा-ध्यान-समाधि तीनों की ही समुदाय रूप मे प्रवृत्ति होती है । तीनों ही समान विषयक होते हैं ।

वृत्तिः—एकस्मिन् विषये धारणा-ध्यान-समाधित्रयं प्रवर्त्तमानं संयमसंज्ञया शास्त्रे व्यवह्रियते ।। ४ ।।

शास्त्रे = योग शास्त्र में । एकस्मिन् = एक ही, समान । विषये = विषय, ध्येय पदार्थ में । प्रवर्त्तमानं = प्रवृत्त होने वाले । धारणाध्यानसमाधित्रयं = धारणा-ध्यान-समाधि तीनों का । संयमसंज्ञया = समय रूप पारिभाषिक संज्ञा के द्वारा । व्यवह्रियते = व्यवहार किया जाता है । एक ही विषय में समुदाय रूप मे प्रवृत्त होने वाले धारणा-ध्यान-समाधि की पारिभाषिक संज्ञा संयम है ।। ४ ।।

तस्य फलमाह—

तस्य = उस संयम के । फलं = अभ्यास से प्राप्त होने वाले फल को । आह = कहते हैं ।

तज्जयात् प्रज्ञालोकः ॥ ५ ॥

अर्थः—तत् = उस संयम के। जयात् = विजय से। प्रज्ञालोकः = प्रज्ञा का आलोक, प्रकाश प्राप्त होता है। अभ्यास से संयम की सिद्धि हो जाने पर, अभिमत विषय में संयम के जय से साधक को बुद्धि का प्रकाश प्राप्त होता है। बुद्धि में अलौकिक, अनुपम शक्ति आ जाती है। बुद्धि ऋतम्भरा हो जाती है। अतीत-वर्तमान-अनागत, विप्रकृष्ट-निकटस्थ, व्यवहित-अन्तर्हित, स्थूल-सूक्ष्म सभी पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को ग्रहण करने वाली बुद्धि हो जाती है।

वृत्तिः—तस्य संयमस्य जयादभ्यासेन सात्म्योत्पादनात्, प्रज्ञाया [1]विवेक-ख्यातेः, आलोकः प्रसवो भवति, प्रज्ञा ज्ञेयं सम्यगवभासयतीत्यर्थः ॥ ५ ॥

तस्य = उस। संयमस्य = संयम के। जयाद् = जय से अर्थात्। अभ्यासेन= अभ्यास से। सात्म्योत्पादनात् = ध्येय पदार्थ के साथ एक रूपता, तद्रूपता की उत्पत्ति, प्राप्ति होने से। प्रज्ञायाः = प्रज्ञा अर्थात्। विवेकख्यातेः = विवेकख्याति के। आलोकः = आलोक, प्रकाश की। प्रसवः = उद्भूति, उत्पत्ति। भवति = होती है। प्रज्ञा = साधक की प्रज्ञा, बुद्धि। ज्ञेय = जानने योग्य विषय को, ध्येय पदार्थ के स्वरूप को। सम्यग् = अच्छी प्रकार से। अवभासयति = प्रकाशित करती है। इत्यर्थः = यह अभिप्राय है ॥ ५ ॥

तस्योपयोगमाह—

तस्य = उस संयम की। उपयोगं = प्रयोग की विधि को। आह = बतलाते हैं।

तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥

अर्थः—तस्य = उस संयम का। भूमिषु = भूमियों में विनियोगः = प्रयोग करना चाहिए। संयम का प्रयोग भूमियों में क्रमशः करना चाहिये। संयम का अभ्यास पहले स्थूल विषय में करना चाहिये और उसमें सिद्ध हो जाने पर क्रमशः सूक्ष्म विषयों की ओर बढ़ना चाहिये। स्थूल पदार्थ में संयम की सिद्धि के बिना सूक्ष्म पदार्थ में संयम का अभ्यास करने से कभी भी सफलता प्राप्त

---

१. विवेकस्वरूपायाः (पा०)।

नहीं होती। अतः स्थूल से सूक्ष्म में क्रमशः संयम का अभ्यास करना चाहिये।

वृत्तिः—तस्य संयमस्य, भूमिषु स्थूल-सूक्ष्मावलम्बनभेदेन स्थितासु चित्त-वृत्तिषु, विनियोगः कर्त्तव्यः, अधरामधरां चित्तभूमिं जितां जितां ज्ञात्वोत्तरस्यां भूमौ संयमः कार्य्यः; न ह्यनात्मीकृताधरभूमि[1]रुत्तरस्यां भूमौ संयमं कुर्वाणः फल-भाग्भवति ॥ ६ ॥

तस्य = उस। संयमस्य = संयम का। भूमिषु = भूमियों में अर्थात्। स्थूल-सूक्ष्मावलम्बनभेदेन = स्थूल एवं सूक्ष्म आश्रय, ध्येय पदार्थ के भेद से। स्थितासु =विद्यमान। चित्तवृत्तिषु = चित की वृत्तियों में। विनियोगः = प्रयोग, अभ्यास। कर्त्तव्यः = करना चाहिए अर्थात्। जितां जितां = जीत ली गई, जीत ली गई, सिद्ध हुई। अधरामधरां = नीचे नीचे की, स्थूल। चित्तभूमिं = चित्त की भूमि को। ज्ञात्वा = जान कर। उत्तरस्यां = उत्तर, बाद की, सूक्ष्म। भूमौ = भूमि में। संयमः = संयम। कार्य्यः = करना चाहिये, संयम का अभ्यास करना चाहिये। हि = क्योंकि। अनात्मीकृताधरभूमिः = नीचे की भूमि को बिना आत्मीकृत करके, स्थूल ध्येय पदार्थ पर संयम की सिद्धि न प्राप्त करके। उत्तरस्यां = उत्तर, सूक्ष्म की। भूमौ = भूमि में। संयमं = संयम को, संयम का अभ्यास। कुर्वाणः = करता हुआ साधक। न = नहीं। फलभाग् = फल का भागी, संयम के फल का भागी। भवति = होता है। संयम का फल उस साधक को कभी भी नहीं प्राप्त होता ॥ ६ ॥

साधनपादे योगाङ्गान्यष्टावुद्दिश्य पञ्चानां लक्षणं विधाय त्रयाणां कथं न कृतमित्याशङ्क्याह—

साधनपादे = साधनपाद में। योगाङ्गानि अष्टौ = योग के आठ अङ्गों का। उद्दिश्य = कथन करके। पञ्चानां = पञ्चयोगाङ्गोंका यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार का। लक्षणं = लक्षण, स्वरूप को। विधाय = कहकर। त्रयाणां = धारणा-ध्यान-समाधि तीन अङ्गों का लक्षण। कथं = क्यों। न = नहीं। कृतं =

---

१. नह्यसावात्मीकृताधरभूमिः (पा०)।

किया। इति = इस सम्बन्ध में। आशङ्क्य = आशङ्का करके। आह = उत्तर देते हैं।

त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥ ७ ॥

अर्थः—पूर्वेभ्यः = पूर्व निरूपण किये गये, पहले वर्णन किए गये यम-नियम आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार की अपेक्षा। त्रयं = धारणा-ध्यान समाधि तीनों। अन्तरङ्गं = अन्तरङ्ग हैं। योगसिद्धि में यम नियम आदि पञ्च साधनों का तुलना में धारणा-ध्यान-समाधि अन्तिम तीन साधन अन्तरङ्ग हैं। सम्प्रज्ञात समाधि को ये तीनों साक्षात् रूप से सिद्ध करने वाले हैं। अतः ये अन्तरङ्ग हैं तथा यम नियम आदि पञ्च बहिरङ्ग हैं।

वृत्तिः—पूर्वेभ्यो यमादिभ्यो योगाङ्गेभ्यः पारम्पर्य्येण समाधेरुपकारकेभ्यो धारणादियोगाङ्गत्रयं सम्प्रज्ञातस्य समाधेरन्तरङ्गं समाधिस्वरूपनिष्पादनात् ॥ ७ ॥

पूर्वेभ्यः = पहले वर्णन किये गये। पारम्पर्य्येण = परम्परा से, क्रमशः। समाधेः = सम्प्रज्ञात समाधि का। उपकारकेभ्यः = उपकार करने वाले। यमादिभ्यः = यमनियमआसनप्राणायामप्रत्याहार रूप। योगाङ्गेभ्यः = योग के अङ्गों की तुलना में। धारणादियोगाङ्गत्रयं = धारणा-ध्यान-समाधि रूप योग के तीन अङ्ग। समाधिस्वरूपनिष्पादनात् = समाधि के स्वरूप का निष्पन्न, सिद्ध करने के कारण। सम्प्रज्ञातस्य = सम्प्रज्ञात। समाधेः = समाधि के। अन्तरङ्गं = अन्तरङ्ग हैं, साक्षात् साधन से ॥ ७ ॥

तस्यापि समाध्यन्तरापेक्षया बहिरङ्गत्वमाह—

तस्यापि = उन धारणा-ध्यान-समाधि त्रिविध अङ्गों का भी। माध्यन्तरापेक्षया = दूसरी समाधि के विचार से, असम्प्रज्ञात समाधि की दृष्टि से। बहिरङ्गत्वं = बहिरङ्ग रूप। आह = कहते हैं अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि में धारणा-ध्यान-समाधि भी बहिरङ्ग ही हैं, अन्तरङ्ग नहीं।

तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥ ८ ॥

अर्थः—तद् अपि = वे धारणा-ध्यान-समाधि भी, संप्रज्ञात समाधि के अन्तरङ्ग साधन होने पर भी। निर्बीजस्य = निर्बीज, असंप्रज्ञात समाधि के। बहिरङ्ग

= बहिरङ्ग ही हैं। असंप्रज्ञात समाधि की सिद्धि में साक्षात् एवं प्रत्यक्ष साधन न होने के कारण धारणा-ध्यान-समाधि बहिरङ्ग भी हैं, अन्तरङ्ग ही नहीं। इस समाधि की सिद्धि में ये परम्परया साधन हैं। पर वैराग्य ही साक्षात् साधन होने से अन्तरङ्ग हैं। अतः अन्वय-व्यतिरेकी सम्बन्ध के अभाव में साध्य असंप्रज्ञात समाधि के प्रति धारणा-ध्यान-समाधि बहिरङ्ग ही हैं।

वृत्तिः—निर्बीजस्य निरालम्बनस्य शून्यभावनाऽपरपर्य्यायस्य समाधेरेतदपि योगाङ्गत्रयं बहिरङ्गं, पारम्पर्य्येणोपकारकत्वात् ॥ ८ ॥

निर्बीजस्य = निर्बीज अर्थात्। निरालम्बनस्य = आलम्बन रहित, ध्येय विषयरहित, निर्विषयक। शून्यभावनाऽपरपर्य्यायस्य = समस्त भावनाओं से रहित रूप समानार्थक से समझी जाने वाली, सभी ध्येय पदार्थों के अभाव वाली। सामधेः = समाधि का, असंप्रज्ञात समाधि का। पारम्पर्येण = परम्परा से, क्रमशः। उपकारकत्वात् = उपकार करने वाले। एतद् अपि = ये धारणा-ध्यान-समाधि भी। योगाङ्गं = योगसिद्धि के तीनों अन्तिम अङ्ग। बहिरङ्गं = बहिरङ्ग ही हैं ॥ ८ ॥

इदानीं योगसिद्धीर्व्याख्यातुकामः संयमस्य विषयविशुद्धिं कर्त्तुं क्रमेण परिणामत्रयमाह—

इदानीं = अब। योगसिद्धी = योग को साधन से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का। व्याख्यातुकामः = वर्णन करने के विचार से। संयमस्य = संयम के, धारणा-ध्यान-समाधि के। विषयविशुद्धि = विषय को शुद्ध। कर्तुं = करने के लिये। क्रमेण = क्रमशः। परिणामत्रयं = तीन प्रकार के परिणाम, निरोध-समाधि-एकाग्रता रूप त्रिविध परिणाम को। आह = कहते हैं।

व्युत्थान-निरोधसंस्कारयोरभिभव-प्रादुर्भावौ निरोधक्षण-चित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥ ९ ॥

अर्थः—व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोः = व्युत्थान तथा निरोध अवस्था के संस्कारों का। अभिभवप्रादुर्भावौ = क्रमशः अभिभूत एवं उद्भूत होना तथा। निरोधक्षणचित्तान्वयः = निरोध अवस्था में चित्त का केवल संस्कारों से संबद्ध रह जाना ही। निरोधपरिणामः = चित्त का निरोध परिणाम कहा जाता है।

चित्त धर्मी है तथा संस्कार उसके धर्म। पञ्चभूमियों में क्षिप्त-मूढ-विक्षिप्त भूमि में चित्त व्युत्थान की दशा में होता है। यही धर्मी चित्त सभी का आश्रय है। निरोधपरिणाम में व्युत्थान अवस्था के संस्कारों का तिरोभाव, लोप हो जाता है और निरोध अवस्था से संस्कार प्रकट हो जाते हैं। इन उद्भूत निरोध संस्कारों से चित्त का सम्बन्ध हो जाता है। यद्यपि दोनों ही अवस्था के संस्कारों के साथ चित्त का सम्बन्ध होता है, तथापि व्युत्थान संस्कार अभिभूत तथा निरोध संस्कार उद्भूत होते हैं। सतत अभ्यास से ज्ञान के प्रसादरूप परवैराग्य की प्राप्ति हो जाती है तथा क्रमशः व्युत्थान के संस्कारों का लोप हो जाता है। और निरोध के संस्कारों की अभिव्यक्ति हो जाती है। चित्त की समस्त वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं केवल उनके संस्कार ही चित्त में विद्यमान रह जाते हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र में धर्म-लक्षण-अवस्थारूप त्रिविध परिणामों में से धर्म परिणाम का कथन किया गया। व्युत्थान धर्म से निरोध धर्म में परिणत होना ही चित्त का निरोध परिणाम है।

वृत्तिः—व्युत्थानं क्षिप्त-मूढ-विक्षिप्ताख्यं भूमित्रयं, निरोधः प्रकृष्टसत्त्वस्य अङ्गितया चेतसः परिणामः, ताभ्यां व्युत्थान-निरोधाभ्यां, यौ जनितौ संस्कारौ तयोर्यथाक्रमम् अभिभव-प्रादुर्भावौ यदा भवतः; अभिभवो न्यग्भूततया कार्य्यकरणा-सामर्थ्येनावस्थानं, प्रादुर्भावो वर्त्तमानेऽध्वनि अभिव्यक्तरूपतया आविर्भावः[1]; तदा निरोधक्षणे चित्तस्योभयक्षणवृत्तित्वादन्वयो यः स निरोधपरिणाम उच्यते।

अयमर्थः—यदा व्युत्थानसंस्काररूपो धर्मस्तिरोभूतो भवति, निरोधसंस्कार-रूपश्च आविर्भवति, धर्मिरूपतया च चित्तमुभयान्वयित्वेऽपि निरोधात्मना अवस्थितं प्रतीयते, तदा स निरोधपरिणामशब्देन व्यवह्रियते; चलत्वात् गुणवृत्तस्य यद्यपि चेतसो निश्चलत्वं नास्ति, तथापि एवम्भूतः परिणामः स्थैर्य्यमुच्यते ॥ ९ ॥

क्षिप्तमूढविक्षिप्ताख्यं = क्षिप्त, मूढ तथा विक्षिप्त नाम वाली। भूमित्रयं= तीन भूमियाँ। व्युत्थानं = चित्त की व्युत्थान अवस्था कहलाती है। प्रकृष्टसत्त्वस्य = सत्त्वगुण बहुल। चेतसः = चित्त का। अङ्गितया = अङ्गीरूप, प्रधान रूप से। परिणामः = होने वाला जो परिणाम है। निरोधः = वही चित्त की निरोध

---

१. अवस्थानम् (पा०)।

अवस्था है। ताभ्यां = उन दोनों। व्युत्थाननिरोधाभ्यां = व्युत्थान तथा निरोध अवस्था से। यौ = जो। जनितौ = उत्पन्न हुए। संस्कारौ = संस्कार हैं। तयोः = उन दोनों का। यथाक्रमं = क्रमशः। यदा = जब। अभिभवप्रादुर्भावौ = लोप तथा उद्भव। भवतः = होता है। अभिभवः = अभिभव शब्द का अर्थ है। न्यग्भूततया = तिरस्कृत रूप से, निर्बल शक्तिविहीन रूप से। कार्यकरणा-सामर्थ्येन = कार्य उत्पन्न करने की सामर्थ्य से रहित होकर, फलोत्पादन की शक्ति से रहित होकर। अवस्थानं = चित्त में विद्यमान रहना है। प्रादुर्भाव शब्द का अभिप्राय है। वर्तमाने वर्तमान। अध्वनि = मार्ग स्वरूप में। अभिव्यक्त-रूपतया = प्रकट रूप से। आविर्भावः = चित्त में उत्पन्न होता है। अतीतावस्था का परित्याग कर वर्तमान स्वरूप को धारणा करना ही प्रादुर्भाव है। तदा = तब, उस। निरोधक्षणे = निरोध काल में। चित्तस्य = धर्मी चित्त का। उभय-क्षणवृत्तित्वाद् = व्युत्थान-निरोध दोनों ही अवस्था की वृत्तियों से युक्त होने के कारण। यः = जो। अन्वयः = चित्त का निरोध अवस्था के संस्कारों के साथ सम्बन्ध है। सः = वही। निरोधपरिणामः = निरोधपरिणाम। उच्यते = कहा जाता है। अयं = यह। अर्थः = अभिप्राय है। यदा = जिस समय। व्युत्थान-संस्काररूपः = चित्त का व्युत्थान कालीन संस्कार रूपी। धर्मः = धर्म। तिरो-भूतः = तिरोहित, लुप्त। भवति = हो जाता है। च=और। निरोध-संस्काररूपः= चित्त की निरोध की दशा में होने वाला संस्कार रूपी धर्म। आविर्भवति = व्यक्त, प्रकट, उद्भूत हो जाता है। च = और। धर्मिरूपतया = धर्मरूप संस्कारों का आश्रय, धर्मी रूप होने के कारण। उभयान्वयित्वे = व्युत्थान कालीन तथा निरोधकालीन दोनों ही दशाओं के संस्कारों से सम्बन्ध होने पर। अपि = भी। चित्तं = चित्त। निरोधात्मना = निरुद्ध रूप में। अवस्थितं = स्थित, स्थिर रूप में विद्यमान। प्रतीयते = प्रतीत होता है। तदा = उस समय चित्त का। सः = वही। निरोधपरिणामशब्देन = निरोधपरिणाम शब्द के द्वारा, चित्त निरोध परिणाम में स्थित है इस रूप से। व्यवह्रियते = व्यवहार किया जाता है। गुण-वृत्तस्य = गुणों की वृत्तियों का। चलत्वात् = चञ्चल होने के कारण। यद्यपि = यद्यपि। चेतसः = चित्त का। निश्चलत्वं = निश्चल स्थिर, निरुद्ध, एकाग्र

होना । न = नहीं । अस्ति = है । चित्त त्रिगुणात्मक प्रकृति का परिणाम है और रजोगुण सदैव प्रवृत्ति उत्पन्न करता रहता है । अतः चित्त स्थिर नहीं हो सकता । तथापि = फिर भी । एवम्भूतः = इस प्रकार का । परिणामः = चित्त का निरोध परिणाम । स्थैर्य्यं = चित्त की स्थिरता, एकाग्रता रूप । उच्यते = कहा जाता है ॥ ९ ॥

तस्यैव फलमाह—

तस्य एव = उस ही निरोध परिणाम के । फलं = फल को । आह = बतलाते हैं ।

तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥

अर्थः—संस्कारात् = प्रबल निरोध संस्कारों के प्रभाव से । तस्य = उस निरोध परिणाम वाले चित्त की । प्रशान्तवाहिता = प्रशान्तवाहिता, धीर, स्थिर प्रवाह वाली स्थिति होती है । अर्थात् विक्षेपों का परित्याग करके सदैव एक ही ध्येयाकार में परिणाम को प्राप्त करता रहता है, उस ध्येय से भिन्न किसी भी अन्य विषय में उसका गमन नहीं होता ।

वृत्तिः—तस्य चेतसः, निरुक्तान्निरोधसंस्कारात् प्रशान्तवाहिता भवति; परिहृतविक्षेपतया सदृशप्रवाह-परिणामि चित्तं भवतीत्यर्थः ॥ १० ॥

तस्य = उस निरोध परिणाम वाले । चेतसः = चित्त की । निरुक्तात् = पूर्व में वर्णन किये गये । निरोधसंस्कारात् = निरोध कालीन संस्कारों के बल से । प्रशान्तवाहिता = प्रशान्तवाहिता, स्थिर, शान्त प्रवाह वाली दशा । भवति = होती है अर्थात् । परिहृतविक्षेपतया = विक्षेपों का परित्याग कर देने से, ध्येय से भिन्न किसी अन्य विषय में गमन न होने से । सदृशप्रवाहपरिणामि= समान, एक ही ध्येयाकार के प्रवाह में परिणाम को प्राप्त करने वाला, सदैव एक ही ध्येय का अवलम्बन ग्रहण करने वाला । चित्तं = चित्त । भवति = होता है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है ॥ १० ॥

निरोधपरिणामम् अभिधाय समाधिपरिणाममाह—

निरोधपरिणामं = चित्त के निरोध परिणाम का । अभिधाय = वर्णन करके । समाधिपरिणामं = समाधि परिणाम को । आह = कहते हैं ।

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥११॥

अर्थः—सर्वार्थतैकाग्रतयोः = सर्वार्थता, सभी प्रकार के विषयों को ग्रहण करने वाली, विक्षेप, व्युत्थानवृत्ति तथा एकाग्रता, एक ही ध्येय विषय को ग्रहण करने वाली वृत्तियों का क्रमशः। क्षयोदयौ = तिरोभाव तथा आविर्भाव, लुप्त होना तथा प्रकट होना ही। चित्तस्य = चित्त का। समाधिपरिणामः = समाधि परिणाम है। व्युत्थानवृत्ति का तिरोहित होना तथा साथ ही एकाग्रता वृत्ति का उद्भूत होना ही चित्त का समाधिपरिणाम है।

वृत्तिः—सर्वार्थता चलत्वान्नानाविधार्थग्रहणं, चित्तस्य विक्षेपो धर्मः। एकस्मिन्नेवालम्बने सदृशपरिणामिता एकाग्रता, सापि चित्तस्य धर्मः। तयोर्यथाक्रमं क्षयोदयौ सर्वार्थतालक्षणस्य धर्मस्य क्षयोऽत्यन्ताभिभवः, एकाग्रतालक्षणस्य धर्मस्य प्रादुर्भावोऽभिव्यक्तिः, चित्तस्योद्रिक्तसत्त्वस्यान्वयितयावस्थानं समाधिपरिणाम इत्युच्यते।

पूर्वस्मात् परिणामादस्यायं विशेषः—तत्र संस्कारलक्षणयोः धर्मयोरभिभवप्रादुर्भावौ, पूर्वस्य व्युत्थानसंस्काररूपस्य न्यग्भावः, उत्तरस्य निरोधसंस्काररूपस्योद्भवोऽनभिभूतत्वेनावस्थानम्; इह तु क्षयोदयाविति सर्वात्मतारूपस्य विक्षेपस्यात्यन्ततिरस्कारादनुत्पत्तिरतीतेऽध्वनि प्रवेशः क्षयः, एकाग्रतालक्षणस्य धर्मस्योद्भवो वर्त्तमानेऽध्वनि प्रकटत्वम् ॥ ११ ॥

सर्वार्थता = सर्वार्थता का अभिप्राय है। चलत्वात् = चञ्चल होने के कारण। नानाविधार्थग्रहणं = अनेक प्रकार के विषयों का ग्रहण रूप। विक्षेपः = विक्षेप, त्रिगुणात्मक प्रकृति का परिणाम चित्त स्वभावतः चञ्चल होने से विविधप्रकार के विषयों में गमन करता रहता है। अतः यह विक्षेप, व्युत्थान वृत्त। चित्तस्य = धर्मी चित्त का। धर्मः = धर्म है। एकस्मिन् एव = एक ही। अवलम्बने = ध्येय पदार्थ में। सदृशपरिणामिता = समान, ध्येयाकार रूप से बराबर परिणति होते रहना, चित्त में सदैव निर्बाध रूप से ध्येय पदार्थ का विद्यमान रहना ही। एकाग्रता = चित्त की एकाग्रता है। सा अपि = वह एकाग्रता भी। चित्तस्य = धर्मीचित्त का। धर्मः = धर्म है। तयोः = उन्हीं दोनों

का, सर्वार्थता तथा एकाग्रता वृत्ति का । यथाक्रमं = क्रमशः । क्षयोदयौ = क्षय तथा उदय होना अर्थात् । सर्वार्थतालक्षणस्य = सर्वार्थता लक्षण वाली, सभी प्रकार के विषयों को ग्रहण करने वाली चित्तवृत्ति रूपी । धर्मस्य = धर्म का । क्षयः = क्षय होना अर्थात् । अत्यन्ताभिभवः = अत्यन्त अभिभूत हो जाना, बिलकुल ही दब जाना, लुप्त सा हो जाना । एकाग्रतालक्षणस्य = एकाग्रता लक्षण वाली, एक ही ध्येय विषय का सदैव चिन्तन करने वाली चित्त वृत्ति रूपी । धर्मस्य = धर्म का । प्रादुर्भावः = प्रादुर्भाव होना अर्थात् । अभिव्यक्तिः = उद्भूत, प्रकट हो जाना ही । सर्वार्थता तथा एकाग्रता संस्कारों का क्रमशः क्षय तथा उदय होना है । उद्रिक्तसत्त्वस्य = प्रवृद्ध, बढ़े हुए सत्त्वगुण वाले, सत्त्वगुण विशिष्ट । चित्तस्य = चित्तका । अन्वयितया = अन्वय रूप से, ध्येय विषय के साथ एकाकार रूप से । अवस्थानं = स्थित, विद्यमान होना ही । समाधिपरिणामः = समाधिपरिणाम । इति = इस रूप से । उच्यते = कहा जाता है । पूर्वस्मात् = पहले वर्णन किये गये । परिणामाद् = निरोधपरिणाम से । अस्य = इस समाधिपरिणाम की । अयं = यह । विशेषः = विशेषता, भेद है । तत्र = उस निरोधपरिणाम में । संस्कारलक्षणयोः = व्युत्थान एवं निरोध संस्कार रूप । धर्मयोः = दोनों धर्मों का । अभिभवप्रादुर्भावौ = क्रमशः तिरोभाव एवं आविर्भाव, दबजाना एवं उदय होना होता है । पूर्वस्य = पूर्व, प्रथम अवस्था के । व्युत्थानसंस्काररूपस्य = व्युत्थान संस्कार रूपी धर्म का । न्यग्भावः = अत्यन्त तिरस्कृत, दब जाना । उत्तरस्य = पश्चात् कालीन । निरोध-संस्काररूपस्य = निरोधसंस्कार रूपी धर्म का । उद्भवः = उदय होना अर्थात् । अनभिभूतत्वेन = अनभिभूत रूप में, किसी दूसरे संस्कार से न दबाये गये रूप में । अवस्थानं = स्थित, विद्यमान होना है । इह तु = और इस समाधि परिणाम में तो । क्षयोदयौ इति = सर्वार्थता तथा एकाग्रता के संस्कारों का क्रमशः क्षय तथा उदय होता है अर्थात् । सर्वात्मसारूपस्य = सभी विषयों का चिन्तन करने वाली । विक्षेपस्य = विक्षेपवृत्ति, संस्कारों का । अत्यन्ततिरस्कारात् = अत्यन्त तिरस्कार के कारण । अनुत्पत्तिः = उत्पन्न न होना अर्थात् । अतीते = अतीत अवस्था वाले । अध्वनि = मार्ग कारण, धर्मी चित्त में । प्रवेशः = प्रवेश,

विलय को प्राप्त कर लेना ही । क्षयः = क्षय है । एकाग्रतालक्षणस्य = एकाग्रता लक्षण वाले संस्कार रूपी । धर्मस्य = धर्म का । उद्भवः = उद्भूत, उत्पन्न होना अर्थात् ! वर्त्तमाने = वर्त्तमान अवस्था वाले । अध्वनि = मार्ग, कारण, धर्मी, चित्त में । प्रकटत्वम् = प्रकट होना है ॥ ११ ॥

तृतीयमेकाग्रतापरिणाममाह—

तृतीयं = तृतीय । एकाग्रतापरिणामं = एकाग्रतापरिणाम को । आह = कहते हैं ।

शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥ १२ ॥

अर्थः—शान्तोदितौ = शान्त तथा उदय होने वाली । तुल्यप्रत्ययौ = जब चित्त की दोनों वृत्तियाँ एक सी, भेद रहित हो जाती हैं । तब । चित्तस्य = चित्त का । एकाग्रतापरिणामः = एकाग्रता परिणाम होता है । चित्त की शान्त तथा उदय होने वाली वृत्तियों में जब एकरूपता, अभेद की स्थिति होती है, तब चित्त का एकाग्रता परिणाम होता है । विक्षेप का परित्याग कर एकाग्रदशा को प्राप्त करना ही चित्त का समाधि परिणाम है । संप्रज्ञात समाधि की प्रारम्भ दशा में चित्त का समाधि परिणाम होता है । सम्यक् रूप से समाहित चित्त में होने वाला परिणाम एकाग्रतापरिणाम है । इसमें शान्त तथा उदय होने वाली वृत्तियाँ एक सी होती हैं, पृथक् रूप से उनकी प्रतीति नहीं होती, क्योंकि उदित हुई सजातीयवृत्ति शान्त होती है और पुनः दूसरी सजातीय वृत्ति का उदय होता है । यह चित्त का एकाग्रता-परिणाम संप्रज्ञातसमाधि की परिपक्व दशा में होता है ।

वृत्तिः—समाहितस्यैव चित्तस्यैकप्रत्ययो वृत्तिविशेषः शान्तः, अतीतमध्वानं प्रविष्टः । अपरस्तु उदितो वर्त्तमानेऽध्वनि स्फुरितः । द्वावपि समाहितचित्तत्वेन तुल्यावेकरूपालम्बनत्वेन सदृशौ प्रत्ययौ, उभयत्रापि समाहितस्यैव चित्तस्यान्वयित्वेनावस्थानं, स एकाग्रता-परिणाम इत्युच्यते ॥ १२ ॥

समाहितस्य = समाहित, विक्षेप रहित । चित्तस्य = चित्त का । एव = ही । एकप्रत्ययः = एकप्रत्यय अर्थात् । वृत्तिविशेषः = एक विशेष वृत्ति । शान्तः = शान्त होती है अर्थात् । अतीतं = अतीत कालीन । अध्वानं = मार्ग, कारण,

धर्मी में। प्रविष्टः = प्रवेश प्राप्त करती है। अपरः तु = और चित्त की दूसरी विशेष वृत्ति तो। उदितः=उदित होती है अर्थात्। वर्त्तमाने = वर्तमान कालीन। अध्वनि = मार्ग, कारण धर्मी में। स्फुरितः = स्फुरण प्राप्त करती है। द्वौ अपि =दोनों ही शान्त एवं उदित वृत्तियाँ। समाहितचित्तत्वेन = समाहित चित्त के रूप की होने के कारण। तुल्यौ = तुल्य, सदृश एक सी होती हैं। एकरूपालम्बनत्वेन = एक ही सजातीय ध्येय पदार्थ का आश्रय ग्रहण करने के कारण। प्रत्ययौ = दोनों ही शान्त होने वाली तथा उदित होने वाली वृत्तियाँ। सदृशौ= समान, सजातीय, एक सी होती हैं। उभयत्र = दोनों ही वृत्तियों में। अपि = भी। समाहितस्य= समाहित। चित्तस्य = चित्त की। एव = ही। अन्वयित्वेन= अन्वय रूप से। अवस्थानं = स्थिति होती है। सः = वही। एकाग्रतापरिणामः = चित्त का एकाग्रता परिणाम। इति = इस रूप से। उच्यते = कहा जाता है॥ १२॥

चित्तपरिणामोक्तं रूपमन्यत्राप्यतिदिशन्नाह—

चित्तपरिणामं = चित्त के समाधि एकाग्रता-निरोध रूप त्रिविध परिणाम। उक्तं = कहे गये। अन्यत्र = अन्य सभी पदार्थों में। अपि = भी। रूपं=परिणाम का। अतिदिशन् = अतिदेश, निर्देश करते हुए। आह = कहते हैं। समस्त पदार्थों में होने वाले परिणामों का निरूपण करते हैं।

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्म-लक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः॥ १३॥

अर्थः—एतेन = इस समाधि-एकाग्रता-निरोध रूप चित्त के त्रिविध परिणाम वर्णन से। भूतेन्द्रियेषु = पञ्च सूक्ष्म एवं स्थूल महाभूतों में तथा इन्द्रियों में। धर्मलक्षणावस्थापरिणामाः = धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम तथा अवस्था परिणाम की। व्याख्याताः = व्याख्या हो जाती है। चित्त के त्रिविध परिणाम कथन से समस्त पदार्थों में होने वाले त्रिविध परिणामों का भी वर्णन हो जाता है। गुणवृत्ति के परिवर्तनशील होने के कारण समस्त पदार्थ भी परिणामशील हैं।

वृत्तिः—एतेन त्रिविधेनोक्तेन चित्तपरिणामेन, भूतेषु स्थूल-सूक्ष्मेषु, इन्द्रियेषु

[1]बुद्धिकर्मान्तःकरणभेदेनावस्थितेषु, धर्म-लक्षणावस्थाभेदेन त्रिविधः परिणामो व्याख्यातोऽवगन्तव्यः ।

अवस्थितस्य धर्मिणः पूर्वधर्मनिवृत्तौ धर्मान्तरापत्तिः धर्मपरिणामः; यथा——मृल्लक्षणस्य धर्मिणः पिण्डरूपधर्मपरित्यागेन घटरूपधर्मान्तरस्वीकारो धर्मपरिणाम इत्युच्यते । लक्षणपरिणामो यथा——तस्यैव घटस्यानागताध्वपरित्यागेन वर्त्तमानाध्वस्वीकारः । तत्परित्यागेनातीताध्वपरिग्रहः । अवस्थापरिणामो यथा——तस्यैव घटस्य प्रथमद्वितीययोः सदृशयोः क्षणयो[2]रन्वयित्वेन, यतश्च गुणवृत्तिर्न अपरिणम्यमाना क्षणमप्यस्ति ।। १३ ।।

एतेन = इस । त्रिविधेन = तीन प्रकार के । उक्तेन = वर्णन किये गये । चित्तपरिणामेन = समाधि-एकाग्रता-निरोध रूप चित्त के परिणाम कथन द्वारा । स्थूलसूक्ष्मेषु = स्थूल एवं सूक्ष्म । भूतेषु = पञ्च महाभूतों में । बुद्धिकर्मान्तःकरणभेदेन = ज्ञान, कर्म एवं अन्तःकरण के भेद, रूप से । अवस्थितेषु = विद्यमान । इन्द्रियेषु = इन्द्रियों में । धर्मलक्षणावस्थाभेदेन = धर्म, लक्षण तथा अवस्था भेद से । त्रिविधः = तीन प्रकार का । परिणामः = परिणाम । व्याख्यातः = वर्णन किया गया अर्थात् । अवगन्तव्यः = समस्त पदार्थों में विद्यमान त्रिविध परिणामों को समझना चाहिये । अवस्थितस्य = विद्यमान । धर्मिणः = धर्मी का । पूर्वधर्मनिवृत्तौ = प्रथम धर्म की निवृत्ति, तिरोभाव हो जाने पर । धर्मान्तरापत्तिः = द्वितीय, अभिनव धर्म का ग्रहण करना ही । धर्मपरिणामः = धर्म परिणाम है । यथा = जैसे । मृल्लक्षणस्य = मृत्तिका रूप । धर्मिणः = धर्मी का । पिण्डरूपधर्मपरित्यागेन = पिण्ड रूप प्रथम धर्म का परित्याग करके । घटरूपधर्मान्तरस्वीकारः = घट रूप द्वितीय धर्म को ग्रहण करना ही । धर्मपरिणामः=धर्मपरिणाम । इति = इस रूप से । उच्यते = कहा जाता है । लक्षणपरिणामःयथा = लक्षण परिणाम का उदाहरण इस प्रकार है । तस्य एव = उस ही । घटस्य = घट का । अनागताध्वपरित्यागेन = अनागत स्वरूप का परित्याग करके । वर्त्तमानाध्वस्वीकारः = वर्तमान कालीन घट रूप को ग्रहण करना । तथा । तत्परित्यागेन = उस वर्तमान स्वरूप का परित्याग कर । अतीताध्वपरिग्रहः = अतीतस्वरूप को

१. बुद्धिकर्मलक्षणभेदेन (पा०) ।

२. कालक्षणयोरन्वयित्वेन (पा०) ।

स्वीकार करना ही लक्षणपरिणाम है। अवस्थापरिणामः यथा = अवस्था परिणाम का उदाहरण इस प्रकार है। तस्य एव = उस ही। घटस्य = घट का। प्रथम-द्वितीययोः = प्रथम अनागत तथा द्वितीय अतीत दोनों। सदृशयोः = समान। काल-लक्षणयोः = काल एवं लक्षणों में। अन्वयित्वेन = अन्वयी रूप से विद्यमान रहना ही अवस्था परिणाम है। गुणवृत्तिः = गुणों की वृत्ति। अपरिणम्यमाना = बिना परिणाम को प्राप्त किये। क्षणं = एक क्षण। अपि = भी। न = नहीं। अस्ति = स्थित रहती है। प्रवृत्तक रजोगुण सदैव पदार्थों में गति उत्पन्न करता रहता है। अतः त्रिगुणात्मक प्रकृति के परिणाम भूत समस्त पदार्थ परि-वर्तनशील हैं॥ १३॥

ननु कोऽयं धर्मीत्याशङ्क्य ध. .र्मिणो लक्षणमाह—

ननु = प्रश्न उपस्थित होता है कि। अयं = यह। धर्मी = धर्मी। कः=कौन है। इति = ऐसी। आशङ्क्य = आशंका करके, संदेह होने पर। धर्मिणः = धर्मी के। लक्षणं = लक्षण, स्वरूप को। आह = कहते हैं।

शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी॥ १४॥

अर्थः—शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती = शान्त, उदित तथा अव्यपदेश्य, अतीत, वर्तमान तथा अनागत धर्मों में अनुगत व्याप्त रहने वाला, त्रैकालिक धर्मों में आधार रूप से विद्यमान रहने वाला। धर्मी = धर्मी होता है। धर्मी आधार, आश्रय है तथा उसपर रहने वाले धर्म आधेय है। अतीत, वर्तमान-अनागत सभी धर्मों में एक ही धर्मी आश्रय रूप से विद्यमान रहता है।

वृत्तिः—शान्ता ये कृतस्वस्वव्यापारा अतीतेऽध्वनि अनुप्रविष्टाः; उदिता य अनागतमध्वानं परित्यज्य वर्त्तमानेऽध्वनि स्वव्यापारं कुर्वन्ति; अव्यपदेश्या ये शक्तिरूपेण स्थिता व्यपदेष्टुं न शक्यन्ते, तेषां यथास्वं सर्वात्मकत्वमित्येवमादयो नियतकार्य्यकारणरूपयोग्यतयावच्छिन्ना शक्तिरेवेह धर्मशब्देनाभिधीयते।

तं त्रिविधमपि धर्मं योऽनुपतति अनुवर्त्तते, अन्वयित्वेन स्वीकरोति स शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मीति उच्यते; यथा—सुवर्णं रुचकरूपधर्मपरि-त्यागेन स्वस्तिकरूपधर्मान्तरपरिग्रहे सुवर्णरूपतयाऽनुवर्त्तमानं तेषु धर्मेषु कथञ्चि-

द्भिन्नेषु धर्मिरूपतया सामान्यात्मना धर्मरूपतया विशेषात्मना स्थितमन्वयित्वेनाव[1] भासते ॥ १४ ॥

शान्ताः = वे धर्म शान्त कहे जाते हैं। ये = जो। कृतस्वस्वव्यापाराः = अपने अपने व्यापारों को सम्पन्न करके। अतीते = अतीत कालीन। अध्वनि = मार्ग, कारण, स्वरूप मे। अनुप्रविष्टाः = प्राप्त कर चुके हैं, विलीन हो गये हैं। उदिताः = वे धर्म उदित हैं। ये = जो। अनागतं = अनागत, भविष्य। अध्वानं = स्वरूप का। परित्यज्य = परित्याग करके। वर्त्तमाने = वर्तमान कालीन। अध्वनि = स्वरूप में। स्वव्यापारं = अपने व्यापार को। कुर्वन्ति = पूर्ण करते हैं। अव्यपदेश्याः = वे धर्म अव्यपदेश्य कहे जाते हैं। ये = जो। शक्तिरूपेण = शक्ति रूप से। स्थिताः = अपने कारण में विद्यमान हैं। और व्यपदेष्टुं = उन धर्मों का व्यपदेश, निर्देश, वर्णन करना। न = नहीं। शक्यन्ते = संभव है। तेषां = उन्हीं तीनों कर्मों का। यथास्वं = क्रमशः। सर्वात्मकत्वं = सर्वात्मक रूप से, पूर्ण रूप से, कारण स्वरूप अभिन्न रूप का होना। इत्येवमादयः = इस प्रकार तीनों ही अतीत-वर्तमान-अव्यपदेश्य इत्यादि कार्य। नियतकार्य्यकारणरूपयोग्यतया = निश्चित कार्य कारण रूप योग्यता से। अवच्छिन्ना = = संयुक्त, संबद्ध। शक्तिः = शक्ति। एव=ही। इह = यहां पर, प्रस्तुत प्रसङ्ग में। धर्मशब्देन = धर्म शब्द के द्वारा। अभिधीयते = कही जाती है। निश्चित कार्य कारण से युक्त शक्ति ही धर्म है। ते = उस। त्रिविध = तीन प्रकार के। अपि= भी। धर्मं = धर्म का। यः = जो। अनुपतति = अनुगमन करता है। अनुवर्त्तते = अनुवर्तन करता है। अन्वयित्वेन = अन्वय रूप से। स्वीकरोति = स्वीकार करता है। सः = वही। शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती = अतीत-वर्तमान-अनागत धर्मों का आश्रय रूप से अनुगमन करने वाला। धर्मी = धर्मी। इति = इस रूप से। उच्यते = कहा जाता है। यथा = जैसे। सुवर्णं = धर्मीसुवर्ण। रुचकरूपधर्मपरित्यागेन = रुचक, कण्ठाभरण रूप प्रथम धर्म का परित्याग करके। स्वस्तिकरूपधर्मान्तरपरिग्रहे = स्वस्तिक रूप द्वितीय धर्म के ग्रहण कर

---

१. अनुयायित्वेन, अनुपातित्वेन (पा०)।

लेने पर भी । सुवर्णरूपतया = सुवर्ण रूप से । अनुवर्त्तमानं = अनुगमन करता हुआ । कथञ्चित् = कुछ । भिन्नेषु = भिन्न रूप से प्रतीत होने वाले । तेषु = उन । धर्मेषु = धर्मों में । धर्मिरूपतया = धर्मी रूप से । सामान्यात्मना = सामान्य रूप में । स्थितं = विद्यमान रहता है। अन्वयित्वेन = अन्वयी रूप से । अवभासते = प्रकाशित होता है । अर्थात् रुचक, स्वस्तिक, कटक, कुण्डल धर्मों में यद्यपि भेद दृष्टिगोचर होता है। फिर भी धर्मों में सुवर्ण धर्मी की स्थिति से सामान्यरूप में तथा धर्म की स्थिति से विशिष्टरूप में संबद्ध रहता ही है ॥ १४ ॥

एकस्य धर्मिणः कथमनेके परिणामा[1] इत्याशङ्कामपनेतुमाह—

एकस्य = एक ही । धर्मिणः = धर्मी के । कथं = किस प्रकार । अनेके = अनेक, विविध । परिणामाः=परिणाम होते हैं । इति = इस । आशङ्कां = संदेह को । अपनेतुं =दूर करने के लिये । आह = कहते हैं ।

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥

अर्थः—परिणामान्यत्वे = परिणाम के अन्यत्व, विविधता में, एक ही धर्मी में, एक ही धर्मी में होने वाले परिणाम की अनेकता में । क्रमान्यत्वं = क्रम की अनेकता, मृत्तिकाचूर्ण, मृत्तिकापिण्ड, कपाल, घट इत्यादि क्रम की अनेकता ही । हेतुः = कारण है । एक ही धर्मी में जो अनेक प्रकार के परिणाम पाये जाते हैं, उस विविधता में क्रम भिन्नता ही कारण है ।

वृत्तिः—धर्माणाम् उक्तलक्षणानां यः क्रमस्तस्य यत् प्रतिक्षणमन्यत्वं परिदृश्यमानं, परिणामस्योक्तलक्षणस्यान्यत्वे, नानाविधत्वे, हेतुर्लिङ्गं ज्ञापकं भवति । अयमर्थः—योऽयं नियतः क्रमः मृच्चूर्णाद् मृत्पिण्डः, ततः कपालानि, तेभ्यश्च घट इत्येवं क्रमरूपः परिदृश्यमानः परिणामस्य अन्यत्वमावेदयति । तस्मिन्नेव धर्मिणि यो लक्षणपरिणामस्य अवस्थापरिणामस्य च क्रमः, सोऽपि अनेनैव न्यायेन परिणामान्यत्वे गमकोऽवगन्तव्यः ।

सर्व एव भावा नियतेनैव क्रमेण प्रतिक्षणं परिणम्य[2]मानाः परिदृश्यन्ते; अतः

१. धर्माः (पा०) ।
२. परिणममानाः (पा०) ।

सिद्धं क्रमान्यत्वात् परिणामान्यत्वम्। सर्वेषां चित्तादीनां परिणमम[1]नानां केचिद्धर्माः प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यन्ते, यथा--सुखादयः संस्थानादयश्च। केचिदेकान्ते-नानुमानगम्याः, यथा--धर्मसंस्कार-शक्तिप्रभृतयः। धर्मिणश्च भिन्नाभिन्नरूप-तया सर्वत्रानुगमः॥ १५॥

उक्तलक्षणानां = वर्णन किये गये लक्षण वाले। धर्माणां = धर्मों का। यः= जो। क्रमः = क्रम है। तस्य = उसी क्रम का। यत् = जो प्रतिक्षणं = प्रत्येक क्षण, सदा। परिदृश्यमानं = देखा जाता हुआ, ग्रहण किया जाता हुआ। अन्यत्वं = अनेकरूपता, विविधता है। वही क्रम की अनेकता। उक्तलक्षणस्य = कहे गये, वर्णित लक्षण वाले। परिणामस्य = एक ही धर्मी के परिणाम की। अन्यत्वे = अनेकता अर्थात्। नानाविधत्वे = विविध प्रकार के रूप में। हेतुः= हेतु अर्थात्। लिङ्गं = लिङ्ग अर्थात्। ज्ञापकं = ज्ञान प्रदान कराने वाला। भवति = होता है। धर्मी के विविध परिणाम में क्रम की अनेकता ही हेतु, लिङ्ग है। अयं = यह। अर्थः = अभिप्राय है। यः = जो। अयं = यह। नियतः = निश्चित। क्रमः = क्रम है कि। मृच्चूर्णाद् = मृत्तिका चूर्ण से। मृत्पिण्डः = मृत्तिकापिण्ड। ततः = उस मृत्तिका पिण्ड से। कपालानि = कपाल। च=और। तेभ्यः = उन कपालों से। घट इति = घट बनता है। एवं=इस प्रकार से। परि-दृश्यमानः = देखा जाता हुआ, उपलब्ध होने वाला। क्रमरूपः = क्रम। परिणा-मस्य = एक ही धर्मी के परिणाम की। अन्यत्वं = अनेकता को। आवेदयति = प्रकट, सूचित करता है। तस्मिन् एव = उस ही एक। धर्मिणि = धर्मी में। यः = जो। लक्षणपरिणामस्य = लक्षण परिणाम का। च = और। अवस्था-परिणामस्य = अवस्था परिणाम का। क्रमः = क्रम है। सः = वह। अपि=भी। अनेन = इस। एव = ही। न्यायेन = न्याय से, क्रम की अनेकता से। परिणा-मान्यत्वे = परिणाम की विविधता में। गमकः = ज्ञान कराने वाला। अवगन्तव्यः = समझना चाहिये। सर्वे एव = सभी। भावाः = भाव। नियतेन = निश्चित। क्रमेण = क्रम से। एव = ही। प्रतिक्षणं = प्रत्येक क्षण, सदैव। परिणम्यमानाः = परिणाम, परिवर्तन को प्राप्त करते हुए। परिदृश्यन्ते = दिखलाई पड़ते हैं।

---

१. परिणम्यमानानाम् (पा०)।

अतः = इसलिये। **सिद्धं** = यह सिद्ध होता है कि। **क्रमान्यत्वात्** = क्रम की अनेकता के कारण। **परिणामान्यत्वं** = एक ही धर्मी के परिणाम की विविधता उपलब्ध होती है। **परिणममानानां** = परिणाम को प्राप्त करते हुए। **सर्वेषां** = सभी। **चित्तादीनां** = चित्त इत्यादि के। **केचित्** = कुछ। **धर्माः** = धर्म। **प्रत्यक्षेण** = प्रत्यक्ष रूप से। **एव** = ही। **उपलभ्यन्ते** = उपलब्ध, प्राप्त होते हैं। **यथा** = जैसे। **सुखादयः** = सुख इत्यादि। **च** = और। **संस्थानादयः** = संस्थान इत्यादि। **केचित्** = कुछ धर्म। **एकान्तेन** = एकान्ततः, एकान्त, पूर्ण रूप से। **अनुमानगम्याः** = अनुमान द्वारा ही जानने योग्य होते हैं। **यथा** = जैसे। **धर्म-संस्कारशक्तिप्रभृतयः** = धर्म, संस्कार, शक्ति इत्यादि। **च** = और। **धर्मिणः** = धर्मी का। **भिन्नाभिन्नरूपतया** = भिन्न तथा अभिन्न रूप से। विशेष तथा सामान्य रूप से। **सर्वत्र** = सभी धर्मों में। **अनुगमः** = अनुगमन सम्बन्ध होता ही है। सभी दशाओं में धर्मों का धर्म से अन्वय होता ही है। क्योंकि वह धर्म का आधार है ॥ १५ ॥

इदानीमुक्तस्य संयमस्य विषयप्रदर्शनद्वारेण सिद्धीः प्रतिपादयितुमाह--

इदानीं = अब। **उक्तस्य** = पूर्व में ३।४ वर्णन किये गये। **संयमस्य** = संयम के। **विषयप्रदर्शनद्वारेण** = विषय निरूपण के द्वारा। **सिद्धीः** = सिद्धियों का। **प्रतिपादयितुं** = प्रतिपादन, वर्णन करने के लिए। **आह** = कहते हैं।

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥ १६ ॥

अर्थः—**परिणामत्रयसंयमाद्** = धर्म-लक्षण-अवस्था रूप त्रिविध परिणामों में संयम करने से, धारणा-ध्यान-समाधि का अभ्यास करने से। **अतीतानागतज्ञानं** = अतीत तथा अनागत का ज्ञान होता है। योगी को समस्तपदार्थों का भूत कालीन तथा भविष्यकालीन स्वरूप का सम्यक् ज्ञान होता है। वस्तु के मूल-करण, परिवर्तन, विलय इत्यादि का ज्ञान परिणामों में संयम करने से होता है।

वृत्तिः--धर्म-लक्षणावस्थाभेदेन यत् परिणामत्रयमुक्तं, तत्र संयमात् तस्मिन् विषये पूर्वोक्तसंयमस्य करणात्, अतीतानागतज्ञानं योगिनः समाधिर्भवति[1]।

---

१. आविर्भवति (पा०)।

इदमत्र तात्पर्यम्—अस्मिन् धर्मिणि अयं धर्मः, इदं लक्षणम्, इयमवस्था च अनागतादध्वनः समेत्य वर्त्तमाने अध्वनि स्वव्यापारं विधायातीतम् अध्वानं प्रविशतीत्येव परिहृतविक्षेपतया यदा संयमं करोति, तदा यत् किञ्चिदनुत्पन्नमतिक्रान्तं वा तत् सर्वं योगी जानाति, यतश्चित्तस्य शुद्धसत्त्वप्रकाशरूपत्वात् सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यमविद्यादिभिर्विक्षेपैरपक्रियते[1]। यदा तु तैस्तैरुपायैर्विक्षेपाः परिह्रियन्ते तदा निवृत्तमलस्येव आदर्शस्य सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यमेकाग्रताबलादाविर्भवति ॥ १६ ॥

धर्मलक्षणावस्थाभेदेन = धर्मपरिणाम, लक्षणपरिणाम, अवस्थापरिणाम भेद से। यत् = जो। परिणामत्रयं = तीन प्रकार के परिणाम। उक्तं = कहे गये हैं। तत्र = उन त्रिविध परिणामों में। संयमात् = संयम करने से, धारणा-ध्यान-समाधि का अभ्यास करने से। तस्मिन् = उस। विषये = विषयमें। पूर्वोक्तसंयमस्य = पहले वर्णन किये गये संयम के। करणात् = करने से। अतीतानागतज्ञानं = अतीत तथा अनागत का ज्ञान होता है, पदार्थ के भूत तथा भविष्यकालीन स्वरूप का ज्ञान होता है। योगिनः = योगी की। समाधिः = समाधि। भवति = होती है। अत्र = यहाँ पर, इस विषय में। इदं = यह। तात्पर्यं = तात्पर्य है। अस्मिन् = इस। धर्मिणि = धर्मी में। अयं = यह। धर्मः = धर्म है, इस धर्मी का यह धर्म परिणाम है। इदं = यह। लक्षणं लक्षण परिणाम है। च = और। इयं = यह। अवस्था = अवस्था परिणाम है। अनागताद् = भविष्यकालीन। अध्वनः = स्वरूप को। समेत्य = पार करके, त्याग कर। वर्त्तमाने = वर्त्तमानकालीन। अध्वनि = स्वरूप में। स्वव्यापारं = अपने कार्य को। विधाय = पूर्ण करके। अतीतं = अतीतकालीन। अध्वानं = अपने मूल कारण, स्वरूप में। प्रविशति = प्रवेश कर रहा है, विलय को प्राप्त कर रहा है। इति = इस रूप से। एवं = इस प्रकार। परिहृतविक्षेपतया = विक्षेप का परिहार, परित्याग करके, चित्त का अन्य विषयों में गमन रोककर। यदा = जब। संयमं=संयम को, धारण-ध्यान-समाधि के अभ्यास को। करोति =

1. विक्षेपैरजस्रं परिह्रियते (पा०)।

योगी करता है। तदा = तब, संयम करने पर। यत् = जो। किञ्चिद् = कुछ। अनुत्पन्नं = उत्पन्न नहीं हुआ है, कारण में बीजरूप में अव्यक्तरूप से निहित, स्थिति है। वा=अथवा। अतिक्रान्तं=अतिक्रमण कर गया है, वर्तमानस्वरूप का परित्याग कर पुनः कारण में विलीन हो गया है। तत् सर्वं = वह सब कुछ, वस्तु के अव्यक्त व्यक्त तिरोहित स्वरूप को। योगी=योगी। जानाति = जानता है। यतः=क्योंकि। चित्तस्य = चित्त का। शुद्धसत्त्वप्रकाशरूपत्वात् = विशुद्धसत्त्व एवं प्रकाशक रूप होने के कारण, सत्त्वगुणविशिष्टप्रकाशक होने के कारण। सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यं = सभी पदार्थों को ग्रहण करने की सामर्थ्य होती है। समस्त पदार्थ के अतीत-वर्तमान-अनागत स्वरूप को जानने की शक्ति होती है। अविद्यादिभिः = अविद्या इत्यादि। विक्षेपैः = विक्षेपों के द्वारा। अपक्रियते = दूर किया जाता है, अविद्या का निराकरण किया जाता है। यदा = जब। तु = तो। तैः तैः = उन उन। उपायैः = उपायों, साधनों के द्वारा। विक्षेपाः = विक्षेपों का। परिह्रियन्ते = परिहार, निवारण किया जाता है। तदा = तब। निवृत्तमलस्य = दूर हुये कलुष वाले। आदर्शस्य = दर्पण की। इव = तरह। एकाग्रताबलाद् = एकाग्रता के बल से। सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यं = समस्त पदार्थ के स्वरूप को ग्रहण करने की शक्ति। आविर्भवति = उत्पन्न होती है॥ १६॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = संयम से प्राप्त होने वाली दूसरी सिद्धि को। आह = बतलाते हैं।

शब्दार्थ-प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् सङ्करस्तत्प्रविभाग-संयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम्॥ १७॥

शब्दार्थप्रत्ययानां = शब्द, पदार्थ और ज्ञान का। इतरेतर = परस्पर एव दूसरे में। अध्यासात् = अध्यास होने से, एक दूसरे की एक दूसरे में बुद्धि होने से। सङ्करः = सम्मिश्रण हो रहा है। तत् = उन शब्द, पदार्थ और ज्ञान के। प्रविभागसंयमात् = विभागों में संयम करने से। योगी को। सर्वभूतरुतज्ञानं = समस्त पशु, पक्षी, सरीसृप इत्यादि प्राणियों की वाणी का ज्ञान होता है।

इस अभिप्राय से इस प्राणी द्वारा इस शब्द का उच्चारण किया गया, इसका पूर्ण ज्ञान होता है।

वृत्तिः—शब्दः श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यो नियतक्रमवर्णात्मा नियतैकार्थप्रतिपत्त्यवच्छिन्नः, यदि वा, क्रमरहितस्फोटात्मा शास्त्रसंस्कृतबुद्धिग्राह्यः[1], उभयथाऽपि पदरूपो वाक्यरूपश्च, तयोरेकार्थप्रतिपत्तौ सामर्थ्यात्। अर्थो जाति-गुण-क्रियादिः, प्रत्ययो ज्ञानं, विषयाकारा बुद्धिवृत्तिः, एषां शब्दार्थज्ञानानां व्यवहारे इतरेतराध्यासाद् भिन्नानामपि बुद्ध्येकरूपतासम्पादनात् सङ्कीर्णत्वम्। तथा हि—

गामानयेत्युक्ते कश्चिद् गोलक्षणमर्थं गोत्वजात्यवच्छिन्नं सास्नादिमत् पिण्डरूपं शब्दञ्च तद्वाचकं ज्ञानञ्च तत्ग्राहकमभेदेनैवाध्यवस्यति, न त्वस्य गोशब्दो वाचकः, अयं गोशब्दस्य वाच्यः, तयोरिदं ग्राहकं ज्ञानमिति भेदेन व्यवहरति। कोऽयमर्थः, तथा हि—कोऽयं शब्दः, किमिदं ज्ञानमिति पृष्टः सर्वत्रैकरूपमेवोत्तरं ददाति गौरिति। स यद्येकरूपतां न प्रतिपद्यते, कथमेकरूपमुत्तरं प्रयच्छति?

एवं[2] तस्मिन् अवस्थिते योऽयं प्रविभागः,—इदं शब्दस्य तत्त्वं यद्वाचकत्वं नाम, इदमर्थस्य यद्वाच्यत्वम्, इदं ज्ञानस्य, यत् प्रकाशकत्वमिति प्रविभागं विधाय तस्मिन् प्रविभागे यः संयमं करोति तस्य सर्वेषां भूतानां मृग-पक्षि-सरीसृपादीनां यद् रुतं यः शब्दस्तत्र ज्ञानमुत्पद्यते, अनेनैवाभिप्रायेण तेन प्राणिनायं शब्दः समुच्चारित इति सर्वं जानाति॥ १७॥

श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यः = श्रोत्रेन्द्रिय से ग्रहण किया जाने वाला। नियतक्रमवर्णात्मा = निश्चित क्रम एवं वर्ण स्वरूप वाला। नियतैकार्थप्रतिपत्त्यवच्छिन्नः = निश्चित एक अर्थ का ज्ञान कराने की शक्ति से युक्त। शब्दः = शब्द है। यदि वा = अथवा। क्रमरहितस्फोटात्मा = वर्णों के क्रम से रहित स्फोट, ध्वनिरूप। ध्वनिसंस्कृतबुद्धिग्राह्यः = परिष्कृत बुद्धि द्वारा ग्राह्य ध्वनि वाला शब्द होता है। उभयथा = दोनों प्रकार से। अपि = भी। पदरूपः = पद के रूप में। च = और। वाक्यरूपः = वाक्य के रूप में। तयोः = उन दोनों प्रकार के

---

१. ध्वनिसंस्कृतबुद्धिग्राह्यः (पा०)।

२. एकस्मिन् स्थिते योऽयम्, एतस्मिन् स्थिते योऽयम् (पा०)।

शब्दों की। एकार्थप्रतिपत्तौ = एक पदार्थ के स्वरूप का ज्ञान प्रदान करने में। सामर्थ्यात् = सामर्थ्य, शक्ति होने के कारण, दोनों प्रकार के शब्द में एक नियत पदार्थ का ज्ञान प्रदान करने की शक्ति होती है। जातिगुणक्रियादिः = जाति-गुण-क्रिया इत्यादि स्वरूप, लक्षण वाला। अर्थः = पदार्थ होता है। प्रत्ययः = प्रत्यय। ज्ञानं = ज्ञान को कहते हैं। वह। विषयाकारा = विषय के आकार की हुई। बुद्धिवृत्तिः = चित्त की वृत्ति ही है। एषां = इन। शब्दार्थज्ञानानां = शब्द, पदार्थ तथा ज्ञान का। व्यवहारे = व्यवहार में। इतरेतर = परस्पर, एक दूसरे में। अध्यासाद्=अध्यास होने से 'अध्यासो नाम अतस्मिन् तद्बुद्धिः'। भिन्नानां = भिन्नों का, शब्द-अर्थ-ज्ञान परस्पर पृथक् स्वरूप वालों का। अपि = भी। बुद्ध्येकरूपता = बुद्धि का एक समान रूप होना, सबमें एक ही बुद्धि का। सम्पादनात् = संपन्न होने से, शब्द-अर्थ-ज्ञान सब में अभिन्न रूप से एक ही प्रतीति होना। सङ्कीर्णत्वं = संकीर्ण, मिश्रित होना है। तथाहि = जैसे कि। गाम् आनय इति उक्ते = 'गो ले आओ' ऐसा कहे जाने पर, शब्द के उच्चारण करने पर कश्चिद् = कोई मनुष्य। गोलक्षणं = गोलक्षण से युक्त। अर्थं = पदार्थ को। गोत्वजात्यवच्छिन्नं = गोत्व जाति से समन्वित। सास्नादिमत् = सास्ना इत्यादि से युक्त। पिण्डरूपं = पिण्डरूप पदार्थ को। च = और। तद्वाचकं = उस पिण्ड, पदार्थ के वाचक, बतलाने वाले। शब्दं = शब्द को। च = और। तद् ग्राहक = उस पदार्थ का ग्रहण कराने वाले। ज्ञानं = ज्ञान, विषयकार चित्त वृत्ति को। अभेदेन = अभेद, अभिन्न, एक रूप से, शब्द-अर्थ-ज्ञान को समान बुद्धि से। एव= ही। अध्यवस्यति = निश्चय करता है, सबकी पृथक् रूप से प्रतीति न करके एक ही रूप में करता है। तु = किन्तु। अस्य = इस गो रूप पदार्थ का। गोशब्दः = यह मुख उच्चरित तथा श्रोत्रग्राह्य गो शब्द। वाचकः = वाचक है। अयं = यह गोरूप पदार्थ। गोशब्दस्य = गोशब्द का। वाच्यः = वाच्य, अभिधेय है। तयोः = गोरूप पदार्थ तथा गोशब्द उन दोनों का। इदं = यह। ग्राहकं = ग्रहण कराने वाला, प्रतीति कराने वाला। ज्ञानं = ज्ञान, चित्तवृत्ति है। इति = इस रूप से वाचक, वाच्य, ग्राहक रूप से। भेदेन = भेद के साथ, पृथक्-पृथक् रूप से। न = नहीं। व्यवहरति = व्यवहार करता है अपितु भिन्न होने पर भी

वाचक-वाच्य-ग्राह्य तीनों का एक ही रूप में अभिन्न रूप से व्यवहार करता है। तथा हि = जैसे कि। कः = कौन। अयं = यह। अर्थः = पदार्थ है। कः = कौन। अयं = यह। शब्दः = शब्द है। किं = कौन। इदं = यह। ज्ञानं = ज्ञान है। इति = इस त्रिविध भिन्न-भिन्न रूप में। पृष्ठः = प्रश्न किये जाने पर। सर्वत्र= सभी तीनों विषयों में, प्रश्नों के सम्बन्ध में। एकरूपं = एक रूप का, समान। एव = ही। उत्तरं = उत्तर। गौः = यह गौ है। इति = इस रूप से। ददाति= देता है। यदि = यदि। सः = वह पुरुष। एकरूपतां = वाचक-वाच्य-ग्राहक- शब्द-अर्थ-ज्ञान को एक ही रूप में। न = नहीं। प्रतिपद्यते = मान लेता, निश्चय कर लेता। कथं = तो किस प्रकार से। एकरूपं = एक ही प्रकार का, गौरूप। उत्तरं = उत्तर। प्रयच्छति = देता है। इन सभी को एक रूप समझ करके ही वह मनुष्य 'यह गौ है' ऐसा एक ही उत्तर देता है। एवं = इस प्रकार से। तस्मिन् = उसमें। अवस्थिते = विद्यमान। यः = जो। अयं = यह। प्रविभागः = विभाग है अर्थात्। यद् = जो। वाचकत्वं नाम = वाचकत्व है। इदं = यह। शब्दस्य = शब्द का। तत्त्वं = तत्त्व है। यद् वाच्यत्वं = जो वाच्यत्व है। इदं = यह। अर्थस्य = पदार्थ का तत्त्व है। यत् = जो। प्रकाशकत्वं = प्रकाशकत्व, ग्राहकत्व है। इदं = यह। ज्ञानस्य = ज्ञान का तत्त्व है। इति = इस रूप से। प्रविभागं = विभाग को। विधाय = करके। तस्मिन् = उस। प्रविभागे = शब्द- अर्थ-ज्ञान रूप विभाग में। यः = जो योगी। संयमं = संयम, धारणा-ध्यान- समाधि का अभ्यास। करोति = करता है। तस्य = उस योगी को। मृगपक्षि- सरीसृपादीनां = मृग, पक्षी, सरीसृप इत्यादि। सर्वेषां = सभी, समस्त। भूतानां प्राणियों की। यद् = जो। रुतं = वाणी है। यः शब्दः = उन प्राणियों से उच्च- रित जो शब्द है। तत्र = उस शब्द के विषय में। ज्ञानं = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। तेन = उस। प्राणिना = पशु पक्षी इत्यादि प्राणी के द्वारा। अनेन = इस। एव = ही। अभिप्रायेण = उद्देश्य प्रयोजन से। अयं = इस। शब्दः = शब्द का। समुच्चारितः = उच्चारण किया गया। इति = इस रूप से वह योगी। सर्वं = समस्त प्राणियों की उच्चारित वाणी के अर्थ को। जानाति= जानता है ॥ १७ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = संयम से उपलब्ध होने वाली दूसरी सिद्धि का। आह = वर्णन करते हैं।

संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ॥ १८ ॥

अर्थः—संस्कारसाक्षात्करणात् = चित्त में विद्यमान संस्कारों को संयम द्वारा साक्षात् प्रत्यक्ष कर लेने पर। पूर्वजातिज्ञानं = योगी को पूर्व जन्म का ज्ञान होता है।

वृत्तिः—द्विविधाश्चित्तस्य वासनारूपाः संस्काराः; केचित् स्मृतिमात्रोत्पादनफलाः, केचिज् जात्यायुर्भोगलक्षणा विपाकहेतवः; यथा—धर्माधर्माख्याः, तेषु संस्कारेषु यदा संयमं करोति, एवं मया सोऽर्थोऽनुभूतः, एवं मया सा क्रिया निष्पादितेति पूर्ववृत्तमनुसन्दधानो भावयन्नेव[1] प्रबोधकमन्तरेण उद्बुद्धसंस्कारः सर्वमतीतं स्मरति; क्रमेण साक्षात्कृतेषूद्बुद्धेषु संस्कारेषु पूर्वजन्मान्तरानुभूतानपि जात्यादीन् प्रत्यक्षेण पश्यति ॥ १८ ॥

चित्तस्य = चित्त के। वासनारूपाः = वासनारूपी। संस्काराः = संस्कार। द्विविधाः = दो प्रकार के हैं। केचित् = उन संस्कारों में कुछ। स्मृतिमात्रोत्पादनफलाः = स्मृतिमात्र फल को उत्पन्न करने वाले, केवल स्मृति को उद्बुद्ध करने वाले होते हैं। केचित् = कुछ संस्कार। जात्यायुर्भोगलक्षणाः = देव-मानव-पशु-पक्षी इत्यादि जाति, आयु-अवस्था परिणाम, जीवन की अवधि, तथा सुख-दुःख इत्यादि भोगरूप। विपाकहेतवः = विपाक के कारण बनते हैं। यथा = जैसे। धर्माधर्माख्याः = धर्म तथा अधर्म नाम वाले संस्कार जाति-आयु-भोग रूपी विपाक को प्रदान करने वाले होते हैं। तेषु = उन। संस्कारेषु = संस्कारों में। यदा = जब। योगी। संयमं = संयम। करोति = करता है। तव। एवं = इस प्रकार। मया = मेरे द्वारा। सः = उस। अर्थः = अर्थ का। अनुभूतः = अनुभव किया गया। एवं = इस प्रकार। मया = मेरे द्वारा। सा = वह। क्रिया=कार्य। निष्पादिता = सम्पन्न, पूरा किया गया। इति = इस रूप से। पूर्ववृत्तं = पहले

---

१. भावनयैव (पा०)।

के वृत्तान्त को। अनुसन्दधानः = स्मरण करता हुआ। भावयन् = भावना, ध्यान करता हुआ। एव = ही। प्रबोधकम् अन्तरेण = बोध ज्ञान कराने वाले किसी अन्य पुरुष के विना ही। उद्वुद्धसंस्कारः = उद्वुद्ध हुए संस्कारों वाला योगी, पूर्व के संस्कारों के प्रवुद्ध जग जाने पर। सर्वं = समस्त। अतीतं = अतीतकाल, भूतकालीन वृत्तान्तों का। स्मरति = स्मरण करता है। क्रमेण = क्रमशः। साक्षात्कृतेषु = साक्षात् किये गये। उद्वुद्धेषु = संस्कारों में, संस्कारों के प्रवुद्ध होने पर। पूर्वजन्मान्तर = पूर्व जन्म में। अनुभूतान् = अनुभव किये गये। जात्यादीन् = जाति इत्यादि, जाति-आयु-भोग को। अपि = भी। प्रत्यक्षेण = प्रत्यक्ष रूप से। पश्यति = देखता है ॥ १८ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह--

सिद्ध्यन्तरं = संयम से प्राप्त होने वाली दूसरी सिद्धि को। आह = बतलाते हैं।

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ १९ ॥

अर्थः—प्रत्ययस्य = संयम द्वारा दूसरे मनुष्य के चित्त का साक्षात्कार कर लेने पर। परचित्तज्ञानं = दूसरे मनुष्य के चित्त का ज्ञान होता है। श्रीविज्ञान-भिक्षु के अनुसार संयम द्वारा स्वयं अपनी ही चित्तवृत्ति का साक्षात्कार कर लेने पर अन्य पुरुषों के चित्त का ज्ञान संकल्पमात्र से ही हो जाता है।

वृत्तिः—प्रत्ययस्य परचित्तस्य केनचिद् मुखरागादिना लिङ्गेन गृहीतस्य, यदा संयमं करोति, तदा परकीयचित्तस्य ज्ञानमुत्पद्यते, सरागम् अस्य चित्तं वीतरागं वेति परचित्तगतान् सर्वानपि धर्मान् जानातीत्यर्थः ॥ १९ ॥

केनचित् = किसी। मुखरागादिना = मुख के राग इत्यादि। लिङ्गेन = लिङ्ग, चिह्न द्वारा। गृहीतस्य = ग्रहण किये गये। प्रत्ययस्य = प्रत्यय का अर्थात्। परचित्तस्य = दूसरे मनुष्य के चित्त का। यदा = जब। संयमं = संयम को। करोति = करता है। तदा = तब। परकीयचित्तस्य = दूसरे मनुष्य के चित्त का। ज्ञानं = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है अर्थात्। अस्य = इस मनुष्य का। चित्तं = चित्त। सरागं = राग युक्त है। वा = अथवा। वीतरागं = राग

से रहित है। इति = इस रूप से। परचित्तगतान् = दूसरे मनुष्य के चित्त में विद्यमान। सर्वान् अपि = सभी। धर्मान् = धर्मों को। जानाति = जानता है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है॥ १९॥

अस्यैव परचित्तज्ञानस्य विशेषज्ञानमाह—

अस्य = इस। एव = ही। परचित्तज्ञानस्य = दूसरे मनुष्य के चित्त के ज्ञान के। विशेषज्ञानं = विशेष ज्ञान को। आह = कहते हैं।

न च तत् सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात्॥ २०॥

अर्थः—च = किंतु। तत् = दूसरे मनुष्य के चित्त का ज्ञान। सालम्बनं = आलम्बन सहित। न = नहीं होता है। क्योंकि। तस्य = उस परपुरुष के चित्त का आलम्बन। अविषयीभूतत्वात् = साधक के चित्त का विषय न होने के कारण। परपुरुष का चित्त ही योगी का ध्येय विषय होता है। अतः उस पुरुष के चित्त के सामान्य स्वरूप का ही ज्ञान होता है। उसका चित्त रागयुक्त है अथवा राग रहित, इत्यादि सामान्य रूप का ही ग्रहण होता है। किंतु परपुरुष के चित्त का आलम्बन क्या है, इस विशेष का ज्ञान नहीं होता, क्योंकि यह योगी के चित्त का ध्येय विषय नहीं होता। पर इस आलम्बन के सम्बन्ध में भी प्रणिधान, संयम करने से योगी को आलम्बन सहित परपुरुष के चित्त का ज्ञान होता ही है।

वृत्तिः—तस्य परस्य यच्चित्तं तत् सालम्बनं स्वकीयेनालम्बनेन सहितं न शक्यते ज्ञातुम्, आलम्बनस्य केनचिल्लिङ्गेनाविषयीकृतत्वात्। लिङ्गाद्धि चित्तमात्रं परस्यावगतं न तु नीलविषयमस्य चित्तं पीतविषयमिति वा।

यच्च न गृहीतं तत्र संयमस्य कर्त्तुमशक्यत्वान् न भवति परचित्तस्य यो विषयस्तत्र ज्ञानं, तस्मात् परकीयचित्तं नालम्बनसहितं गृह्यते, तस्यालम्बनस्या-गृहीतत्वात्; चित्तधर्माः पुनर्गृह्यन्त एव। यदा तु किमनेनालम्बितमिति प्रणिधानं करोति, तदा तत्संयमात्तद्विषयमपि ज्ञानम् उत्पद्यत एव॥ २०॥

तस्य = उस। परस्य = दूसरे मनुष्य का। यत् = जो। चित्तं = चित्त है। तत् = वह परपुरुष का चित्त। सालम्बनं = सालम्बन अर्थात् आलम्बन के साथ।

स्वकीयेन = अपने ही । आलम्बनेन = आलम्बन के । सहितं = साथ । ज्ञातुं = जानने में । न = नहीं । शक्यते = संभव है । आलम्बन सहित पर चित्त का ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है । क्योंकि । केनचित् = किसी । लिङ्गेन = लिङ्ग, चिह्न द्वारा । आलम्बनस्य = परपुरुष के चित्त का आलम्बन । अविषयीकृतत्वात् = विषय रूप न होने के कारण, विषय न बनने के कारण । हि = क्योंकि । लिङ्गात् = लिङ्ग चिह्न द्वारा ही । परस्य = दूसरे मनुष्य के । चित्तमात्रं = केवल चित्त का, चित्त के सामान्य रूप का । अवगतं = ज्ञान होता है । तु = किन्तु । अस्य = इस परपुरुष का । चित्तं = चित्त । नीलविषयं = नीलविषयक, नीलवर्ण को विषय बनाने वाला, चिन्तन करने वाला । वा = अथवा । पीतविषयं = पीतविषय है । इति = इस रूप से अर्थात् आलम्बन सहित परचित्त का ज्ञान । न = नहीं संभव है । च = और । यत् = जिसका । न = नहीं । गृहीतं = ग्रहण किया गया है, जिसको विषय नहीं बनाया गया है । तत्र = उस अगृहीत विषय में । संयमस्य = संयम का । कर्तुं = करना । अशक्यत्वात् = असंभव होने के कारण । परचित्तस्य = परपुरुष के चित्त का । यः = जो । विषयः = विषय है । तत्र = उस विषय में । ज्ञानं = ज्ञान । न = नहीं । भवति = होता है । तस्मात् = इसलिये । परकीयचित्तं = दूसरे मनुष्य का चित्त । आलम्बनसहितं = आलम्बन के साथ । न = नहीं । गृह्यते = ग्रहण किया जाता है । तस्य = उस चित्त के । आलम्बनस्य = आलम्बन का । अगृहीतत्वात् = गृहीत न होने के कारण; विषय न बनने के कारण । पुनः = फिर भी । चित्तधर्माः = चित्त के धर्म । गृह्यन्ते एव = ग्रहण किये ही जाते हैं । यदा = जब । तु = तो । अनेन = इस परपुरुष के चित्त के द्वारा । किं = किस विषय को । आलम्बितं = आलम्बन बनाया गया है । इति = इस रूप से, उस चित्त के आलम्बन में । प्रणिधानं = प्रणिधान, ध्यान । करोति = करता है । तदा = तब । तत् = उसमें । संयमात् = संयम करने से । तत् = उस आलम्बन के । विषयं = विषय में । अपि = भी । ज्ञानं = ज्ञान । उत्पद्यते एव = उत्पन्न होता ही है ॥ २० ॥

सिद्ध्यन्तरमाह--

सिद्धयन्तरं = संयम से सिद्ध होने वाली दूसरी सिद्धि का । आह = निरूपण करते हैं ।

कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुष्प्रकाशा-संयोगेऽन्तर्द्धानम् ॥ २१ ॥

अर्थः—कायरूपसंयमात् = अपने शरीर के रूप में संयम करने से । तद् = उस शरीर के रूप में । ग्राह्यशक्तिस्तम्भे = पर पुरुष के चक्षु की ग्राह्यशक्ति के अवरुद्ध, रुक जाने पर । चक्षुष्प्रकाशासंयोगे = चक्षु इन्द्रिय के प्रकाश का योगी के शरीर के रूप के साथ संबन्ध न होने से । अन्तर्द्धानं = योगी का शरीर अन्तर्धान, अन्तर्हित, अदृश्य हो जाता है । रूप का ग्रहण प्रकाशकारिणी चक्षु द्वारा होता है । अपने शरीर के रूप में संयम करने से योगी दूसरे मनुष्यों के नेत्रों की ग्राह्यशक्ति को स्तम्भित कर देता है । अतः पर पुरुषों की चक्षु के साथ योगी के शरीर गत रूपका संबन्ध न होने से उसका शरीर अदृश्य हो जाता है ।

वृत्तिः—कायः शरीरं, तस्य रूपं चक्षुर्ग्राह्यो गुणः, तस्मिन्नस्त्यस्मिन्[1] काये रूपमिति संयमात्तस्य रूपस्य चक्षुर्ग्राह्यत्वरूपा या शक्तिःतस्याः स्तम्भे भावनावशात् प्रतिबन्धे, चक्षुष्प्रकाशासंयोगे चक्षुषः प्रकाशः सत्त्वधर्मः, तस्य असंयोगे तद्ग्रहण-व्यापाराभावे योगिनोऽन्तर्द्धानं भवति, न केनचिदसौ दृश्यत इत्यर्थः । एतेनैव[2] रूपान्तर्द्धानोपायप्रदर्शनेन शब्दादीनां श्रोत्रादिग्राह्याणामन्तर्द्धानमुक्तं वेदितव्यम् ॥ २१ ॥

कायः = काय । शरीरं = शरीर है । तस्य = उस शरीर का । रूपं = रूप । चक्षुर्ग्राह्यः = चक्षु इन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया जाने वाला । गुणः = गुण

---

१. तस्मिन् तस्मिन् काये (पा०) ।

२. केचन वाक्यमिदं 'एतेन शब्दाद्यन्तर्धानमुक्तं वेदितव्यम्' इति सूत्रस्य वृत्ति-रूपेण पठन्ति; तदसत्; न खलु एतेनेत्यादि वाक्यं सूत्ररूपम्, प्रत्युत भाष्य-वाक्यम् (द्र०—३।२१) ।

हैं। तस्मिन् = उस शरीर के रूप में अर्थात्। 'अस्मिन् = इस। काये = शरीर में। रूपं = रूपनामक गुण। अस्ति = विद्यमान हैं।' इति = इस प्रकार। संयमात् = संयम करने से, धारणा-ध्यान-समाधि से। तस्य = उस शरीर के। रूपस्य = रूपकी। चक्षुर्ग्राह्यत्वरूपा = चक्षु इन्द्रिय द्वारा ग्रहण की जाने वाली। या = जो। शक्तिः = शक्ति हैं। तस्याः = उस शक्ति के। स्तम्भे = अवरुद्ध कर लेने पर अर्थात् भावनावशात् = संकल्पमात्र से। प्रतिबन्धे = रोक लेने पर। चक्षुष्प्रकाशासंयोगे = चक्षु के प्रकाश का शरीरगत रूप के साथ संबन्ध न होने पर। प्रकाशः = प्रकाश। चक्षुषः = चक्षु का। सत्त्वधर्मः = सत्त्वगुणविशिष्ट धर्म हैं, सात्त्विकगुण हैं। तस्य = उस चक्षुप्रकाश के। असंयोगे = रूप के साथ संयोग, संबन्ध न होने पर। तद्ग्रहणव्यापाराभावे – शरीर के रूप को ग्रहण करने वाले व्यापार के अभाव, शरीरगत रूप का चक्षु के प्रकाश से ग्रहण न होने पर। योगिनः = योगी का शरीर। अन्तर्द्धानं = अन्तर्हित, अदृश्य। भवति = हो जाता है। केनचित् = किसी मनुष्य के द्वारा। असौ = वह योगी। न = नहीं। दृश्यते = दिखलाई पड़ता। इति अर्थः = यह अभिप्राय हैं। एतेन = इस। एव = ही। रूपान्तर्द्धानोपायप्रदर्शनेन = शरीर के रूप से अदृश्य होने के उपाय के वर्णन के द्वारा। श्रोत्रादिग्राह्याणां = श्रोत्र, त्वक् इत्यादि इन्द्रियों से ग्रहण किये जाने वाले। शब्दादीनां = शब्द, स्पर्श इत्यादि का। अन्तर्द्धान को। उक्तं = कहा गया। वेदितव्यं = समझना चाहिये अर्थात् शरीर के रूप में संयम करने की ही भाँति शब्द, स्पर्श इत्यादि में संयम करने से उस योगी के शब्द को कोई सुन नहीं सकता तथा उसका स्पर्श नहीं कर सकता॥ २१॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्धयन्तरं=संयम से प्राप्त होने वाली दूसरी सिद्धि को। आह=बतलाते हैं।

सोपक्रमं निरुपक्रमञ्च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानम-रिष्टेभ्यो वा॥ २२॥

अर्थः—सोपक्रमं = उपक्रम सहित, प्रारम्भ हुये, शीघ्र फल प्रदान करने वाले। च = और। निरुपक्रमं = उपक्रम रहित, प्रारम्भ न हुये, विलम्ब से फल

प्रदान करने वाले। कर्म = दो प्रकार के कर्म हैं। तत् = उन द्विविध कर्मों में। संयमात् = संयम करने से। अपरान्तज्ञानं = मृत्यु का ज्ञान होता है। वा = अथवा। अरिष्टेभ्यः = आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक अरिष्टों, अशुभों से भी मृत्यु का ज्ञान होता है। मनुष्य की आयु का निर्धारण करने वाले दो प्रकार के कर्म हैं : १—सोपक्रम—जो अपना फल देना आरम्भ कर चुके हैं। २—निरुपक्रम—जिनका फल प्रदान करना प्रारम्भ नहीं हुआ है। संयम से योगी को ज्ञात हो जाता है कि किस प्रकार के कर्म का फलभोग कितनी मात्रा में अवशिष्ट है और इस प्रकार उसे अपनी मृत्यु का ज्ञान हो जाता है। क्योंकि कर्मों के भोग के अन्तर ही देहसम्पात होता है।

वृत्तिः—आयुर्विपाकं यत् पूर्वकृतं कर्म तत् द्विप्रकारं, सोपक्रमं निरुपक्रमञ्च; तत्र सोपक्रमं यत् फलजननाय सहोपक्रमेण[1] कार्य्यकरणाभिमुख्येन वर्त्तते; यथा—उष्णप्रदेशे प्रसारितार्द्रवासः शीघ्रमेव शुष्यति। उक्तविपरीतं निरुपक्रमम्, यथा—तदेवार्द्रवासः संवर्तितम् अनुष्णप्रदेशे चिरेण शुष्यति।

तस्मिन् द्विविधे कर्मणि यः संयमं करोति—किं मम कर्म शीघ्रविपाकम्, चिरविपाकं वा, एवं ध्यानदार्ढ्यादपरान्तज्ञानमस्योत्पद्यते। अपरान्तः शरीरवियोगः, तस्मिन् ज्ञानम् अमुष्मिन् काले अमुष्मिन् देशे मम शरीरवियोगो भविष्यतीति निःसंशयं जानाति।

अरिष्टेभ्यो वा—अरिष्टानि त्रिविधानि, आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकानि। तत्राध्यात्मिकानि—पिहितकरणः कोष्ठ्यस्य वायोर्घोषं न शृणोतीत्येवमादीनि। अधिभौतिकानि—अकस्माद् विकृतपुरुषदर्शनादीनि। आधिदैविकानि—अकाण्डे एव द्रष्टुमशक्यस्वर्गादिपदार्थदर्शनादीनि, तेभ्यः शरीरवियोगकालं जानाति।

यद्यपि अयोगिनामप्यरिष्टेभ्यः प्रायेण तज्ज्ञानमुत्पद्यते, तथापि तेषां सामान्याकारेण तत् संशयरूपं, योगिनां पुनर्नियतदेशकालतया प्रत्यक्षवदव्यभिचारि ॥ २२ ॥

---

१. उपक्रमेण कार्यकरणाभिमुख्येन सह वर्तते (पा०)

आयुः = आयुरूपी। विपाकं = विपाक, फल को प्रदान करने वाला। यत् = जो। पूर्वकृतं = पूर्व जन्म में किया गया। कर्म = कर्म है। तत् = वह। द्विप्रकारं = दो प्रकार का है। सोपक्रमं = उपक्रम सहित। च = तथा। निरुपक्रमं = उपक्रम रहित। तत्र = उन दोनों कर्मों में। सोपक्रमं = वह सोपक्रम कर्म है। यत् = जो। फलजननाय = आयु रूप फल को उत्पन्न करने के लिये। उपक्रमेण सह = उपक्रम के साथ। कार्य्यकरणाभिमुख्येन = कार्यों को संपन्न करने की ओर। वर्त्तते = विद्यमान है अर्थात् पूर्व जन्म कृत जो कर्म अपने विपाक को प्रदान कर रहे हैं। यथा = जैसे। उष्णप्रदेशे = उष्ण, तापयुक्त स्थान में। प्रसारितार्द्रवासः = फैलाया गया जल से क्लिन्न, भीगा वस्त्र। शीघ्रं = शीघ्र। एव = ही। शुष्यति = सूख जाता है। उक्तविपरीतं = कहे गये, वर्णन किये गये सोपक्रम कर्म के विलोम। निरुपक्रमं = निरुपक्रम कर्म हैं, जो अभी अपने विपाक को नहीं उत्पन्न कर रहे हैं। यथा = जैसे। तद् = वह। एव = ही। आर्द्रवासः = जल से भीगा वस्त्र। अनुष्णप्रदेशे = उष्ण, ताप रहित स्थान में। संवर्तितं = विद्यमान, फैलाया गया। चिरेण = देर में। शुष्यति = सूखता है। तस्मिन् = उस सोपक्रम तथा निरुपक्रम। द्विविधे = दो प्रकार के। कर्मणि = कर्म में। यः = जो योगी। संयमं = संयम। करोति = करता है। किं = क्या। मम = मेरे। कर्म = पूर्व जन्मकृत कर्म। शीघ्रविपाकं = शीघ्र ही फल प्रदान करने वाले हैं। वा = अथवा। चिरविपाकं = विलम्ब से, देर में फल प्रदान करने वाले हैं। एवं = इस प्रकार उन कर्मों में संयम करने से। ध्यानदार्ढ्याद् = ध्यान की दृढ़ता से। अस्य = इस योगी को। अपरान्तज्ञानं = मृत्यु का ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। अपरान्तः = अपरान्त शब्द का अर्थ है। शरीरवियोगः = शरीर का वियोग, शरीर का परित्याग। तस्मिन् = उस शरीर के वियोग के सम्बन्ध में। ज्ञानं = ज्ञान अर्थात्। अमुष्मिन् = अमुक। काले = समय में। अमुष्मिन् = अमुक। देशे = देश में। मम = मेरा। शरीरवियोगः = शरीर के साथ वियोग। भविष्यति = होगा। इति = इस रूप से। निःसंशयं = संशय रहित रूप से। जानाति = जानता है। वा = अथवा। अरिष्टेभ्यः = अरिष्टों, अशुभों, अपशकुनों से भी मृत्यु का ज्ञान

होता है। अरिष्टानि = अरिष्ट। त्रिविधानि = तीन प्रकार के हैं। आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकानि = आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। तत्र = उन त्रिविध अरिष्टों में। आध्यात्मिकानि = वे आध्यात्मिक अरिष्ट हैं। पिहितकरणः = करण, इन्द्रिय, दोनों कर्णों को बन्द करने वाला पुरुष। कोष्ठ्यस्य = कोष्ठस्थित, उदरस्थ, हृदय में विद्यमान। वायोः = वायु के। घोषं = शब्द को। न = नहीं सुनता। इति एवम् आदीनि = इत्यादि रूप से अन्य आध्यात्मिक अरिष्टों को समझना चाहिये। यथा = दोनों नेत्रों को बन्द कर लेने पर अन्तः की ज्योति को नहीं देखता। आधिभौतिकानि = आधिभौतिक अरिष्ट हैं। अकस्माद् = सहसा, एकाएक। विकृतपुरुषदर्शनादीनि = यमदूत, भूत प्रेत इत्यादि तथा विकृत पुरुषों का दर्शन करना। आधिदैविकानि = वे आधिदैविक अरिष्ट हैं। अकाण्डे = असमय में, अकस्मात् रूप से। एव = ही। द्रष्टुं = देखने में। अशक्य = असम्भव, असंभावित दर्शन वाले। स्वर्गादिपदार्थदर्शनादीनि = स्वर्ग इत्यादि पदार्थों का दर्शन है। तेभ्यः = उन त्रिविध अरिष्टों के द्वारा। शरीरवियोगकालं = शरीर वियोग, देहसंपात के समय को। जानाति = योगी जानता है। यद्यपि = यद्यपि। अयोगिनां = अयोगी, योग की साधना न करने वाले पुरुषों को। अपि = भी। प्रायेण = प्रायः। अरिष्टेभ्यः = अरिष्टों के द्वारा। तत् = शरीर वियोग, मृत्यु का। ज्ञानं = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। तथापि = फिर भी। तेषां = उन अयोगी पुरुषों को। सामान्याकारेण = सामान्य रूप से। तत् = उस शरीर वियोग का ज्ञान। संशयरूपं = संशयात्मक, संदेहयुक्त होता है। पुनः = किन्तु। योगिनां = योगी पुरुषों का ज्ञान। नियतदेशकालतया = निश्चित स्थान एवं निश्चित समय के रूप से। प्रत्यक्षवद् = प्रत्यक्ष ज्ञान के समान। अव्यभिचारि = सत्य, यथार्थ, निर्दोष होता है॥ २२॥

परिकर्मनिष्पादिताः सिद्धीः प्रतिपादयितुमाह—

परिकर्मनिष्पादिताः = परिकर्मों से निष्पन्न, प्राप्त होने वाली। सिद्धीः = सिद्धियों का। प्रतिपादयितुं = प्रतिपादन करने के लिये आह = कहते हैं।

मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥

अर्थः—मैत्र्यादिषु = मैत्री इत्यादि भावनाओं में, मैत्री, करुणा, मुदिता में संयम करने से। बलानि = मैत्रीबल, करुणाबल, मुदिताबल की प्राप्ति होती है।

वृत्तिः—मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षासु यो विहित[1]संयमस्तद्बलानि तासां मैत्र्यादीनां सम्बन्धीनि प्रादुर्भवन्ति; मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षास्तथास्य प्रकर्षं गच्छन्ति यथा सर्वस्य मित्रत्वादिकम् अयं प्रतिपद्यते ॥ २३ ॥

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षासु = मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा रूप भावनाओं में। यः = जिस। संयमः = संयम का। विहितः = विधान, वर्णन किया गया है। उसी संयम को इन भावनाओं में करने से। तद्बलानि = उन मैत्री इत्यादि भावनाओं के बल की अर्थात्। तासां = उन। मैत्र्यादीनां = मैत्री इत्यादि, मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा रूप भावनाओं की, भावनाओं से। सम्बन्धीनि = संबन्ध रखने वाले बल। प्रादुर्भवन्ति = उत्पन्न होते हैं। अस्य = संयम करने वाले इस योगी की। मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाः = मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा की भावनायें। तथा = इस रूप में। प्रकर्षं = प्रकृष्टरूप को, अत्यन्त प्रबल रूप को। गच्छन्ति = प्राप्त कर लेती हैं। यथा = कि। अयं = यह योगी। सर्वस्य = सभी मनुष्यों का। मित्रत्वादिकं = मित्रता इत्यादि को। प्रतिपद्यते = प्राप्त कर लेता है, अतिशयता की भावना से यह युक्त होता है तथा मानसिक प्रसन्नता को प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = दूसरी सिद्धि को। आह = बतलाते हैं।

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥

अर्थः—बलेषु = गज, गरुड, सिंह, वायु इत्यादि के बल में संयम करने से। हस्तिबलादीनि = योगी को संयम से ही सम्बद्ध गज, गरुड, सिंह, वायु इत्यादि बल की प्राप्ति होती है।

---

१. विहितः संयमस्तद् (पा०)।

वृत्तिः—हस्तादिसम्बन्धिषु बलेषु कृतसंयमस्य तद्बलानि हस्त्यादिबलाविर्भवन्ति। तदयमर्थः—यस्मिन् हस्तिबले वायुवेगे सिंहवीर्य्ये वा तन्मयोभावेन अयं संयमं करोति [1]तत्तत्सामर्थ्ययुक्तं सत्त्वमस्य प्रादुर्भवतीत्यर्थः ॥ २४ ॥

हस्त्यादिसम्बन्धिषु = गज इत्यादि संबन्धी। बलेषु = बलों में। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को, संयम करने पर। तद्वलानि = उन बलों की अर्थात्। हस्त्यादिबलाविर्भवन्ति = गज इत्यादि बल प्रकट होते हैं। तद् = वह। अयं = यह। अर्थः = अभिप्राय है। यस्मिन् = जिस। हस्तिबले = हाथी के बल में। वायुवेगे = वायु के वेग में। वा = अथवा। सिंहवीर्य्ये = सिंह के पराक्रम में। तन्मयोभावेन = तन्मयभाव से, एकाग्रभाव से। अयं = जब यह योगी। संयमं = संयम को। करोति = करता है। तत्तत्सामर्थ्ययुक्तं = उन उन संयम किये गये बलों से युक्त, सदृश। अस्य = इस योगी का भी। सत्त्वं = बल। प्रादुर्भवति = उद्भूत, अभिव्यक्त होता है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है॥ २४॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = दूसरी सिद्धि का। आह = वर्णन करते हैं।

प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्टज्ञानम् ॥ २५ ॥

अर्थः—प्रवृत्त्यालोकन्यासात् = संयम द्वारा ज्योतिष्मती प्रवृत्ति का प्रकाश ज्ञेय पदार्थों पर डालने से। सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानं = परमाणु प्रकृति, महत्तत्त्व इत्यादि सूक्ष्म पदार्थों का, व्यवहित, अन्तर्हित, सागर के अन्तराल में निहित रत्न इत्यादि, भूमि के गर्भ में छिपे खनिज इत्यादि पदार्थों का विप्रकृष्ट, दूर देश में विद्यमान पदार्थों का ज्ञान, साक्षात्कार होता है।

वृत्तिः—प्रवृत्तिर्विषयवती ज्योतिष्मती च प्रागुक्ता (१।३५-३६) तस्या य आलोकः सात्त्विकप्रकाशः तस्य निखिलेषु विषयेषु न्यासात् तद्वासितानां विषयाणां भावनात अन्तः-करणेषु इन्द्रियेषु च प्रकृष्टशक्तिमापन्नेषु सुसूक्ष्मस्य परमाण्वादेः

१. तत्सवं साकर्थ्ययुक्तत्वात् सर्वकस्येति (पा०)।

व्यवहितस्य भूम्यन्तर्गतस्य निधानादेः, विप्रकृष्टस्य मेर्वपरपार्श्ववर्त्तिनो [1]रसायनादेर्ज्ञानमुत्पद्यते ॥ २५ ॥

च = और । विषयवती = दिव्य विषयों का अनुभव करने वाली । ज्योतिष्मती = ज्योतिष्मती नाम की । प्रवृत्तिः = प्रवृत्ति । प्राक् = पहले १।३५-३६ में । उक्ता = कही गई है । तस्याः = उस ज्योतिष्मती प्रवृत्ति का । यः = जो । आलोकः = प्रकाश है । सात्त्विकप्रकाशः = सत्त्वगुण बहुल प्रकाश है । तस्य = उस प्रकाश का । निखिलेषु = समस्त । विषयेषु = विषयों में । न्यासात् = स्थापित करने से, रखने से । तद् = उस प्रकाश से । वासितानां = युक्त । विषयाणां = विषयों का । भावनातः = भावना, संयम, धारणा-ध्यान-समाधि से । अन्तःकरणेषु = अन्तःकरणों में । च = और । इन्द्रियेषु = इन्द्रियों में । प्रकृष्टशक्ति = अत्यधिक शक्ति के । आपन्नेषु = प्राप्त हो जाने पर, आजाने पर । सुसूक्ष्मस्य = अत्यन्त सूक्ष्म । परमाण्वादेः = परमाणु इत्यादि का । व्यवहितस्य = व्यवधानयुक्त, अन्तर्हित, छिपे हुये । भूम्यन्तर्गतस्य = पृथिवी के गर्भ, भीतर में, विद्यमान । निधानादेः = सुवर्ण इत्यादि खनिजपदार्थों का । विप्रकृष्टस्य = दूरस्थ विद्यमान पदार्थों का अर्थात् । मेर्वपरपार्श्ववर्त्तिनः = सुमेरु पर्वत के दूसरी ओर विद्यमान । रसायनादेः = रसायन, औषधि इत्यादि का । ज्ञानं = ज्ञान । उत्पद्यते = उत्पन्न होता है ॥ २५ ॥

एतत्समानवृत्तान्तसिद्ध्यन्तरमाह—

एतत्समानवृत्तान्तसिद्ध्यन्तरं = इसो के सदृश विषय वाली दूसरी सिद्धि का । आह = वर्णन करते हैं ।

भुवनज्ञानं सूर्य्ये संयमात् ॥ २६ ॥

अर्थः—सूर्य्ये = सूर्य में । संयमात् = संयम करने से । भुवनज्ञानं = समस्त भुवनों, लोकों का ज्ञान प्राप्त होता है ।

वृत्तिः—सूर्य्ये प्रकाशमये[2] यः संयमः करोति तस्य सप्तभूभुवःस्वःप्रभृतिषु

१. रसातलादेः (पा०) ।

२. सूर्यप्रकाशसमये इति पाठान्तरमसाधु ।

लोकेषु यानि भुवनानि तत्तत्सन्निवेशभाञ्जि पुराणि,[1] तेषु यथावदस्य ज्ञानमुत्पद्यते। पूर्वस्मिन् सूत्रे सात्त्विकप्रकाश आलम्बनतयोक्तः, इह तु भौतिक इति विशेषः ॥ २६ ॥

प्रकाशमये = प्रकाशमान्, सदैव प्रकाशित रहने वाले। सूर्य्ये = सूर्य में। यः = जो योगी। संयमं = संयम। करोति = करता है। तस्य = उस योगी को। सप्त = सात। भूर्भुवःस्वः = भूः, भुवः, स्वः। प्रभृतिषु = इत्यादि महः, जनः, तपः, सत्यं। लोकेषु = लोको में। यानि = जो। भुवनानि = भुवन हैं। तत्तत् सन्निवेशभाञ्जिस्थानानि = उन-उन संनिवेशों से युक्त स्थान हैं। तेषु = उन स्थानों के विषय में। अस्य = इस योगी को। यथावत् = अच्छी प्रकार से। ज्ञानं = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न हो जाता है। पूर्वस्मिन् = इससे पूर्व के। सूत्रे = ३।२५ सूत्र में। आलम्बनतया = आलम्बन के रूप से। सात्त्विकप्रकाशः = सत्त्वगुण विशिष्ट प्रकाश का, ज्योतिष्मती प्रवृत्तिका। उक्तः = वर्णन किया गया है। इह तु = यहाँ पर तो। भौतिकः = भौतिकप्रकाश में संयम का वर्णन किया जाता है। इति = यह। विशेषः = विशेषता, भेद है ॥ २६ ॥

भौतिकप्रकाशान्तरालम्बनद्वारेण सिद्ध्यन्तरमाह—

भौतिकप्रकाशान्तरालम्बनद्वारेण = भौतिक प्रकाश के विषय में संयम करने से प्राप्त होने वाली। सिद्ध्यन्तरं = दूसरी सिद्धि को। आह = बतलाते हैं।

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥

अर्थः—चन्द्रे = चन्द्रमा में संयम करने से। ताराव्यूहज्ञानं = नक्षत्रों के व्यूह, विशिष्ट संनिवेश, विशेष स्थिति का ज्ञान होता है।

वृत्तिः—ताराणां ज्योतिषां यो व्यूहो विशिष्टः सन्निवेशस्तस्य[2] चन्द्रे कृतसंयमस्य ज्ञानमुत्पद्यते। सूर्य्यप्रकाशेन हततेजस्कत्वात्ताराणां सूर्य्यसंयमात्तज्ज्ञानं न शक्यं भवितुमर्हतीति पृथगुपायोऽभिहितः ॥ २७ ॥

ताराणां = ताराओं अर्थात्। ज्योतिषां = प्रकाशयुक्त नक्षत्रों का। यः =

---

१. स्थानानि (पा०)।

२. तस्मिन् चन्द्रे (पा०)।

जो। व्यूहः = व्यूह है अर्थात्। विशिष्टः = विशेष। सन्निवेशः = संनिवेश, संस्थान, स्थिति है। तस्य = उस नक्षत्रों के व्यूह का। चन्द्रे = चन्द्रमा में। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को। ज्ञानं = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। सूर्य्यप्रकाशेन = सूर्य के प्रखर प्रकाश से। ताराणां = नक्षत्रों का। हततेजस्कत्वात् = तेज, प्रकाश के अभिभूत हो जाने के कारण। सूर्य्यसंयमात् = सूर्य में संयम करने से। तत् ज्ञानं = उन नक्षत्रों के व्यूह का ज्ञान। न = नहीं। शक्यं = संभव है अर्थात्। भवितुं = प्राप्त करने में। अर्हति = (नहीं) योग्य है अर्थात् सूर्य के प्रखर प्रकाश के कारण नक्षत्रों का तेज पूर्णतः अभिभूत हो जाता है। अतः सूर्य में संयम करने से उन नक्षत्रों की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं है। इति = इसलिए। पृथगुपायः = नक्षत्रों के व्यूहज्ञान के लिये भिन्न उपाय, चन्द्र में संयम करना। अभिहितः = कहा गया है॥ २७॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = दूसरी सिद्धि को। आह = कहते हैं।

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्॥ २८॥

अर्थः—ध्रुवे = निश्चल, स्थिर ध्रुवनक्षत्र में संयम करने से। तद्गतिज्ञानं = उन नक्षत्रों की गति का ज्ञान प्राप्त होता है।

वृत्तिः—ध्रुवे निश्चले ज्योतिषां प्रधाने कृतसंयमस्य तासां ताराणां या गतिः प्रत्येकं नियतकाला नियतदेशा च, तस्या ज्ञानमुत्पद्यते, इयं तारा, अयं ग्रहः इयता कालेनामुं राशिम् इदं नक्षत्रं यास्यतीति सर्वं जानाति। इदं कालज्ञानस्य फलमुक्तं भवति॥ २८॥

ज्योतिषां = कान्तियुक्त नक्षत्रों में। प्रधाने = प्रमुख। निश्चले = स्थिर, गति रहित। ध्रुवे = ध्रुव नक्षत्र में। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को। तासां = उन। ताराणां = नक्षत्रों की। या = जो। गतिः = गति है। प्रत्येकं = प्रत्येक नक्षत्र की। नियतकाला = निश्चित समय। च = और। नियत-देशा = निश्चित स्थान सम्बन्धी जो गति है। तस्याः = उस गति का। ज्ञानं = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है अर्थात्। इयं = यह। तारा = तारा। अयं =

यह । ग्रहः = ग्रह । इयता = इतने । कालेन = समय में । अमुं = इस । राशि = राशि पर । इदं = इस । नक्षत्रं = नक्षत्र पर । यास्यति = जायेगा । इति = इस रूप से । सर्वं = नक्षत्रों की गति के विषय में सब कुछ । जानाति = वह योगी जानता है । इदं = यह । कालज्ञानस्य = काल ज्ञान का । फलं = फल । उक्तं भवति = कहा गया ॥ २८ ॥

बाह्याः सिद्धीः प्रतिपाद्य अन्तराः सिद्धीः प्रतिपादयितुमुपक्रमते—

बाह्याः = बाह्य । सिद्धीः = सिद्धियों का । प्रतिपाद्य = प्रतिपादन करके । अन्तराः = अन्तः । सिद्धिः = सिद्धियों का । प्रतिपादयितुं = प्रतिपादन करने के लिये । उपक्रमते = प्रारम्भ करते हैं ।

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २९ ॥

अर्थः—नाभिचक्रे = नाभिस्थित षोडश अरों वाले चक्र में संयम करने से । कायव्यूहज्ञानं = कायव्यूह, शरीर संस्थान, शरीर में विद्यमान वातपित्तकफ, रक्त, मज्जा इत्यादि विशिष्ट रस, नाड़ियों की स्थिति का सम्यक् ज्ञान होता है । नाभिचक्र में ही शरीर की समस्त नाड़ियाँ संग्रथित हैं । अतः इसमें संयम करने से कायव्यूह का ज्ञान होता है ।

वृत्तिः—शरीरमध्यवर्त्ति नाभिसंज्ञकं यत् षोड़शारं चक्रं तस्मिन् कृतसंयमस्य योगिनः कायगतो व्यूहो विशिष्टरस-मल-धातु-नाड्यादीनामवस्थानं, तत्र ज्ञानमुत्पद्यते । इदमुक्तं भवति—नाभिचक्रं शरीरमध्यवर्ति सर्वतः प्रसृतानां नाड्यादीनां मूलभूतम्, अतस्तत्र कृतावधानस्य समग्रसन्निवेशो यथावद् आभाति ॥ २९ ॥

शरीरमध्यवर्ति = शरीर के मध्य में विद्यमान । नाभिसंज्ञकं = नाभि नाम वाला । यत् = जो षोडशारं = सोलह अरों वाला । चक्रं = चक्र है । तस्मिन् = उस नाभिचक्र में । कृतसंयमस्य = संयम करने वाले । योगिनः योगी को कायगतः = शरीर में विद्यमान । व्यूहः = व्यूह, विशिष्ट संनिवेश अर्थात् । विशिष्टरसमलधातुनाड्यादीनां = विशेष प्रकार के रस, रक्त, मज्जा, मल वात-पित्तकफरूप त्रिविध धातुओं का, नाड़ी इत्यादि की । अवस्थानं = स्थिति, संनिवेश है । तत्र = उस व्यूह के संबन्ध में । ज्ञानं = ज्ञान । उत्पद्यते = उत्पन्न

होता है। इदम् उक्तं भवति = यह अभिप्राय है। शरीरमध्यवर्त्ति = शरीर के मध्य भाग में विद्यमान। नाभिचक्रं = नाभिचक्र। सर्वतः = शरीर में चारों तरफ। प्रसृतानां = व्याप्त, फैली हुई। नाड्यादीनां = नाड़ी इत्यादि का। मूलभूतं = मूल है। अतः = इसलिये। तत्र = उस नाभिचक्र में। कृतावधानस्य = ध्यान करने वाले, संयम करने वाले योगी को। समग्रसन्निवेशः = शरीर का समस्त अवयवसंस्थान, व्यूह। यथावद् = अच्छी प्रकार से। आभाति = प्रकाशित होता है, ज्ञान प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = संयम से प्राप्त होने वाली दूसरी आन्तरिक सिद्धिको। आह = बतलाते हैं।

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३० ॥

अर्थः—कण्ठकूपे = कण्ठकूप में संयम करने से। क्षुत्पिपासानिवृत्तिः = बुभुक्षा तथा प्यास की निवृत्ति, निराकरण होता है।

वृत्तिः—कण्ठे गले कूपः कण्ठकूपः, जिह्वामूले जिह्वातन्तोरधस्तात्[1] कूप इव कूपो गर्त्ताकारप्रदेशः, प्राणादेर्यत्सम्पर्कात् क्षुत्पिपासादयः प्रादुर्भवन्ति, तस्मिन् कृतसंयमस्त योगिनः क्षुत्पिपासादयो निवर्त्तन्ते, घण्टिकाधस्तात् स्रोतसा धार्यमाणे तस्मिन् भाविते भवत्येवंविधा सिद्धिः ॥ ३० ॥

कण्ठे = कण्ठ में अर्थात्। गले = गले में। कूप है। कण्ठ कूपः = उसे कण्ठकूप कहते हैं। जिह्वामूले = जिह्वा के मूल भाग में। अर्थात्। जिह्वातन्तोः = जिह्वा तन्तु के। अधस्तात् = नीचे। कूपः इव = कूप के समान। कूपः = जो कूप है। गर्त्ताकारप्रदेशः = गर्त्त, गढ्ढे की आकृति का जो रिक्त स्थान है, उसे ही कण्ठकूप कहते हैं। प्राणादेः = प्राण वायु इत्यादि का। यत् = जिस कण्ठकूप से। सम्पर्कात् = स्पर्श होने पर। क्षुत्पिपासादयः = क्षुधा तथा प्यास इत्यादि की। प्रादुर्भवन्ति = उत्पत्ति होती है। तस्मिन् = उस कण्ठकूप में। कृतसंयमस्य =

---

१. जिह्वातोऽधस्तात् (पा०)।

संयम करने वाले। योगिनः = योगी की। क्षुत्पिपासादयः = क्षुधा तथा प्यास इत्यादि। निवर्त्तन्ते = निवृत्त, दूर हो जाते हैं, उस योगी को क्षुधा-तृषा की अनुभूति नहीं होती। घण्टिकाधस्तात् = कण्ठ की घण्टिका के नीचे। स्रोतसा = स्रोत रूप से निरन्तर। धार्य्यमाणे = धारण करने पर। तस्मिन् = उसमें संयम की। भाविते = भावना करने पर। एवंविधा = इस प्रकार की, क्षुधातृषा को निवृत्त करने वाली। सिद्धिः = सिद्धि। भवति = होती है ॥ ३० ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = दूसरी सिद्धि को। आह = कहते हैं।

कूर्मनाड्यां स्थैर्य्यम् ॥ ३१ ॥

अर्थः—कूर्मनाड्यां = कण्ठकूप के नीचे विद्यमान कूर्म आकार की नाड़ी में संयम करने से। स्थैर्य्यं = शरीर तथा चित्त की स्थिरता होती है।

वृत्तिः—कण्ठकूपस्याधस्ताद् या कूर्माख्या नाडी तस्यां कृतसंयमस्य चेतसः स्थैर्य्यमुत्पद्यते, तत्स्थानमनुप्रविष्टस्य चञ्चलता न भवतीत्यर्थः, यदि वा—कायस्य[1] स्थैर्य्यमुत्पद्यते न केनचित् स्पन्दयितुं शक्यत इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

कण्ठकूपस्य = कण्ठ कूप के। अधस्ताद् = अधो भाग में, नीचे। या = जो। कूर्माख्या = कूर्म नाम वाली। नाडी = नाड़ी है। तस्यां = उस कूर्म नाड़ी में। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी के। चेतसः = चित्त की। स्थैर्य्यं = स्थिरता। उत्पद्यते = उत्पन्न होती है। तत्स्थानं = उस कूर्म नाड़ी में। अनुप्रविष्टस्य=प्रवेश प्राप्त कर लेने वाले योगी की। चञ्चलता=चित्त की चञ्चलता। न = नहीं। भवति = होती है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है। यदि वा = अथवा। कायस्य = शरीर की। स्थैर्य्यं = स्थिरता। उत्पद्यते = कूर्म नाड़ी में संयम करने से उत्पन्न होती है। केनचित् = किसी भी अन्य कारण के द्वारा। स्पन्दयितुं = स्पन्दनशील, चञ्चल, चेष्टा, क्रिया वाला करने में। न = नहीं। शक्यते = संभव है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है ॥ ३१ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

---

१. काये (पा०)।

सिद्ध्यन्तरं = दूसरी सिद्धि को । आह = बतलाते हैं ।

मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३२ ॥

अर्थः—मूर्द्धज्योतिषि = मूर्द्धा की ज्योति में संयम करने से । सिद्धदर्शनं = पृथ्वी एवं आकश के अन्तराल में विद्यमान सिद्ध पुरुषों का दर्शन होता है ।

वृत्तिः—शिरःकपाले ब्रह्मरन्ध्राख्ये छिद्रे प्रकाशाधारत्वाज् ज्योतिषि, यथा गृहाभ्यन्तरस्थस्य मणेः प्रसरन्ती प्रभा कुञ्चिताकारेव[1] सर्वप्रदेशे सङ्घटते, तथा हृदयस्थः सात्त्विकः प्रकाशः प्रसृतस्तत्र सम्पिण्डितत्वं भजते । तत्र कृतसंयमस्य ये द्यावापृथिव्योरन्तरालवर्तिनः सिद्धा दिव्याः पुरुषाः तेषामितरप्राणिभिरदृश्यानां, तस्य दर्शनं भवति, तान् पश्यति तैश्च स सम्भाषत[2] इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

शिरः कपाले = सिर के कपाल में । ब्रह्मरन्ध्राख्ये = ब्रह्मरन्ध्र नाम वाले छिद्रे = छिद्र में । प्रकाशाधारत्वात् = प्रकाश का आधार, पुञ्जीभूत केन्द्र होने के कारण । ज्योतिषि-ज्योति, प्रकाश रूप मूर्द्धा में । यथा = जैसे । गृहाभ्यन्तर-स्थस्य = गृह के भीतर विद्यमान । मणेः = मणि की । कुञ्चिताकारा = कुञ्चित आकार वाली, पिण्डरूप । प्रसरन्ती = चारों तरफ फैलती हुई । प्रभा = प्रभा, ज्योति । सर्वप्रदेशे = सभी स्थानों में, गृह के सभी भागों में । सङ्घटते = फैलती है । तथा = उसी प्रकार । हृदयस्थः = हृदय में विद्यमान । सात्त्विकः = सत्त्वगुण-विशिष्ट । प्रकाशः = प्रकाश । प्रसृतः = सर्वत्र फैला हुआ । तत्र = उस मूर्द्धास्थान में । सम्पिण्डितत्वं = पिण्डरूप, पुञ्जीभूत रूप को । भजते = प्राप्त करता है । तत्र = उस मूर्द्धा की ज्योति में । कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को । द्यावापृथिव्योः = द्युलोक तथा पृथिवी लोक के । अन्तरालवर्त्तिनः = मध्य में विद्यमान । ये = जो । सिद्धाः = सिद्ध । दिव्याः = दिव्य । पुरुषाः = पुरुष हैं । इतरप्राणिभिः = अन्य सामान्य प्राणियों के द्वारा । अदृश्यानां = न देखे जाने वाले । तेषां = उन सिद्ध, दिव्य पुरुषों का । तस्य = उस संयमी योगी को । दर्शनं = दर्शन । भवति = होता है । तान् = उन दिव्य पुरुषों को । पश्यति =

१. कुञ्चिकाविवरप्रदेशे (पा०) ।

२. संभाव्यते इति केषुचित् संस्करणेषु पठ्यते, पाठोऽयमसाधुः ।

च = और । तैः = उन दिव्य पुरुषों से । सम्भाषते = वार्तालाप करता है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है ॥ ३२ ॥

सर्वज्ञत्व उपायमाह—

सर्वज्ञत्व = सर्वज्ञता के । उपायं = उपाय को । आह = कहते हैं ।

प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३३ ॥

अर्थः—वा = अथवा । प्रातिभात् = प्रातिभ नामक ज्ञान उत्पन्न होने से । सर्वं = योगी भूत-वर्तमान-भविष्यकालीन, व्यवहित-अन्तर्हित, दूरस्थ-निकटस्थ, स्थूल-सूक्ष्म समस्त पदार्थों के स्वरूप को जानता है ।

वृत्तिः—निमित्तानपेक्षं मनोमात्रजन्यम् अविसंवादकं द्रागुत्पद्यमानं[1] ज्ञानं प्रतिभा, तस्यां संयमे क्रियमाणे प्रातिभं विवेकख्यातेः पूर्वभावि तारकं ज्ञानमुदेति, यथा उदेष्यतः सवितुः पूर्वं प्रभा प्रादुर्भवति, तद्वद् विवेकख्यातेः पूर्वं तारकं सर्वविषयं ज्ञानमुत्पद्यते, तस्मिन् सति संयमान्तरानपेक्षः सर्वं जानातीत्यर्थः ॥ ३३ ॥

निमित्तानपेक्षं = किसी निमित्त की अपेक्षा न रखते हुए, निमित्त के विना ही । मनोमात्रजन्यं = केवल बुद्धि से उत्पन्न । अविसंवादकं = विरोध रहित । प्रागुत्पद्यमानं = विवेक ख्याति से पहले उत्पन्न होने वाला । ज्ञानं = ज्ञान । प्रतिभा=प्रतिभा है । तस्यां=उस प्रतिभा में । संयमे=संयम के । क्रियमाणे=करने पर । विवेकख्यातेः=विवेकख्याति से । पूर्वभावि=पूर्व उत्पन्न होने वाला । तारकं= सभी दुःखों, क्लेशों से पार करने वाला, मुक्ति प्रदान करने वाला । प्रातिभं = प्रातिभ नाम का । ज्ञानं = ज्ञान । उदेति = उत्पन्न होता है । यथा = जैसे । उदेष्यतः = उदित होते हुए । सवितुः = सूर्य से । पूर्वं = प्रथम । प्रभा = प्रभा । प्रादुर्भवति = उद्भूत, उत्पन्न होती है । तद्वद् = उसी प्रकार । विवेकख्यातेः = विवेक ख्याति, प्रकृतिपुरुष विवेक से । पूर्वं = पहले । तारकं=दुःख क्लेश इत्यादि से तारने वाला, उत्तीर्ण करने वाला । सर्वविषयं = भूत-वर्तमान-भविष्य, व्यवहित, अन्तर्हित, सूक्ष्म इत्यादि सभी विषयों के सम्बन्ध में ज्ञान प्रदान करने वाला । ज्ञानं = प्रातिभ नाम का ज्ञान । उत्पद्यते = उत्पन्न होता है । तस्मिन्

---

१. प्रागुत्पद्यमानं (पा०) ।

सति = उस प्रातिभ ज्ञान के उत्पन्न हो जाने पर। संयमान्तरानपेक्षः = सूर्य-चन्द्र-नाभिचक्र-कूर्मनाडी इत्यादि अन्य पदार्थों में संयम की अपेक्षा के बिना ही, संयम न करने पर भी। सर्वं = समस्त, पदार्थों के स्वरूप को। जानाति = प्रातिभज्ञानयुक्त योगी जानता है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है ॥ ३३ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = दूसरी सिद्धि का। आह = निरूपण करते हैं।

हृदये चित्तसंवित् ॥ ३४ ॥

अर्थः—हृदये = हृदय में संयम करने से। चित्तसंवित् = स्व तथा पर पुरुष के चित्त के स्वरूप का अच्छी प्रकार ज्ञान होता है।

वृत्तिः—हृदयं शरीरस्य प्रदेशविशेषः, तस्मिन्नधोमुखस्वल्पपुण्डरीकाभ्यन्तरेऽन्तःकरणसत्त्वस्य स्थानं, तत्र कृतसंयमस्य स्व-परचित्तज्ञानमुत्पद्यते, स्वचित्तगताः सर्वा वासनाः, परचित्तगतांश्च रागादीन् जानातीत्यर्थः ॥ ३४ ॥

हृदयं = हृदय। शरीरस्य शरीर का। प्रदेशविशेषः = एक विशेष स्थान, अंग है। तस्मिन् = उस हृदय में अर्थात्। अधोमुखस्वल्पपुण्डरीकाभ्यन्तरे = नीचे की ओर मुख किये हुए लघु पुण्डरीक, कमल के भीतर। अन्तःकरणसत्त्वस्य = सत्त्वगुणप्रधान अन्तःकरण चित्त का। स्थानं = स्थान है। तत्र = उस हृदय में। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को। स्वपरचित्तज्ञानं = स्वकीय चित्त तथा परकीय चित्त का ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। स्वचित्तगताः अपने चित्त में रहने वाली। सर्वा = सभी। वासनाः = वासनाएँ। च = तथा। परचित्तगतान् = दूसरे मनुष्य के चित्त में विद्यमान। रागादीन् = राग, द्वेष इत्यादि भावनाओं को। जानाति = जानता है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है।

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = दूसरीसिद्धि को। आह = बतलाते हैं ॥ ३४ ॥

सत्त्व-पुरुषयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थान्यस्वार्थसंयमात्[1] पुरुषज्ञानम् ॥ ३५ ॥

---

१. परार्थत्वात् स्वार्थसंयमात् इत्येव बहुसंमतः सूत्रपाठः।

अर्थ:—अत्यन्तासङ्कीर्णयोः = नितान्त, अत्यन्त भिन्न, पृथक्। सत्त्वपुरुषयोः = सत्त्व बुद्धि तथा पुरुष का। प्रत्ययविशेषः = समान प्रत्यय, अभेद रूप, ऐक्य रूप से प्रतीति ही। भोगः = भोग है। परार्थात् = परार्थ की अपेक्षा। स्वार्थ-संयमात् = स्वार्थ में संयम करने से। पुरुषज्ञानं = पुरुष के स्वरूप का ज्ञान होता है अर्थात् सत्त्वगुणप्रधान त्रिगुणात्मिका अचेतन प्रकृति का परिणाम बुद्धि है। अतः = बुद्धि सत्त्वगुण बहुल, अचेतन परिणामी, भोग्य है। किंतु इसके विपरीत पुरुष चेतन, परिणामी, त्रिगुणातीत असङ्ग, उदासीन, अकर्ता इत्यादि है। अनादि अविद्या के कारण ही परस्पर अत्यन्त भिन्न इन दोनों में तादात्म्य की प्रतीति होती है—तस्य हेतुरविद्या २।२४। इसी ऐक्य रूप की प्राप्ति के कारण बुद्धि में प्रतिबिम्बित चेतन असङ्ग पुरुष तद्गत सुखदुःखमोह इत्यादि समस्त धर्मों को अपने में उपचरित कर लेता है। बुद्धि एवं पुरुष में यही अभेद की प्रतीति ही भोग है। यह अभेद की वृत्ति यद्यपि बुद्धिका धर्म है तथापि पुरुष के लिये भोग संपन्न करने के कारण परार्थ है। किंतु बुद्धि की जो वृत्ति पुरुष के स्वरूप को ही विषय बनाती है, वह स्वार्थ वृत्ति है। अतः परार्थवृत्ति से भिन्न इस स्वार्थ वृत्ति में संयम करने से पुरुष के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है, शुद्ध-निर्विकारी चिन्मात्र पुरुष का ग्रहण होता है।

वृत्तिः—सत्त्वं प्रकाशसुखात्मकः प्राधानिकः परिणामविशेषः, पुरुषो भोक्ता अधिष्ठातृरूपः, तयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोर्भोग्य-भोक्तृरूपत्वाद् अचेतनचेतनत्वाच्च भिन्नयोर्यः प्रत्ययस्याविशेषो भेदेनाप्रतिभासनं तस्मात्, सत्त्वस्यैव कर्त्तृताप्रत्ययेन या सुखदुःखसंवित् स भोगः।

सत्त्वस्य स्वार्थनैरपेक्ष्येण परार्थः पुरुषार्थनिमित्तः, तस्माद् अन्यो यः स्वार्थः पुरुषस्वरूपमात्रालम्बनः परित्यक्ताहङ्कारसत्त्वे या चिच्छायासंक्रान्तिस्तत्र कृत-संयमस्य पुरुषविषयं ज्ञानमुत्पद्यते, तत्र तदेवं रूपं स्वालम्बनं ज्ञानं सत्त्वनिष्ठं[1] पुरुषो जानातीत्यर्थः। न पुनः पुरुषो ज्ञाता ज्ञानस्य विषयभावमापद्यते, ज्ञेयत्वा-पत्तेः, ज्ञातृ-ज्ञेयत्वयोरत्यन्तविरोधात्॥ ३५॥

---

१. सत्त्वनिष्ठः पुरुषो (पा०)।

सत्त्वं = बुद्धि, चित्त। प्रकाशसुखात्मकः = प्रकाश एवं सुखस्वरूप। प्राधानिकः = प्रधान, प्रकृति का। परिणामविशेषः = विशिष्ट, उत्कृष्टतम प्रथम परिणाम, विकार है। पुरुषः = पुरुष। भोक्ता = भोक्ता। तथा। अधिष्ठातृरूपः = चेतन अधिष्ठाता, नियन्ता स्वरूप वाला है। अत्यन्तासङ्कीर्णयोः = नितान्त पृथक्, भिन्न। तयोः = उन बुद्धि एवं पुरुष का अर्थात्। भोग्यभोक्तृरूपत्वाद् = भोग्य तथा भोक्ता रूप से। च = और। अचेतनचेतनत्वात् = अचेतन तथा चेतन रूप होने से। भिन्नयोः = भिन्न स्वरूप वाले बुद्धि तथा पुरुष का। यः = जो। प्रत्ययस्य = प्रत्यय, ज्ञान की। अविशेषः = अविशेषता समानता अर्थात्। भेदेन = भेद के रूप में। अप्रतिभासनं = न प्रकाशित होता है। तस्मात् = उसी अभेद की प्रतीति से। सत्त्वस्य = बुद्धि के। एव = ही। कर्त्तृता = कर्त्तृत्व। प्रत्ययेन = प्रत्यय, व्यापार से अर्थात् यथार्थतः बुद्धि के ही कर्त्री होने पर। या = जो। सुखदुःखसंवित् = सुख, दुःख इत्यादि का ज्ञान है। सः = वही। भोगः = भोग है, पुरुष के लिये भोग है। सत्त्वस्य = बुद्धि का। स्वार्थनैरपेक्ष्येण = स्वकीय प्रयोजन की अपेक्षा न होने से। परार्थः = कर्मत्व, भोग रूप, व्यापार पदार्थ, दूसरे के लिये है अर्थात्। पुरुषार्थनिमित्तः = पुरुष के भोग रूप प्रयोजन के लिये है। तस्माद् = उस परार्थ, भोग रूप वृत्ति से। अन्यः = अन्य, भिन्न। यः = जो। स्वार्थः = स्वार्थ है। अर्थात्। पुरुषस्वरूपमात्रालम्बनः = पुरुष के केवल चिन्मात्र स्वरूप को आलम्बन, विषय बनाना है अर्थात् पुरुष के चिन्मात्र स्वरूप को विषय बनाने वाली चित्त की वृत्ति स्वार्थ है। परित्यक्ताहङ्कारसत्त्वे=अहंकार का परित्याग करने वाली बुद्धि में। या = जो। चिच्छायासंक्रान्तिः = चेतन पुरुष का प्रतिबिम्ब है। तत्र = उसमें। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को। पुरुषविषयं = पुरुष के स्वरूप के सम्बन्ध में। ज्ञानं = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। तत्र = उस बुद्धि में। तद् एवं = इस प्रकार से। रूपं = चेतन मात्र पुरुष के स्वरूप को। स्वालम्बनं = अपने ही स्वरूप को आलम्बन बनाने वाले। सत्त्वनिष्टं = बुद्धि में विद्यमान। ज्ञानं = ज्ञान यथार्थ स्वरूप को। पुरुषः = योगी पुरुष। जानाति = जानता है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है। पुनः = फिर। पुरुषः = पुरुष। ज्ञाता = ज्ञाता। ज्ञानस्य = और ज्ञान के। विषयभावं = विषय

भाव रूप को । न = नहीं । आपद्यते = प्राप्त करता है । ज्ञातृज्ञेयत्वयोः = ज्ञाता तथा ज्ञेय में । अत्यन्तविरोधात् = अत्यन्त विरोध, पार्थक्य, भेद होने के कारण । ज्ञेयत्वापत्तेः = ज्ञेयत्व की प्राप्ति, स्वरूप ज्ञान की उपलब्धि हो जाने पर वह पुरुष पुनः ज्ञाता तथा ज्ञान के रूप को नहीं प्राप्त होता ॥ ३५ ॥

अस्यैव संयमस्य फलमाह—

अस्य = इस । एव = ही । संयमस्य = संयम के । फलं = फल को । आह = बतलाते हैं ।

ततः प्रातिभ-श्रावण-वेदनादर्शास्वाद-वार्ता जायन्ते ॥ ३६ ॥

अर्थः—ततः = पुरुष के चिन्मात्र स्वरूप को विषय बनाने वाली स्वार्थ वृत्ति में संयम करने से । प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता = प्रातिभ, श्रावण, वेदना, आदर्श, आस्वाद, वार्ता नाम वाली छः सिद्धियाँ । जायन्ते = प्रकृतिपुरुष विवेक-ख्याति से पहले ही उत्पन्न होती हैं । स्वार्थ समय का प्रधान प्रयोजन पुरुष स्वरूपदर्शन, स्वरूप साक्षात्कार ही है । किंतु उससे पूर्व इन छः सिद्धियों की उद्भूति होती है ।

वृत्तिः—ततः पुरुषसंयमादभ्यस्यमानाद् व्युत्थितस्यापि ज्ञानानि जायन्ते । तत्र प्रातिभं पूर्वोक्तं ज्ञानं, तस्याविर्भवनात् सूक्ष्मादिकमर्थं पश्यति । श्रावणं श्रोत्रेन्द्रियजं ज्ञानं, तस्माच्च प्रकृष्टं दिव्यं शब्दं जानाति । वेदना[1] स्पर्शेन्द्रियजं ज्ञानं, वेद्यतेऽनयेति कृत्वा तान्त्रिक्या संज्ञया व्यवह्रियते; तस्माद् दिव्यस्पर्शविषयं ज्ञानं समुपजायते । आदर्शश्चक्षुरिन्द्रियजं ज्ञानम्, आ समन्तात् दृश्यतेऽनुभूयते रूपमनेनेति कृत्वा; तस्य प्रकर्षाद्दिव्यं रूपज्ञानमुत्पद्यते । आस्वादो रसनेन्द्रियजं ज्ञानम्, आस्वाद्यतेऽनेनेति कृत्वा; तस्मिन् प्रकृष्टे दिव्ये रसे संविदु[2]पजायते । वार्त्ता गन्धसंवित्, वृत्तिशब्देन तान्त्रिक्या परिभाषया घ्राणेन्द्रियमुच्यते, वर्त्तते गन्धविषये इति वृत्तेर्घ्राणेन्द्रियाज् जाता वार्त्ता गन्धसंवित्, तस्यां प्रकृष्यमाणायां दिव्यगन्धोऽनुभूयते ॥ ३६ ॥

---

१. वेदनेति अकारान्तोऽयं शब्द इति भाष्यतः प्रतीयते ।

२. दिव्यरससंविद् (पा०) ।

ततः = उस स्वार्थ संयम से। पुरुषसंयमाद् = पुरुष के चिन्मात्र स्वरूप में संयम के। अभ्यस्यमानाद् = अभ्यास करने से। व्युत्थितस्य = व्युत्थान, विक्षेपयुक्त चित्त वाले पुरुष को। अपि = भी। ज्ञानानि = ज्ञान, सिद्धियाँ। जायन्ते = उत्पन्न होती हैं। तत्र = उन षड्विध ज्ञान, सिद्धियाँ। प्रातिभं = प्रातिभ नामक ज्ञान। पूर्वोक्तं = ३।३३ में पहले वर्णन किया गया। ज्ञानं = ज्ञान है। अस्य = उस प्रातिभ ज्ञान के। आविर्भवनात्=उद्भूत, प्रकट होने से। सूक्ष्मादिकं = सूक्ष्म इत्यादि, सूक्ष्म, व्यवहित, अनभिव्यक्त, इत्यादि त्रैकालिक समस्त। अर्थं = पदार्थों को। पश्यति=देखता है। श्रावणं = श्रावण नाम की सिद्धि। श्रोत्रेन्द्रियजं = श्रोत्र इन्द्रिय से उत्पन्न होने वाला। ज्ञानं = ज्ञान है। च = और। तस्मात् = उस श्रावण ज्ञान से। प्रकृष्टं = उत्कृष्ट एवं। दिव्यं = दिव्य, अलौकिक। शब्दं = शब्द को। जानाति = जानता है, सुनता है। वेदना = वेदना नामक सिद्धि। स्पर्शेन्द्रियजं = स्पर्श इन्द्रिय से उत्पन्न। ज्ञानं = ज्ञान है। अनया = इस वेदना सिद्धि के द्वारा। वेद्यते = दिव्य स्पर्श का ज्ञान होता है। इति = ऐसा। कृत्वा = करके, इस विचार से। तान्त्रिक्या = तन्त्र, शास्त्र की। संज्ञया = संज्ञा, नाम से। व्यवह्रियते=व्यवहार किया जाता है अर्थात् प्रस्तुत शास्त्र में इसे वेदना कहते हैं। तस्माद् = उस वेदना से। दिव्यस्पर्शविषयं = दिव्य स्पर्श विषयक, अलौकिक स्पर्श को ग्रहण करने वाला। ज्ञानं = ज्ञान। समुपजायते = उत्पन्न होता है। आदर्शः= आदर्श नाम की सिद्धि। चक्षुरिन्द्रियजं = चक्षु इन्द्रिय से उत्पन्न। ज्ञानं = ज्ञान है। अनेन = इस आदर्श के द्वारा। आ समन्तात्=चारों तरफ से। दृश्यते= देखा जाता है। अनुभूयते=अनुभव किया जाता है। रूपं=रूप। इति कृत्वा=इस विचार से इसे आदर्श कहते हैं। तस्य = उस वेदना के। प्रकर्षाद् = उत्कर्ष, प्रबलता के कारण। दिव्यं = दिव्य विषय सम्बन्धी। रूपज्ञानं = रूप का ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। आस्वादः = आस्वाद नाम की सिद्धि। रसनेन्द्रियजं= रसना इन्द्रिय से उत्पन्न। ज्ञानं = ज्ञान है। अनेन = इस आस्वाद के द्वारा। आस्वाद्यते=दिव्य रस का स्वाद ग्रहण किया जाता है। इति कृत्वा = इस विचार से इसे आस्वाद कहते हैं। तस्मिन् = उस आस्वाद के। प्रकृष्टे = उत्कर्ष की स्थिति प्राप्त कर लेने पर। दिव्ये = दिव्य पदार्थ के। रससंविद् = रस का ज्ञान।

उपजायते = उत्पन्न होता है। गन्धसंवित् = गन्ध का ज्ञान ही। वार्ता = वार्ता है। तान्त्रिक्या=प्रस्तुत शास्त्र की। परिभाषया=परिभाषा के द्वारा। वृत्तिशब्देन = वृत्तिशब्द से। घ्राणेन्द्रियं = घ्राण इन्द्रिय। उच्यते = कही जाती है। गन्धविषये= गन्ध के विषय में। वर्त्तते = जिसके द्वारा प्रवृत्ति होती है। इति वृत्तेः = वृत्ति से अर्थात्। घ्राणेन्द्रियात् = घ्राण इन्द्रिय से। जाता = उत्पन्न। गन्धसंवित् = गन्ध का ज्ञान ही। वार्ता = वार्ता है। तस्यां= उस वार्ता के। प्रकृष्यमाणायां = उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त कर लेने पर। दिव्यगन्धः = दिव्य गन्ध का। अनुभूयते= अनुभव होता है, उत्पन्न होता है ॥ ३६ ॥

एतेषां फलविशेषाणां विषयविभागमाह—

एतेषां = इन। फलविशेषाणां = विशेष फलों के, स्वार्थसंयम से प्राप्त प्रातिभश्रावण आदर्श इत्यादि के। विषयविभागं = विषय विभाग को। आह = कहते हैं।

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३७ ॥

अर्थः—ते = वे प्रातिभ-श्रावण-वेदना-आदर्श-आस्वाद-वार्ता रूप षट् सिद्धियाँ। समाधौ = पुरुष के स्वरूप का दर्शन कराने वाली असंप्रज्ञात समाधि में। उपसर्गा = विघ्नरूप, बाधा पहुँचाने वाली हैं। किन्तु। व्युत्थाने = चित्त की व्युत्थान दशा में, व्युत्थित चित्त वाले के लिये। सिद्धयः = सिद्धियाँ हैं। पुरुष के स्वरूप का साक्षात्कार असंप्रज्ञात समाधि में ही होता है, जिसमें चित्त पूर्ण रूप से समाहित रहता है और उसमें केवल चिन्मात्र पुरुष का ही प्रतिबिम्ब रहता है। किन्तु स्वार्थ वृत्ति के संयम से इन सिद्धियों की उपलब्धि हो जाने से योगी कृतकृत्य समझ कर स्वरूप साक्षात्कार के लिये प्रयास नहीं करता। अतः ये सिद्धियाँ विघ्नरूप हैं। इन विघ्नों का परिहार कर स्वरूप दर्शन के लिये प्रयास करना ही चाहिये।

वृत्तिः—ते प्राक् प्रतिपादिताः फलविशेषाः, समाधेः [1]प्रकर्षे गच्छत उपसर्गा

---

१. प्रकर्षे उपसर्गाः (पा०)।

उपद्रवा विघ्नाः, तत्र हर्ष[1]-स्मयादिकरणेन समाधिः शिथिलीभवति । व्युत्थाने तु पुनर्व्यवहारदशायां विशिष्टफलदायकत्वात् सिद्धयो भवन्ति ॥ ३७ ॥

ते = वे । प्राक् = पहले ३।३५ में । प्रतिपादिताः = प्रतिपादन की गई, वर्णन की गई । फलविशेषाः = स्वार्थवृत्ति से प्राप्त प्रातिभ-आदर्शआस्वाद इत्यादि विशेष फल । समाधेः = समाधि की । प्रकर्षे = उत्कृष्ट स्थिति में, पुरुष के स्वरूप का दर्शन कराने वाली असंप्रज्ञात समाधि में । उपसर्गाः = उपसर्ग अर्थात् । उपद्रवाः = उपद्रव अर्थात् । विघ्नाः = विघ्न हैं । तत्र = उसमें । हर्षस्मयादिकरणेन = हर्ष, विस्मय इत्यादि उत्पन्न करने के कारण । समाधिः = समाधि । शिथिलीभवति = शिथिल हो जाती है । तु = किन्तु । व्युत्थाने = व्युत्थान की दशा में अर्थात् । पुनः = फिर । व्यवहारदशायां = व्यवहार की दशा में । विशिष्टफलदायकत्वात् = विशेष प्रकार का फल प्रदान करने के कारण । सिद्धयः = सिद्धियां । भवन्ति = होती हैं, सिद्धिरूप हैं ॥ ३७ ॥

सिद्धयन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = दूसरी सिद्धि को । आह = कहते हैं ।

बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥ ३८ ॥

अर्थः—बन्धकारणशैथिल्यात् = बन्धन के कारण धर्म-अधर्मरूप कर्मसंस्कारों के शिथिल हो जाने से । च = और । प्रचारसंवेदनात् = चित्त के प्रचार, गति का अच्छी तरह ज्ञान हो जाने से । चित्तस्य = चित्त का । परशरीरावेशः = दूसरे के शरीर में प्रवेश होता है ।

वृत्तिः—व्यापकत्वादात्म-चित्तयोर्नियतकर्मवशादेव शरीरान्तर्गतयोरेव भोक्तृभोग्यभावेन यत् संवेदनमुपजायते स एव शरीरबन्ध इत्युच्यते, तद् यदा समाधिवशाद् बन्धकारणं धर्माधर्माख्यं शिथिलं भवति तानवमापद्यते । चित्तस्य च योऽसौ प्रचारः हृदयप्रवेशादिन्द्रियद्वारेण विषयाभिमुख्येन प्रसरः तस्य संवेदनं

१. हर्ष-विस्मयादि (पा०) ।

ज्ञानम्—इयं चित्तवहा नाड़ी, अनया चित्तं वहति, इयं च प्राणादिवहाभ्यो[1] नाडीभ्यो विलक्षणेति—स्व-परशरीरयोर्यदा सञ्चारं जानाति तदा परकीयं मृतं जीवच्छरीरं वा चित्तसञ्चारद्वारेण प्रविशति; चित्तञ्च परशरीरे प्रविशदिन्द्रियाण्यपि अनुवर्त्तन्ते मधुकरराजमिव मक्षिकाः।

अथ परशरीरप्रविष्टो योगी स्वशरीरवत् तेन सर्वं[2] व्यवहरति; यतो व्यापकयोश्चित्तपुरुषयोर्भोगसङ्कोचे कारणं कर्म, तच् चेत् समाधिना क्षिप्तं, तदा स्वातन्त्र्यात् सर्वत्रैव भोगनिष्पत्तिः ॥ ३८ ॥

व्यापकत्वाद् = व्यापक होने के कारण। शरीरान्तर्गतयोः = शरीर के भीतर विद्यमान। आत्मचित्तयोः = पुरुष तथा चित्त का। नियतकर्मवशात् = धर्म तथा अधर्म रूप निश्चित कर्मों के अनुसार। एव = ही। भोक्तृभोग्यभावेन = भोक्ता तथा भोग्यरूप से। यत् = जो। संवेदनं = ज्ञान। उपजायते = उत्पन्न होता है। सः = वह। एव = ही। शरीरबन्धः = शरीर में पुरुष का बन्धन। इति = इस रूप से। उच्यते = कहा जाता है। तद् = वह। धर्माधर्माख्यं = धर्म तथा अधर्म नाम वाला। बन्धकारणं = बन्धन का कारण। यदा = जब। समाधिवशाद् = समाधि के प्रभाव से। शिथिलं = शिथिल। भवति = हो जाता है अर्थात्। तानवं = तनुरूप, सूक्ष्म रूप को। आपद्यते = प्राप्त करता है। च = और। चित्तस्य = चित्त का। यः = जो। असौ = वह। प्रचारः = प्रचार, गति, गमन है अर्थात्। हृदयप्रदेशाद् = हृदय प्रदेश से। इन्द्रियद्वारेण = इन्द्रियों के द्वारा। विषयाभिमुख्येन = विषयों की ओर। प्रसरः= गमन करना है। तस्य = चित्त के उस प्रसार गमन का। संवेदनं = संवेदना अर्थात्। ज्ञानं = ज्ञान अर्थात्। इयं = यह। चित्तवहा = चित्त का वहन करने वाली, ले जाने वाली। नाडी = नाड़ी है। अनया = इसी नाड़ी के द्वारा। चित्तं = चित्त का। वहति = वहन किया जाता है। च = और। इयं = चित्त का वहन करने वाली यह नाड़ी। रसप्राणादिवहाभ्यः = रक्त इत्यादि रस तथा प्राण का वहन करने वाली। नाडीभ्यः = नाड़ियों से। विलक्षणा = विलक्षण,

---

१. रसप्राणादिवहाभ्यो (पा०)।

२. सर्वमितिक्तचिन्नारिति (पा०)।

भिन्न है। इति = इस रूप से। स्वपरशरीरयोः = अपनी तथा दूसरे मनुष्य के शरीरों में। यदा = जब। सञ्चारं = चित्त के सञ्चार, गमन को। जानाति = जानता है। तदा = तब। परकीयं = दूसरे मनुष्य के। मृतं = मरे हुए। वा = अथवा। जीवच्छीरं = जीवित शरीर में। चित्तसञ्चारद्वारेण = चित्त के गमन के द्वारा। प्रविशति = प्रवेश करता है। च = और। परशरीरे = दूसरे मनुष्य के शरीर में। चित्तं = चित्त के। प्रविशद् = प्रवेश कर लेने पर। इन्द्रियाणि = सभी इन्द्रियाँ। अपि = भी। अनुवर्त्तन्ते = चित्त का अनुगमन करती हैं। मधुकरराजम् इव मक्षिकाः = जैसे रानी मधुमक्षिका का अन्य मधुमक्षिकायें अनुगमन करती हैं। अथ = इसके बाद। परशरीरप्रविष्टः = दूसरे मनुष्य के शरीर में प्रवेश किया हुआ। योगी = योगी। स्वशरीरवत् = अपने ही शरीर की भाँति। तेन = उस परकीय शरीर से। सर्वं = सब कुछ। व्यवहरति = व्यवहार करता है। यतः = जिससे। व्यापकयोः = व्यापक। चित्तपुरुषयोः = चित्त तथा पुरुष के। भोगसङ्कोचे = भोग के संकोच में। कारणं = कारण। कर्म = कर्म ही। चेत् = यदि। तत् = वह कर्म। समाधिना = समाधि के द्वारा। क्षिप्तं = दूर फेंका जा चुका है, विनष्ट किया जा चुका है। तदा = तब। स्वातन्त्र्यात् = स्वतन्त्र होने के कारण। सर्वत्र = सभी स्थान पर, सभी शरीरों में। एव = ही। भोगनिष्पत्तिः = भोग की प्राप्ति, सिद्धि होती है ॥ ३८ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = दूसरी सिद्धि को। आह = कहते हैं।

उदानजयाज्जल-पङ्क-कण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३९ ॥

अर्थः—उदानजयात् = उदान वायु के जय से। जलपङ्ककण्टकादिषु = जल, पङ्क, कण्टक इत्यादि में। असङ्गः = संसर्ग, संबन्ध का अभाव होता है अर्थात् सामान्य स्थल की भाँति जल, पङ्क, कण्टक इत्यादि पर निर्बाध रूप से गमन करने की शक्ति उत्पन्न होती है। च = और। उत्क्रान्तिः = उर्ध्वगमन, प्रयाणकाल में देवयानमार्ग से ब्रह्मलोक में ऊर्ध्व गति होती है। उदानवायु के जय से शरीर निर्धूत तूलिका सदृश हो जाता है। अतः किसी से प्रतिघात नहीं होता।

वृत्तिः—समस्तानामिन्द्रियाणां तुषज्वालावद् या युगपदुत्थिता वृत्तिः सा जीवनशब्दवाच्या; तस्याः क्रियाभेदात् प्राणापानादिसंज्ञाभिर्व्यपदेशः। तत्र हृदयान्मुखनासिकाद्वारेण वायोः प्रायणात् प्राण इत्युच्यते। नाभिदेशात् पादाङ्गुष्ठ-पर्य्यन्तमपनयनादपानः। नाभिदेशं परिवेष्ट्य समन्ताद् नयनात् समानः। कृकाटिकादेशादाशिरोवृत्ते रुन्नयनादुदानः। व्याप्य नयनात् सर्वशरीरव्यापी व्यानः।

तत्र उदानस्य संयमद्वारेण जयादितरेषां वायूनां रोधा[1]दूर्ध्वगतित्वेन जले महानद्यादौ महति वा कर्दमे तीक्ष्णेषु कण्टकेषु वा न[2] मज्जति इति, लघुत्वात्तूलपिण्डवज्जलादौ मज्जितोऽप्युद्गच्छतीत्यर्थः ॥ ३९ ॥

समस्तानां = सभी। इन्द्रियाणां = इन्द्रियों की। तुषज्वालावद् = तुषराशि में प्रक्षिप्त अग्नि से सहसा प्रज्वलित होने वाली ज्वाला के समान। या = जो। युगपद् = एकसाथ। उत्थिता = उत्पन्न होने वाली। वृत्तिः = वृत्ति है। सा = वही। जीवनशब्दवाच्याः = जीवन शब्द के द्वारा कही जाती है। तस्याः = उसी वृत्ति का। क्रियाभेदात् = क्रियाओं के साथ भेद होने के कारण। प्राणापानादि-संज्ञाभिः=प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान रूप संज्ञाओं के द्वारा। व्यपदेशः = निर्देश किया जाता है। तत्र = उन पञ्च प्राणों में। हृदयात् = हृदयस्थान से। मुखनासिकाद्वारेण = मुख तथा नासिका द्वार से। वायोः = वायु का। प्रायणात् = निर्गमन होने के कारण। प्राणः = प्राण। इति = इस नाम से। उच्यते = कहते हैं। नाभिदेशात् = नाभिस्थान से। पादाङ्गुष्ठपर्य्यन्तं = पैर के अङ्गुष्ठ तक। अपनयनात् = नीचे की ओर गमन करने के कारण। अपानः = यह अपान वायु है। नाभिदेशं = नाभि प्रदेश को। परिवेष्ट्य = घेरकर, प्रवेश कर। समन्ताद् = शरीर में सर्वत्र, चारों ओर। नयनात् = रस ले जाने के कारण। समानः = यह समान वायु है। कृकाटिकादेशात् = कृकाटिका स्थान से। आशिरोवृत्तेः = शिर, मूर्धा तक विद्यमान जीवन को धारण करने वाली विशेष वृत्ति। उन्नयनाद् = रस इत्यादि को ऊपर की ओर गमन कराने वाली। उदानः = उदान वायु है। व्याप्य = व्याप्त करके, व्यापक रूप

१. इतरेषां मूलनिरोधाद् ऊर्ध्वगतित्वेन (पा०)।

२. न सज्जतेऽतिलघुत्वात् (पा०)।

से समस्त शरीर में विद्यमान होकर। नयनात् = ले जाने के कारण शरीर में गति उत्पन्न करने के कारण। सर्वशरीरव्यापी = समस्त शरीर में रहने वाला। व्यानः = व्यान वायु है। तत्र = उन पञ्चविध प्राणों में। उदानस्य = उदान प्राण को। संयमद्वारेण = संयम के द्वारा। जयात् = जीत लेने से। इतरेषां = अन्य चार प्राणों के। मूलनिरोधाद् = मूल रूप का निरोध हो जाने से। ऊद्र्ध्वगतित्वेन = उदान के प्रभाव से ऊद्र्ध्व गति हो जाने से। जले = जल में अर्थात्। महानद्यादौ = विशाल नदी इत्यादि। वा = अथवा। महति = विस्तृत, फैले हुए। कर्दमे = पङ्क, कीचड़ में। वा = अथवा। तीक्ष्णेषु = अत्यन्त तेज, तीव्र धार वाले। कण्टकेषु = कण्टकों में। न = नहीं। मज्जति = डूबता है, संसर्ग को, प्रतिघात को नहीं प्राप्त करता। इति = इस रूप से अर्थात्। लघुत्वात् = अत्यन्त लघु शरीर वाला होने के कारण। तूलपिण्डवत् = तूलिका पिण्ड के समान। जलादौ = जल इत्यादि में, जल, पङ्क, कण्टक इत्यादि में। मज्जितः = डूबने, संसक्त होने पर। अपि = भी। उद्गच्छति = बाहर निकल आता है, जल-पङ्क-कण्टक इत्यादि में सर्ग को नहीं प्राप्त करता, उनसे पीड़ित नहीं होता। इति अर्थः = यह अभिप्राय है॥ ३९॥

सिद्ध्यन्तरमाह--

सिद्ध्यन्तरं = दूसरी सिद्धि को। आह = बतलाते हैं।

समानजयात् प्रज्वलनम्[1] ॥ ४० ॥

अर्थः—समानजयात् = समान वायु का संयम द्वारा जय कर लेने से। प्रज्वलनं = प्रज्वलन होता है अर्थात् योगी का शरीर अत्यन्त देदीप्यमान्, आभामय हो जाता है।

वृत्तिः—अग्निमावेष्ट्य व्यवस्थितस्य समानाख्यस्य वायोर्जयात् संयमेन वशीकाराद् निरावरणस्याग्ने[2]रुद्भूदतत्त्वात्तेजसा प्रज्वलन्निव योगी प्रतिभाति॥ ४०॥

---

१. ज्वलनमित्येव बहुसंमतः पाठः।

२. अग्नेरूर्ध्वत्वात् (पा०)।

अग्नि = उदर में स्थिति जठराग्नि का । आवेष्ट्य = आवरण करके, चारों तरफ से घेर कर । व्यवस्थितस्य = स्थित, विद्यमान रहने वाली । समानाख्यस्य = समान नाम वाली । वायोः = वायु के । जयात् = जय से अर्थात् । संयमेन = संयम द्वारा । वशीकाराद् = वश में कर लेने से । निरावरणस्य = आवरण रहित । अग्नेः = जठराग्नि का । ऊद्‌र्ध्वत्वात् = ऊद्‌र्ध्व गमन होने से । तेजसा = उस अग्नि के तेज से । प्रज्वलन् = जलता हुआ, दीप्तिमान् होता हुआ । इव = सा । प्रतिभाति = प्रतीत होता है । जठराग्नि तथा समान वायु का परस्पर घनिष्ठ संबन्ध है । समान वायु के जीत लेने से यह अग्नि आवरणरहित, निर्मुक्त हो जाती है । अतः प्रज्वलित इस अग्नि के प्रभाव से योगी का शरीर अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है ॥ ४० ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = दूसरी सिद्धि को । आह = बतलाते हैं ।

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥ ४१ ॥

अर्थः—श्रोत्राकाशयोः = श्रोत्र इन्द्रिय एवं आकाश के । सम्बन्धसंयमाद् = संबन्ध में संयम करने से । श्रोत्रं = योगी का श्रोत्र । दिव्यं = दिव्य हो जाता है । शब्द को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय श्रोत्र है, जो अहङ्कार से उत्पन्न होती है । इसका आधार आकाश है । आकाश भी अहंकार जन्य सूक्ष्म शब्द तन्मात्रा से उत्पन्न हुआ है । आकाश का गुण होने के कारण शब्द का भी आधार आकाश ही है । अतः आधेय-आधार रूप श्रोत्रेन्द्रिय तथा आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से श्रोत्र में दिव्य शक्ति का उद्भव होता है, जिससे योगी में सभी प्रकार के शब्दों को सुनने की सामर्थ्य होती है । क्योंकि आकाश व्यापक है जिससे योगी सभी प्रदेशों के शब्दों को ग्रहण करता है ।

वृत्तिः—श्रोत्रं शब्दग्राहकमाहङ्कारिकमिन्द्रियम्, आकाशं व्योम, शब्दतन्मात्रकार्यं, तयोः सम्बन्धो देश[1]देशिभावलक्षणः, तस्मिन् कृतसंयमस्य योगिनो दिव्यं श्रोत्रं प्रवर्त्तते, युगपत् सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्टशब्दग्रहणसमर्थं भवतीत्यर्थः ॥ ४१ ॥

---

१. देशादिभागलक्षणः (पा०) ।

शब्दग्राहकं = शब्द को ग्रहण करने वाली। अहङ्कारिकं = सत्त्वविशिष्ट अहंकार से उत्पन्न होने वाली। इन्द्रियं = इन्द्रिय ही। श्रोत्रं = श्रोत्र है। आकाशं = आकाश। व्योम = व्योम को कहते हैं। जो। शब्दतन्मात्रकार्यं = अहंकार जन्य शब्दतन्मात्रा का कार्य है। तयोः = उन्हीं दोनों श्रोत्रेन्द्रिय तथा आकाश का। सम्बन्धः = अर्थात्। देशदेशिभावलक्षणः = देशि तथा देश भाव वाला जो सम्बन्ध है। तस्मिन् = उस श्रोत्रेन्द्रिय एवं आकाश के सम्बन्ध में। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले। योगिनः = योगी का। दिव्यं = दिव्य, अलौकिक। श्रोत्रं = श्रोत्र, कर्ण। प्रवर्त्तते = प्रवृत्त होता है, शब्दों को ग्रहण करता है अर्थात्। सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टशब्दग्रहणसमर्थं = एक ही साथ सूक्ष्म, व्यवधान युक्त दूर देश विद्यमान शब्दों को ग्रहण करने की सामर्थ्य शक्ति। भवति = होती है ॥ ४१ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = दूसरी सिद्धि का। आह = वर्णन करते हैं।

कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्ते-श्चाकाशगमनम् ॥ ४२ ॥

अर्थः—कायाकाशयोः = शरीर तथा आकाश के। सम्बन्धसंयमात् = सम्बन्ध में संयम करने से। च = और। लघुतूलसमापत्तेः = तूल, जलद इत्यादि लघु, अल्प परिमाण भार वाले पदार्थों में समापत्ति से, चित्त के तन्मय भाव को प्राप्त करने से। आकाशगमनं = योगी का आकाश में गमन होता है।

वृत्तिः—कायः पाञ्चभौतिकं शरीरं, तस्याकाशेनाकाशदायकेन[1] यः सम्बन्धस्तत्र संयमं विधाय लघुनि तूलादौ समापत्तिं[2] तन्मयीभावलक्षणां विधाय प्राप्तातिलघुभावो योगी प्रथमं यथारुचि जले सञ्चरणक्रमेणोर्णनाभतन्तुजालेन सञ्चरमाण आदित्यरश्मिभिश्च विहरन् यथेष्टमाकाशेन गच्छति ॥ ४२ ॥

---

१. अवकाशदानाद् मः (पा०)।
२. समापत्तिस्तन्मयीभावलक्षणा, तां च (पा०)।

कायः = काय शब्द का अर्थ है। पाञ्चभौतिकं = पृथ्वी-जल-तेज वायु-आकाश रूप पाँच महाभूतों के तत्वों से निर्मित। शरीरं = शरीर है। तस्य = उस शरीर का। आकाशेन = आकाश के साथ अर्थात्। अवकाशदायकेन = समस्त पदार्थों की स्थिति के लिए स्थान प्रदान करने वाले के साथ। यः = जो। सम्बन्धः = सम्बन्ध है। तत्र = उस शरीर तथा आकाश के सम्बन्ध में। संयमं = संयम को। विधाय = करके तथा। लघुनि = लघु, सूक्ष्म, अल्प भार वाले। तूलादौ = तूल, जलद इत्यादि पदार्थों में। समापत्ति = समापत्ति को अर्थात्। तन्मयीभाव-लक्षणां = उसी पदार्थ के समान स्वरूप, तन्मयता को। विधाय = करके। प्राप्तातिलघुभावः = अत्यन्त लघुता, कम भार वाले रूप को प्राप्त कर। योगी = वह योगी। प्रथमं = सर्वप्रथम। यथारुचि = अपनी इच्छा के अनुसार। जले = जल में, पानी के ऊपर। सञ्चरणक्रमेण = क्रमशः, संचरण गमन करता हुआ। ऊर्णनाभतन्तुजालेन = लूता, मकड़ी के तन्तुजाल के सहारे। सञ्चरमाणः = संचरण करता हुआ। च = और। आदित्यरश्मिभिः = सूर्य की किरणों के सहारे। विहरन् = विहार गमन करता हुआ। यथेष्टं = अपनी इच्छा के अनुसार। आकाशेन = आकाश के सहारे, आकाश में। गच्छति = जाता है, स्वेच्छा से सर्वत्र, निर्बाध गति से विचरण करता है ॥ ४२ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तरं = संयम से प्राप्त होने वाली। दूसरी सिद्धि का। आह = वर्णन करते हैं।

बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा, ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥४३॥

अर्थः—बहिः = शरीर के बाहर। अकल्पिता = शरीर की अपेक्षा के बिना ही मन की धारणा, अकल्पिता। वृत्तिः = चित्त की वृत्ति। महाविदेहा = महाविदेहा नाम की धारणा है। ततः = उसी अकल्पिता महाविदेहा वृत्ति से। प्रकाशावरणक्षयः = प्रकाश, ज्ञान रूप चित्त का आवरण करने वाले अविद्या इत्यादि क्लेशों तथा कर्मों का क्षय विनाश होता है। शरीर में अहंकार के रहने पर जो मन की बाह्य वृत्ति है, उसे कल्पिता, विदेहधारणा कहते हैं और

शरीर से अहंभाव का अभाव हो जाने पर मन की स्वतन्त्र वृत्ति अकल्पितावृत्ति, चित्त की महाविदेहा धारणा है, इससे ज्ञान के आवरणों का नितान्त अभाव होता है।

वृत्तिः--शरीराद् बहिर्या मनसः शरीरनैरपेक्ष्येण वृत्तिः, सा महाविदेहा नाम[1] विगताहङ्कारकार्य्यवेगा उच्यते। ततस्तस्यां कृतात् संयमात्, प्रकाशावरणक्षयः, सात्त्विकस्य चित्तस्य यः प्रकाशः, तस्य यदावरणं क्लेशकर्मादि, तस्य क्षयः प्रविलयो भवति। अयमर्थः—शरीराहङ्कारे सति या मनसो बहिर्वृत्तिः सा कल्पिता इत्युच्यते। यदा पुनः शरीरादहङ्कारभावं परित्यज्य स्वातन्त्र्येण मनसो वृत्तिः सा अकल्पिता, तस्यां संयमाद् योगिनः सर्वे चित्तमलाः क्षीयन्ते ॥ ४३ ॥

शरीराद् = शरीर के। बहिः = बाहर। शरीरनैरपेक्ष्येण = शरीर की अपेक्षा के बिना ही। या = जो। मनसः = मन की। वृत्तिः = वृत्ति है। सा = वह वृत्ति। महाविदेहा नाम = महाविदेहा नाम की। विगताहङ्कारकार्य्यवेगा = अहंकार के कार्यवेग, प्रभाव से रहित चित्त की धारणा। उच्यते = कही जाती है। ततः = उस वृत्ति से अर्थात्। तस्यां = उस महाविदेहा वृत्ति में। कृतात् = किये गये। संयमात् = संयम, धारणा-ध्यान-समाधि से। प्रकाशावरणक्षयः = प्रकाश, ज्ञान के आवरण, निरोधक का क्षय, अभाव होता है। सात्त्विकस्य = सत्वगुण विशिष्ट। चित्तस्य = चित्त का। यः = जो। प्रकाशः = सभी वस्तुओं को प्रकाशित करने वाला ज्ञान है। तस्य = उस प्रकाश का। क्लेशकर्मादि = अविद्या-अस्मिता-राग, द्वेष इत्यादि क्लेश तथा पुण्यापुण्य कर्म इत्यादि। यद् = जो। आवरणं = आवरण, निरोध, ढकने वाले, तिरोहित करनेवाले हैं। तस्य = उस आवरण का। क्षयः = क्षय अर्थात्। प्रविलयः = पूर्णरूप से लोप, अभाव। भवति = होता है। अयम् अर्थः=यह अभिप्राय है। शरीराहंकारे सति = शरीर में अहंकार के विद्यमान रहने पर। या = जो। मनसः = मन की। बहिः = बाहरी। वृत्तिः = वृत्ति होती है। सा = वह बाह्यवृत्ति। कल्पिता = कल्पित वृत्ति। इति = इस नाम से। उच्यते = कही जाती है। यदा पुनः = और जब,

---

१. विगतशरीराहंकारदार्ढ्यद्वारेण (पा०)।

फिर। शरीराद्=शरीर से। अहङ्कारभावं=अहंकार की भावना का। परित्यज्य= परित्याग करके। स्वातन्त्र्येण = स्वतन्त्ररूप से। मनसः = मन की। वृत्तिः = वृत्ति होती है। सा = वह। अकल्पिता = अकल्पिता वृत्ति है। तस्यां = उस अकल्पिता वृत्ति में। संयमाद् = संयम करने से। योगिनः = योगी के। सर्वे = सभी, समस्त। चित्तमलाः = अविद्या, राग, द्वेष इत्यादि चित्त में रहने वाले दोष। क्षीयन्ते=विनष्ट हो जाते हैं, पूर्णतः लुप्त हो जाते हैं॥ ४३॥

तदेवं पूर्वान्तविषया[1] परान्तविषया मध्यभावाश्च सिद्धीः प्रतिपाद्य अनन्तरं भुवनज्ञानादिरूपा बाह्याः, कायव्यूहादिरूपा आभ्यन्तराः, परिकर्मनिष्पन्नभूताश्च 'मैत्र्यादिषु बलानी' त्येवमाद्याः समाध्युपयोगिनीश्चान्तःकरण-बहिःकरणलक्ष-णेन्द्रियभवाः, प्राणादिवायुभवाश्च सिद्धीश्चित्तदार्ढ्याय समाधेश्चाश्वासोत्पत्तये प्रतिपाद्य इदानीं स्वदर्शनोपयोगि-सबीजनिर्बीजसमाधिसिद्धये विविधोपाय-प्रदर्शनायाह—

तद् = वह। एवं = इस प्रकार से। पूर्वान्तविषया = पूर्वान्तविषया=पूर्वान्त-विषय वाली, पूर्व की। अपरान्तविषया = अपरान्तविषय वाली, पश्चात् की। च=और। मध्यभवाः=मध्य में होने वाली, मध्य की। सिद्धीः=संयम से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का। प्रतिपाद्य = प्रतिपादन, वर्णन करके। अनन्तरं = इसके पश्चात्। भुवनज्ञानादिरूपाः = भुवन, ताराव्यूह, नक्षत्रगति इत्यादि का ज्ञान प्रदान कराने वाली। बाह्याः = बाह्य सिद्धियाँ। कायव्यूहादिरूपाः = कायव्यूह, चित्तसंवित्, प्रातिभ, श्रावण, वेदना, आदर्श, आस्वाद, वार्ता इत्यादि के ज्ञान स्वरूप वाली। आभ्यन्तराः = अन्तः सिद्धियाँ। च और। परिकर्मनिष्पन्नभूताः= परिकर्मों के अभ्यास से प्राप्त होने वाली। 'मैत्र्यादिषु बलानि' इत्येवमाद्याः = 'मैत्री, करुणा, मुदिता इत्यादि भावनाओं में संयम करने से उन-उन शक्तियों की प्राप्ति होती है' इत्यादि। समाध्युपयोगिनीः=समाधि लाभ में उपयोगी, उपकार करने वाली। च = और। अन्तःकरण-बहिःकरण-लक्षणेन्द्रियभवाः = अन्तःकरण एवं बाह्यकरण रूप इन्द्रियों में समय करने से उत्पन्न होने वाली, श्रोत्रेन्द्रिय

---

१. अपरान्तविषयाः (पा०)

तथा आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से श्रोत्र दिव्य होता है इत्यादि । च = और । प्राणादिवायुभवा = प्राण, उदान, समान इत्यादि वायु में संयम करने से प्राप्त होने वाली । सिद्धीः = सिद्धियों को । चित्तदार्ढ्याय = चित्त की दृढ़ता, स्थिरता एकाग्रता के लिये । च = और । समाधेः = समाधि में । आश्वासोत्पत्तये = विश्वास, श्रद्धा, आस्था उत्पन्न करने के लिये । प्रतिपाद्य = प्रतिपादन करके, सिद्धियों का वर्णन करके । इदानीं = अब । स्वदर्शनोपयोगी = अपने स्वरूप के दर्शन में उपयोगी, पुरुषस्वरूप के साक्षात्कार में सहायक । सबीजनिर्बीजसमाधिसिद्धये = सबीज तथा निर्बीज, संप्रज्ञात तथा असंप्रज्ञात समाधि की सिद्धि के लिये । विविधोपायप्रदर्शनाय = अनेक प्रकार के उपायों, साधनों का प्रदर्शन, वर्णन करने के लिये । आह = कहते हैं ।

स्थूल-स्वरूप-सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूतजयः ।। ४४ ।।

अर्थः—स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् = आकाश इत्यादि पञ्च महाभूतों की स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय, अर्थवत्त्व नामक पञ्च अवस्थाओं में संयम करने से । भूतजयः = भूतों पर जय प्राप्त होती है ।

वृत्तिः—पञ्चानां पृथिव्यादीनां भूतानां ये पञ्च अवस्थाविशेषरूपा धर्माः स्थूलत्वादयः, तत्र कृतसंयमस्य भूतजयो भवति, भूतान्यस्य वश्यानि भवन्तीत्यर्थः । तथा हि—भूतानां परिदृश्यमानं विशिष्टाकारवत् स्थूलरूपम्; स्वरूपञ्चैषां यथाक्रमं कार्य्यं गन्ध-स्नेहोष्णता-प्रेरणावकाशदानलक्षणम्; सूक्ष्मञ्च यथाक्रमं भूतानां[1] कारणत्वेन व्यवस्थितानि गन्धादितन्मात्राणि, अन्वयिनो गुणाः प्रकाश-प्रवृत्ति-स्थितिरूपतया सर्वत्रैव अन्वयित्वेन समुपलभ्यन्ते; अर्थवत्त्वं तेषु एव गुणेषु भोगापवर्गसम्पादनाख्या शक्तिः ।

तदेवं भूतेषु पञ्चसु उक्त[2]धर्मलक्षणावस्थाभिन्नेषु प्रत्यवस्थं संयमं कुर्वन् योगी भूतजयी भवति । तद्यथा—प्रथमं स्थूलरूपे संयमं विधाय तदनु[3] स्वरूपे,

---

१. कारणभेदेन (पा०) ।

२. उक्तलक्षणावरणाभिन्नेषु (पा०) ।

३. सूक्ष्मरूपे (पा०) ।

इत्येवं-क्रमेण तस्य कृतसंयमस्य सङ्कल्पानुविधायिन्यो वत्सानुसारिण्य इव गावो भूतप्रकृतयो भवन्तीत्यर्थः ।। ४४ ।।

पृथिव्यादीनां = पृथिवी, जल, तेज इत्यादि । पञ्चानां = पञ्च । भूतानां = महाभूतों की । ये = जो । स्थूलत्वादयः = स्थूलत्व इत्यादि अर्थात् । स्थूल-स्वरूप-सूक्ष्म-अन्वय-अर्थवत्व नामक । पञ्च = पाँच । अवस्थाविशेषरूपाः = विशेष अवस्था, दशा रूपी । धर्माः = धर्म हैं । तत्र = उन पञ्च महाभूतों की पञ्चविध अवस्थाओं में । कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को । भूतजयः = भूतों के ऊपर जय । भवति = होती है । भूतानि = सभी भूत । अस्य = इस योगी के । वश्यानि = वश में । भवन्ति = हो जाते हैं । इति अर्थः = यह अभि-प्राय है । तथा हि = जैसे कि । भूतानां = पृथिवी इत्यादि पञ्च महाभूतों का । परिदृश्यमानं = दिखलाई पड़ने वाला । विशिष्टाकारवत् = विशेष प्रकार की आकृति वाला । स्थूलरूपं = स्थूलरूप, अवस्था है । च = और । एषां = इन पृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाश रूप महाभूतों का । स्वरूपं = स्वरूप, स्वरूप नाम की विशेश अवस्था । यथाक्रमं = क्रमशः । कार्य्यं = कार्यरूप । गन्ध-स्नेहोष्णता-प्रेरणावकाशदानलक्षणं = गन्ध, स्नेह-स्निग्धता, उष्णता, प्रेरणा, अवकाश-स्थान प्रदान लक्षण वाला है अर्थात् इन महाभूतों के गन्ध इत्यादि कार्य ही इनके स्वरूप हैं । च = और । सूक्ष्मं = इन महाभूतों की सूक्ष्म अवस्था । यथाक्रमं = क्रमशः । भूतानां = इन महाभूतों के । कारणभेदेन = कारण के रूप में । व्यव-स्थितानि = विद्यमान । गन्धादितन्मात्राणि = गन्ध इत्यादि तन्मात्रायें हैं अर्थात् गन्ध-रस-तेज-वायु-शब्द रूप पञ्च तन्मात्रायें ही इन पञ्च महाभूतों की सूक्ष्म अवस्थायें हैं। अन्वयिनः = अन्वयी, अन्वय रखने वाले । गुणाः = सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुण । प्रकाश-प्रवृत्ति-स्थिति रूपतया = प्रकाश, प्रवृत्ति, स्थति रूप से, समस्त पदार्थों को प्रकाशित करना, प्रवृत्त करना तथा नियमन रूप से । सर्वत्र = सभी स्थान पर । एव = ही । सभी पदार्थों में । अन्वयित्वेन = अन्वयी सम्बन्ध से । समुपलभ्यन्ते = प्राप्त होते हैं । यही अन्वय अवस्था है । अर्थवत्त्वं= महाभूतों की अर्थवत्त्व अवस्था । तेषु एव = उन्हीं । गुणेषु = त्रिविध गुणों में । भोगापवर्गसम्पादनाख्या = भोग एवं अपवर्ग, मोक्ष को सम्पन्न, सिद्ध करने

वाली । शक्तिः=शक्ति ही है । तद् एवं=इस प्रकार से । पञ्चसु=पञ्च । भूतेषु= महाभूतों में । उक्तधर्मलक्षणावस्थाभिन्नेषु = ३।१४ में वर्णन किये गये धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम, अवस्था परिणाम से भिन्न, पृथक् महाभूतों की इन स्थूल, स्वरूप इत्यादि पञ्च अवस्थाओं में । प्रत्यवस्थं = प्रत्येक अवस्था में । संयमं = संयम को । कुर्वन् = करता हुआ । योगी = योगी । भूतजयी = भूतों के ऊपर जय प्राप्त करने वाला । भवति = होता है । तद् यथा = वह इस प्रकार से । प्रथमं = सबसे पहले । स्थूलरूपे = महाभूतों की स्थूल अवस्था में । संयमं = संयम । विधाय = करके । तद् अनु = उसके पश्चात्, तद् अनन्तर । स्वरूपे = महाभूतों की स्वरूप अवस्था में संयम करना चाहियें । इति = इस रूप में । एवं क्रमेण = इस क्रम से, इस प्रकार से अन्य अवस्थाओं में । कृत-संयमस्य = संयम करने वाले । तस्य = उस योगी के । सङ्कल्पानुविधायिन्यः = संकल्प का अनुगमन करने वाले । भूतप्रकृतयः = भूतों की प्रकृतियाँ अर्थात् स्वभाव । भवन्ति = हो जाते हैं । वत्सानुसारिण्यः = वत्स का अनुगमन करने वाली । गावः = गायों की । इव = तरह, समान अर्थात् । जैसे गायें अपने वत्स का अनुगमन करती हैं, वैसे ही स्थूल-स्वरूप-सूक्ष्म-अन्वय-अर्थवत्त्व नाम वाली महाभूतों की पञ्च अवस्थाओं में संयम करने वाले योगी का अनुगमन सभी भूत एवं प्रकृतियाँ करती हैं । इति अर्थः = यही अभिप्राय है ।। ४४ ।।

तस्यैव भूतजयस्य फलमाह—

तस्य = उस । एव = ही । भूतजयस्य = भूतों के जय का । फलं = फल । आह = कहते हैं ।

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत् तद्धर्मानभिघातश्च ।।४५।।

अर्थः—ततः = योगी का भूतों के ऊपर जय हो जाने से, भूतों की प्रकृति योगी के संकल्प के अनुसार हो जाने से । अणिमादिप्रादुर्भावः = अणिमा, लघिमा इत्यादि अष्टसिद्धियों का उद्भव प्राप्ति । कायसंपत्=रूप, लावण्य अतिशय बल, वज्रसंहननत्व इत्यादि शरीर की सम्पत्तियों की प्राप्ति । च = तथा । तद्धर्म = उस शरीर के धर्मों का । अनभिघातं = प्रतिघात, बाधा का क्षय का

अभाव होता है। अणिमा-लघिमा-महिमा-गरिमा-प्राकाम्य-वशित्व-ईशित्व-यत्रकामावसायित्व रूप अष्ट सिद्धियाँ हैं।

वृत्तिः—अणिमा परमाणुरूपतापत्तिः, महिमा महत्त्वं, लघिमा लघुत्वं, तूलपिण्डवल्लघुत्वप्राप्तिः, गरिमा गुरुत्वप्राप्तिः, अङ्गुल्यग्रेण चन्द्रादिस्पर्शनशक्तिः, प्राकाम्यम् इच्छानभिघातः, शरीरान्तःकरणेश्वरत्वम् ईशित्वं, सर्वत्र प्रभविष्णुता वशित्वं, सर्वाण्येव भूतानि अनुगामित्वात्तदुक्तं नातिक्रामति। यत्रकामावसायो यस्मिन् विषयेऽस्य कामः स्वेच्छा भवति, तस्मिन् विषये योगिनः अध्यवसायो[1] भवति तं विषयं स्वीकारद्वारेणाभिलाषसमाप्तिपर्य्यन्तं नयतीत्यर्थः; ते एते अणिमाद्याः समाध्युपयोगिनो भूतजयाद् योगिनः प्रादुर्भवन्ति; यथा—परमाणुत्वं प्राप्तो वज्रादीनामप्यन्तः प्रविशति; एवं सर्वत्र योज्यम्। एतेऽणिमादयोऽष्टौ गुणा महासिद्धय उच्यन्ते।

कायसम्पद् वक्ष्यमाणा, तां प्राप्नोति। तद्धर्मानभिघातश्च, तस्य कायस्य, ये धर्मा रूपादयः, तेषामनभिघातो नाशो न कुतश्चित् भवति, नास्य रूपमग्निर्दहति, न वायुः शोषयतीत्यादि योज्यम्॥ ४५॥

अणिमा = अणिमा नाम की सिद्धि। **परमाणुरूपता** = परम अणु अत्यन्त सूक्ष्म रूप की। आपत्तिः = प्राप्ति है। महिमा = महिमा सिद्धि, महत्त्वं = अत्यन्त महत् रूप, महान्, विशाल स्वरूप की प्राप्ति है। लघिमा = सिद्धि। लघुत्वं = अति लघु, कम भार का होना है अर्थात्। तूलपिण्डवत्=तूल के पिण्ड के समान। लघुत्वप्रातितः=लघु, अल्पभार की प्राप्ति हैं। गरिमा=गरिमा नामक सिद्धि। गुरुत्वप्राप्तिः = गुरु स्वरूप की प्राप्ति है। जिससे। अङ्गुल्यग्रेण=अङ्गुली के अग्रभाग से। चन्द्रादिस्पर्शनशक्तिः = दूरस्थ चन्द्र इत्यादि को स्पर्श करने की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। प्राकाम्यं = प्राकाम्य सिद्धि। इच्छानभिघातः = इच्छाओं का अनभिघात अभिघात का अभाव, पूर्ण होना है। ईशित्वं = ईशित्व सिद्धि। शरीरान्तःकरणेश्वरत्वं = शरीर तथा अन्तः करण का ईश्वर होना है अथवा इस सिद्धि के प्रभाव से योगी शरीर तथा अन्तःकरण को वश में करके

---

१. व्यवसायो (पा०)।

ईश्वर के समान समस्त पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय में समर्थ हो जाता है। सर्वत्र = सभी पञ्चभौतिक पदार्थों के ऊपर। प्रभविष्णुतां = प्रभविष्णु होना, पूर्णतः वशी हो जाना, अपने वश अधिकार में कर लेना ही। वशित्वं = वशित्व सिद्धि है। सर्वाणि एव = सभी। भूतानि = भूतों के। अनुगामित्वात् = अनुगामी होने के कारण, सभी भूत इस योगी का अनुगमन करते हैं। इसलिये। तत् उक्तं = वैसा होना, प्रभविष्णु होना कहा गया है। न अतिक्रामति = कोई भी भूत इस योगी का अतिक्रमण इच्छाओं का उल्लंघन नहीं करता। यत्रकामावसायः = यत्रकामावसायित्व सिद्धि। यस्मिन् = जिस। विषये = विषय में। अस्य = इस योगी की। कामः = कामना। स्वेच्छा = इच्छा। भवति = होती है। तस्मिन् = उसी। विषये = विष्य में। योगिनः = योगी का। अध्यवसायः = निर्णय, निश्चय। भवति = होता है। तं = उस। विषयं = विषय को। स्वीकारद्वारेण = स्वीकार द्वारा, प्राप्त करके। अभिलाषसमाप्तिपर्य्यंतं = अभिलाषा की समाप्ति पर्यन्त, इच्छाओं के पूर्ण होने तक। नयति = इसकी गति, चेष्टा चलती रहती है। ते = वे। एते = ये। अणिमाद्याः = अणिमा, महिमा इत्यादि सिद्धियाँ। समाध्युपयोगिनः = समाधि की सिद्धि में उपयोगी, उपकारक, सहायक। भूतजयाद् = भूतों पर जय होने से। योगिनः = योगी के लिये। प्रादुर्भवन्ति = उद्भूत, व्यक्त होती हैं। यथा = जैसे। परमाणुत्वं = परम अणु, अत्यन्त सूक्ष्म रूप को। प्राप्तः = प्राप्त हुआ योगी। वज्रादीनां = अति सघन वज्र इत्यादि के। अपि = भी। अन्तः = भीतर में। प्रविशति = प्रवेश करता है। एवं = इसी प्रकार। सर्वत्र = सभी सिद्धियों के सम्बन्ध में। योज्यं = संयोजना करनी चाहिए। एते = ये। अणिमादयः = अणिमा, महिमा इत्यादि। अष्टौ = आठ। गुणाः = गुण। महासिद्धयः = महासिद्धि नाम से। उच्यन्ते = कहे जाते हैं। कायसम्पद् = शरीर की संपत्ति। वक्ष्यमाणा = ३।४६ में वर्णन की जाने वाली है। तां = उस काय संपत्ति को। प्राप्नोति = भूत जय से योगी प्राप्त करता है। च = और। तद् धर्म = उसके धर्म का। अनभिघातः = अनभिघात होता है अर्थात्। तस्य = उस। कायस्य = शरीर के। रूपादयः = रूप, लावण्य, बल इत्यादि। ये = जो। धर्माः = धर्म, गुण हैं। तेषां = उन धर्मों का।

अनभिघातः = अनभिघातः अर्थात् । कुतश्चित् = कभी भी । नाशः = विनाश, क्षय, अभाव । न = नहीं । भवति = होता है । अस्य = योगी के इस शरीर के । रूपं = रूप को । अग्निः = अग्नि । न = नहीं । दहति = जलाती । वायुः = वायु । न = नहीं । शोषयति = सुखाती, शुष्क बनाती । इत्यादि = इत्यादि रूप से । योज्यं = संयोजना करनी चाहिये ।

कायसम्पदमाह—

कायसम्पदं = शरीर की संपत्ति को । आह = बतलाते हैं ।

रूप-लावण्य-बल-वज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ॥ ४६ ॥

अर्थ—रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि = रूप-दर्शनीय स्वरूप, लावण्य-आकर्षक तेज कान्ति, अतिशय बल तथा वज्र के समान दृढ़ संघठन, परिपुष्ट अवयव संस्थान । कायसम्पत् = शरीर की सम्पदायें हैं । भूतजयी योगी को इनकी प्राप्ति होती है ।

वृत्तिः—रूप-लावण्य-बलानि प्रसिद्धानि, वज्रसंहननत्वं वज्रवत् कठिना संहतिरस्य शरीरे भवतीत्यर्थः, इति कायस्य आविर्भूतगुणसम्पत् ॥ ४६ ॥

रूपलावण्यबलानि=दर्शनीय स्वरूप सौन्दर्य, प्रकृष्ट कान्ति तथा अतिशय बल शक्ति तो । प्रसिद्धानि=प्रसिद्ध ही है अर्थात् इन शब्दों के अर्थ सुस्पष्ट हैं । वज्र-संहननत्वं=वज्रसंहननत्व शब्द का अर्थ है । अस्य=इस भूतजयी योगी के । शरीरे=शरीर में । वज्रवत् = वज्र के समान । कठिना = अत्यन्त दृढ़, पुष्ट । संहतिः = अवयवसंस्थान, अङ्गों के सन्निवेश, संघठन । भवति = होता है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है । इति = इस रूप से । कायस्य = शरीर की । आविर्भूतगुण-सम्पत् = भूतजय से उद्भूत, प्रकट होने वाली गुण सम्पदायें हैं ॥ ४६ ॥

एवं भूतजयमभिधाय[1] प्राप्तभूमिकाविशेषस्येन्द्रियजयमाह—

एवं = इस प्रकार से । भूतजयं = भूतजय का । अभिधाय = वर्णन करके । प्राप्तभूमिकायां = भूमिका के प्राप्त होने पर, प्रकरण आने पर । इन्द्रियजयं = इन्द्रियजय को । आह = कहते हैं ।

---

१. प्राप्तभूमिकायामिन्द्रिय (पा०) ; प्राप्तभूमिकस्य (पा०) ।

ग्रहण-स्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् इन्द्रियजयः ।। ४७ ।।

अर्थः—ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् = इन्द्रियों की ग्रहणस्वरूप-अस्मिता-अन्वय-अर्थवत्त्व रूप पञ्च अवस्थाओं में संयम, धारणा-ध्यान-समाधि से। इन्द्रियजयः = इन्द्रिय जय होता है। सभी इन्द्रियां योगी के वश में हो जाती हैं।

वृत्तिः—ग्रहणमिन्द्रियाणां विषयाभिमुखी वृत्तिः, स्वरूपं सामान्येन प्रकाशकत्वम्,[१] अस्मिता अहङ्कारानुगमः, अन्वयार्थवत्त्वे पूर्ववत् (३।४४); एतेषाम् इन्द्रियाणामवस्थापञ्चके पूर्ववत् संयमं कृत्वा इन्द्रियजयी भवति ।। ४७ ।।

इन्द्रियाणां = इन्द्रियों की। विषयाभिमुखी = शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध विषयों की ओर। वृत्तिः = प्रवृत्ति। ग्रहणं = ग्रहण अवस्था है। शब्दादि विषयों में गमन करना ही इन्द्रियों की ग्रहण अवस्था है। सामान्येन = सामान्यरूप से। प्रकाशकत्वं = विषयों को प्रकाशित करना ही। स्वरूपं = इन्द्रियों का स्वरूप है। अहंकारानुगमः = अहंकार का अनुगमन करना ही। अस्मिता = अस्मिता है। अन्वयार्थवत्त्वे = अन्वय तथा अर्थवत्व। पूर्ववत् = पहले ३।४४ में वर्णन किये गये के समान ही है अर्थात् प्रकाशप्रवृत्ति-नियमन रूप सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों के साथ इन्द्रियों का सम्बन्ध ही अन्वय तथा भोग अपवर्ग रूप प्रयोजन को सम्पन्न करना ही इन इन्द्रियों की अर्थवत्त्व अवस्था है। एतेषां = इन। इन्द्रियाणां = इन्द्रियों की। अवस्था-पञ्चके = ग्रहण-स्वरूप-अस्मिता-अन्वय-अर्थवत्त्वरूप पञ्च अवस्थाओं में। पूर्ववत् = पहले की भाँति, पञ्चमहाभूतों की पञ्च अवस्थाओं के समान। संयमं=संयम को। कृत्वा = करके। इन्द्रियजयी = इन्द्रियजयी, समस्त इद्रियजयी, समस्त इद्रियों को वश में करने वाला। भवति=होता है ।। ४७ ।।

तस्य फलमाह—

तस्य = उस इन्द्रियजय के। फलं = फल को। आह = कहते हैं।

ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ।। ४८ ।।

१. प्रकाशकम् (पा०)।

अर्थः—ततः = उस इन्द्रियजय से। मनोजवित्वं = मन के समान वर्तमान जव, वेग, गति की प्राप्ति। विकरणभावः = शरीर के बिना ही अतीत वर्तमान अनागत कालीन सर्वत्र विद्यमान विषयों में इन्द्रियों की वृत्ति का लाभ रूप विकरण भाव। च = एवं। प्रधानजयः = कार्यकारण रूप में विद्यमान प्रकृति के सभी परिणामों पर अधिकार होता है।

वृत्तिः—शरीरस्य मनोवदनुत्तम-गतिलाभो मनोजवित्वम् ; कायनिरपेक्षाणाम् इन्द्रियाणां वृत्तिलाभो विकरणभावः ; सर्ववशित्वं प्रधानजयः ; एताः सिद्धयो जितेन्द्रियस्य प्रादुर्भवन्ति ; ताश्चास्मिञ् शास्त्रे 'मधुप्रतीका' इत्युच्यन्ते ; यथा मधुन एकदेशोऽपि स्वदते, एवं प्रत्येकमेता सिद्धयः स्वदन्त इति मधु-प्रतीकाः ॥ ४८ ॥

शरीरस्य = शरीर की। मनोवद् = मन के सदृश। अनुत्तमगतिलाभः = उत्कृष्ट, सर्वश्रेष्ठ गति, वेग की प्राप्ति होना ही। मनोजवित्वं = मनोजवित्व सिद्धि है। कायनिरपेक्षाणां = शरीर की अपेक्षा के बिना ही। इन्द्रियाणां = इन्द्रियों की। वृत्तिलाभः = त्रैकालिक समस्त विषयों के वृत्ति का लाभ, ज्ञान प्राप्त होना ही। विकरणभावः = विकरणभाव है। सर्ववशित्वं = प्रकृति के कार्य-कारण रूप समस्त परिणामों के ऊपर अधिकार, वश होना ही। प्रधानजय, प्रकृति के ऊपर जय पाना है। एताः = ये सभी। सिद्धयः = मनोजवित्व, विकरणभाव, प्रधानजय रूप सिद्धियाँ। जितेन्द्रियस्य = इन्द्रियों को वश में करने वाले योगी के लिये। प्रादुर्भवन्ति = उत्पन्न होती हैं। अस्मिन् = इस। शास्त्रे = योगशास्त्र में। ताः = वे सिद्धियाँ। 'मधुप्रतीकाः' = मधुप्रतीका। इति = इस रूप नाम से। उच्यन्ते = कही जाती हैं। यथा = जैसे। मधुनः = मधु का। एकदेशः = एक देश, स्थान। अपि = भी। स्वदते = स्वाद प्रदान करता है। एवं = इसी प्रकार। एताः = ये सभी। सिद्धयः = सिद्धियाँ। प्रत्येकं = प्रत्येक। स्वदन्ते = स्वाद, फल प्रदान करती हैं। इति = इसलिये। मधुप्रतीकाः = इन सिद्धियों को 'मधुप्रतीका' कहते हैं ॥ ४८ ॥

इन्द्रियजयमभिधाय अन्तःकरणजयमाह—

इन्द्रियजयं = इन्द्रिय जय को । अभिधाय = कह करके । अन्तःकरणजयं= अन्तःकरण के जय को । आह = कहते हैं ।

सत्त्व-पुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिस्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वञ्च ॥ ४९ ॥

अर्थः—सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य = सत्त्व-पुरुष अन्यताख्यातिमात्र वाले योगी का, सत्त्व-पुरुष के विवेक ख्याति, भेद ज्ञान वाले योगी का । सर्वभावाधिष्ठातृत्वं = प्रकृति के सभी परिणामों पर अधिष्ठातृ रूप, स्वाभिभाव । च = और । सर्वज्ञातृत्वं=सभी पदार्थों के सम्बन्ध में सर्वज्ञत्व रूप होता है अर्थात् जिस समाधि में योगी को स्वरूपतः पृथक् सत्त्व पुरुष के भेद मात्र की ही प्रतीति होती है, उस समय वह सभी का अधिष्ठाता होता है तथा उनके स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञाता होता है ।

वृत्तिः—तस्मिन् बुद्धेः[1] सात्त्विके परिणामे कृतसंथमस्य या सत्त्व-पुरुषयोरुत्पद्यते[2] विवेकख्यातिः गुणानां कर्त्तृत्वाभिमान-शिथिलीभावरूपा[3] तन्माहात्म्यात् तत्रैव स्थितस्य योगिनः सर्वाधिष्ठातृत्वं सर्वकर्त्तृत्वं समाधेर्भवति । सर्वेषां गुणपरिणामानां भावानां स्वामिवदाक्रमणं सर्वाधिष्ठातृत्वम् ; तेषामेव च शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मित्वेनावस्थितानां यथावद् विवेकज्ञानं सर्वज्ञातत्वमेव । एषाञ्चास्मिन् शास्त्रे परस्यां[4] वशीकारसंज्ञायां प्राप्तायां विशोका नाम सिद्धिरित्युच्यते ॥ ४९ ॥

बुद्धेः = बुद्धि, महत्तत्त्व के । तस्मिन् = उस । सात्त्विके = सत्त्वगुण बहुल । परिणामे = परिणाम में । कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को । या = जो । सत्त्व-पुरुषयोः = बुद्धि और पुरुष के विषय में । गुणानां = गुणों का । कर्त्तृत्वाभिमानशिथिलीभावरूपा = कर्ता रूप अहंकार की भावना के अति न्यून

---

१. शुद्धे (पा०) ।

२. अन्यताख्यातिः (पा०) ।

३. शिथिलीभावरूपात्तन्माहात्म्यात् (पा०)

४. अपरस्यां (पा०) ।

भाव वाले। विवेकख्यातिः = भेद ज्ञान, पृथक् रूप से प्रतीति, बुद्धि का अचेतन, त्रिगुणात्मिका, परिणात्मिका, परिणामिनी कर्त्री तथा पुरुष का चेतन, निर्गुण, परिणामरहित, अकर्ता, असङ्ग रूप से ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। तत् = उनके। महात्म्यात् = महिमा, प्रभाव के कारण। तत्र एव = उसी सत्त्व पुरुष के विवेक ज्ञान में। स्थितस्य = विद्यमान। योगिनः = योगी की। समाधेः = समाधि का। सर्वाधिष्ठातृत्वं = सभी पदार्थों के ऊपर अधिष्ठातृरूप। च = और। सर्वज्ञातृत्वं = सभी पदार्थों का ज्ञाता रूप, प्रत्यक्ष साक्षात्कर्ता रूप। भवति = होता है। सर्वेषां = समस्त। गुणपरिणामानां = गुणों के परिणामों, कार्यों का। भावानां = और भावों का। स्वामिवद् = स्वामी के समान। आक्रमणं = आक्रमण, अभिमुख गमन ही। सर्वाधिष्ठातृत्वं = सभी के ऊपर अधिष्ठाता रूप है। च = और। शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मित्वेन = अतीत, वर्तमान एवं अनागत धर्मी के रूप में। अवस्थितानां = विद्यमान। तेषां = उन्हीं गुणों, परिणामों का। एव = ही। यथावद् = अच्छी प्रकार से, सम्यक् रूप से। विवेकज्ञानं = भेद ज्ञान, पृथक्, स्वरूपतः प्रतीति ही। सर्वज्ञातृत्वम् एव = सभी पदार्थों का सभी कालों में ज्ञातृरूप है। च = और। अपरस्यां = अपर वैराग्य की चतुर्थ दशा। वशीकार संज्ञायां = वशीकार संज्ञा में। प्राप्तायां = प्राप्ति होने पर, पहुँचने पर। विशोकानाम् = विशोका नाम की। सिद्धिः = सिद्धि। इति = इस रूप से। उच्चते = कही जाती है॥ ४९॥

क्रमेण भूमिकान्तरमाह—

क्रमेण = क्रमशः। भूमिकान्तरं=दूसरी भूमिका को। आह = कहते हैं।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्॥ ५ ॥

अर्थः—तद् = उस विशोका सिद्धि में। अपि = भी। वैराग्याद् = वैराग्य की भावना होने से। दोषबीजक्षये = समस्त दोषों का बीज, कारण अविद्या इत्यादि का क्षय, विनाश हो जाने से। कैवल्यं = कैवल्य, अपवर्ग की प्राप्ति होती है।

त्तिः—तस्यामपि विशोकायां सिद्धौ यदा वैराग्यमुत्पद्यते योगिनस्तदा

तस्माद्दोषाणां रागादीनां, यद्बीजमविद्यादयः, तस्य क्षये निर्मूलने, कैवल्यमात्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिः पुरुषस्य गुणानामधिकारपरिसमाप्तौ स्वरूपप्रतिष्ठत्वम्[1] ।। ५० ।।

तस्यां = उस । विशोकायां = विशोका नाम की । सिद्धौ = सिद्ध में । अपि = भी । यदा = जब । योगिनः = योगी का । वैराग्यं = वैराग्य । उत्पद्यते = उत्पन्न होता है । तदा = तब । तस्माद् = उस वैराग्य की भावना से । रागादीनां = राग, द्वेष, मोह, लोभ, क्रोध इत्यादि । दोषाणां = दोषों का । अविद्यादयः = अविद्या इत्यादि । यद् = जो । बीजं = बीज, कारण है । तस्य= उस बीज का । क्षये=क्षय अर्थात् । निर्मूलने = मूल रहित होने पर । कैवल्यं = कैवल्य की प्राप्ति अर्थात् । आत्यन्तिकी = सार्वकालिक, सदा के लिये । दुःखनिवृत्तिः = आध्यात्मिक-आधिभौतिक आधिदैविक त्रिविध दुःखों की निवृत्ति, पूर्णतः परिहार, अभाव होता है । तथा । गुणानां = त्रिविध गुणों का । अधिकारपरिसमाप्तौ=अधिकार समाप्त हो जाने पर । कर्तृत्वभोक्तृत्वरूप फल, कार्य उत्पादन से विरत हो जाने पर । पुरुषस्य = पुरुष की । स्वरूपप्रतिष्ठत्वं= अपने ही चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठा, स्थिति होती है । पुरुष की स्वरूपप्रतिष्ठा ही कैवल्य है ।। ५० ।।

तस्मिन्नेव समाधौ स्थित्युपायमाह—

तस्मिन्=उस । एव=ही । समाधौ = समाधि में । स्थित्युपायं=स्थिति के के उपाय को । आह = कहते हैं ।

स्वाम्युपनिमन्त्रणे सङ्ग-स्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ।। ५१ ।।

अर्थः—पुनः=पुनः, फिर । अनिष्टप्रसङ्गात् अनिष्ट का प्रसङ्गात् होने से । जन्म मरण रूप संसार, दुःख प्राप्ति की संभावना होने के कारण । स्वाम्युपनिमन्त्रणे=स्वामी देवों के निमन्त्रण पर, दिव्य भोगों को प्रस्तुत करने पर । सङ्गस्मयाकरणं = योगी को उन भोगों, सुखों में आसक्ति, राग नहीं करना चाहिये तथा स्मय, अभिमान भी नहीं करना चाहिये । समाधि बल से योगी को

---

१. स्वरूपनिष्ठत्वम् (पा०) ।

देवों का साक्षात्कार होता हैं। वे देव उसे दिव्य भोगों, ऐश्वर्यों से आकृष्ट करते हैं। इस स्थिति में योगी को अति सावधान रहना चाहिये। इनमें आसक्ति होने से पुनः दुःखादि बन्धन की प्राप्ति संभव है।

वृत्तिः—चत्वारो योगिनो भवन्ति; तत्राभ्यासवान् प्रवृत्तमात्रज्योतिः प्रथमः। ऋतंभरप्रज्ञो द्वितीयः। भूतेन्द्रियजयी तृतीयः। अतिक्रान्तभावनीयश्चतुर्थः। तस्य चतुर्थस्य समाधेः प्राप्तसप्तविधभूमिप्रत्ययस्यान्त्यां मधुमतीसंज्ञां भूमिकां साक्षात्कुर्वतः स्वामिनो देवा उपनिमन्त्रयितारो भवन्ति, दिव्यस्त्री[1] रसायनादिकमुपढौकयन्तीति तस्मिन्नुपनिमन्त्रणे न अनेन सङ्गः कर्त्तव्यः, नापि स्मयः। सङ्गतिकरणे पुनर्विषयभोगे पतति, स्मयकरणे कृतकृत्यमात्मानं मन्यानो न समाधौ उत्साहः, अतः सङ्ग-स्मययोस्तेन वर्जनं कर्त्तव्यम् ॥ ५१ ॥

चत्वारः=चार प्रकार के। योगिनः = योगी। भवन्ति = होते हैं। तत्र= उन चतुर्विध योगियों में। प्रवृत्तमात्रज्योतिः=प्रवृत्तमात्रज्योतिः = प्रवृत्तमात्रज्योति वाला, प्रकाशप्राप्ति में निरत रहने वाला। अभ्यासवान् = अभ्यासी योगी। प्रथमः = प्रथम है। ऋतम्भरप्रज्ञः = ऋतंभर प्रज्ञा से समन्वित योगी। द्वितीयः= द्वितीय है। भूतेन्द्रियजयी = भूतों तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाला योगी। तृतीयः = तृतीय है। अतिक्रान्तभावनीयः = अतिक्रान्त भावनीय, समस्त ध्येय, भाव विषयों का चिन्तन कर लेने वाला, असंप्रज्ञात समाधि द्वारा चित्त का विलय करना ही एक मात्र प्रयोजन जिसका शेष है, ऐसा योगी। चतुर्थः = चतुर्थ प्रकार का है। तस्य = उस। चतुर्थस्य = चतुर्थप्रकार के योगी के। समाधेः = समाधि का। प्राप्तसप्तविधभूमिप्रत्ययस्य = प्राप्त हुई सात प्रकार की भूमियों के ज्ञान के। अन्त्यां = अन्त में, अनन्तर। मधुमतीसंज्ञां = मधुमती नाम वाली। भूमिकां = भूमिका का। साक्षत्कुर्वतः = प्रत्यक्ष करते हुये योगी को। स्वामिनः = स्वामी। देवाः = देवगण। उपनिमन्त्रयितारः = निमन्त्रण प्रदान करने वाले, दिव्य भागों को उपस्थित करने वाले। भवन्ति = होते हैं अर्थात्। दिव्यस्त्रीवसनादिकं–दिव्य, रमणीय स्त्री, वस्त्र, अलंकार इत्यादि। उपढौकयन्ति–प्रदान करते हैं। इति—इस रूप से देवगण इन योगियों को दिव्य

1. दिव्यस्त्रीवसनादिकम् (पा०)।

भोगों द्वारा आकृष्ट करते हैं। किन्तु। अनेन = इस योगी द्वारा। तस्मिन् = उस। उपनिमन्त्रणे = निमन्त्रण में। सङ्गः = आसक्ति, राग। न = नहीं। कर्त्तव्यः = करना चाहिये। और। स्मयः = अभिमान। अपि = भी। न = नहीं करना चाहिये। सङ्गतिकरणे=उस दिव्य विषय भोगों में राग करने से। पुनः = फिर। यह योगी। विषयभोगे = बन्धन के कारण विषयभोग में। पतति = गिरता है, बँध जाता है। और। स्मयकरणे = अभिमान करने पर। आत्मानं = अपने को। कृतकृत्यं = कृतकृत्य, कृतार्थ। मन्यमानः = मानता हुआ उस योगी का। समाधौ = समाधि में। उत्साहः = उत्साह, प्रयास। न = नहीं होता। अतः = इसलिये। तेन = उस योगी द्वारा। सङ्गस्मययोः = आसक्ति एवं अभिमान का। वर्जनं = परित्याग। कर्त्तव्यं = करना चाहिये॥ ५१॥

अस्यामेव फलभूतायां विवेकख्यातौ पूर्वोक्तसंयमव्यतिरिक्तमुपायान्तरमाह—

अस्यां = इस। एव = ही। फलभूतायां = फल रूप में विद्यमान। विवेकख्यातौ = सत्त्व-पुरुष विवेक ज्ञान में। पूर्वोक्तसंयमव्यतिरिक्तं = पहले वर्णन किये गये संयम से भिन्न। उपायान्तरं = दूसरे उपाय, साधन का। आह = वर्णन करते हैं।

क्षण-तत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्॥ ५२॥

अर्थः—क्षण-तत्क्रमयोः = क्षण, समय के सबसे छोटे, अविभाज्य अंश तथा उसके क्रम, पूर्वापर भाव, में। संयमाद् = संयम करने से। विवेकजं = विवेकजनित। ज्ञानं = ज्ञान प्राप्त होता है।

वृत्तिः—क्षणः सर्वान्तकालावयवः, यस्य कला, प्रभवितुं न शक्यन्ते, तथाविधानां कालक्षणानां यः क्रमः पौर्वापर्य्येण परिणामः, तत्रः संयमात् प्रागुक्तं विवेकजं ज्ञान[1] मुत्पद्यते। अयमर्थः—अयं कालक्षणोऽमुष्मात् कालक्षणादुत्तरः, अयमस्मात् पूर्वः, इत्येवंविधे क्रमे कृतसंयमस्यात्यन्तसूक्ष्मेऽपि क्षणक्रमे यदा भवति साक्षात्कारः, तदा अन्यदपि सूक्ष्मं महदादिसाक्षात्करोतीति विवेकज्ञानोत्पत्तिः॥ ५२॥

---

१. विवेकज्ञानमिति क्वचिद् दृश्यमानः पाठोऽसाधुः।

सर्वान्तकालावयवः = काल, समय का सबसे अन्त, छोटा अवयव, भाग। क्षणः = क्षण है। यस्य = जिस काल का। कलाः = शकल, अवान्तरभेद, भाग टुकड़ा। प्रभवितुं = होना। न = नहीं। शक्यन्ते = संभव है। तथाविधानां = उस प्रकार के। कालक्षणानां = काल के क्षणों का, समय के अविभाज्य अंशों का। यः = जो। क्रमः = क्रम अर्थात्। पौर्वापर्य्येण = पूर्व अपर रूप से। परिणामः = जो परिणाम है। तत्र = उसमें। संयमात् = संयम करने से। प्राग् = पहले। उक्तं = कहा गया। विवेकजं = विवेकजन्य, विवेकजनित। ज्ञानं = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। अयं = यह। अर्थः = अभिप्राय है। अयं = यह। कालक्षणः = काल का क्षण। अमुष्मात् = इस। कालक्षणाद् = काल के क्षण से। उत्तरः = उत्तर, पश्चात् का है। और। अयं = यह काल का क्षण। अस्मात् = इस काल के क्षण से। पूर्वः = पूर्व, पहले विद्यमान है। इति = इस प्रकार से। एवं विधे = इस प्रकार के। क्रमे = क्षण के क्रम, पूर्वोत्तर भाव में। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को। अत्यन्त सूक्ष्मे = अत्यन्तसूक्ष्म। क्षणक्रमे = क्षण के क्रम में। अपि = भी। यदा = जब। साक्षात्कारः = साक्षात्कार, प्रत्यक्षदर्शन। भवति = होता है। तदा = तब। अन्यद् = दूसरी। अपि = भी। सूक्ष्मं = सूक्ष्म वस्तु। महदादिसाक्षात्करोति=महत्तत्त्व, बुद्धि, प्रकृति, अहंकार, तन्मात्राओं इत्यादि का साक्षात्कार करता है। इति = इस रूप से। विवेकज्ञानोत्पत्तिः = क्षण तथा उसके क्रम में संयम करने से विवेकजनित ज्ञान की उत्पत्ति होती है॥ ५२॥

अस्यैव संयमस्य विषयविवेकोपक्षेपणायाह:[1]—

अस्य = इस। एव = ही। संयमस्य = संयम के। विषयविवेकोपक्षेपणाय= विषय विवेक के उपन्यास के लिये। आह = कहते हैं।

जाति-लक्षण-देशैरन्यतानवच्छेदात् तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः॥ ५३॥

अर्थः—तुल्ययोः = दो सदृश पदार्थों में। जातिलक्षणदेशैः = जाति, लक्षण

१. विषयविवेकोपयोगमाह (पा०)।

तथा देश-स्थान के द्वारा। अन्यता = भेद, अनन्तर का। अनवच्छेदात् = अवच्छेद, निर्णय न होने से। ततः = उस विवेक जनित ज्ञान से। प्रतिपत्तिः = भेद की प्रतीति, ज्ञान होता है। पदार्थों में परस्पर भेद के जातिलक्षण-देश त्रिविध हेतु हैं। किंतु जिन दो समान पदार्थों में इनकी अगति हो जाति है, वहाँ पर भेद का ग्रहण केवल विवेकजन्य ज्ञान द्वारा ही होता है।

वृत्तिः—पदार्थानां भेदहेतवो जाति-लक्षण-देशा भवन्ति। क्वचिद्भेदहेतुर्जातिः, यथा—गौरियं, महिषोऽयमिति। जात्या तुल्ययोर्लक्षणं भेदहेतुः, इयं कर्बुरा, इयम् अरुणेति। जात्या लक्षणेनाभिन्नयोर्भेदहेतुर्देशो द्रष्टव्यः ; यथा—तुल्यप्रमाणयोरामलकयोर्भिन्नदेशस्थितयोर्यत्र पुनर्भेदोऽवधारयितुं न शक्यते, यथा—एकदेशस्थितयोः शुक्लयोः पार्थिवयोः परमाण्वोः, तथाविधे विषये भेदाय कृतसंयमस्य भेदेन ज्ञानमुत्पद्यते ; तदा तदभ्यासात् सूक्ष्माण्यपि तत्त्वानि[1] भेदेन प्रतिपद्यते। एतदुक्तं भवति—यत्र केनचिदुपायेन भेदो नावधारयितुं शक्यः, तत्र संयमाद्भवत्येव भेदप्रतिपत्तिः[2] ॥ ५३ ॥

पदार्थानां = पदार्थों में। भेदहेतवः = परस्पर भेद के कारण। जातिलक्षणदेशा = जाति, लक्षण तथा देश। भवन्ति = होते हैं। क्वचित् = कहीं पर किन्हीं पदार्थों में। जातिः = जाति ही। भेदहेतुः = भेद में कारण बनती है। यथा = जैसे। इयं = यह। गौः = गौ, गोजाति है। अयं = यह। महिषः = महिष, महिष जाति है। इति = इस रूप से जाति द्वारा भेद होते हैं। जात्या= जाति से। तुल्ययोः = दो समान पदार्थों में, समान जाति के पदार्थों में। भेदहेतुः = भेद का कारण। लक्षणं = लक्षण है। यथा। इयं = यह। कर्बुरा= कर्बुरा वर्ण की, शक्ल है। इयं=यह। अरुणा=अरुण, रक्त वर्ण की है। इति=इस रूप से। जात्या = जाति। तथा। लक्षणेन = लक्षण की दृष्टि से। अभिन्नयोः= अभिन्न, समान पदार्थों में। देशः = देश, स्थान को। भेदहेतुः = भेद में कारण। द्रष्टव्यः = देखना चाहिये, जाति एवं लक्षण में समान पदार्थों में देश को भेद में

---

१. तत्त्वानि भेदेन ज्ञानमुत्पद्यते (पा०) ;
भेदेन प्रतिपद्यन्ते (पा०)।

२. भेदप्रतीतिः (पा०)।

व्यावर्तक हेतु समझना चाहिये । यथा=जैसे । तुल्यप्रमाणयोः = समान परिणाम, रूप, लक्षण वाले । आमलकयोः = जाति रूप से समान दो आमलकों, आँवलों में । भिन्नदेशस्थितयोः = भिन्न दो देशों में विद्यमान आँवलों में देश द्वारा ही भेद का निश्चय होता है । पुनः = फिर, किंतु । यत्र = जहाँ पर, जिन पदार्थों में भेद के निर्णायक, उपस्थित करने वाले जाति लक्षण-देश रूप त्रिविध करणों के विद्यमान रहने पर भी । भेदः = भेद का । अवधारयितुं = निर्णय करना । न = नहीं । शक्यते = संभव है । यथा = जैसे कि । एकदेशस्थितयोः = देश रूप से एक ही स्थान पर विद्यमान । शुक्लयोः = लक्षण रूप शुक्ल वर्ण वाले । पार्थिवयोः परमाण्वोः = जाति रूप से पृथिवी के दो परमाणुओं में । त्रिविध भेदक हेतुओं के रहने पर भी भेद का ग्रहण करना सम्भव नहीं है । तथाविधे = उस प्रकार के । विषये = अग्राह्य भेद वाले विषय में । कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को । भेदेन = उन पदार्थों में परस्पर भेद के साथ । ज्ञानं = ज्ञान उत्पन्न होता है । तदा = तब । तद्=उसके । अभ्यासात् = अभ्यास से । सूक्ष्माणि = अहंकार, महत्तत्त्व इत्यादि सूक्ष्म । तत्त्वानि=तत्त्वों का । अपि = भी । भेदेन = भेद के साथ । प्रतिपद्यते = ज्ञान होता है । एतद् उक्तं भवति = इसका यह अभिप्राय है । यत्र = जिन पदार्थों में । केनचिद् = जाति-लक्षण-देश रूप किसी भी । उपायेन = उपाय के द्वारा । भेदः = भेद । अवधारयितुं = निर्णय करना । न = नहीं । शक्यः = संभव है । तत्र = उन पदार्थों में । संयमाद् = संयम के द्वारा । एव = ही । भेदप्रतिपत्तिः = परस्पर भेद की प्रतीति । भवति = होती है ।। ५३ ।।

सूक्ष्माणां तत्त्वानामुक्तस्य विवेकजन्यज्ञानस्य संज्ञा[1]-विषयस्वाभाव्यं व्याख्यातुमाह—

सूक्ष्माणां = सूक्ष्म । तत्त्वानां = तत्त्वों के । उक्तस्य = पूर्व में वर्णन किये गये । विवेकजन्यज्ञानस्य = विवेकजनित ज्ञान की । संज्ञां = संज्ञा । विषयस्वाभाव्यं = विषय, स्वभाव की । व्याख्यातुं = व्याख्या करने के लिये । आह = कहते हैं ।

---

१. संज्ञां विषयस्वाभाव्यं (पा०) ।

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमञ्चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५४ ॥

अर्थः—विवेकजं = विवेकजनित । ज्ञानं = ज्ञान । तारकं = कैवल्य प्रदान करने के कारण त्रिविधदुःख, क्लेशादि से परिपूर्ण संसार सागर से तारने वाला पार करने वाला । सर्वविषयं = सभी पदार्थों को ज्ञान का विषय बनाने वाला । सर्वथाविषयं = सभी प्रकार से पदार्थों को ग्रहण करने वाला । च = और । अक्रमं = क्रम रहित, बिना क्रम के ही, युगपत्, एक साथ समस्त पदार्थों को को प्रकाशित करने वाला है ।

वृत्तिः—उक्तसंयमबलादेव अन्त्यायां भूमिकायामुत्पन्नं ज्ञानं तारकमिति, तारयति अगाधात् संसारसागराद् योगिनम् इत्यन्वर्थिक्या संज्ञया तारकमित्युच्यते । अस्य विषयमाह—सर्वविषयमिति । सर्वाणि तत्त्वानि महदादीनि विषयोऽस्येति सर्वविषयम् । स्वभावश्च अस्य सर्वथाविषयत्वं सर्वाभिरवस्थाभिः स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन तैस्तैः परिणामैः सर्वेण प्रकारेण अवस्थितानि तत्त्वानि विषयोऽस्येति सर्वथाविषयम् ।

स्वभावान्तरमाह अक्रमञ्चेति । निःशेषनानावस्थापरिणतत्र्यात्मकभावग्रहणेनास्य[1] क्रमो विद्यत इति अक्रमं, सर्वं करतलामलकवद् युगपत् पश्यतीत्यर्थः ॥ ५४ ॥

उक्तसंयमबलाद्=पहले वर्णन किये गये संयम के बल, प्रभाव से । एव=ही । अन्त्यायां = अन्तिम । भूमिकायां = भूमिका में । उत्पन्नं = उत्पन्न हुआ ज्ञान । तारकम् इति = तारक इस नाम वाला है । अगाधात् = अथाह । संसारसागराद् = संसार रूपी समुद्र से । योगिनं =योगी को । तारयति = पार करता है । इति = इसलिये । अन्वर्थिक्या = अर्थ के अनुकूल । संज्ञया = संज्ञा के द्वारा । तारकं = इस विवेकजनित ज्ञान को 'तारक' । इति = इस नाम से । उच्यते = कहते हैं । अस्य = इस विवेकजनित ज्ञान के । विषयं = विषय को । आह =

---

१. त्र्यात्मकभावग्रहणे = धर्मलक्षणावस्थारूपत्रिविधभावग्रहणे । द्वित्र्येकभावग्रहणे इति पाठान्तरम् ।

बतलाते हैं । सर्वविषयं = सर्व विषय । इति = इस रूप से । अर्थात् । सर्वाणि= सभी । महदादीनि = अहंकार, महत्तत्व इत्यादि । तत्त्वानि=तत्त्व । अस्य = इस, विवेकजन्य ज्ञान के । विषयः=विषय रूप में हैं । इति=इसलिये, इसे । सर्वविषयं = सर्वविषयक कहा गया है । च = और । सर्वथाविषयत्वं = सर्वथा विषयत्व, सभी प्रकार से विषयों का ज्ञान प्राप्त करना ही । अस्य=इस विवेकजनित ज्ञान का । स्वभावः=स्वभाव स्वरूप है । अर्थात् । स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन=स्थूल तथा सूक्ष्म भेद से । सर्वाभिः=सभी । अवस्थाभिः=अनागत-उदित-अतीत रूप अवस्थाओं के द्वारा । तैः तैः = उन-उन । परिणामैः=धर्म-लक्षण-अवस्था परिणामों के साथ । सर्वेण=सभी । प्रकारेण=प्रकार से । अवस्थितानि = विद्यमान । तत्त्वानि=तत्त्व ही । अस्य = इसके । विषयः = विषय हैं । इति = इसलिये । सर्वथाविषयं = यह विवेकजनित ज्ञान सर्वथा विषय वाला है । च = और । अक्रमं = अक्रम । इति = इस रूप, नाम से । स्वभावान्तरं = दूसरे स्वभाव को । आह = करते हैं । निःशेषनानावस्थापरिणतद्वित्र्येकभावग्रहणे = नाना प्रकार की, विविध रूप की अवस्थाओं में परिणाम को प्राप्त करते हुए समस्त पदार्थों के एक, दो, तीन इत्यादि भाव को ग्रहण करने में । अस्य = इस विवेकजनित ज्ञान का । क्रमः = क्रम । न = नहीं । विद्यते = विद्यमान है । इति = इसलिये । अक्रमं = इस ज्ञान को अक्रम कहते हैं । सर्वं = सभी पदार्थों, विषयों को । करतलामलकवद् = करतल पर स्थित आमलक के समान । युगपत् = क्रम के बिना, एक साथ ही । पश्यति देखता है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है ।। ५४ ।।

अस्माच्च विवेकजात् तारकाख्याज् ज्ञानात् किं भवतीत्याह—

च = और । अस्मात् = इस । विवेकजात् = विवेक से उत्पन्न । तारकाख्यात् = तारक नाम वाले । ज्ञानात् = ज्ञान से । किं = क्या । भवति = होता है, किस फल की प्राप्ति होती है । इति = इसी का । आह = निरूपण करते हैं ।

सत्त्व-पुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् ।। ५५ ।।

अर्थः—सत्त्वपुरुषयोः = बुद्धि तथा पुरुष दोनों की । शुद्धिसाम्ये = समान रूप से शुद्धि हो जाने पर । कैवल्यं = कैवल्य, अपवर्ग की प्राप्ति होती है ।

सत्त्व-पुरुषान्यताख्याति से बुद्धि और पुरुष दोनों अपने विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। अत्यन्त निर्मल, विमल बुद्धि पुरुष के लिये भोग उपस्थित न करके अपने कारण में विलीन हो जाती है और पुरुष भी अविद्या के कारण प्राप्त बुद्धि के संबन्ध का परित्याग कर, चिन्मात्र अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। पुरुष की यही स्वरूपप्रतिष्ठा ही कैवल्य है।

वृत्ति:—सत्त्व-पुरुषावुक्तलक्षणौ, (२।६, २।१८, २।२०) तयोः शुद्धिसाम्यं सत्त्वस्य सर्वकर्तृत्वाभिमाननिवृत्त्या स्वकारणानुप्रवेशः शुद्धिः, पुरुषस्य शद्धिरुपचरितभोगाभावः, इति द्वयोः समानायां शुद्धौ पुरुषस्य कैवल्यमुत्पद्यते, मोक्षो भवतीत्यर्थः ॥ ५५ ॥

सत्त्व-पुरुषौ = बुद्धि तथा पुरुष। उक्तलक्षणौ = (२।६,२।१८,२।२०) में निरूपण किये गये लक्षण, स्वरूप वाले हैं। तयोः = उन्हीं बुद्धि तथा पुरुष दोनों की। शुद्धिसाम्यं = समान रूप से शुद्ध होना अर्थात् सत्त्वस्य = सत्त्व, बुद्धि की। सर्वकर्तृत्वाभिमाननिवृत्त्या = सभी प्रकार के कार्यों में कर्तृत्व भावना का निराश हो जाने से, कर्तृत्व की भावना समाप्त हो जाने से। स्वकारणानुप्रवेशः = अपने मूल कारण प्रकृति में प्रवेश करना, विलय को प्राप्त करना। शुद्धिः = शुद्धता है। पुरुषस्य = पुरुष की, शुद्धिः = शुद्धता तो। उपचरितभोगाभावः = उपचार संबन्ध से कल्पित भोग का अभाव है। यद्यपि पुरुष भोक्ता नहीं है, पर अविद्या के कारण उसमें भोक्ता रूप का उपचार होता है। इति = इस प्रकार। द्वयोः = बुद्धि तथा पुरुष दोनों की। समानायां = समान रूप से। शुद्धौ = विशुद्धि हो जाने पर, अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेने पर। पुरुषस्य = पुरुष का। कैवल्यं=कैवल्य, अपवर्ग। उत्पद्यते=उत्पन्न होता है। मोक्षः = मोक्ष, पुरुष का त्रिविध दुःखों से ऐकान्तिक तथा आत्यन्तिक निवृत्ति। भवति = होती है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है॥ ५५॥

तदेवमन्तरङ्गं योगाङ्गत्रयमभिधाय, तस्य च संयमसंज्ञां कृत्वा; संयमस्य विषयप्रदर्शनार्थं परिणामत्रयमुपपाद्य, संयमबलोत्पद्यमानाः पूर्वान्तपरान्तमध्यभवाः सिद्धीरुपदर्श्य, समाध्यभ्यासोपपत्तये[1] बाह्या भुवनज्ञानादिरूपा आभ्यन्त-

१. समाध्या श्वासोत्पत्तये (पा०)।

राश्च कायव्यूहज्ञानादिरूपाः प्रदर्श्य, समाध्युपयोगाय इन्द्रियप्राणजयादिपूर्विकाः[1] परमपुरुषार्थसिद्धये यथाक्रममवस्थासहितभूतजयेन्द्रियसत्त्वजयोद्भवाश्च व्याख्याय, विवेकज्ञानोपपत्तये तांस्तानुपायानुपन्यस्य, तारकस्य सर्वसमाध्यवस्थापर्य्यन्तभवस्य स्वरूपमभिधाय, तत्समापत्तेः कृताधिकारस्य चित्तसत्त्वस्य स्वकारणानुप्रवेशात् कैवल्यमुपपद्यत इत्यभिहितम् इति निर्णीतो विभूतिपादस्तृतीयः ।

तद् एवं = इस प्रकार । अन्तरङ्गं = अन्तरङ्ग साधन के रूप से । योगाङ्गत्रयं = धारणा-ध्यान-समाधि रूप योग के त्रिविध अङ्गों का । अभिधाय = वर्णन करके । च = और । तस्य = उस अङ्ग त्रय की । संयमसंज्ञां । कृत्वा = करके । संयमस्य = संयम के । विषयदर्शनार्थं = विषयों का वर्णन करने के लिये । परिणामत्रयं = धर्म-लक्षण-अवस्था रूप त्रिविध परिणामों का । उपपाद्य = प्रतिपादन करके । संयमबलोत्पद्यमानाः = संयम के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली । पूर्वान्तपरान्तमध्यभवाः = पूर्व, पश्चात् तथा मध्य में प्राप्त होने वाली । सिद्धीः= सिद्धियों का । उपदर्श्य = निरूपण करके । समाध्यभ्यासोपपत्तये = समाधि के अभ्यास की सिद्धि के लिये । भुवनज्ञानादिरूपाः = भुवन ज्ञान, नक्षत्र-गति ज्ञान इत्यादि । बाह्याः = बाह्य सिद्धियों का । च = और । कायव्यूहज्ञानादि-रूपाः = शारीरिक अवयवों को विशेष संहति, नाडीज्ञान, चित्तज्ञान इत्यादि । आभ्यन्तराः = अन्तः सिद्धियों का । प्रदर्श्य = प्रदर्शन, वर्णन करके । सामाध्युपयोगाय= समाधि के उपयोग, उपकार के लिए । इन्द्रियप्राणजयादिपूर्विकाः = इन्द्रिय जय तथा उदान-समान इत्यादि प्राणों के जय का । प्रदर्श्य = वर्णन करके । परमपुरुषार्थसिद्धये = परम पुरुषार्थ अपवर्ग की सिद्धि के लिये । यथाक्रमं = क्रम के अनुसार । अवस्थासहितभूतजयेन्द्रियसत्त्वजयोद्भवाः च = स्थूल-स्वरूप-सूक्ष्म-अन्वय-अर्थवत्त्व रूप पञ्च अवस्थाओं के साथ भूतों के ऊपर विजय को, ग्रहण-स्वरूप-अस्मिता-अन्वय-अर्थवत्त्व सहित सत्त्वगुण विशिष्ट इन्द्रियों के जय को तथा भूत-इन्द्रिय जय से प्राप्त होने वाले फलों की । व्याख्याय = व्याख्या करके । विवेकज्ञानोपपत्तये = सत्त्वपुरुषान्यताख्याति, भेद ज्ञान, स्वरूप ज्ञान की सिद्धि के लिये । तान् तान् = उन, उन । उपायान् = उपायों, साधनों का । उपन्यस्य=

१. पूर्विकाः प्रदर्श्य परम····(पा०) ।

उपन्यास करके। सर्वसमाध्यवस्थापर्यन्तभवस्य = सभी समाधियों के अन्त में उत्पन्न होने वाला। तारकस्य = तारक ज्ञान के। स्वरूपं = स्वरूप को। अभिधाय = कह करके। तत् समापत्तेः = उस तारक ज्ञान की प्राप्ति होने से। कृताधिकारस्य = अधिकारयुक्त, कर्तृत्वभोक्तृत्व रूप भावना से युक्त। चित्त-सत्त्वस्य = सत्त्वगुणविशिष्ट चित्त का। स्वकारणानुप्रवेशात् = अपने मूल कारण प्रकृति में प्रवेश करने से, विलीन होने से। कैवल्यं = कैवल्य, अपवर्ग की। उपपद्यते = सिद्धि होती है। इति = इस रूप से अभिहितं = कहा गया है अर्थात् सत्त्वपुरुषान्यताख्याति के उत्पन्न होते ही चित्त अपने कारण में विलय को प्राप्त कर लेता है तथा पुरुष की अपने चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठा हो जाती है, यही कैवल्य है। इति = इस प्रकार। तृतीयः = प्रस्तुत शास्त्र का तृतीय। विभूति-पादः = विभूतिपाद का। निर्णीतः = निर्णय, सम्यक् विवेचन किया गया।

इति धारेश्वरभोजदेवविरचितायां राजमार्त्तण्डाभिधायां पातञ्जलवृत्तौ विभूतिपादस्तृतीयः।

❀ इति विभूतिपादः ❀

अथ कैवल्यपादः ।

यदाज्ञयैव कैवल्यं विनोपायैः प्रजायते ।
तमेकमजमीशानं चिदानन्दमयं स्तुमः ॥

इदानीं विप्रतिपत्तिसमुत्थभ्रान्तिनिराकरणेन युक्त्या कैवल्यस्वरूपज्ञानाय[1] कैवल्यपादोऽयमारभ्यते ।

तत्र याः पूर्वमुक्ताः सिद्धयस्तासां नानाविध जन्मा[2]दिकारणप्रतिपादनद्वारेणैव बोधयति—यदि वा या एताः सिद्धयः[3] ताः सर्वाः पूर्वजन्माभ्यस्तसमाधिबलाज् जन्मादिनिमित्तमात्रत्वेनाश्रित्य प्रवर्त्तन्ते । ततश्चानेकभवसाध्यस्य समाधेर्न क्षतिरस्तीत्याश्वासोत्पादनाय[4] समाधिसिद्धेश्च प्राधान्यख्यापनार्थं कैवल्योपयोगार्थमाह—

इदानीं = अब । विप्रतिपत्तिसमुत्थभ्रान्तिनिराकरणेन = विरोध, अविद्याजन्य, भ्रांति, संशय का निराकरण करने के लिये । युक्त्या = युक्ति, तर्क द्वारा । कैवल्यस्वरूपज्ञानाय = कैवल्य, अपवर्ग के स्वरूप, लक्षण के ज्ञान के लिये । अयं = यह । कैवल्यपादः = चतुर्थ कैवल्यपाद का वर्णन । आरभ्यते = प्रारम्भ किया जाता है ।

तत्र = उनमें । याः = जो । पूर्वमुक्ताः = पहले वर्णन की गई । सिद्धयः = सिद्धियाँ हैं । तासां = उन सिद्धियों का । नानाविधजन्मादिकारणप्रतिपादनद्वारेण = जन्म, औषधि, मन्त्र, तप, समाधि इत्यादि विविध प्रकार के कारणों, निमित्तों से उत्पत्ति के कथन, निरूपण द्वारा । एवं = इस प्रकार से । बोधयति = ज्ञान कराते हैं । मदीयाः = मेरी । एताः = जो ये । सिद्धयः = सिद्धियाँ हैं । ताः = वे । सर्वाः = सभी । पूर्वजन्माभ्यस्तसमाधिबलात् = पूर्व जन्म में अभ्यास

---

१. ज्ञानाय (पा०) ।

२. जात्यादिकारण (पा०) ।

३. मदीया एताः सिद्धयः (पा०) ।

४. विश्वासोत्पादनाय (पा०) ।

की गई समाधि के प्रभाव से। जन्मादिनिमित्तमात्रत्वेन = केवल जन्म इत्यादि के कारण का। आश्रित्य = आलम्बन प्राप्त कर। प्रवर्त्तन्ते = प्रवृत्त, प्रकट होती हैं। ततः च = और इस प्रकार। अनेकभवसाध्यस्य = अनेक जन्मों से सिद्ध, प्राप्त होने वाली। समाधेः = समाधि का। न = नहीं। क्षतिः = क्षति, अभाव। अस्ति = होता है। इति = इसी जन्मान्तर अभ्यस्त समाधि की प्राप्ति के विषय में। आश्वासोत्पादनाय = विश्वास, श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये। च = और। कैवल्योपयोगार्थं = कैवल्य, मोक्ष के लिये उपयोगी, उपकारक। समाधिसिद्धेः = समाधि की सिद्धि की। प्राधान्यख्यापनार्थं = प्रधानता, प्रमुखता को बतलाने, ज्ञान कराने के लिये। आह = कहते हैं।

जन्मौषधि-मन्त्र-तपः-समाधिजाः सिद्धयः[1] ॥ १ ॥

अर्थः—जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः = जन्म से प्राप्त होने वाली, औषधि के सेवन से, मन्त्रों के अनुष्ठान से, तप की साधना से तथा समाधि से उत्पन्न होने वाली। सिद्धयः = पाँच प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं।

वृत्तिः—काश्चन जन्मनिमित्ता एव सिद्धयः; यथा—पक्ष्यादीनामाकाशे गमनादयः यथा वा—कपिलमहर्षिप्रभृतीनां जन्मसमन्तरमेवोपजायमाना ज्ञानादयः सांसिद्धिका गुणाः। ओषधिसिद्धयो यथा—पारदादिरसायनाद्युपयोगात्। मन्त्रसिद्धिर्यथा—मन्त्रजपात् केषाञ्चिदाकाशगमनादिः। तपःसिद्धिर्यथा—विश्वामित्रादीनाम्। समाधिसिद्धिः प्राक् प्रतिपादिता।

एताः सिद्धयः पूर्वजन्मक्षयितक्लेशानामेवोपजायन्ते; तस्मात् समाधिसिद्धाविव अन्यासां सिद्धीनां समाधिरेव जन्मान्तराभ्यस्तः कारणं, मन्त्रादीनि निमित्तमात्राणि ॥ १ ॥

काश्चन = कुछ। सिद्धयः = सिद्धियाँ। जन्मनिमित्ताः = जन्म के कारण, जन्म-जात। एव = ही होती हैं। यथा = जैसे। पक्ष्यादीनां = पक्षियों इत्यादि का। आकाशे = आकाश में। गमनादयः = गमन, संचरण इत्यादि जन्म से प्राप्त

---

१. जन्मादिसिद्धीनां यद् विवरणं योगचिन्तामण्यां शिवानन्देन प्रदत्तं तद् भोजवृत्तिमनुसरति सर्वथा इति दृश्यते।

होने वाली सिद्धियाँ हैं। यथा वा = अथवा जैसे। कपिलमहर्षिप्रभृतीनां – महर्षि कपिल इत्यादि ऋषियों का। जन्मसमनन्तरं = जन्म के पश्चात्। एव = ही। उपजायमानाः = उत्पन्न होने वाले। ज्ञानादयः = ज्ञान इत्यादि। सांसिद्धिकाः= सांसिद्धिक, स्वयं सिद्ध, प्राप्त होने वाले। गुणाः = गुण जन्म-जात सिद्धियाँ हैं। औषधिसिद्धयः = औषधियों के सेवन से प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ हैं। यथा= जैसे। पारदादिरसायनाद्युपयोगात् = पारद इत्यादि रसायन के प्रयोग से। मन्त्रसिद्धिः = मन्त्रों के अनुष्ठान, पाठ से उत्पन्न होने वाली सिद्धि। यथा = जैसे। मन्त्रजपात् = मन्त्रों के जप, पाठ से। केषाञ्चिद् = कुछ पुरुषों को। आकाशगमनादिः = आकाश में गमन, संचरण इत्यादि सिद्धि प्राप्त होती है। तपःसिद्धिः = तपस्या की साधना से प्राप्त होनेवाली सिद्धि। यथा = जैसे। विश्वामित्रादीनां = विश्वामित्र इत्यादि ऋषियों को मन्त्रों के प्रभाव से सिद्धि प्राप्त हुई थी। समाधिसिद्धिः = समाधि से प्राप्त होने वाली सिद्धि। प्राक् = पूर्व विभूतिपाद में। प्रतिपादिता = वर्णन की गई है। एताः=ये सभी। सिद्धयः= सिद्धियाँ। पूर्वजन्मक्षयितक्लेशानां = पूर्व जन्म में क्षीण किये गये अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष इत्यादि क्लेशों के प्रभाव से। एव = ही। उपजायन्ते = इस जन्म में उत्पन्न होती हैं। तस्मात् =इसलिये। समाधिसिद्धौ इव = समाधि की सिद्धि की ही भाँति। अन्यासां = अन्य, जन्म औषधि, मन्त्र, तप इत्यादि से उत्पन्न होने वाली। सिद्धीनां = सिद्धियों का। जन्मान्तराभ्यस्तः = पूर्व जन्म में अभ्यास की गई। समाधिः = सामाधि। एव = ही। कारणं = प्रमुख कारण, हेतु है। मन्त्रादीनि = मन्त्र, औषधि इत्यादि तो। निमित्तमात्राणि = केवल निमित्त कारण हैं ॥ १ ॥

ननु नन्दीश्वरादिकानां जात्यादिपरिणामोऽस्मिन्नेव जन्मनि दृश्यते, तत् कथं जन्मा[1]न्तराभ्यस्तस्य समाधेः कारणत्वमुच्यत इत्याशङ्क्याह—

ननु = शङ्का होती है, प्रश्न उठता है कि। नन्दीश्वरादिकानां = नन्दीश्वर इत्यादि का। जात्यादिपरिणामः = एक जाति से दूसरी जाति के रूप में परिवर्तन की प्राप्ति रूप इत्यादि परिणाम। अस्मिन् = इस। एव = ही। जन्मनि = जन्म

१. कथं जन्मनि जन्मान्तराभ्यस्तस्य (पा०)।

में। दृश्यते = देखा जाता है, पाया जाता है। तत् = तो। कथं = किस प्रकार से। जन्मनि = इसी जन्म में प्राप्त होने वाले जाति इत्यादि परिणाम के सम्बन्ध में। जन्मान्तराभ्यस्तस्य = पूर्व जन्म में अभ्यास की गई। समाधिः = समाधि को। कारणत्वं = कारण के रूप में। उच्यते = कहा जाता है। इति = ऐसा। आशङ्क्य = आशङ्का करके। आह = उत्तर देते हुए कहते हैं।

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥

अर्थः—जात्यन्तरपरिणामः = मनुष्य, तिर्यक् इत्यादि एक जाति से दूसरी जाति के रूप में परिवर्तन रूप परिणाम। प्रकृत्यापूरात्=प्रकृति के उपादान कारण के आपूर अनुप्रवेश से होता है। जाति का परिणाम शरीर तथा इन्द्रियों के परिवर्तन से होता है। अतः शरीर के उपादानभूत पञ्चमहाभूतों एवं इन्द्रियों के उपादान कारण अहंकार के अवयवों के आपूर, अनुप्रवेश, परस्पर प्रवेश से होता है।

वृत्तिः—योऽयमिहैव जन्मनि नन्दीश्वरादीनां जात्यादिपरिणामः स प्रकृत्यापरात, पाश्चात्त्या एव हि प्रकृतयोऽमुष्मिन् जन्मनि विकारानापूरयन्ति[1] जात्या-[2]न्तरीकारेण परिणामयन्ति ॥ २ ॥

इहएव = इस ही, वर्तमान। जन्मनि = जन्म में। नन्दीश्वरादीनां = नन्दीश्वर इत्यादि का। यः = जो। अयं = यह। जात्यादिपरिणामः = एक जाति से दूसरी जाति के रूप में परिणाम है। सः = वह परिणाम। प्रकृत्यापूरात् = प्रकृति के आपूर, उपादान कारणों के अनुप्रवेश से होता है। हि = क्योंकि। पाश्चात्त्याः = पूर्व जन्म की। एव = ही। प्रकृतयः = प्रकृतियाँ, अहंकार, महाभूत इत्यादि उपादान कारण। अमुष्मिन् = इस वर्तमान। जन्मनि = जन्म, जीवन में। विकारेण = विकारों के द्वारा। आपूरयन्ति = अवयवों का परस्पर प्रवेश करती हैं अर्थात्। जात्यादिद्वारेण = जाति इत्यादि के रूप से। परिणमन्ति = परिणाम को प्राप्त करती हैं ॥ २ ॥

---

१. विकारेणपूरयन्ति (पा०)।

२. जात्यादिद्वारेण परिणामयन्ति (पा०); नामरूपजात्यादिद्वारेण परिणामयन्ति (पा०)।

ननु धर्माधर्मादयस्तत्र क्रियमाणा उपलभ्यन्ते, तत् कथं प्रकृतीनामपूरकत्वम्[3] इत्याह—

ननु = प्रश्न होता है कि। तत्र = जाति इत्यादि के परिणाम के विषय में। धर्माधर्मादयः = धर्म, अधर्म इत्यादि। क्रियमाणाः = करते हुए, परिणाम को उत्पन्न करते हुए। उपलभ्यन्ते = प्राप्त होते हैं, देखे जाते हैं अर्थात् धर्म, अधर्म इत्यादि ही जाति इत्यादि परिणाम को उत्पन्न करने वाले हैं। तत् = तो। कथं = किस प्रकार से। प्रकृतीनां = जाति इत्यादि परिणाम में प्रकृतियों, उपादानों का। आपूरकत्वं = आपूरकत्व, अवयवों का अनुप्रवेश रूप कारण होता है। इति आह = इसी के उत्तर में कहते हैं।

निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां, वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥३॥

अर्थः—निमित्तं = प्रकृति के आपूर में निमित्त रूप धर्म इत्यादि। प्रकृतीनां प्रकृतियों के। अप्रयोजकं = अप्रवर्तक अर्थात् प्रवृत्त; चलाने वाले नहीं है अर्थात् धर्म, इत्यादि निमित्त प्रकृतियों को जाति इत्यादि परिणाम उत्पन्न करने के लिये प्रेरक नहीं बनते। तु = किन्तु। क्षेत्रिकवत् = कृषक की भाँति। ततः = उन धर्म इत्यादि निमित्तों के द्वारा। वरणभेदः = आवरण, बाधा, व्यवधान का भेद निवारण होता है अर्थात् जैसे कृषक एक केदार से दूसरे केदार में जल ले जाने की इच्छा से केवल प्रतिबन्धक, रुकावट को दूर कर देता है और जल स्वयं ही दूसरी क्यारी में पहुँच जाता है; वैसे ही धर्म इत्यादि प्रकृतियों के आपूर में प्रयोजक नहीं है। इनके द्वारा प्रतिबन्धक रूप अधर्म का केवल भेद निराकरण किया जाता है।

वृत्तिः—निमित्तं धर्मादि, तत् प्रकृतीनामर्थान्तरपरिणामे न प्रयोजकं, न हि कार्य्येण कारणं प्रवर्त्तते। कुत्र तर्हि तस्य धर्मादेर्व्यापार इत्याह—वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्। ततस्तस्मादनुष्ठीयमानाद् धर्माद् वरणमावरणकम् अधर्मादि, तस्यैव विरोधित्वाद् भेदः क्षयः क्रियते, तस्मिन् प्रतिबन्धे क्षीणे प्रकृतयः स्वयमभिमतकार्य्याय प्रभवन्ति।

---

३. आपूरकारणत्वम् (पा०)।

दृष्टान्तमाह—क्षेत्रिकवत् । यथा क्षेत्रिकः कृषीवलः केदारात् केदारान्तरं जलं निनीषुर्जलप्रतिबन्धकावरणभेदमात्रं करोति, तस्मिन् भिन्ने जलं स्वयमेव प्रसरद्रूपं परिणामं गृह्णाति, न तु जलप्रसरणे तस्य कश्चित् प्रयत्नः[1]; एवं धर्मादि-र्बोद्धव्यम् ॥ ३ ॥

धर्मादि = धर्म इत्यादि । निमत्तं = निमित्त हैं । तत् = वे धर्म इत्यादि निमित्त । प्रकृतीनां = प्रकृतियों के । अर्थान्तरपरिणामे = जाति इत्यादि दूसरे परिणाम, परिवर्तन में । न = नहीं । प्रयोजकं = प्रयोजक, प्रवर्तक, प्रेरक हैं । हि = क्योंकि । कार्येण = कार्य, धर्म इत्यादि के द्वारा । कारणं = कारण, प्रकृति । न = नहीं । प्रवर्त्तते = प्रवृत्त, प्रेरित होती है । तर्हि = तो फिर । तस्य = उस । धर्मादिः = धर्म इत्यादि का । व्यापारः = व्यापार, प्रवृत्ति । कुत्र = किस प्रकार से होती है । इति आह = इसी का उत्तर देते हैं । तु = किंतु । ततः = उस धर्म इत्यादि से । क्षेत्रिकवत् = क्षेत्री, कृषक की भाँति । वरणभेदः = आवरण, अवरोध, प्रतिबन्धक का भेद, निराकरण होता है । ततः तस्मात् = उस । अनुष्ठीयमानाद् = अनुष्ठान, पालन, आचरण किये गये । धर्माद् = धर्म से । अधर्मादि = अधर्म इत्यादि जो । वरणं = वरण अर्थात् । आवरणकं = आवरण करने वाले, अवरोध, प्रतिबन्ध, रुकावट उपस्थित करने वाले हैं । तस्य = उस आवरण का । एव = ही । विरोधित्वाद् = विरोधी, प्रतिकूल होने के कारण । भेदः = भेद अर्थात् । क्षयः = क्षय, विनाश । क्रियते = किया जाता है । तस्मिन् = उस अधर्मरूप । प्रतिबन्धे = आवरण के । क्षीणे = क्षीण, विनष्ट हो जाने पर । प्रकृतयः = प्रकृतियाँ । स्वयं = स्वयं ही, दूसरे की अपेक्षा के बिना ही । अभिमतकार्य्याय = अभिमत, अभीष्ट कार्य को संपन्न करने के लिये । प्रभवन्ति = समर्थ हो जाती हैं । दृष्टान्तं = इस विषय के संबन्ध में उदाहरण को । आह = कहते हैं । क्षेत्रिकवत् = क्षेत्री, कृषक की भाँति अर्थात् । यथा = जैसे । क्षेत्रिकः = क्षेत्री । कृषीबलः = कृषिरूप बल वाला, कृषक । केदा-रात् = एक केदार, क्यारी से । केदारान्तरं = दूसरी क्यारी को । जलं = जल को । निनीषुः = ले जाने की इच्छा से । जलप्रतिबन्धकावरणभेदमात्रं = जल

---

१. व्यापारः (पा०) ।

रोकने वाले केवल आवरण का ही भेद, निवारण। करोति = करता है। तस्मिन् = जल के उस अवरोध के। भिन्ने = भिन्न, विनष्ट, दूर हो जाने पर। स्वयं = स्वयं। एव = ही'। प्रसरत् = क्यारी में चारों तरफ फैलता हुआ। जलं = जल। रूपं = प्रसार रूप। परिणामं = परिणाम को। गृह्णाति = ग्रहण कर लेता है। जलप्रसरणे तु = और जल के प्रसार, फैलने में तो। तस्य = उस कृषक का। कश्चित् = कुछ भी। प्रयत्नः = प्रयास, उद्यम। न = नहीं है। एवं = इसी प्रकार। धर्मादिः = धर्म इत्यादि को भी। बोधव्यं = समझना चाहिए अर्थात् प्रकृति के आपूर में धर्म इत्यादि प्रयोजक नहीं है। वे केवल अधर्म रूप अवरोध को दूर कर देते हैं॥ ३॥

यदा साक्षात्कृततत्त्वस्य योगिनो युगपत् कर्मफलभोगाय आत्मीयनिरतिशय-विभूत्यनुभवाद् युगपदनेकशरीरनिर्मित्सा जायते, तदा कुतस्तानि चित्तानि प्रभ-वन्तीत्याह—

यदा = जब। साक्षात्कृततत्त्वस्य = तत्त्वों का साक्षात्, प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन करने वाले। योगिनः=योगी की। युगपत् = एक साथ। कर्मफलभोगाय= कर्मों के फल को भोगने के लिये। आत्मीयनिरतिशयविभूत्यनुभवाद् = अपनी ही अतिशय रहित, सबसे अधिक विभूति के अनुभव बल से। युगपद् = एक साथ ही। अनेकशरीरनिर्मित्सा = अनेक शरीरों के निर्माण की इच्छा। जायते = उत्पन्न होती है। तदा = तब। तानि = वे। चित्तानि = चित्त। कुतः = किस प्रकार। प्रभवन्ति = कार्य करने में समर्थ होते हैं। इति आह = इसका उत्तर देते हैं।

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात्॥ ४॥

अर्थः—निर्माणचित्तानि=संकल्प से योगी द्वारा निर्माण किये गये, बनाये गये चित्त। अस्मितामात्रात् = अपने उपादान कारण अस्मिता, अहंकार से उत्पन्न होने वाले होते हैं।

वृत्तिः—योगिनः स्वयं निर्मितेषु कायेषु यानि चित्तानि तानि मूलकारणाद्, अस्मितामात्रादेव तदिच्छया प्रसरन्ति, अग्नेर्विस्फुलिङ्गा इव युगपत् परिण-मन्ति॥ ४॥

योगिनः = योगी के, योगी द्वारा । स्वयं = अपने से ही, संकल्प मात्र से ही । निर्मितेषु = बनाये गये । कायेषु = शरीरों में । यानि = जो । चित्तानि = चित्त हैं । तानि = निर्मित शरीरों में विद्यमान वे सभी चित्त । मूलकारणाद् = मूल, उपादान कारण । अस्मितामात्राद् एव = अस्मिता, अहंकार से ही उत्पन्न होते हैं । तद् इच्छया = उस योगी की इच्छा के अनुसार । प्रसरन्ति = उन चित्तों की वृत्तियाँ प्रसार को प्राप्त करती हैं, अपने व्यापारों को करती हैं । अग्नेः = अग्नि के । विस्फुलिङ्गाः = विस्फुलिङ्गों, अग्निकणों, चिनगारियों की । इव = भाँति । युगपत् = एक साथ । परिणमन्ति = परिणाम को प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

ननु बहूनां चित्तानां भिन्नाभिप्रायत्वान्नैककार्य्यकर्तृत्वं स्यादित्याह—

ननु = प्रश्न होता है कि । बहूनां = बहुत से, अनेक । चित्तानां = चित्तों का । भिन्नाभिप्रायत्वात् = भिन्न-भिन्न, विविध प्रकार का अभिप्राय, (उद्‌देश्य) होने के कारण । एककार्य्यकर्त्तृत्वं = एक समान कार्य का कर्ता होना, सम्पन्न करना । न = नहीं । स्याद् = सम्भव हो सकेगा । इति आह = इसी का उत्तर देते हैं ।

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ५ ॥

अर्थः—अनेकेषां = संकल्प मात्र से बनाये गये अनेक नवीन चित्तों की । प्रवृत्तिभेदे = प्रवृत्ति के भेद में, विविध प्रकार की प्रवृत्तियों, व्यापारों में । प्रयोजकं = अधिष्ठता रूप से प्रवृत्त, नियुक्त करने वाला । एकं = योगी का एक ही । चित्तं = चित्त होता है ।

वृत्तिः—तेषाम अनेकेषां चेतसां प्रवृत्तिभेदे व्यापारनानात्वे एकं योगिनश्चित्तं प्रयोजकं प्रेरकम्, अधिष्ठातृत्वेन, तेन न भिन्नमतत्वम् । अयमर्थः—यथा आत्मीयशरीरे मनश्चक्षुःपाण्यादीनि यथेच्छं प्रेरयति, अधिष्ठातृत्वेन, एवं कायान्तरेष्वपीति ॥ ५ ॥

तेषां = संकल्प मात्र से उत्पन्न किये गये उन । अनेकेषां = अनेक, बहुतसे । चेतसां=नवीन चित्तों की । प्रवृत्तिभेदे=प्रवृत्तियों के भेद में अर्थात् । व्यापारनानात्वे

= विविध प्रकार के व्यापारों में, व्यापार की विविधता में। योगिनः = योगी का। एकं = एक ही। चित्तं = अपना चित्त। अधिष्ठातृत्वेन = अधिष्ठाता, नियन्ता रूप से। प्रयोजकं=प्रयोजक अर्थात्। प्रेरकं = प्रेरक है। तेन = इसलिये। भिन्नमतत्वं = इससे भिन्न विपरीत मत। न = नहीं है अर्थात् योगी का अपना एक ही चित्त निर्माण किये गये अनेक चित्तों के व्यापार में प्रेरक बनता है। अयम् अर्थः = यह अभिप्राय है। यथा = जैसे। आत्मीयशरीरे = अपने शरीर में। अधिष्ठातृत्वेन = अधिष्ठाता रूप से योगी का अपना चित्त। मनश्चक्षुःपाण्यादीनि = मन, चक्षु, हस्त इत्यादि इन्द्रियों को। यथेच्छं = अपनी इच्छा के अनुसार। प्रेरयति = प्रेरित करता है, व्यापारों में नियुक्त करता है। एवं = इसी प्रकार। कायान्तरेषु अपि इति = संकल्प मात्र से बनाये गये अन्य शरीरों में विद्यमान अनेक चित्त को भी प्रेरित करता है ॥ ५ ॥

जन्मादिप्रभवत्वात् सिद्धीनां चित्तमपि तत्प्रभवं पञ्चविधमेव ; ततोजन्मादिप्रभवोच्चित्तात् समाधिप्रभवस्य चित्तस्य वैलक्षण्यमाह—

सिद्धीनां = सिद्धियों का। जन्मादिप्रभवत्वात् = जन्म, औषधि, मन्त्र तप, समाधि से उत्पन्न होने के कारण। पञ्चविधं = पाँच प्रकार के। एव = ही। चित्तं = चित्त। अपि = भी। तत्प्रभवं = उन्हीं से उत्पन्न होते हैं। अतः = इसलिये। जन्मादिप्रभवात् = जन्म, औषधि, मन्त्र, तप से उत्पन्न होने वाले। चित्तात् चित्त से। समाधिप्रभवस्य = समाधि से उत्पन्न। चित्तस्य = चित्त की। वैलक्षण्यं = विलक्षणता, विशेषता, भेद को। आह = कहते हैं।

तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥

अर्थः—तत्र = जन्म, औषधि, मन्त्र, तप, समाधि रूप पञ्च प्रकार के संकल्प-निर्मित चित्तों में। ध्यानजं=ध्यान, समाधि से उत्पन्न होने वाला चित्त। अनाशयं= आशय, वासना, संस्कारों से रहित होता है। शेष चार प्रकार के चित्त वासनाओं से युक्त होते हैं।

वृत्तिः—ध्यानजं समाधिजं यच् चित्तं तत् पञ्चसु मध्ये अनाशयं कर्मवासनारहितमित्यर्थः ॥ ६ ॥

ध्यानजं = ध्यान से उत्पन्न अर्थात् । समाधिजं = समाधि से उत्पन्न । यत् = जो । चित्तं = चित्त है । तत् = वह समाधि जन्य चित्त । पञ्चसु = जन्म, औषधि, मन्त्र, तप, समाधि पाँचों से उत्पन्न होने वाले चित्तों के । मध्ये = बीच में । अनाशयं = आशय रहित होता है । कर्मवासनारहितं = कर्म वासनाओं, संस्कारों से रहित होता है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है ।

यथा इतरचित्तेभ्यो योगिनश्चित्तं विलक्षणं क्लेशादिरहितं, तथा कर्मापि विलक्षणमित्याह—

यथा = जैसे । इतरचित्तेभ्यः = अन्य चित्तों से । योगिनः = योगी का । चित्तं = चित्त । विलक्षणं = विलक्षण, विशेष अर्थात् । क्लेशादिरहितं = क्लेश इत्यादि से रहित, विनिर्मुक्त होता है । तथा = वैसे ही । कर्म = योगी के कर्म । अपि = भी । विलक्षणं = विलक्षण होते हैं । इति आह = इसी को कहते हैं ।

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ७ ॥

अर्थः—योगिनः = योगी के । कर्म = कर्म । अशुक्लाकृष्णं = कर्मसंकारों के अभाव में, फलाभाव के कारण अशुक्ल, पुण्य रहित तथा अकृष्ण पाप रहित होते हैं । किन्तु । इतरेषां = सामान्य मनुष्यों के । त्रिविधं = शुक्ल, पुण्य; कृष्ण, पाप तथा शुक्लकृष्ण, पुण्यपापमिश्रित कर्म होते हैं ।

वृत्तिः—शुभफलदं कर्म योगादि शुक्लम्, अशुभफलदं ब्रह्महत्यादि कृष्णम्, उभयसङ्कीर्णं शुक्लकृष्णम् । तत्र शुक्लं कर्म विचक्षणानां दान-तपः-स्वाध्याया-दिमतां पुरुषाणाम् । कृष्णं कर्म दानवानाम्[1] । शुक्लकृष्णं मनुष्याणाम् । योगिनान्तु सन्यासवतां त्रिविधकर्मविपरीतं यत् फलत्यागानुसन्धानेनैवानुष्ठानाद् न किञ्चित् फलमारभते ॥ ७ ॥

शुभफलदं = शुभ कल्याणकारी फल को प्रदान करने वाले । यागादि = यज्ञ इत्यादि । कर्म = कर्म । शुक्लं = शुक्ल पुण्य रूप हैं । अशुभफलदं = अशुभ फल को प्रदान करने वाले । ब्रह्महत्यादि = ब्राह्मण हत्या इत्यादि कर्म । कृष्णं =

१. नारकिणाम् (पा०) ।

कृष्ण, पाप रूप हैं। उभयसंकीर्णं = शुभ-अशुभ, पुण्य-पापमिश्रित कर्म। शुक्ल-कृष्णं = शुक्ल-कृष्ण, पुण्य-पाप रूप हैं। तत्र = उन त्रिविध कर्मों में। दानतपः-स्वाध्यायादिमतां = दान देना, तप को साधना, वेद-शास्त्रों के अध्ययन इत्यादि कर्मों में निरत, लगे हुये। विचक्षणानां = बुद्धिमान्। पुरुषाणां = पुरुषों के। कर्म = कर्म। शुक्लं = शुक्ल, पुण्य रूप होते हैं। दानवानां = दानवों का। कर्म = कर्म। कृष्णं = कृष्ण, पाप रूप होते हैं। मनुष्याणां = मनुष्यों के कर्म शुक्लकृष्णं = शुक्ल-कृष्ण, पुण्य-पाप मिश्रित होते हैं। संन्यासवतां = सन्यास-युक्त। योगिनां = योगियों का कर्म। त्रिविधकर्मविपरीतं = शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण रूप त्रिविध कर्मों से विपरीत, भिन्न होता है अर्थात् अशुक्ल एवं अकृष्ण कर्म योगियों के होते हैं। यत् = जो कर्म। फलत्यागानुसन्धानेन = विचारपूर्वक फल प्राप्ति की इच्छा का परित्याग करके। एव = ही। अनुष्ठा-नाद् = अनुष्ठान, संपादन करने से। किंचित् = कुछ भी। फलं = फल को। न = नहीं। आरभते = आरम्भ करते हैं, प्रदान करते हैं अर्थात् कामना से रहित होकर किये गये योगी के कर्म शुभ-अशुभ कुछ भी फल प्रदान कहीं करते ॥ ७ ॥

अस्यैव कर्मणः फलमाह—

अस्य = इस। एव = ही। कर्मणः = कर्म के। फलं = फल का। आह = वर्णन करते हैं।

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥

अर्थः—ततः = शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण रूप त्रिविध कर्मों से। तद्विपा-कानुगुणानां = उन कर्म फलों के अनुसार, कर्मों के विपाक, भोग के अनुकूल। एव = ही। वासनानां = वासनाओं, संस्कारों की। अभिव्यक्तिः = अभिव्यक्ति, उद्भूति, प्रादुर्भाव होता है। अर्थात् त्रिविध कर्मों के अनुसार पुरुष को जिस विशेष शरीर, आयु, भोग इत्यादि फलों की प्राप्ति होती है; उसी जाति, आयु, भोग रूप विपाक के अनुसार ही चित्त में संस्कारों की अभिव्यक्ति होती है। यथा मानव जाति की प्राप्ति पर उसके अनुकूल संस्कार तथा पशु इत्यादि जाति की प्राप्ति से उनके अनुसार ही संस्कारों का उद्भव होता है, शेष संस्कार अनभिव्यक्त रहते हैं।

वृत्तिः—इह हि द्विविधा कर्मवासनाः, स्मृतिमात्रफलाः जात्यायुर्भोगफलाश्च। तत्र जात्यायुर्भोगफला अनेकजन्मभवा[1] इत्यनेन पूर्वमेव (२।१२–१३) कृतनिर्णयाः। यास्तु स्मृतिमात्रफलाः ताः, ततः कर्मणः, येन कर्मणा यादृक् शरीरमारब्धंदेव-मनुष्य-तिर्य्यगादिभेदं, तस्य विपाकस्य, अनुगुणा अनुरूपाः, या वासना; तासामेवाभिव्यक्ति[2]र्भवति। अयमर्थः—येन कर्मणा पूर्वं देवतादिशरीरमारब्धं, जात्यन्तरशतव्यवधानेन पुनस्तथाविस्यैव शरीरस्य आरम्भे तदनुरूपा एव स्मृतिफला वासनाः प्रकटी भवन्ति, लोकान्तरेष्वेवार्थेषु तस्य स्मृत्यादयो जायन्ते। इतरास्तु[3] सत्योऽपि अव्यक्तसंज्ञाः तिष्ठन्ति, न तस्यां दशायां नारकादिशरीरोद्भवा[4] वासना व्यक्तिमायान्ति ॥ ८ ॥

इह हि = इस शरीर में। द्विविधा = दो प्रकार की। कर्मवासनाः = कर्म वासनायें होती हैं। स्मृतिमात्रफलाः = प्रथम केवल स्मृतिरूप फल प्रदान करने वाली। च = और। जात्यायुर्भोगफलाः = द्वितीय प्रकार की जाति, आयु, सुख-दुःख इत्यादि भोग रूप फल प्रदान करने वाली कर्म वासनायें हैं। तत्र = उन दो प्रकार की कर्म वासनाओं में। जात्यायुर्भोगफला = जाति-आयु-भोग रूप त्रिविध फल को प्रदान करने वाली। एका = एक प्रकार की कर्म वासना। अनेकजन्मभवा = अनेक जन्मों में किये गये कर्मों के अनुसार होने वाली है। इति = इस रूप से। अनेन = इसलिये। पूर्वं = पहले २।१२–१३ सूत्रों में। एव = ही। कृतनिर्णयाः = निर्णय, वर्णन किया जा चुका है। याः तु = और जो कर्म वासनायें। स्मृतिमात्रफलाः = केवल स्मृतिरूप फल प्रदान करने वाली हैं। ताः = वे कर्म वासनायें। ततः = शुक्ल, कृष्ण, शुक्लकृष्ण रूप उन त्रिविध। कर्मणः = कर्म से। येन = जिस। कर्मणा = कर्म के द्वारा। देवमनुष्यतिर्य्यगादिभेदं = देव, मनुष्य, तिर्यक् इत्यादि भेद, रूप वाला। यादृक् = जिस प्रकार का। शरीरं = शरीर। आरब्धं = आरम्भ किया गया है, कर्म के विपा-

---

१. एकानेक जन्मभवा (पा०)।

२. तासामेव तस्मादभिव्यक्तिर्वासनानां (पा०)।

३. इतरास्तु ताभ्यो न्यूभूतास्तिष्ठन्ति (पा०)।

४. नारकादिशरीरस्योपभोगभवाः (पा०)।

कानुसार प्रदान किया गया है। तस्य = उसके। विपाकस्य = विपाक कर्मफल के। अनुगुणाः = अनुगुण अर्थात्। अनुरूपाः = अनुरूप, अनुसार। याः = जो। वासनाः = कर्म वासनायें हैं। तासां = उन्हीं कर्म वासनाओं की। एव = ही। अभिव्यक्तिः = उद्भूति, उत्पत्ति। भवति = होती है। अयम् अर्थः = यह अभिप्राय है। येन = जिस शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल कृष्ण। कर्मणा = कर्म के द्वारा। पूर्वं = पहले। देवतादिशरीरं = देव इत्यादि शरीर की, जाति की। आरब्धं = प्राप्ति हुई थी। जात्यन्तरशतव्यवधानेन = बीच में मनुष्य, पशु इत्यादि सैकड़ों, अनेक जातियों के व्यवधान पड़ने पर भी। पुनः = फिर। तथाविधस्य एव = उसी प्रकार के ही देव इत्यादि। शरीरस्य = शरीर, जाति के। आरम्भे = प्राप्त होने पर। तद् अनुरूपाः = उस देव इत्यादि जाति के अनुकूल। एव = ही। स्मृतिफलाः = स्मृति रूप फल प्रदान करने वाली। वासनाः = वासनायें। प्रकटीभवन्ति = प्रकट, उद्भूत होती हैं। लोकान्तरेषु = लोकान्तर, पूर्व काल की उसी जाति में अनुभव किये गये। अर्थेषु एव = पदार्थों में ही। तस्य = उस पुरुष की। स्मृत्यादयः = स्मृति इत्यादि। जायन्ते = उत्पन्न होती हैं। इतराः तु = और पूर्व जन्म की अन्य जातियों में अनुभूत पदार्थों की वासनायें। सत्यः = विद्यमान रहने पर। अपि = भी। अव्यक्तसंज्ञाः = अव्यक्त, अनभिव्यक्त रूप से। तिष्ठन्ति = स्थित रहती हैं। तस्यां = उस देव इत्यादि। दशायां = दशा, जाति में। नरकादिशरीरोद्भवा = नारकीय इत्यादि शरीर जाति में उत्पन्न हुई। वासनाः = वासनायें। व्यक्तिं = अभिव्यक्ति को। न = नहीं। आयान्ति = प्राप्त होती हैं॥ ८॥

आसामेव वासनानां कार्य्यकारणभावानुपपत्तिमाशङ्क्य समर्थयितुमाह—

आसाम् एव = इन्हीं। वासनानां = वासनाओं के। कार्य्यकारणभावानुपपत्ति = कार्य-कारण भाव की अनुपपत्ति, असिद्धि की। आसङ्क्य = आशङ्का करके। समर्थयितुं = उसी का समर्थन करने के लिये। आह = कहते हैं।

जाति-देश-कालव्यवहितानामप्यानन्तर्य्यं,

स्मृति-संस्कारयोरेकरूपत्वात्॥ ९॥

अर्थः—स्मृतिसंस्कारयोः स्मृति तथा संस्कारों, कर्मवासनाओं के। एक-रूपत्वात् = एक ही रूप, समान स्वरूप, विषयक होने के कारण। जातिदेश-कालव्यवहितानां = देव मनुष्य-पशु इत्यादि जाति कृत, देश-स्थान कृत तथा काल-समय कृत व्यवधान, विच्छिन्नता होने पर। अपि = भी। आनन्तर्य्यं = संस्कारों, कर्म वासनाओं की निरन्तरता, अविच्छिन्नता, अव्यवधान होता ही है अर्थात् किसी देश में, किसी काल में प्राप्त हुई देव इत्यादि जाति में जिन विषयों का अनुभव किया गया है, उनके संस्कार अव्यक्त रूप से विद्यमान रहते हैं और स्थान, काल रूप बहुत से व्यवधान होने पर भी पुनः जब देव इत्यादि की जाति प्राप्त होती है तब पूर्व अनुभूत संस्कारों की अभिव्यक्ति पुनः उसी प्रकार से होती है॥ ९॥

वृत्तिः—इह नानायोनिषु भ्रमतां संसारिणां काञ्चिद् योनिमनुभूय यदा योन्यन्तरसहस्रव्यवधानेन पुनस्तामेव योनिं प्रतिपद्यते, तदा तस्यां पूर्वानुभूतायां योनौ तथाविधशरीरादिव्यञ्जकापेक्षया वासना याः प्रकटीभूता आसन्, तास्तथाविधव्यञ्जकाभावात्तिरोहिताः पुनस्तथाविधव्यञ्जकशरीरादिलाभे प्रकटीभवन्ति; जाति-देश-कालव्यवधानेऽपि तासां स्वा[1]नुरूपस्मृत्यादिफलसाधने आनन्तर्य्यं नैरन्तर्य्यम्। कुतः? स्मृति-संस्कारयोरेकरूपत्वात्। तथा हि—

अनुष्ठीयमानात् कर्मणश्चित्तसत्त्वे वासनारूपः[2] संस्कारः समुत्पद्यते, स च स्वर्गनरकादीनां फलानाञ्चाङ्कुरीभावः, कर्मणां वा यागादीनां शक्तिरूपतया अवस्थानं, कर्त्तुर्वा तथाविधभोग्य[3]ऽभोक्तृत्वरूपं सामर्थ्यम्। संस्कारात् स्मृतिः, स्मृतेश्च सुख-दुःखोपभोगः, तदनुभवाच्च पुनरपि संस्कार-स्मृत्यादयः। एवं च यस्य स्मृति-संस्कारादयो भिन्नाः, तस्यानन्तर्य्याभावे दुर्लभः कार्य्यकारणभाव; अस्माकं तु यदानुभव एव संस्कारीभवति, संस्कारश्च स्मृतिरूपतया परिणमते, तदैकस्यैव चित्तस्यानुसन्धातृत्वेन स्थितत्वात् न कार्य्यकारणभावो दुर्घटः॥ ९॥

इह = इस संसार में। नानायोनिषु = देव, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि

---

१. स्वानुभूत (पा०)।

२. वासनानुरूपः (पा०)।

३. भोगभोक्तृत्व (पा०)।

प्रकार की योनियों, शरीरों में। भ्रमतां = भ्रमण करते हुए, जन्म-मृत्यु को प्राप्त करते हुये। संसारिणां = संसारी जीवों का, जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़ कर संसरण करने वाले जीवों का। काञ्चिद् = किसी एक विशिष्ट। योनिं = देव इत्यादि योनि का। अनुभूय = अनुभूय करके। यदा = जब। योन्यन्तरसहस्र-व्यवधानेन = सहस्रों अनेकों मनुष्य, पशु इत्यादि दूसरी योनियों का व्यवधान, अन्तर पड़ने पर भी। पुनः = फिर। तां = उस। एव = ही। योनिं = देव इत्यादि योनि को। प्रतिपद्यते = प्राप्त करता है। तदा = तब। तस्यां = उस। पूर्वानुभूतायां = पूर्व जन्म में अनुभव की गई। योनौ = देव इत्यादि योनि में। तथाविधशरीरादिव्यञ्जकापेक्षया = उस प्रकार के, तदनुकूल व्यञ्जक, प्रकट करने वाले, अनुभव करने वाले देव इत्यादि शरीर के विचार से। याः = जो। वासनाः = वासनायें, संस्कार। प्रकटीभूताः = प्रकट, अभिव्यक्त। आसन् = हुये थे। ताः = वही वासनायें। तथाविधव्यञ्जकाभावात् = उसी प्रकार के, अपने ही अनुकूल प्रकट, व्यक्त करने वाले देव इत्यादि शरीर का अभाव होने से, देव योनि न प्राप्त होने से। तिरोहिताः = छिप गई थीं, अनभिव्यक्त, लुप्त हो गई थीं। पुनः = फिर वही वासनायें। तथाविधव्यञ्जकशरीरादिलाभे = उसी प्रकार के, अपने ही अनुकूल व्यञ्जक प्रकट करने वाले देव इत्यादि शरीर की प्राप्ति हो जाने पर, अनेकों शरीरों के व्यवधान के पश्चात् पुनः देव शरीर मिलने पर। प्रकटीभवन्ति = प्रकट, अभिव्यक्त होती हैं, तिरोहित हुई वासनायें पुनः प्रकट होती हैं। जातिदेशकालव्यवधाने = मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि जाति, देश भारत, जापान, चीन इत्यादि स्थान तथा काल-समय का व्यवधान, अन्तर होने पर। अपि = भी। तासां = उन वासनाओं का। स्वानुभूतस्मृत्यादिफलसाधने=अपनी अनुभव की गई स्मृति इत्यादि फल को प्रदान करने वा साधन, देव इत्यादि शरीर के प्राप्त होने पर। आनन्तर्य्यं = आनन्तर्य अर्थात्। नैरन्तर्य्यं = निरन्तरता, अविच्छिन्नता होती है, वासनाओं में एकरूपता होती है। कुतः ? = किस कारण से, क्योंकि। स्मृतिसंस्कारयोः = स्मृति तथा संस्कार वासनाओं का। एकरूपत्वात् = एक रूप, समान रूपता होने के कारण पूर्व की वासनाओं का जाति-देश-काल का व्यवधान होने पर भी व्यवधान नहीं होता। तथा हि = जैसे

कि। कर्मणः = कर्म का। अनुष्ठीयमानात् = अनुष्ठान करने से चित्तसत्त्वे = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त में। वासनारूपः = वासना रूपी। संस्कारः =संस्कार। समुत्पद्यते = उत्पन्न होता हैं। च = और। सः = वही संस्कार। स्वर्गनरकादीनां = स्वर्ग, नरक इत्यादि उत्तम एवं अधम। फलानां = फलों का। अङ्कुरीभावः = अङ्कुर रूप है। वा = अथवा। यागादीनां = याग इत्यादि। कर्मणां= कर्मों का। शक्तिरूपतया = शक्ति रूप से। अवस्थानं = विद्यमान होता हैं। वा = अथवा। कर्त्तुः = कर्ता, जीव, पुरुष की। तथाविधभोग्यभोक्तृत्वरूपं = उस प्रकार भोग्य एवं भोक्ता रूप से। सामर्थ्य=सामर्थ्य, योग्यता है। संस्कारात्= संस्कार से। स्मृतिः = स्मृति उत्पन्न होती है। च = और। स्मृतेः = स्मृति से। सुखदुःखोपभोगः = सुख तथा दुःख के उपभोग की प्राप्ति होती है। च = और। तद् = उन सुख एवं दुःखों के। अनुभवात् = अनुभव, उपभोग से। पुनः = फिर। अपि = भी। संस्कारस्मृत्यादयः = संस्कार तथा स्मृतियाँ इत्यादि उत्पन्न होती हैं अर्थात् संस्कार से स्मृति, स्मृति से सुख-दुःख का उपभोग, सुख-दुःख के उपभोग से पुनः संस्कार तथा संस्कार से स्मृति उत्पन्न होती है। संस्कार-स्मृति-भोग की यह अविच्छिन्न परम्परा सदैव चलती रहती है। एवं च = और इस प्रकार से, किन्तु। यस्य = जिस पुरुष के। स्मृतिसंस्कारादयः = स्मृति, संस्कार, भोग इत्यादि। भिन्नाः = भिन्न, असंबद्ध हैं अर्थात् जिन पुरुषों के संस्कार से स्मृति तथा स्मृति से भोग एवं पुनः भोग से संस्कारों की उत्पत्ति नहीं होती। अतः। तस्य = उस पुरुष के। आनंतर्य्याभावे = संस्कारों, कर्मवासनाओं की निरन्तरता, अविच्छिन्नता का अभाव होने से अर्थात् कर्म वासनाओं में निरन्तरता न होने से। कार्य्यकारणभावः = कार्यकारणभाव। दुर्लभः = दुर्लभ, असंभव है अर्थात् संस्कारों के कारण स्मृति से सुखदुःख उपभोग की प्राप्ति नहीं होती। तु = किन्तु। अस्माकं = हम लोगों का, सामान्य पुरुषों का। यदा = जब। अनुभवः = अनुभव। एव = ही। संस्कार भवति = संस्कार रूप हो, जाता है। च = और। संस्कारः = संस्कार ही। स्मृतिरूपतया = स्मृति रूप से। परिणमते = परिणाम को प्राप्त करता है, संस्कार ही स्मृति रूप में परिवर्तित हो जाता है। तदा = तब ऐसी स्थिति में। एकस्य = एक। एव = ही। चित्तस्य =

चित्त के। अनुसन्धातृत्वेन = अनुसन्धाता रूप में। स्थितत्वात् = विद्यमान होनेके कारण। कार्य्यकारणभावः = कार्य्यकारणभाव। दुर्घटः = दुर्घट, असंभव। न = नहीं है। अर्थात् सामान्य पुरुषों को कर्मों से संस्कार, संस्कारों से स्मृति तथा स्मृति से सुख-दुःख भोग की पुनः भोग से संस्कारों की प्राप्ति होती ही रहती है॥ ९॥

भवत्वानन्तर्य्यं कार्य्यकारणभावश्च वासनानां, यदा तु प्रथममेवानुभवः प्रवर्त्तते, तदा किं वासनानिमित्त उत निर्निमित्त इति शङ्कां व्यपनेतुमाह—

वासनानां = कर्मवासनाओं, संस्कारों की। आनन्तर्य्यं = निरन्तरता अविच्छिन्नता, अव्यवधान, अनेकों दूसरी जातियों के व्यवधान के बाद पुनः उसी रूप का होना। च = तथा। कार्य्यकारणभावः = कार्य-कारण भाव। भवतु = होवे। तु = किन्तु। यदा = जब। प्रथमं = पहला। एव = ही अनुभवः = अनुभव। प्रवर्त्तते = होता है। तदा = तब वह प्रथम अनुभव। किं = क्या। वासना-निमित्तः = वासनाओं के कारण उत्पन्न होता है। उत = अथवा। निर्निमित्तः = बिना किसी निमित्त कारण के ही, वासनाओं के बिना ही उत्पन्न होता है। इति = इस। शङ्कां = आशङ्का, सन्देह को। व्यपनेतुं = दूर करने के लिये। आह = कहते हैं।

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात्॥ १०॥

अर्थः—च = और। आशिषः = आशा, महामोह रूपी अभिलाषा के। नित्यत्वात् = नित्य होने के कारण, सदैव विद्यमान होने के कारण तासां = उन वासनाओं की। अनादित्वं = अनादिता है अर्थात् सुख के साधन सदैव मेरे लिये विद्यमान रहें—मनुष्य में इस अभिलाषा के सदैव बने रहने के कारण कर्म वासनाओं की अनादि, अविच्छिन्न परम्परा सिद्ध होती है।

वृत्तिः—तासां वासनानाम्, अनादित्वं न विद्यते आदिर्यस्य तस्य भावस्तत्त्वं, तासामादिर्नास्तीत्यर्थः ; कुत इति ? आशिषो नित्यत्वात्—येयमाशीर्महामोहरूपा, सदैव सुखसाधनानि मे भूयासुः, मा कदाचन तैः मे वियोगो भूदिति यः सङ्कल्पविशेषो वासनानां कारणं, तस्य नित्यत्वाद् अनादित्वमित्यर्थः। एतदुक्तं

भवति—कारणस्य सन्निहितत्वाद् अनुभवसंस्कारादीनां कार्य्याणां प्रवृत्तिः केन वार्य्यते ? अनुभव-संस्कारानुविद्धं सङ्कोच-विकाशधर्मि चित्तं तत्तदभिव्यञ्जक-विपाकलाभात्[1] तत्तत्फलरूपतया परिणमत इत्यर्थः ।। १० ।।

तासां = उन । वासनानां = कर्म वासनाओं, संस्कारों की । अनादित्वं = अनादिता, अनादि परम्परा है अर्थात् । न = नहीं । विद्यते = विद्यमान है । आदिः = आदि, प्रारम्भ । यस्य = जिसका । तस्य = उसी का । भावः = भाव है । तत्त्वं = अनादित्व अर्थात् । तासां = उन वासनाओं का । आदिः = आदि, प्रारम्भ । न = नहीं । अस्ति = है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है । कुतः इति = किस कारण से वासनाओं की अनादिता है । आशिषः = आशा, अभिलाषा के । नित्यत्वात् = नित्य होने के कारण अर्थात् । या = जो । इयं = यह । महामोह-रूपा = महामोह, प्रबल मोहरूपी । आशीः = आशा है कि । सदैव = सदा ही । मे = मेरे लिये । सुखसाधनानि = सुख, आनन्द को प्रदान करने वाले साधन । भूयासुः = होवें अर्थात् मैं सदा सुखी रहूँ, आनन्द का उपभोग करता रहूँ । कदा-चन = कभी भी । तैः = उन सुख प्रदान करने वाले साधनों के साथ । मे = मेरा । वियोगः = वियोग । मा = मत । भूत = होवे । इति = इस रूप से । वासनानां = वासनाओं का । कारणं = कारण, उत्पन्न करने वाला । यः=जो । संकल्पविशेषः = विशेष प्रकार का संकल्प, धारणा, अभिलाषा है । तस्य = उस अभिलाषा, संकल्प विशेष के । नित्यत्वाद् = नित्य, सदैव बने रहने के कारण । अनादित्वं = कर्म वासनाओं की अनादिता है । इति अर्थः = यह अर्थ है । एतद् उक्तं भवति = इसका यह अभिप्राय है । कारणस्य = संकल्प विशेष, अभिलाषा रूप कारण के । सन्निहितत्वाद् = विद्यमान रहने के कारण । अनुभवसंस्कारा-दीनां = अनुभव, सुख-दुःख उपभोग एवं संस्कार, वासना इत्यादि । कार्य्याणां = कार्यों की । प्रवृत्तिः = प्रवृत्ति, व्यापार । केन = किसके द्वारा । वार्य्यते = रोका जा सकता है अर्थात् कारण के विद्यमान होने पर कार्य की प्रवृत्ति अवश्य ही होगी । अनुभवसंस्कारानुविद्धं = अनुभव तथा संस्कार से, अनुविद्ध, संपृक्त, युक्त । सङ्कोचविकासधर्मि = संकोचशील एवं विकासशील धर्म वाला । चित्तं = चित्त

---

१. तत्तदभिव्यञ्जकलाभात् (पा०) ।

होता है। तत्तदभिव्यञ्जकलाभात् = अभिव्यञ्जक, प्रेरक उन-उन कर्म वासनाओं के लाभ, प्राप्ति, संयोग से। तत्तत्फलरूपतया = उन-उन-उन फलों के रूप से। परिणमते = परिणाम को प्राप्त करता है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है ॥ १० ॥

तासामानन्त्याद् हानं कथं भवतीत्याशङ्क्य हानोपायमाह—

तासां = उन कर्म वासनाओं के। आनन्त्याद् = अनन्त, अनादि होने के कारण। कथं = किस प्रकार, किस उपाय से। हानं = उन वासनाओं का अभाव। भवति = होता है। इति = ऐसी। आशङ्क्य = आशङ्का करके। हानोपायं = वासनाओं के परित्याग, अभाव के उपाय को। आह = कहते हैं।

हेतु-फलाश्रयालम्बनैः सङ्गृहीतत्वाद् एषामभावे तदभावः ॥ ११ ॥

अर्थः—हेतुफलाश्रयालम्बनैः = हेतु, फल, आश्रय तथा आलम्बन के द्वारा। सङ्गृहीतत्वाद् = कर्म वासनाओं का संग्रह संचय होने के कारण। एषां = इन हेतु, फल, आश्रय तथा आलम्बन का। अभावे = अभाव, निराकरण हो जाने पर। तत् =उन कर्म वासनाओं का भी। अभावः = अभाव होता है अर्थात् वासनाओं का हेतु, कारण अविद्या है। जाति-आयु-भोग इनके फल हैं। वासनाओं का आश्रय आधार चित्त है। शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध इत्यादि विषय ही इन वासनाओं के आलम्बन हैं। इन्हीं हेतु, फल, आश्रय तथा आलंबन के द्वारा इन वासनाओं का संग्रह होता है। अतः इनका अभाव हो जाने पर वासनाओं का स्वतः अभाव हो जाता है।

वृत्तिः—वासनानामनन्तरानुभवो हेतुः, तस्याप्यनुभवस्य रागादयः, तेषामविद्येति साक्षात् पारम्पर्य्येण हेतुः ; फलं शरीरादि स्मृत्यादि च; आश्रयो बुद्धिः; आलम्बनं यदेवानुभवस्य तदेव वासनानाम् ; अतस्तैर्हेतु-फलाश्रयालम्बनैरनन्तानामपि वासनानां सङ्गृहीतत्वात् ; एषां हेत्वादीनाम् अभावे ज्ञानयोगाभ्यां दग्धबीजकल्पत्वे विहिते निर्मूलत्वाच्च वासनाः प्ररोहं न यान्ति न कार्य्यमारभन्त इति तासाम् अभावः ॥ ११ ॥

वासनानां = कर्म वासनाओं, संस्कारों का। हेतुः = हेतु, कारण। अनन्तरानुभवः = अनन्तर, अन्तर, व्यवधानरहित अर्थात् पूर्व जन्म का अनुभव ही है। तस्य = उस पूर्व जन्म के। अनुभवस्य = अनुभव का। अपि = भी। रागादयः = राग, द्वेष इत्यादि हेतु हैं। तेषां = उन राग, द्वेष इत्यादि का भी। अविद्या = अविद्या ही हेतु है। इति = इस प्रकार। साक्षात् = साक्षात्, प्रत्यक्ष रूप से। पारम्पर्य्येण = परम्परा से। हेतुः = वासनाओं का हेतु, मूल कारण अविद्या ही है। शरीरादि = शरीर इत्यादि, विशेष प्रकार की जाति तथा आयु को प्राप्ति। च = और। स्मृत्यादि = स्मृति इत्यादि, सुख-दुःख इत्यादि का उपभोग ही। फलं = वासनाओं का फल है अर्थात् वासनाओं के कारण जाति-आयु भोग रूप त्रिविध फल की प्राप्ति होती है। आश्रयः = समस्त वासनाओं संस्कारों का आश्रय, आधार। बुद्धिः = बुद्धि, चित्त ही है। अनुभवस्य=अनुभव का। यद्=जो। एव = ही। आलम्बनं=शब्द-स्पर्श रूप-रस-गन्ध आलम्बन है। तद् = वह। एव = ही। वासनानां = वासनाओं का भी आलम्बन हैं। अतः = इसलिये। तैः = उन। हेतुफलाश्रयालम्बनैः = अविद्या रूप हेतु, जाति-आयु-भोग रूप आश्रय तथा शब्द-स्पर्श इत्यादि आलम्बन के द्वारा। अनन्तानाम् अपि= अनन्त, समस्त, सभी। वासनाओं का। सङ्गृहीतत्वात् = संग्रह, संचय होने के कारण। एषां = इन। हेतूनां = हेतु, फल, आश्रय, आलम्बनों का। अभावे= अभाव, निराकरण हो जाने पर अर्थात्। ज्ञानयोगाभ्यां = ज्ञान तथा योग के द्वारा। दग्धबीजकल्पत्वे = भस्म हुए बीज के सदृश। विहिते = हेतु, फल, आश्रय, आलम्बन के बनाये जाने पर। च = और। इस प्रकार। निर्मूलत्वात् = मूल रहित होने के कारण। वासनाः=वासनायें। प्ररोहं=प्ररोह, अङ्कुर भाव को। न = नहीं। यान्ति = प्राप्त होती हैं। कार्य्यं = कार्य को। न = नहीं। आरभन्ते = आरम्भ, उत्पन्न करती हैं। इति = यही। तासां = उन कर्म वासनाओं संस्कारों का। अभावः = अभाव, निराकरण है ॥ ११ ॥

ननु प्रतिक्षणं चित्तस्य [1]नश्वरत्वोपलब्धेर्वासनानां तत्फलानाञ्च कार्य्यकारणभावेन युगपद्भावित्वाद् भेदे कथमेकत्वमित्याशङ्क्य एकत्वसमर्थनायाह—

१. नश्वरत्वात् तरतमत्वोपलब्धेः (पा०) ;
नश्वरत्वाद् भेदोपलब्धेः (पा०)।

ननु = संदेह उत्पन्न होता है कि। प्रतिक्षणं = प्रत्येक क्षण। चित्तस्य = चित्त के। नश्वरत्वोपलब्धेः = विनाशशील, परिवर्तनशील होने के कारण। वासनानां = वासनाओं का। च = और। तत् = उन वासनाओं के। फलानां= फलों का। कार्यकारणभावेन = कारण एवं कार्य रूप से। युगपद् = एक साथ। भावित्त्वात् = होने के कारण। भेदे = उनमें भेद होने से। कथं = किस प्रकार। एकत्वं = उनमें एकता है। इति = ऐसी। आशङ्क्य = आशंका करके। एकत्वसमर्थनाय = उनमें एकता ही है, यह समर्थन करने के लिये। आह = कहते हैं।

अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद् धर्माणाम् ॥ १२ ॥

अर्थ—धर्माणां = धर्मों का। अध्वभेदाद् = भूत-वर्तमान-भविष्य रूपकाल का भेद होने पर भी। अतीतानागतं = अतीत अवस्था वाला तथा अनागत अवस्था वाला पदार्थ। स्वरूपतः = स्वरूप से, अपने रूप में। अस्ति = विद्यमान रहता ही है, पदार्थ का कभी भी अभाव नहीं होता। योगदर्शन सत्कार्यवाद का समर्थक है। इसके अनुसार "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" गीता २|१६ तथा "असत्त्वे नास्ति सम्बधः कारणैः सत्त्वसङ्गिभिः" "असदकरणात्" अर्थात् असत् की कभी उत्पत्ति नहीं हो सकती और साथ ही सत् का कभी अभाव नहीं हो सकता। सत्कारक के साथ असत्कार्य का सम्बन्ध नहीं हो सकता। अतः सत् पदार्थ का कभी भी अभाव नहीं होता। धर्मी में भूत-वर्तमान-भविष्य धर्मों का भेद होने पर भी उसकी स्थिति सदैव बनी रहती है। वर्तमान स्वरूप का परित्याग कर अतीत स्वरूप को ग्रहण करना ही उसका अभाव है, धर्मी का अत्यन्ताभाव नहीं है। वर्तमान स्वरूप में अभिव्यक्त होने से पूर्व वह अनागत अवस्था में विद्यमान रहता ही है। अभाव पाँच प्रकार होता है। १—प्राग् अभाव—उत्पत्ति, अभिव्यक्ति से पूर्व कारण में निहित रहना, अनागत अवस्था में रहना ही पदार्थ का प्राग् अभाव है। यथा घट का मृत्तिका पिण्ड में छिपा रहना ही उसका प्राग् अभाव है। २—प्रध्वंसाभाव—वर्तमान वस्तु का पुनः अपने कारण में विलीन हो जाना, अतीत स्वरूप को प्रप्त कर लेना ही वस्त का प्रध्वंसाभाव है। 'सादिरनन्तः प्रध्वंसाभावः' प्रध्वंसाभाव सादि एवं

अनन्त है। जैसे विवेकख्याति से त्रिविध दुःखों का प्रध्वंसाभाव होता है। ३—अन्योन्याभाव दो पदार्थों का परस्पर एक दूसरे में न पाया जाना ही अन्योन्याभाव है। यथा घट का पट में एवं पट का घट में अन्योन्याभाव है। ४—सामयिकाभाव—पदार्थ का एक समय में एक स्थान पर न पाया जाना ही उसका सामयिकाभाव है। यथा घट का एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाने से प्रथम स्थान में उसका सामयिकाभाव है। चैत्र का गृह से बाहर चले जाने पर गृह में उसका सामयिकाभाव है। ५—अत्यन्ताभाव—पदार्थ का सार्वकालिक अभाव ही अत्यन्ताभाव है। यथा वन्ध्यापुत्र, गगनकुसुम, शशविषाण इत्यादि की कभी भी स्थिति न होने से इनका अत्यन्ताभाव है। इसलिये सत् होने के कारण वस्तु का कभी भी अभाव नहीं होता।

वृत्तिः—इह अत्यन्तमसतां भावानामुत्पत्तिर्न युक्तिमती, तेषां सत्त्वसम्बन्धायोगात्; न हि शशविषाणादीनां क्वचिदपि सत्त्वसम्बन्धो दृष्टः, निरुपाख्ये च कार्य्ये किमुद्दिश्य कारणानि प्रवर्त्तन्ते? न ह्यसन्तं विषयमालोच्य कश्चित् प्रवर्त्तते। सतामपि विरोधान्नाभावसम्बन्धोऽस्ति, यत् स्वरूपं लब्धसत्ताकं तत् कथं निरुपाख्यतामभावरूपतां वा भजते न विरुद्धं रूपं स्वी करोतीत्यर्थः।

तस्मात् सतामभावासम्भवात्, असतां च उत्पत्त्यसम्भवात्तैस्तैर्धर्मैर्विपरिणममानो धर्मी सदैकरूप एवावतिष्ठते, धर्मास्तु त्यधिकत्वेन[1] त्रैकालिकत्वेन तत्र व्यवस्थिताः स्वस्मिन्नध्वनि व्यवस्थिताः तु स्वरूपं त्यजन्ति, वर्त्तमानेऽध्वनि व्यवस्थिताः केवलं भोग्यतां भजन्ते तस्माद्धर्माणामेवातीतानागताद्यध्वभेदात्तेनैव[2] रूपेण कार्य्यकारणभावोऽस्मिन् दर्शने प्रतिपद्यते; तस्मादपवर्गपर्य्यन्तमेकमेव चित्तं धर्मिचयाऽनुवर्त्तमानं न निह्नोतुं पार्य्यते ॥ १२ ॥

इस = सत्कार्यवाद के समर्थक योग सिद्धान्त में अथवा इस संसार में। अत्यन्तं = बिलकुल ही, नितान्त। असतां = असत्। भावानां = भावों, कार्यों, पदार्थों की। उत्पत्तिः = उत्पत्ति। युक्तिमती = युक्तियों से युक्त, उचित, तर्कसंगत। न = नहीं है अर्थात् अत्यन्त असत् पदार्थों की कभी भी उत्पत्ति हो

---

१. अधिकत्वेन (पा०)।
२. धर्माणामतीतानागतादिभेदात् (पा०)।

ही नहीं सकती । क्योंकि । तेषां = उन असत् पदार्थों का । सत्त्वसम्बन्धायोगात् = सत् पदार्थ के साथ सम्बन्ध न होने से अर्थात् असत् पदार्थ का कभी भी सत् के साथ सम्बन्ध हो ही नहीं सकता, असत् कार्य का सत् कारण से सम्बन्ध असंभव है । हि = जैसे कि । शशविषाणादीनां = शशक श्रृंग, गगन कुसुम, वन्ध्यापुत्र इत्यादि अत्यन्त असत् पदार्थों का । क्वचिदपि = कहीं पर, कभी भी । सत्त्वसंबन्धः = सत् पदार्थ के साथ सम्बन्ध । न = नहीं । दृष्टः = देखा गया है । च = और । निरुपाख्ये = अत्यन्त असत् । कार्ये = कार्य में । किं = किस । उद्दिश्य = उद्देश्य, लक्ष्य से । कारणानि = कारणों की । प्रवर्त्तन्ते = प्रवृत्ति होगी, किस प्रकार कारण व्यापार संभव है । हि = क्योंकि । असन्तं = अत्यन्ताभाव रूप; असत् । विषयं = विषय, पदार्थ को । आलोच्य = विचार कर । कश्चित् = कोई भी पुरुष । न = नहीं । प्रवर्त्तते = प्रवृत्त होता है अर्थात् पदार्थ के सम्बन्ध में किसी की प्रवृत्ति नहीं होती । सतां = सत् पदार्थ का । अपि = भी । विरोधात् = असत् से विरोध, प्रतिकूलता होने के कारण । अभाव-सम्बन्धः = अभाव, असत् पदार्थ के साथ सम्बन्ध ही । न नहीं । । अस्ति = है । यत् = जो । स्वरूपं = स्वरूप । लब्धसत्ताकं = प्राप्त की गई सत्ता वाला अर्थात् जो सत् पदार्थ है । तत् = वह सत् पदार्थ । कथं = किस प्रकार । निरु-पाख्यतां = निरुपाख्य स्वरूप को, असत् रूप को । वा = अथवा । अभावरूपतां = अभाव रूप को । भजते = प्राप्त कर सकता है । विरुद्धं = विरुद्ध, अपने प्रतिकूल । रूपं = स्वरूप को । न = नहीं । स्वीकरोति = स्वीकार करता है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है । तस्मात् = इसलिये । सतां = सत् पदार्थों का । अभावासम्भवात् = अभाव संभव न होने के कारण । च = तथा । असतां = असत् पदार्थों की । कभी भी । उत्पत्त्यसम्भवात् = उत्पत्ति न होने के कारण अर्थात् कभी भी सत् का अभाव तथा असत् की उत्पत्ति न होने के कारण । तैः तैः = उन-उन । धर्मैः = धर्मों के रूप में । विपरिणममानः = परिणाम, परिवर्तन अतीत-वर्तमान-अनागत स्वरूप को प्राप्त करता हुआ । धर्मी = धर्मी । सदा = सदैव, सभी अवस्थाओं में । एकरूपः = एक रूप का, धर्मी रूप में । एव = ही । अवतिष्ठते = विद्यमान, स्थित रहता है । धर्माः = धर्म । तु = तो । अधिकत्वेन

=अधिक रूप होने से, त्रिविध होने से। त्रैकालिकत्वेन = त्रैकालिक होने से भूतवर्तमान-भविष्य-कालीन होने के कारण। तत्र=उसी एक ही धर्मों में। व्यवस्थिताः= विद्यमान रहते ही हैं। स्वस्मिन्=अपने। अध्वनि=स्वरूप में। व्यवस्थिताः=स्थित रहते हुए। स्वरूपं = धर्म अपने स्वरूप का। न = नहीं। त्यजन्ति = परित्याग करते। केवलं = केवल। वर्तमाने = वर्तमान कालीन। अध्वनि = स्वरूप में। व्यवस्थिताः = विद्यमान रहते हुए धर्म। भोग्यतां = उपभोग रूपता को। भजन्ते = प्राप्त करते हैं, उनका उपभोग किया जाना सम्भव है। तस्मात् = इसलिए। धर्माणां = धर्मों का। अतीतानागतादिभेदात् = अतीत-वर्तमान-अनागत रूप भेद होने के कारण। तेन = उस। एव = ही। रूपेण = रूप, प्रकार से। कार्य्य-कारणभावः = कार्य-कारण भाव। अस्मिन् = इस। दर्शने = योग दर्शन में। प्रतिपाद्यते = प्रतिपादन, निरूपण किया गया है। तस्मात् = इसलिए। अपवर्गपर्य्यन्तं = अपवर्ग प्राप्ति तक। धर्मितया = धर्मी रूप से। अनुवर्त्तमानं = धर्मों का अनुगमन करते हुए। एकं = एक। एव = ही। चित्तं = चित्त का। निह्नोतुं = निराकरण करना। न = नहीं। पार्य्यते = सम्भव है अर्थात् अतीत-वर्तमान-अनागत सभी धर्मों में एक ही धर्मी विद्यमान रहता है। धर्मी का कभी भी अभाव नहीं होता। धर्म के परिवर्तन पर भी वह रहता ही है ॥ १२ ॥

ते एते धर्म-धर्मिणः किंरूपा इत्याह—

ते = वे। एते = ये। धर्मधर्मिणः = धर्म तथा धर्मी। किं = किस। रूपः = स्वरूप के हैं। इति = इसका। आह = उत्तर देते हैं।

ते व्यक्त-सूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ १३ ॥

अर्थः—ते = वे धर्म एवं धर्मी। व्यक्तसूक्ष्माः = व्यक्त, वर्तमान कालीन अभिव्यक्त अवस्था तथा अतीत एवं अनागत कालीन सूक्ष्म, अनभिव्यक्त अवस्था वाले। गुणात्मानः = सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों के रूप के ही हैं अर्थात् कारण रूप में विद्यमान तीनों गुणों के स्वरूप के ही हैं।

वृत्तिः—य एते धर्म-धर्मिणः प्रोक्ताः, ते व्यक्त-सूक्ष्मभेदेन व्यवस्थिताः गुणाः सत्त्वरजस्तमोरूपाः, तदात्मानस्तत्स्वभावाः, तत्परिणामरूपा इत्यर्थः; यतः

सत्त्वरजस्तमोभिः सुख-दुःख-मोहरूपैः सर्वासां बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नानां भावव्यक्तीनाम् अन्वयानुगमा दृश्यन्ते, यद् यदन्वयि तत्तत् परिणामरूपं[1] दृष्टं, यथा घटादयो मृदन्विता मृत्परिणामरूपाः ।। १३ ।।

ये = जो । एते = ये । धर्मधर्मिणः = धर्म तथा धर्मी । प्रोक्ताः = सूत्र ४।१२ में कहे गये हैं । ते = वे । व्यक्तसूक्ष्मभेदेन = व्यक्त तथा सूक्ष्म भेद से, वर्तमान कालीन अभिव्यक्त अवस्था तथा अतीत एवं अनागत कालीन अनभिव्यक्त अवस्था में । व्यवस्थिताः = विद्यमान रहने वाले । गुणाः = गुण अर्थात् । सत्त्व-रजस्तमोरूपाः = सत्त्व-रजस्-तमस् स्वरूप वाले हैं । तद् = उन त्रिविध गुणों की । आत्मानः = आत्मा वाले अर्थात् । तत् = उन गुणों के । स्वभावः = स्वभाव वाले हैं । तत् = कारण रूप में विद्यमान उन त्रिविध गुणों के । परिणाम-रूपाः = परिणाम वाले हैं । इति अर्थः = यह अभिप्राय है । यतः = क्योंकि । सुखदुःखमोहरूपैः = सुख-दुख-मोह स्वरूप वाले । सत्त्वरजस्तमोभिः = सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों के साथ । बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नानां = बाह्य एवं आभ्यन्तर भेद से पृथक् प्रतीत होने वाले । सर्वासां = सभी । भावव्यक्तीनां = भावों, कार्यों का । अन्वयानुगमाः = अन्वय, संबद्ध. अनुगमन किया जाना । दृश्यन्ते = देखा जाता है । यद् यद् = जो जो । अन्वयि = अन्वयी अनुगमन करने वाला कार्य रूप है । तत् तत् = वह, वह । परिणामरूपं = परिणामरूप, परिणाम प्राप्त करने वाला । दृष्टं = देखा, पाया जाता है । यथा = जैसे । घटादयः = घट इत्यादि कार्य । मृदन्विताः = मृत्तिका से अन्वित होने के कारण, मृत्तिका के कार्य होने के कारण । मृत्परिणामरूपाः = मृत्तिका के परिणाम वाले हैं ।। १३ ।।

यद्येते त्रयो गुणा सर्वत्र मूलकारणं, कथमेको धर्मीति व्यपदेश इत्याशङ्क्याह–

यदि = यदि । एते = ये । त्रयः = सत्त्व-रजस्तमस्त्रिविध । गुणाः = गुण ही । सर्वत्र = सभी कार्यों के । मूलकारणं = मूल कारण हैं । कथं = तो कैसे । एकः = एक ही । धर्मी = धर्मी है । इति = इस रूप से । व्यपदेशः = कहा जाता है ।

---

१. परिणामिरूपं (पा०) ।

इति = ऐसा। आशङ्क्य = आशङ्का करके। आह = अनेक धर्मों के होने पर भी धर्मी एक ही होता है, इसका उत्तर देते हैं।

परिणामैकत्वाद् वस्तुतत्त्वम् ॥ १४ ॥

अर्थः—परिणामैकत्वाद् = परस्पर वि द्ध स्वभाव वाले सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों का एक ही परिणाम होने से। वस्तुतत्त्वं = वस्तुभूत तत्त्व धर्मी एक ही है। जैसे परस्पर विपरीत स्वभाव वाले तैल-वर्तिका-अग्नि का दीपक रूप एक ही परिणाम होता है, पृथिवी, जल, सूर्य, चन्द्र, वायु इत्यादि के संयोग से वृक्ष रूप एक परिणाम होता है। इस परिणाम की एकता के कारण वस्तुतत्त्व, धर्मी एक ही होता है।

वृत्तिः—यद्यपि त्रयो गुणाः, तथापि तेषामङ्गाङ्गिभावगमनलक्षणो यः परिणामः क्वचित् सत्त्वमङ्गि क्वचिद्रजः क्वचिच्च तम इत्येवंरूपः, तस्यैकत्वाद्वस्तुनस्तत्त्वमेकमुच्यते ; यथा—इयं वृथिवी, अयं वायुरित्येवमादि ॥ १४ ॥

यद्यपि = यद्यपि। त्रयः = सत्त्व-रजस्-तमस् तीन प्रकार के। गुणाः = गुण हैं। तथापि = फिर भी। तेषां = उन त्रिविध गुणों का। अङ्गाङ्गिभावगमन-लक्षणः = अङ्ग तथा अङ्गी भाव से, गोण तथा प्रधान रूप से कार्य करने वाला। यः = जो। परिणामः = परिणाम होता है अर्थात्। क्वचित् = कहीं पर। सत्त्वं = सत्त्व गुण। अङ्गि = अङ्गी, प्रधान होता है और रजस् तथा तमस् अप्रधान होते हैं। इसी प्रकार। क्वचिद् = कहीं पर। रजः = रजो गुण प्रधान तथा शेष दो गुण अप्रधान होते हैं। च = और। क्वचित् = कहीं पर। तमः = तमो गुण अङ्गी तथा शेष दो गुण उसके अङ्ग रूप होते हैं। इति एवं रूपः = इस प्रकार से सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों का अङ्ग-अङ्गी रूप, गौण-प्रधान रूप परिणाम होता है। तस्य = उस परिणाम की। एकत्वाद् = एकता होने के कारण। वस्तुनः = वस्तु का। तत्त्वं = तत्त्व, स्वरूप। एकं = एक ही। उच्यते = कहा जाता है। यथा = जैसे। इयं = यह। पृथिवी = पृथिवी है। अयं = यह। वायुः = वायु है। इति एवमादि = इसी प्रकार से अन्यों को भी समझना चाहिये ॥ १४ ॥

ननु ज्ञानव्यतिरिक्ते सत्यर्थे वस्त्वेकमनेकं वा वक्तुं युज्यते, यदा च विज्ञानमेव वासनावशात् कार्य्यकारणभावेनावस्थितं तथा तथा प्रतिभाति, तदा कथमेतच्छक्यते वक्तुम् इत्याशङ्क्याह—

ननु = प्रश्न उपस्थित होता है कि । ज्ञानव्यतिरिक्ते = ज्ञान से व्यतिरिक्त, भिन्न । अर्थे = पदार्थ के । सति = विद्यमान रहने पर । वस्तु = वस्तु, पदार्थ को । एकं = एक, ज्ञान और पदार्थ दोनों एक ही हैं । वा = अथवा । अनेकं = अनेक, भिन्न; ज्ञान और पदार्थ दोनों भिन्न-भिन्न हैं, इस रूप में । वक्तुं = कहना, समझना । युज्यते = उचित, तर्कसंगत है । च = और । यदा = जब । विज्ञानमेव = विज्ञान, ज्ञान ही । वासनावशात् = वासनाओं के कारण । कार्य्यकारणभावेन = कार्य एवं कारण रूप से । अवस्थितं=विद्यमान है । तथा तथा = उन-उन पदार्थों के रूप में । प्रतिभाति = प्रतीत होता है । तदा = तब । कथं = किस प्रकार से । एतत् = यह, ज्ञान और पदार्थ को भिन्न-भिन्न रूप में । वक्तुं = कहा । शक्यते = जा सकता है । इति = ऐसी । आशङ्क्य = आशङ्का करके । आह = उत्तर देते हैं । यहाँ पर विज्ञानवादी बौद्ध के मत को प्रस्तुत किया गया है । क्षणिक विज्ञानवादी बौद्ध के अनुसार पदार्थ की सत्ता नहीं है—सर्वं क्षणिकं क्षणिकम् । केवल विज्ञान ही उन-उन पदार्थों के आकार का होकर प्रतीत होता है । इसी कारण स्वप्नावस्था में पदार्थ की सत्ता न रहने पर भी विविध प्रकार के पदार्थों की उपस्थिति होती है । बौद्ध के इस मत का खण्डन करने के लिये तथा विज्ञान से भिन्न पदार्थ की स्थिति है—ऐसा योगदर्शन अग्रिम सूत्र में प्रतिपादित करता है ।

वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विविक्तः पन्थाः ।। १५ ।।

अर्थः—वस्तुसाम्ये = वस्तु की समानता, पदार्थ के एक होने पर भी । चित्तभेदात् = चित्त में भेद होने कारण, चित्त, ज्ञान की अनेकता, विविधता से । तयोः = उन दोनों का, पदार्थ तथा चित्त का । पन्थाः = मार्ग । विविक्तः = पृथक् है अर्थात् एक ही पदार्थ अनेक मनुष्यों के चित्त का विषय बनता है तथा उस एक ही पदार्थ के संबन्ध में सुख-दुःख मोह रूप अनेक चित्तवृत्तियाँ

देखी जाती हैं ! लावण्यमयी एक ही रमणी के होने पर भी अनुरागी पति को सुख, सपत्नी को दुःख, द्वेष तथा परिव्राजक को विरक्ति की प्राप्ति होती है। अतः सिद्ध है कि पदार्थ एवं चित्त, दृश्य वस्तु एवं ज्ञान भिन्न-भिन्न हैं, एक रूप नहीं। क्यों कि एक वस्तु का ज्ञान अनेक प्रकार का होता है। वस्तु विज्ञान रूप नहीं है। क्योंकि विज्ञान का कार्य होने के कारण, जिस व्यक्ति के विज्ञान का वह पदार्थ कार्य है, उससे अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के चित्त का विषय उसे नहीं बनना चाहिये, उसका ज्ञान दूसरों को नहीं होना चाहिये। किंतु एक ही काल में उस पदार्थ का ग्रहण अनेक पुरुषों द्वारा होता है। साथ ही एक मनुष्य विज्ञान का कार्य होने के कारण उस वस्तु की ही प्रतीति सुखदुःखमोह रूप से होती है। एक ही पुरुष के चित्त कार्य पदार्थ को मानने पर उस पुरुष के चित्त के अन्य पदार्थ में आसक्त हो जाने पर उस पदार्थ का अभाव हो जाना चाहिये, क्योंकि जिस चित्त का वह पदार्थ कार्य है, वह अन्यत्र लगा हुआ है, पर ऐसा होने पर भी पदार्थ का भी अभाव नही देखा जाता। इसके विपरीत यदि अनेक मनुष्यों के विज्ञान का कार्य पदार्थ को मान लिया जाय तो पदार्थ को विविध रूप का, अनेक होना चाहिये। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का विज्ञान भिन्न-भिन्न होता है। अतःकारण रूप विज्ञान में भेद होने के कारण कार्य रूप पदार्थ में भी भेद होना चाहिये। पर सभी काल में वह पदार्थ एक ही रूप का अनेक व्यक्यियों द्वारा गृहीत है। वस्तु एक ही रहती है। अतः पदार्थ विज्ञान का कार्य नहीं है। पदार्थ तथा विज्ञान दोनों ही भिन्न-भिन्न हैं। पदार्थ को विज्ञान रूप मानने वाले विज्ञानवादी बौद्ध का मत समीचीन नहीं है।

वृत्तिः—तयोर्ज्ञानार्थ[1] योर्विविक्तः पन्था विविक्तो मार्गः,[2] देश इति यावत्; कथम् वस्तुसाम्ये चित्तभेदात। समाने वस्तुनि स्त्र्यादावुपलभ्यमाने[3] नानाप्रमातॄणां चित्तस्य भेदः सुख-दुःख-मोहरूपतया समुपलभ्यते ; तथा हि एकस्यां रूपलावण्यवत्यां योषिति उपलभ्यमानायां सरागस्य सुखमुत्पद्यते, सपत्न्यास्तद्द्वेषः,

१. ज्ञानज्ञेययोः (पा०)।

२. मार्गो भेद इति यावत् (पा०)।

३. उपलभ्यमाने लावण्यादौ नाना (पा०)।

परिव्राजकादेर्घृणा—इत्येकस्मिन् वस्तुनि नानाविधचित्तोदयात् कथं[1] चित्तकार्यत्वं वस्तुनः एकचित्तकार्य्यत्वे वस्त्वेकरूपतयैवावभासेत ।

किञ्च, चित्तकार्य्यत्वे वस्तुनो यदीयस्य चित्तस्य तद्वस्तु कार्य्यं, तस्मिन्नर्थान्तरव्यासक्ते तद्वस्तु न किञ्चित् स्यात्, भवत्विति चेन्न, तदेव कथमन्यैर्बहुभिरुपलभ्येत ? उपभ्यते च, तस्मान्न चित्तकार्य्यम् ; अथ युगपद् बहुभिः सोऽर्थ क्रियते, तदा बहुनिर्मितस्यार्थस्यैकनिर्मिताद् वैलक्षण्यं स्यात् । यदा तु वैलक्षण्यं नेष्यते, तदा कारणभेदे सति कार्य्यभेदस्याभावे निर्हेतुकमेकरूपं वा जगत् स्यात् ।

एतदुक्तं भवति—सत्यपि भिन्ने कारणे यदि कार्य्यस्याभेदः, तदा समग्रं जगद् नानाविधकारणजन्यमेकरूपं स्यात्, कारणभेदाननुगमात् स्वातन्त्र्येण निर्हेतुकं वा स्यात्; यद्येवं कथं तेन त्रिगुणात्मना चि[2]त्तेनैकस्यैव प्रमातुः सुख-दुःखमोहमयानि ज्ञानानि जन्यन्ते ? मैवम्; यथा अर्थत्रिगुणः, तथा चित्तमपि त्रिगुणं, तस्यार्थप्रतिभासोत्पत्तौ धर्मादयः सहकारिकारणं, तदुद्भवाभिभववशात् कदाचित् चित्तस्य तेन तेन रूपेणाभिव्यक्तिः ।

तथा च—कामुकस्य सन्निहितायां योषिति धर्मसहकृतं चित्तं सत्त्वस्थाङ्गितया परिणममानं सुखमयं भवति; तदेव अधर्मसहकारि रजसोऽङ्गितया दुःखरूपं सपत्नीमात्रस्य भवति; तीव्राधर्मसहकारितया परिणममानं तमसोऽङ्गित्वेन कोपनायाः सपत्न्या मोहमयं भवति; तस्माद्विज्ञानव्यतिरेकेणास्ति ग्राह्यार्थः ।[3]

तदेवं विज्ञानार्थयोस्तादात्म्यविरोधान्न कार्यकारणभावः, कारणाभेदे सत्यपि [4]कार्य्यभेदप्रसङ्गादिति ज्ञानाद्व्यतिरिक्तत्वमर्थस्य व्यवस्थितम्[5] ।। १५ ।।

ज्ञानार्थयोः = ज्ञान और पदार्थ । तयोः = उन दोनों का । विविक्तः =

---

१. कथंचित् न कार्यत्वम् (पा०) ।

२. त्रिगुणात्मनार्थेनैकस्य (पा०) ।

३. ग्राह्योऽर्थः (पा०) ।

४. कार्यस्य भेदेऽतिप्रसंगात् (पा०) ।

५. अत्र 'नचैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात्' इत्येवंरूपेण किमपि सूत्रं पठ्यते । व्याख्यातमिदं सूत्रं भिक्षुभावागणेशादिभिः ।

पृथक् । पन्थाः = पथ हैं । विविक्तः मार्गः देशः = ज्ञान तथा पदार्थ दोनों का मार्ग, देश भिन्न-भिन्न हैं, दोनों ही पृथक्-पृथक् हैं; एक रूप, कारण-कार्य रूप नहीं । इति यावत् = यही अभिप्राय है । कथं = किस प्रकार ज्ञान तथा पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं । वस्तुसाम्ये = वस्तु की समानता, पदार्थ की एकता होने पर भी । चित्तभेदात् = चित्त में भेद, अनेकता होने के कारण, अर्थात् पदार्थ विषय के एक तथा चित्त, ज्ञान, विज्ञान के अनेक होने के कारण दोनों ही भिन्न-भिन्न हैं, कार्यकारण रूप नहीं है, यह सिद्ध होता है । स्त्र्यादौ = स्त्री इत्यादि । लावण्यादौ = लावण्य इत्यादि, सौन्दर्यमय । समाने = समान, एक ही । वस्तुनि = वस्तु, पदार्थ, विषय के । उपलभ्यमाने = प्राप्त होने पर । नानाप्रमातॄणां = अनेक प्रमाता पुरुषों के । चित्तस्य = चित्त का । सुखदुःखमोहरूपतया = सुख, दुःख तथा मोह रूप से । भेदः = भेद । समुपलभ्यते = प्राप्त होता है, देखा जाता है । तथा हि = जैसे कि । एकस्यां = एक ही । रूपलावण्यवत्यां = स्वरूप एवं सौन्दर्य युक्त । योषिति = रमणी के । उपलभ्यमानायां = प्राप्त होने पर, देखने पर । सरागस्य = अनुरागी पति को । सुखं = सुख । उत्पद्यते = उत्पन्न होता है । सपत्न्याः = सपत्नी को । तद् = उस सुन्दरी युवती से । द्वेषः=द्वेष, ईर्ष्या । परिव्राजकादेः = परिव्राजक सन्यासी इत्यादि को । घृणा = घृणा वैराग्य, विरक्ति उत्पन्न होती है । इति = इस रूप से । एकस्मिन् = एक ही । वस्तुनि = स्त्री रूप वस्तु, विषय के सम्बन्ध में । नानाविधचित्तोदयात् = सुख, दुःख, वैराग्य इत्यादि अनेक प्रकार की चित्तवृत्तियों के उत्पन्न होने के कारण । कथं = किस प्रकार । चित्तकार्यत्वं = चित्त का कार्य । वस्तुनः = वस्तु का होना सिद्ध होता है अर्थात् पदार्थ, वस्तु चित्त, विज्ञान का ही कार्य है, यह कैसे सिद्ध होता है । क्योंकि वस्तु एक है और चित्त अनेक । चित्त के विविध होने पर वस्तु भी विविध प्रकार की होनी चाहिये । पर वस्तु एक ही रहती है । एकचित्त कार्य्यत्वे = वस्तु को एक ही चित्त का कार्य स्वीकार कर लेने पर । वस्तु = वह वस्तु पदार्थ । एकरूपतया एव = एक ही रूप से अर्थात् सुख-दुःखमोह विविध रूप में नहीं, अपितु केवल एक ही रूप में । अवभासेत् = प्रतीत होना चाहिये, पदार्थ का अनुभव एकरूप में ही होना चाहिये, सुखरूप में या दुःख रूप में क्योंकि वह पदार्थ एक ही चित्त का कार्य है । किन्तु कभी भी उस पदार्थ की

एक रूप में प्रतीति न होकर अनेक रूपों में होती है। अतः पदार्थ किसी एक चित्त का कार्य नहीं है। किञ्च=और भी। वस्तुनः = वस्तु, पदार्थ को। चित्त-कार्य्यत्वे = किसी एक चित्त का कार्य स्वीकार कर लेने पर। यदीयस्य = जिस मनुष्य के। चित्तस्य = चित्त का। तद् = वह। वस्तु = वस्तु। कार्य्यं = कार्य है। तस्मिन् = उस चित्त के। अर्थान्तरव्यासक्ते = दूसरे पदार्थ में आसक्त, संसक्त, लग जाने पर। तद् = वह। वस्तु = वस्तु। किञ्चित् = कुछ भी। न = नहीं। स्यात् = होनी चाहिये अर्थात् यदि वस्तु किसी एक मनुष्य के चित्त का कार्य है, तो उस चित्त के अन्य पदार्थ में आकृष्ट हो जाने पर प्रथम वस्तु का अभाव हो जाना चाहिये, क्योंकि उस वस्तु का कारण चित्त अब अन्यत्र लगा हुआ है और दूसरी वस्तु उसका कार्य हो गई है। चेत् = यदि कहा जाय कि। भवतु इति = कारण चित्त के अन्यत्र संसक्त हो जाने पर उसी चित्त का अभाव हो जावे। न = किंतु ऐसा नहीं है। तद् एव = वही वस्तु। कथं = किस प्रकार। अन्यैः = अन्य, दूसरे। बहुभिः = वहुत से मनुष्यों के द्वारा। उपलभ्येत ? = प्राप्त, ज्ञात होनी चाहिये। च = और। उपलभ्यते = प्राप्त, ज्ञात होती ही है अर्थात् किसी एक कारण रूप चित्त का कोई वस्तु कार्य होने पर, उस चित्त के अभाव में उस वस्तु का भी अभाव हो जाना चाहिये और दूसरे मनुष्यों के द्वारा उस वस्तु का ग्रहण नहीं होना चाहिये क्योंकि वस्तु किसी एक चित्त का कार्य है। किंतु उस वस्तु का ग्रहण दूसरे मनुष्यों के द्वारा होता ही है। तस्मात्= इसलिये। चित्तकार्य्यं = वह वस्तु किसी एक चित्त का कार्य। न = नहीं है अर्थात् वस्तु एवं चित्त में कार्य-कारण संबन्ध नहीं हैं, दोनों ही स्वतन्त्र हैं। अथ = और यदि। सः = वह। अर्थः = पदार्थ। युगपद् = एक ही साथ। बहुभिः = बहुत, अनेक चित्तों द्वारा। क्रियते = किया जाता है अर्थात् यदि वह एक वस्तु अनेक चित्तों का कार्य है। तदा = तब, ऐसी स्थिति में। बहुनिर्मि-तस्य = अनेक चित्तों के द्वारा बनाई गई। अर्थस्य = वस्तु का। एकनिर्मिताद्= किसी एक चित्त के द्वारा बनाई गई वस्तु से। वैलक्षण्यं अनेक चित्तनिर्मित एवं एकचित्तनिर्मित वस्तुओं में भेद। न = नहीं। इष्यते = प्राप्त होता, देखा जाता अर्थात् वस्तुओं में अन्तर का ग्रहण नहीं होता। तदा = तब, ऐसी स्थिति में।

जगत् = यह जगत्, संसार। निर्हेतुकं = बिना किसी हेतु का, कारण रहित। वा = अथवा। एकरूपं = एक ही रूप का। स्यात् = हो जायेगा अर्थात् इस जगत् का उद्भव बिना किसी कारण के हो जायेगा अथवा यह संसार विविध रूपों का न होकर एक रूप का हो जायेगा। एतद् उक्तं भवति = इसका यह अभिप्राय है कि। कारणे = कारणों के। भिन्ने = भिन्न, अनेक। सति = होने पर। अपि = भी। यदि = यदि। कार्य्यस्य = कार्य का। अभेदः = अभेद है, कार्य की एकता है। तदा = तब। नानाविधकारणजन्यं = अनेक प्रकार के कारणों से उत्पन्न। समग्रं = समस्त। जगद् = संसार। एकरूपं = एक ही रूप का। स्यात् = हो जायेगा। वा = अथवा। कारणभेदाननुगमात् = कारण के भेद का अनुगमन, ग्रहण, प्राप्ति न होने से। स्वातन्त्र्येण = स्वतन्त्र रूप से। निर्हेतुकं = बिना हेतु का, कारण रहित। स्यात् = हो जायेगा। यदि = यदि। एवं = ऐसा ही है तो। कथं = किस प्रकार। तेन = उस। त्रिगुणात्मना = सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों के स्वरूप वाले। चित्तेन = चित्त से। एकस्य एव = एक ही। प्रमातुः = प्रमाता को। सुखदुःखमोहमयानि = सुख-दुःख मोह तीन प्रकार का। ज्ञानानि = ज्ञान। जन्यन्ते ? = उत्पन्न होता है। (पाठभेदः—कथं तेन त्रिगुणामनाऽर्थेनैकस्यैव प्रमातुः सुखदुःखमोहमयानि ज्ञानानि न जन्यन्ते = किस कारण से उस त्रिगुणात्मक पदार्थ के साथ संबन्ध होने से एक ही प्रमाता को सुख-दुःख-मोह रूप से त्रिविध ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती ?)। मा एवं = एसा नहीं है अर्थात्। यथा = जैसे। अर्थः = पदार्थ। त्रिगुणः = त्रिगुणात्मक, सत्त्व-रजस्-तमस् स्वरूप वाला है। तथा = उसी प्रकार। चित्तं = चित्त। अपि = भी। त्रिगुणं = त्रिगुणात्मक, सत्त्व-रजस्-तमस् स्वभाव वाला है। तस्यार्थप्रतिभासोत्पत्तौ = उस पदार्थ के प्रतिभास, ज्ञान की उत्पत्ति में। धर्मादयः = मनुष्य के धर्म-अधर्म इत्यादि ही। सहकारिकारणं = सहयोगी कारण हैं। तद् = सहकारी कारण उस धर्म-अधर्म के। उद्भवाभिभववशात् = उद्भूत एवं अभिभूत होने से, प्रबल एवं निर्बल होने से। कदाचित् = कभी-कभी। चित्तस्य = चित्त की। तेन तेन = उन-उन। रूपेण = रूप में, धर्म-अधर्म-रूप से। अभिव्यक्तिः = अभिव्यक्ति होती है अर्थात् धर्म के उत्कर्ष से चित्त धर्म रूप तथा अधर्म के आधिक्य से चित्त अधर्म रूप

परिणाम को प्राप्त करता है । तथा च = जैसे कि । योषिति = युवती के । सन्निहितायां = समीप में विद्यमान होने पर । धर्मसहकृतं = सहकारी कारण धर्म की प्रबलता से । कामुकस्य = कामी पुरुष का । चित्तं = चित्त । सत्त्वस्य = सुख स्वरूप सत्त्वगुण के । अङ्गितया = अङ्गी, प्रधान, प्रबल होने से । परिणममानं= परिणाम को प्राप्त करता हुआ । सुखमयं = सुख रूप । भवति = होता है, चित्त में सुख की अनुभूति होती है । अधर्मसहकारि = सहकारी कारण अधर्म की अधिकता से । सपत्नीमात्रस्य = सपत्नी का । तदेव = वही चित्त । रजसः = दुःख स्वभाव वाले रजोगुण को । अङ्गितया = प्रधानता से । दुःखरूपं = दुःख रूप । भवति = होता है । तीव्राधर्मसहकारितया = तीव्र अतिशय, अत्यधिक अधर्म के सहकारी कारण होने से । तमसः = मोहस्वरूप, मूढ़ बनाने वाले तमो गुण के । अङ्गितया = अङ्गी, प्रबल होने से । कोपनायाः = क्रोध करने वाली । सपत्न्याः = सपत्नी का । परिणममानं = परिणाम को प्राप्त करता हुआ चित्त । मोहमयं = मोहमय, विवेकशून्य मूढ़ । भवति = होता है । तस्माद् = इसलिये, इस प्रकार यह सिद्ध है कि । विज्ञानव्यतिरेकेण = विज्ञान, ज्ञान, चित्त से व्यतिरिक्त, पृथक् । ग्राह्यार्थः = ग्रहण किया जाने वाला अर्थ, पदार्थ, वस्तु । अस्ति = है अर्थात् विज्ञान से भिन्न वस्तु है । यह वस्तु विज्ञान अथवा चित्त का कार्य नहीं है । विज्ञान तथा पदार्थ में कारण-कार्य संबन्ध नहीं है । दोनों की स्वतन्त्र रूप से स्थिति है । इस प्रकार बौद्ध मत का निराकरण हो जाता है कि विज्ञान का ही कार्य वस्तु है । तदेवं = इस प्रकार से । विज्ञानार्थयोः = विज्ञान तथा पदार्थ में । तादात्म्यविरोधात् = तादात्म्य का विरोध होने से, एकरूपता का अभाव होने से । कार्य्यकारणभावः = दोनों में कारण कार्य भाव । न = नहीं है अर्थात् विज्ञान का पदार्थ कार्य नहीं है । कारणाभेदे = कारण में अभेद, एकता । सति = विद्यमान रहने पर । अपि = भी । कार्य्यस्य = कार्य का । भेद = भेद, अनेक रूप में पाया जाना । अतिप्रसङ्गाद् = अतिप्रसङ्ग दोष होता है । इति = इसलिये । ज्ञानाद् = ज्ञान से । अर्थस्य = पदार्थ का । व्यतिरिक्तत्वं = अतिरिक्त, भिन्न होना । व्यवस्थित, सिद्ध होता है ।। १५ ।।

यद्येवं, ज्ञानञ्चेत् प्रकाशकत्वाद् ग्रहणस्वभावम्, अर्थश्च प्रकाश्यत्वाद् ग्राह्य-

स्वभावः, तदा युगपत् सर्वानर्थान् कथं न गृह्णाति, न स्मरति च—इत्याशङ्कां परिहर्त्तुमाह—

यदि एवं = यदि ऐसा ही है अर्थात् ज्ञान और पदार्थ दोनों ही भिन्न हैं और । चेत् = यदि । प्रकाशकत्वाद् = प्रकाशक होने के कारण । ज्ञानं = ज्ञान । ग्रहणस्वभावं = ग्रहण स्वभाव वाला, पदार्थों को ग्रहण करने वाला, उनकी ज्ञान प्राप्त करने वाला है । च = और । प्रकाश्यत्वाद् = प्रकाश्य होने के कारण । अर्थः = पदार्थ । ग्राह्यस्वभावः = ग्राह्यस्वभाव, ग्रहण किया जाने वाला है । तदा = तब, इसलिये । युगपत् = एक ही साथ । सर्वान् = सभी । अर्थान् = पदार्थों को । कथं = क्यों, किस कारण से । न = नहीं । गृह्णाति = मनुष्य ग्रहण करता है, सभी विषयों का ज्ञान क्यों नहीं प्राप्त करता । च = और सभी पदार्थों का । न = नहीं । स्मरति = एक साथ स्मरण करता । इति = इसी । आशङ्कां = आशङ्का, सन्देह का । परिहर्तुं=परिहार, निराकरण करने के लिये । आह = कहते हैं ।

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ।। १६ ।।

अर्थः— चित्तस्य = चित्त का । तद् = उस ज्ञातव्य बाह्य पदार्थ के । उपरागापेक्षित्वात्=उपराग, प्रतिबिम्ब की अपेक्षा होने के कारण । वस्तु = कोई पदार्थ । ज्ञाताज्ञातं = ज्ञात अथवा अज्ञात रहता है । वस्तु का ज्ञान तभी प्राप्त होता है, जब इन्द्रिय प्रणालिका द्वारा चित्त उस वस्तु के प्रतिबिम्ब, उपराग को प्राप्त करता है । इस उपराग के अभाव में वस्तु सदैव अज्ञात ही रहती है । यद्यपि चित्त प्रकाशक है, वस्तु को प्रकाशित करने की सामर्थ्य उसमें विद्यमान है । परन्तु जब तक वस्तु के उपराग से वह उपरञ्जित नहीं हो जाता, तब तक उसके प्रकाशन में असमर्थ ही रहता है । प्रारम्भ की दशा में चित्त तमो गुण से आछन्न रहता है । वस्तु के साथ इन्द्रिय का सन्निकर्ष होते ही चित्तगत तमोगुण का अभाव और साथ ही सत्त्वगुण की प्रबलता होती है । इस प्रकार प्रकाशक सत्त्वगुण के उद्रेक से चित्त वस्तु के उपराग को ग्रहण कर, उसे प्रकाशित करता है । इसी कारण जिस वस्तु का उपराग वह नहीं ग्रहण कर पाता, वह वस्तु अज्ञात ही रहती है ।

वृत्तिः—तस्यार्थस्य, उपरागादाकारसमर्पणाच् चित्तं बाह्यं वस्तु ज्ञातमज्ञातञ्च भवति । अयमर्थः—सर्वः पदार्थः आत्मलाभे सामग्रीमपेक्षते; नीलादिज्ञानञ्चोपजायमानमिन्द्रियप्रणालिकया[1] समागतमर्थोपरागं सहकारिकारणत्वेनापेक्षते; व्यतिरिक्तस्यार्थस्य सम्बन्धाभावात् ग्रहीतुमशक्यत्वात् ।

ततश्च येनैवार्थेनास्य स्वरूपोपरागः कृतः, तमेवार्थं तज्ज्ञानं व्यवहारयोग्यतां नयति[2]; ततः सोऽर्थः ज्ञात उच्यते; येन चाकारो न समर्पितः, स न ज्ञातत्वेव व्यवह्रियते । यस्मिश्चानुभूतेऽर्थे सादृशादिरर्थः[3] संस्कारमुद्बोधयन् सहकारितां प्रतिपद्यते, तस्मिन्नेवार्थे स्मृतिरुपजायत इति न सर्वत्र ज्ञानं नापि स्मृतिरिति न कश्चिद्विरोधः ॥ १६ ॥

तस्य = उस । अर्थस्य = बाह्य पदार्थ का । चित्ते = चित्त में । उपरागाद्= उपराग से अर्थात् । आकारसमर्पणात् = आकारसमर्पण से । बाह्यं = बाहरी । वस्तु = पदार्थ । ज्ञातं = ज्ञात । च = और । अज्ञातं = अज्ञात । भवति = होती है । अर्थात् चित्त में उपराग पड़ने से ही वह वस्तु ज्ञात होती है । अयम् अर्थः= यह अभिप्राय है । सर्वः = सभी । पदार्थः = पदार्थ । आत्मलाभे = अत्मलाभ के लिये अर्थात् सभी वस्तुओं के स्वरूप ज्ञान के लिए । चित्तं=चित्त । सामग्रीं=सामग्री की, उपराग की । अपेक्षते = अपेक्षा रखता हैं । च=और । उपजायमानं=उत्पन्न हुआ । नीलादिज्ञानं = नील इत्यादि का ज्ञान । सहकारिकारणत्वेन = सहकारी कारण के रूप में विद्यमान । इन्द्रिय-प्रणालिकया = इन्द्रिय प्रणालिका के माध्यम से । समागतं = प्राप्त हुये । अर्थोपरागं = पदार्थ के उपराग, प्रतिबिम्ब की । अपेक्षते = अपेक्षा करता हैं, व्यतिरिक्तस्य = इससे भिन्न, अतिरिक्त । अर्थस्य = पदार्थ का अर्थात् इन्द्रिय प्रणालिका के द्वारा जिस पदार्थ का उपराग चित्त को प्राप्त नहीं है । सम्बन्धाभावात् = चित्त के साथ संबन्ध का अभाव होने से ।

---

१. ऐन्द्रियकतया (पा०) ।

२. जनयति (पा०) ।

३. सादृश्यादिरर्थः (पा०) ।

ग्रहीतुं = चित्त के द्वारा उस वस्तु का ग्रहण करना, ज्ञान प्राप्त करना। अशक्यत्वात् = असंभव होने के कारण अर्थात् ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं हैं। च = और। ततः = इसलिये। येन एव = जिस किसी। अर्थेन = पदार्थ के द्वारा। अस्य = इस के। स्वरूपोपरागः = स्वरूप का उपराग। कृतः = किया गया है अर्थात् जिस पदार्थ ने चित्त में अपने आकार का समर्पण किया है। तमेव = उस ही। अर्थ = पदार्थ को। तत् ज्ञानं = उस पदार्थ के ज्ञान को। व्यवहारयोग्यतां = व्यवहार के योग्य। जनयति = चित्त उत्पन्न करता है, उस ज्ञान को व्यवहार के योग्य बनाता है। ततः = तब। सः = वह। अर्थः = पदार्थ। ज्ञातः = ज्ञात हुआ है। उच्यते = इस रूप से कहा जाता है। च = और। येन = जिस पदार्थ के द्वारा। आकारः = चित्त में अपने आकार उपराग का। न = नहीं। समर्पितः = समर्पण किया गया है। सः = वह पदार्थ। ज्ञातत्वेन = ज्ञात रूप से। न = नहीं। व्यवह्रियते = व्यवहृत होता। च = और इसी प्रकार। यस्मिन् = जिस किसी। अनुभूते = पूर्व में अनुभव किये गये। अर्थे = पदार्थ के संबन्ध में। सादृश्यादिः = सादृश्य, समानता इत्यादि के कारण। अर्थः = दूसरे पदार्थ। संस्कारं = संस्कार को। उद्बोधयन् = उद्बुद्ध करता हुआ। सहकारितां—सहकारी कारण के रूप को। प्रतिपद्यते = प्राप्त करता है। तब। तस्मिन् = उस। एव = ही। अर्थे = अदार्थ के संबन्ध में। स्मृतिः = स्मृति। उपजायते = उपन्न होती है। इति = इस प्रकार। सर्वत्र = सभी पदार्थों के विषय में। न = न तो। ज्ञानं = ज्ञान उत्पन्न होता है। न अपि = और न तो। स्मृतिः = स्मृति ही उत्पन्न होती है। इति = इस प्रकार। कश्चित् = कोई। विरोधः = विरोध। न = नहीं है अर्थात् इन्द्रिय प्रणालिका के माध्यम से जिस पदार्थ का उपराग चित्त को प्राप्त होता है, वह वस्तु ज्ञात होती हैं, और उपराग के अभाव में शेष वस्तु अज्ञात रहती है। इसी प्रकार सादृश्य के कारण पूर्व अनुभूत पदार्थों के विषय में स्मृति भी उत्पन्न होती है। अतः सभी वस्तुओं का ज्ञान और सभी के विषय में स्मृति उत्पन्न नहीं होता ॥ १६ ॥

यदि = यदि। एवं = इस प्रकार। प्रमाता = प्रमाता, ज्ञान प्राप्त करने

यद्येवं प्रमातापि पुरुषो यस्मिन् काले नीलं वेदयते, न तस्मिन् काले [1]पीतादिमतश्चित्तसत्त्वस्यापि कदाचित् ग्रहीतृरूपत्वादाकारग्रहणे परिणामित्वं प्राप्तमित्याशङ्कां परिहर्तुमाह—

वाला। पुरुषः = पुरुष। अपि = भी। यस्मिन् = जिस। काले = समय में। नीलं = नील वर्ण को। वेदयते = जानता है। तस्मिन् = उस। काले = समय। में। पीतादि = पीत इत्यादि वर्णों को। न = नहीं जानता। अतः = इस लिये। चित्तसत्त्वस्य = सत्त्वगुण विशिष्ट चित्त का। अपि = भी। कदाचित् = कभी-कभी ही। ग्रहीतृरूपत्वाद् = ग्रहीता स्वरूप होने के कारण। आकारग्रहणे = वस्तु का आकार ग्रहण करने में। परिणामित्वं = पुरुष परिणाम को। प्राप्तं = प्राप्त करता है अर्थात् चित्त में विद्यमान पदार्थ के आकार को ग्रहण करने पर ही पुरुष को उस पदार्थ का ज्ञान होता है। अतः जैसे चित्त पदार्थ के आकार का परिणाम प्राप्त करता है, वैसे ही पुरुष भी परिणाम को प्राप्त करता है। इति = इसी। आशङ्कां = सन्देह का। परिहर्तुं = परिहार, निराकरण करने के लिये। आह = उत्तर देते हैं अर्थात् पुरुष परिणामी नहीं है, चित्त के समान।

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयः तत्प्रभोः पुरुषस्या-परिणामित्वात् ॥ १७ ॥

अर्थः—तत् = उस परिणामी चित्त के। प्रभोः = प्रभु, स्वामी। पुरुषस्य = पुरुष का। अपरिणामित्वात् = अपरिणामी होने के कारण, से। चित्तवृत्तयः = चित्त की प्रमाण इत्यादि पञ्च वृत्तियाँ। तदा = सदा ही। ज्ञाताः = ज्ञात रहती हैं। इन्द्रिय प्रणालिका से विषयों को ग्रहण करने वाला चित्त परिणामी है, पर चेतन पुरुष परिणाम रहित है। वह सदैव निर्विकार, एक ही स्वरूप में स्थित रहता है। अतः चित्त की समस्त वृत्तियों का ज्ञान उसे होता रहता है।

वृत्तिः—या एताश्चित्तस्य प्रमाण-विपर्य्ययादिरूपा वृत्तयः, यास्तत्प्रभोश्चित्तस्य ग्रहीतुः पुरुषस्य सदा सर्वकालमेव ज्ञाताः तस्य चिद्रूपतयाऽपरिणामि[2]त्वात्

---

१. पीतमतस्तस्यापि (पा०)।

२. अपरिणामात् (पा०)।

परिणामित्वाभावादित्यर्थः। यद्यसौ परिणामी स्यात् तदा परिणामस्य कादाचित्कत्वात् तासां चित्तवृत्तीनां सदा ज्ञातत्वं नोपपद्येत।

अयमर्थः--पुरुषस्य चिद्रूपस्य सदेवाधिष्ठातृत्वेन व्यवस्थितस्य यदन्तरङ्गं निर्मलं सत्त्वं, तस्यापि सदैवावस्थितत्वाद् येनार्थेनोपरक्तं भवति तथाविधस्यार्थस्य, सदैव चिच्छायासङ्क्रान्तिसद्भावः, तस्यां सत्यां सिद्धं ज्ञातृत्वमिति न कदाचित् काचित् परिणामित्वाशङ्का[1] ॥ १७ ॥

चित्तस्य = चित्त की। यः = जो। एताः = ये। प्रमाणविपर्ययादिरूपाः = प्रमाण, विपर्यय इत्यादि रूपों वाली अर्थात् प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति नाम वाली पञ्च। वृत्तयः = वृत्तियाँ हैं। ताः = वे पञ्च वृत्तियाँ। तत् = उसके। प्रभोः = प्रभु, स्वामी अर्थात्। चित्तस्य = चित्त का। ग्रहीतुः = ग्रहण करने वाले। पुरुषस्य = पुरुष के लिये। सदा = सदा अर्थात्। सर्वकालं = सभी समयों में। एव = ही। ज्ञाताः = ज्ञात रहती हैं। तस्य = उस पुरुष का। चिद्रूपतया = चेतन स्वरूप होने के कारण। अपरिणामित्वात् = अपरिणामी होने से अर्थात्। परिणामित्वाभावाद् = परिणाम, विकार का अभाव होने के कारण, सदैव एक ही स्वरूप में विद्यमान रहने के कारण। इति अर्थः = चित्त की समस्त वृत्तियाँ ज्ञात रहती हैं, यह अभिप्राय है। यदि = यदि। असौ = वह पुरुष। परिणामी = परिणामी, परिणाम, विकार को प्राप्त होने वाला। स्यात् = होवे। तदा = तब। परिणामस्य = परिणाम का। कादाचित्कत्वात् = कादाचित्क, कदाचित्, कभी-कभी होने के कारण। तासां = उन प्रमाण इत्यादि पञ्च। चित्तवृत्तीनां = चित्त की वृत्तियों का। सदा = सर्वदा। ज्ञातत्वं = पुरुष को ज्ञात होना। न = नहीं। उपपद्येत = सिद्ध होता। अयम् अर्थः = यह अभिप्राय है। चिद्रूपस्य = चिन्मात्र, चेतन स्वरूप वाले। पुरुषस्य = पुरुष के। अधिष्ठातृत्वेन = अधिष्ठाता, नियन्ता रूप से। सदैव = सदा ही। अवस्थितस्य = व्यवस्थित, विद्यमान रहने पर। यद् = जो। अन्तरङ्गं = अन्तरंग, प्रमुख साधन। निर्मलं सत्त्वं = निर्मल, स्वच्छ, विमल सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त है। तस्य = उस चित्त के। अपि = भी। सदैव =

---

१. परिणामाशङ्का (पा०)।

सदा ही । अवस्थितत्वाद् = विद्यमान रहने के कारण । येन = जिस । अर्थेन = पदार्थ से । उपरक्तं = उपरञ्जित, उपरागयुक्त । भवति = होता है । तथाविधस्य= उसी प्रकार के । अर्थस्य = पदार्थ का । सदैव = सदा ही । चिच्छायासङ्क्रान्ति-सद्भावः = चेतन पुरुष की छाया, प्रतिबिम्ब का संक्रमण होता है, पुरुष का प्रतिबिम्ब उस पर पड़ता है । तस्यां = पुरुष की उस छाया के । सत्यां = होने पर, पड़ने पर । ज्ञातृत्वं = पुरुष का चित्त की समस्त वृत्तियों का ज्ञाता होना । सिद्धं = सिद्ध होता है । इति = इस प्रकार । कदाचित् = कभी भी । काचित् = अपरिणामी पुरुष में किसी । परिणामित्वं = परिणाम विकार की । आशङ्का = आशङ्का, सन्देह । न = नहीं करना चाहिए अर्थात् विषय के आकार को ग्रहण करने के कारण चित्त परिणामी है, पर पुरुष अपरिणामी है । वह सदैव एक ही स्वरूप में प्रतिष्ठित रहता है ॥ १७ ॥

ननु चित्तमेव यदि सत्त्वोत्कर्षात् प्रकाशकं, तदा स्व-परप्रकाशरूपत्वादात्मान-मर्थञ्च प्रकाशयतीति तावतैव व्यवहारसमाप्तिः, किं ग्रहीत्रन्तरेण—इत्याशङ्का-मपनेतुमाह—

ननु = आशंका होती है कि । यदि = यदि । सत्त्वोत्कर्षात् = सत्त्व गुण की प्रबलता के कारण । चित्तं = चित्त । एव = ही । प्रकाशकं = प्रकाशक, समस्त विषयों को ग्रहण करने वाला है । तदा = तब, ऐसी स्थिति में । स्वपरप्रकाश-रूपत्वाद् = स्वयं अपने को, साथ ही अन्य विषयों को प्रकाशित करने का स्वरूप होने से अर्थात् अपने स्वरूप का ज्ञान तथा अन्य पदार्थों के स्वरूप का ज्ञान प्रदान करने की शक्ति होने से । आत्मानं = अपने स्वरूप को । च = और । अर्थं = दूसरे पदार्थों के स्वरूप को । प्रकाशयति = प्रकाशित करता है, इति = इस रूप से । तावता एव = उतने से ही । व्यवहारसमाप्तिः = व्यवहार की समाप्ति, सिद्ध हो जाती है । इसलिये । ग्रहीत्रन्तरेण = अन्य ग्रहीता, विषय का ज्ञान प्राप्त करने वाले चेतन, द्रष्टा पुरुष की सत्ता मानने का । किं = क्या प्रयोजन है ? इति = ऐसी । आशंका = आशंका का । अपनेतुं = निराकरण करने के लिये । आह = उत्तर देते हैं अर्थात् जैसे दीपक स्वयं अपना तथा घट इत्यादि विषयों को प्रकाशित करने वाला है; इसी प्रकार प्रकाशक सत्त्वगुण

विशिष्ट चित्त भी स्वयं अपने को प्रकाशित करने वाला तथा घट-पट इत्यादि विषयों को प्रकाशित करने वाला हैं। अतः विषय ज्ञान के लिये पुरुष की आवश्यकता नहीं है। इसी का उत्तर देते हैं।

न तत् स्वाभासं, दृश्यत्वात् ॥ १८ ॥

अर्थः—दृश्यत्वाद् = दृश्य होने के कारण। तत् = वह चित्त। स्वाभासं = स्वयं प्रकाशक, अपने को प्रकाशित करने वाला। न = नहीं है अर्थात् चक्षु इत्यादि इन्द्रियों, शब्द इत्यादि विषयों, घट, पट इत्यादि पदार्थों के समान चित्त भी दृश्य है, वह अचेतन है। अतः स्वयं अपने को प्रकाशित करने में वह असमर्थ है। चेतन पुरुष का प्रतिबिम्ब प्राप्त कर ही वह चित्त चेतन सा हो जाता है ओर विषयों को ग्रहण करने में समर्थ होता है।

वृत्तिः—तच्चित्तं स्वाभासं स्वप्रकाशकं न भवति, पुरुषवेद्यं भवतीति यावत्; कुतः ? दृश्यत्वात्, यत् किल दृश्यं तत् द्रष्टृवेद्यं दृष्टं, यथा घटादि। दृश्यञ्च[1] चित्तं तस्मान्न स्वाभासम् ॥ १८ ॥

तत् = वह। चित्तं = चित्त। स्वाभासं = स्व आभास अर्थात्। स्वप्रकाशकं = अपने को प्रकाशित करने वाला, दीपक की तरह अपना ज्ञान प्रदान करने वाला। न = नहीं। भवति = होता है। इति यावत् = अपितु। पुरुषवेद्यं = पुरुष के द्वारा जानने योग्य। भवति = होता है अर्थात् पुरुष की छाया पड़ने से ही चित्त का ज्ञान होता है। कुतः ? = किस कारण से चित्त स्वप्रकाशक नहीं है। दृश्यत्वात् = दृश्य होने के कारण। किल = निश्चय ही। यत् = जो विषय, पदार्थ। दृश्यं = दृश्य होता है। तत् = वह पदार्थ। द्रष्टृवेद्यं = द्रष्टा चेतन पुरुष द्वारा जानने योग्य होता है। दृष्टं = देखा जाता है, ग्रहण किया जाता है। यथा = जैसे। घटादि = घट इत्यादि पदार्थ दृश्य हैं अतः स्वयं प्रकाशस्वरूप नहीं हैं। च = और। चित्तं = चित्त भी। दृश्यं = घट के समान दृश्य है। तस्मात् = इसलिये। स्वाभासं = चित्त स्वयं अपने को प्रकाशित करने वाला। न = नहीं है ॥ १८ ॥

---

१. वेद्यं च (पा०)।

ननु साध्याविशिष्टोऽयं हेतुः, दृश्यत्वमेव चित्तस्यासिद्धम्। किञ्च स्वबुद्धिसंवेदनद्वारेण हिताहितप्राप्ति-परिहाररूपा वृत्तयो दृश्यन्ते; तथा हि, क्रुद्धोऽहम्, भीतोऽहम्, अत्र मे राग इत्येवमाद्या संवित् बुद्धेरसंवेदने नोपपद्येत—इत्याशङ्कामपनेतुमाह—

ननु = प्रश्न होता है कि। अयं = यह। हेतुः = हेतु। साध्याविशिष्टः = साध्य से अविशिष्ट है अर्थात् साध्य के समान ही है। चित्त साध्य तथा दृश्यत्व स्वयं सिद्ध न होने से साध्य चित्त का हेतु बनाने में असमर्थ है। अतः दोनों समान ही हैं। चित्तस्य = चित्त का। दृश्यत्वं = दृश्यत्व होना। एव = ही। असिद्धं = असिद्ध है। किञ्च = और भी। स्वबुद्धिसंवेदनद्वारेण = अपनी बुद्धि, चित्त के ज्ञान द्वारा। हिताहितप्राप्तिपरिहाररूपाः = हित, मङ्गल की प्राप्ति तथा अहित, अमङ्गल का परिहार, निराकरण कराने वाली। वृत्तयः = चित्त की वृत्तियाँ। दृश्यन्ते = देखी जाती हैं। तथाहि = जैसे कि। अहं = मैं। क्रुद्धः = क्रुद्ध हूँ। अहं = मैं। भीतः = भयभीत हूँ। अत्र = इस पदार्थ में। मे = मेरा। रागः = राग, आसक्ति है। इति एवं = इस प्रकार। आद्या = आद्य, प्रारम्भ का। संवित् = ज्ञान। बुद्धेः = बुद्धि, चित्तके। असंवेदने = अस्वीकार कर देने पर। न = नहीं। उपपद्येत = सिद्ध होगा। इति = इस प्रकार की। आशङ्कां = आशङ्का का। अपनेतुं = निराकरण करने के लिये। आह = कहते हैं।

एकसमये चोभयानवधारणम् ॥ १९ ॥

अर्थः—च = और। एकसमये = एक ही समय में, युगपत्। उभयानवधारणात् = दोनों की अवधारणा न होने से अर्थात् चित्त और उसके विषय का ग्रहण एक साथ न होने के कारण चित्त स्वयं प्रकाशक नहीं है। अचेतन दृश्य होने के कारण चित्त स्वयं अपने स्वरूप को तथा साथ ही विषय के स्वरूप को प्रकाशित करने में असमर्थ रहता है अतः वह स्वप्रकाशक नहीं है। अपरिणामी चेतन पुरुष के संयोग से चित्त चेतन सा होकर विषयाकारारित हो जाता है और चित्त में प्रतिबिम्बित पुरुष उसके धर्मों को अपने में उपचरित कर लेता है। इस प्रकार अपरिणामी, नित्य, चेतन पुरुष ही स्वयं प्रकाशक है तथा विषयों का ग्रहीता है।

वृत्तिः—अर्थस्य संवित्तिः इदन्तया व्यवहारयोग्यतापादनम् । अयमर्थः—सुखहेतुर्दुःखहेतुर्वेति बुद्धेः संविद् अहमित्येवमाकारेण सुख-दुःखरूपतया व्यवहार-क्षमतापादनम्; एवंविधञ्च व्यापारद्वयमर्थप्रत्यक्षकाले[1] न युगपत् कर्त्तुं शक्यं, विरोधात्; न हि विरुद्धयोर्व्यापारयोर्युगपत् सम्भवोऽस्ति ।

अत एकस्मिन् काले उभयस्य स्वरूपस्य अर्थस्य चावधारयितुमशक्यत्वाद् न चित्तं स्वप्रकाशकं भवति । किन्तु एवंविधव्यापार[2]द्वयनिष्पाद्यस्य फलद्वयस्यासंवेद-नाद् बहिर्मुखतयैव स्वनिष्ठत्वेन चित्तस्य स्वयं वेदनादर्थनिष्ठमेव फलं, न स्वनिष्ठ-मित्यर्थः ।। १९ ।।

अर्थस्य = पदार्थ का । संवित्तिः = ज्ञान । इदन्तया = इस प्रकार का है । इदं = इस । व्यवहारयोग्यता = व्यवहार की योग्यता । आपादानं = प्राप्त करना है । सुखहेतुः = सुख का कारण । वा = अथवा । दुःखहेतुः = दुःख का कारण । इति = इस रूप से । अयं = यह । अर्थः = अर्थ पदार्थ है अर्थात् पदार्थ, विषय ही सुख एवं दुःख का कारण है । अहम् इति = मैं हूँ 'अहं' प्रतीति रूप । एवं= इस । आकारेण = आकार से । बुद्धेः = बुद्धि, चित्त का । संविद् = ज्ञान है । अर्थात् । सुखदुःखरूपतया = सुख तथा दुःख रूप से । व्यवहारक्षमता = व्यवहार की योग्यता को । आपादनं = प्राप्त करना है । अर्थात् 'अहम् सुखी, अहम् दुःखी' इस रूप से 'अहम्' वृत्ति की प्रतीति ही चित्त का ज्ञान है । च = और । विरोधात्=परस्पर विरोध होने के कारण । एवंविधं = इस प्रकार का । व्यापारद्वयं = द्विविध व्यापार अर्थात् सुखदुःख का हेतु तथा चित्त की 'अहम्' वृत्ति का । अर्थप्रत्यक्षकाले = पदार्थ के प्रत्यक्ष होने के समय, उपस्थित होने पर, सन्निकर्ष होने पर । युगपत् = एक साथ । कर्त्तुं = ग्रहण करना । न = नहीं । शक्यं = संभव है । हि = क्योंकि । विरुद्धयोः = परस्पर दो प्रतिकूल, विलोम । व्यापारयोः = व्यापारों का । युगपत् = एक ही समय में एक साथ । न = नहीं । संभवः = ग्रहण करना संभव । अस्ति = है । अतः = इसलिये । एकस्मिन् = एक

---

१. अर्थप्रत्यक्षताकाले (पा०) ।

२. द्वयं निष्पाद्य फल (पा०) ।

ही । काले = समय में । उभयस्य = दोनों के । स्वरूपस्य = स्वरूप का । च = और । अर्थस्य = पदार्थ का । अवधारयितुं = निश्चय करना, ग्रहण करना । अशक्यत्वाद् = असम्भव होने से । चित्तं=चित्त । स्वप्रकाशकं = स्वयं अपने को प्रकाशित करने वाला । न = नहीं । भवति = होता है । किन्तु = परन्तु । एवं विधव्यापारद्वयं = इस प्रकार के दो व्यापारों को । निष्पाद्य = सम्पन्न करके । फलद्वयस्य = दो प्रकार के फलों का । असंवेदनाद् = ज्ञान न होने से । बहिर्मुखतया = बहिर्मुखी रूप से । एव = ही । स्वनिष्ठत्वेन = अपने में ही निष्ठ, पदार्थ में ही विद्यमान रहने वाले । चित्तस्य = चित्त का । स्वयं = स्वयं ही । वेदनाद् = ज्ञान होने से । अर्थनिष्ठं =पदार्थ में ही रहने वाला । एव = ही । फलं = फल है । स्वनिष्ठं अपने में, रहने वाला । न = नहीं है । इति अर्थः = यही अभिप्राय है ॥ १९ ॥

ननु मा भूद् बुद्धेः स्वयं ग्रहणं, बुद्ध्यन्तरेण भविष्यतीत्याशङ्क्याह---

ननु = प्रश्न होता है कि । बुद्धेः = बुद्धि, चित्त का । स्वयं = अपने आप विना चेतन पुरुष की छाया के । ग्रहणं = पदार्थों का ग्रहण । मा = मत । भूद् = होवे । किंतु । बुद्धयन्तरेण = दूसरे चित्त के द्वारा । भविष्यति = विषयों का ग्रहण अवश्य ही होगा । इति = ऐसी । आशङ्क्य = आशङ्का करके । आह = कहते हैं । बौद्ध मत के अनुसार यदि क्षणिक चित्त स्वयं अपना प्रकाशक नहीं है तो उससे अव्यवहित द्वितीय क्षण में उत्पन्न हुये चित्त से उसका प्रकाशन हो जायेगा । अतः चित्त ही प्रकाशक है । उससे भिन्न पुरुष नामक तत्त्व को प्रकाशक रूप में मानने की आवश्यकता नहीं है ।

चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ॥ २० ॥

अर्थः—चित्तान्तरदृश्ये = एक चित्त को उससे अव्यवहित उत्पन्न दूसरे चित्त का दृश्य स्वीकार लेने पर । बुद्धिबुद्धेः = पुनः उस चित्त को दूसरे चित्त का दृश्य हो जाने से । अतिप्रसङ्गः =अतिप्रसङ्ग, अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी । च = और । स्मृतिसङ्करः = स्मृतियों का परस्पर संकर, संमिश्रण होगा अर्थात् यदि क्षणिक होने से चित्त स्वयं अपना प्रकाशक नहीं है और उसका ग्रहण उसके उत्तर काल में उत्पन्न हुये चित्त के द्वारा होता है । इस प्रकार

अनवस्था दोष आ जायेगा। द्वितीय तृतीय, चतुर्थ इत्यादि क्षणों में उत्पन्न होने वाले सभी चित्त ग्राह्य होते जायेंगे और उत्तर कालीन सभी चित्त ग्रहीता। और इस प्रकार कोई व्यवस्था होगी ही नहीं। स्मृतियों का भी परस्पर संकर होगा, क्यों कि किस ज्ञान की कौन सी स्मृति है, यह निश्चित नहीं हो सकेगा।

वृत्तिः—यदि हि बुद्धिर्बुद्धयन्तरेण वेद्यते, सापि बुद्धिः [1]स्वयमबुद्धा बुद्ध्यन्तरं प्रकाशयितुमसमर्थेति तस्या ग्राहकं[2] बुद्ध्यन्तरं कल्पनीयम्, तस्या अप्यन्यदित्यनवस्थानात् पुरुषान्तरेणार्थप्रतीतिर्न स्यात्; न हि प्रतीतौ अप्रतीतायामर्थः प्रतीतो भवति।

स्मृतिसङ्करश्च प्राप्नोति, रूपे रसे व समुत्पन्नायां बुद्धौ तद्ग्राहिकाणामनन्तानां बुद्धीनां समुत्पत्तेर्बुद्धिजनितैः संस्कारैर्यदा युगपद् बह्वयः स्मृतयः क्रियन्ते, तदा बुद्धेरपर्य्यवसानाद् बुद्धि-स्मृतीनाञ्च बह्वीनां युगपदुत्पत्तेः 'कस्मिन्नर्थे स्मृतिरियमुत्पन्नेति' ज्ञातुमशक्यत्वात् स्मृतीनां सङ्करः स्यात्—इयं रूपे स्मृतिरियं रसे स्मृतिरिति न ज्ञायेत॥ २०॥

हि = क्योंकि। यदि = यदि। बुद्धिः = प्रथम चित्त। बुद्धचन्तरेण = अपने से अव्यवहित द्वितीय क्षण में उत्पन्न चित्त के द्वारा। वेद्यते = जाना जाता है, ग्रहण किया जाता। और। सा = वह। बुद्धिः = बुद्धि। अपि = भी। स्वयं = अपने से, बिना चेतन पुरुष की छाया से। एव = ही। स्वीयभावरूपं = अपने ही स्वरूप को। अज्ञात्वा = न जानकर। अबुद्धा = अज्ञात हुई। बुद्धचन्तरं = दूसरी बुद्धि को प्रकाशयितुं = प्रकाशित करने में। असमर्था = असमर्थ है। इति = इस प्रकार। तस्याः = उस बुद्धि, चित्त का। ग्राहकं = ग्राहक ग्रहण करने वाले। बुद्ध्यन्तरं = दूसरे चित्त की। कल्पनीयं = कल्पना करनी पड़ेगी। तस्याः = उस बुद्धि का। अपि = भी। अन्यद् = अन्य चित्त का प्रकाशक है। इति = इस रूप से। अनवस्थानात् = अनवस्था दोष होने के कारण। पुरुषान्तरेण = प्रकाशक रूप चेतन पुरुष के बिना। अर्थप्रतीतिः = पदार्थ का ज्ञान। न = नहीं। स्यात् = होगा। हि=क्योंकि। प्रतीतौ = प्रतीति के। अप्रतीतायां =

---

१. स्वयमेव स्वीयभावरूपम् अज्ञात्वा अबुद्धा (पा०)।

२. बोधकं (पा०)।

अज्ञात रहने पर। कभी भी। अर्थः = पदार्थ, विषय। प्रतीतः = ज्ञात। न = नहीं। भवति = होता है। च = और। स्मृतिसङ्करः = स्मृतियों का परस्पर संमिश्रण भी। प्राप्नोति = प्राप्त होता है। रूपे = रूप के विषय में। वा = अथवा। रसे = रस के विषय में। समुत्पन्नायां = उत्पन्न हुई। बुद्धौ = बुद्धि में। तद् = उसको। ग्राहिकाणां = ग्रहण कराने वाली। अनन्तानां = अनन्त, अनेक। बुद्धीनां = बुद्धियों के। समुत्पत्तेः = उत्पन्न हो जाने के कारण। बुद्धिजनितैः = बुद्धि से उत्पन्न हुए। संस्कारैः = संस्कारों के द्वारा। यदा = जब। युगपद् = एक साथ। बह्वयः (बह्वयः) = बहुत सी। स्मृतयः = स्मृतियां। क्रियन्ते = उत्पन्न की जाती हैं। तदा = तब। बुद्धेः = बुद्धि के। अपर्य्यवसानाद् = पर्यवसान, अन्त न होने से अर्थात् अनन्त होने के कारण। बह्वीनां = बहुत सी। बुद्धिस्मृतीनां च = बुद्धि एवं स्मृतियों की। युगपद् = एक साथ। उत्पत्तेः = उत्पन्न होने से। 'कस्मिन् = किस। अर्थे = पदार्थ के विषय में। इयं = यह। स्मृतिः = स्मृति। उत्पन्ना = उत्पन्न हुई है'। इति = इस रूप से। ज्ञातुं = जानने में। अशक्यत्वात् = संभव न होने के कारण। स्मृतीनां = स्मृतियों का। सङ्करः = परस्पर संमिश्रण। स्यात् = प्राप्त हो जायेगा अर्थात्। इयं = यह। स्मृतिः = स्मृति। रूपे = रूप विषयक है। इयं = यह। स्मृतिः = स्मृति। रसे = रस विषयक है। इति = इस रूप से पृथक् पृथक्। न = नहीं। ज्ञायेत = ज्ञान होगा ॥ २० ॥

ननु बुद्धेः स्वकाशत्वाभावे बुद्ध्यन्तरे चासंवेदने कथम् अयं विषयसंवेदनरूपो व्यवहारः इत्याशङ्क्य स्वसिद्धान्तमाह—

ननु = प्रश्न होता है कि। बुद्धेः = चित्त का। स्वप्रकाशत्वाभावे = स्वयं प्रकाशक न होने पर। च = और। बुद्ध्यन्तरे = द्वितीय-तृतीय इत्यादि क्षण में उत्पन्न हुये चित्त से भी। असंवेदने = ज्ञान न उत्पन्न होने से। कथं = किस प्रकार। अयं = यह। विषयसंवेदनरूपः = विषयों का ज्ञान रूपी। व्यवहारः = व्यवहार होता है इति = ऐसी। आशङ्क्य = आशङ्का करके। स्वसिद्धान्तं = अपने सिद्धान्त को। आह = प्रस्तुत करते हैं। अर्थात् चेतनपुरुष ही ज्ञाता है, उसी की छाया से चित्त भी वस्तुओं को ग्रहण करने वाला होता है। चित्त न तो

स्वप्रकाशक है और न तो चित्तान्तर प्रकाश्य। अपितु वह चेतन पुरुष द्वारा ही प्रकाश्य है।

चितेरप्रतिसङ्क्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥ २१ ॥

अर्थः—चित्तेः = चिति, चेतन शक्ति पुरुष के। अप्रतिसङ्क्रमायाः = यथार्थतः प्रतिसंक्रमण रहित होने पर भी, विषयों में गमनरूप एवं संमिश्रण रूप क्रिया का अभाव होने पर भी। तद् = विषयों में गमन करने वाले, विषयों के आकार को ग्रहण करने वाले उस चित्त के। आकारापत्तौ = आकार की प्राप्ति होने पर। स्वबुद्धिसंवेदनं = अपनी बुद्धि का, विषय सहित चित्त का ज्ञान होता है। स्वभावतः पुरुष निष्क्रिय, अपरिणामी, निर्विकार, असङ्ग, निर्लिप्त है। वह केवल चेतन है। विषय से संबद्ध चित्त में प्रतिबिम्बित पुरुष भी तदाकाराकारित हो जाता है। यही चित्त के आकार की प्राप्ति है और इस प्रकार विषय एवं बुद्धि दोनों का ज्ञान पुरुष को होता है और वह ज्ञाता कहा जाता है। जैसे स्वच्छ जल में प्रतिबिम्बित चन्द्र जल की चञ्चलता के कारण गतिशील दिखलाई पड़ता हैं, उसी प्रकार विषयाकार परिणाम को प्राप्त करने वाले चित्त में संक्रमित पुरुष भी विषयों का ग्रहीता, ज्ञाता हो जाता है।

वृत्तिः—पुरुषश्चिद्रूपत्वाच्चितिः, साऽप्रतिसङ्क्रमा—न विद्यते प्रतिसङ्क्रमोऽन्यत्र गमनं यस्याः सा तथोक्ता, अन्येनासङ्कीर्णेति यावत्। तथा गुणा अङ्गाङ्गिभावलक्षणे परिणामे अङ्गिनं गुणं सङ्क्रामन्ति तद्रूपतामिवापद्यन्ते; तथा वा लोके परमाणवः प्रसरन्तो विषयमारूपयन्ति[1], नैवं चितिशक्तिः, तस्याः सर्वदैकरूपतया सुप्रतिष्ठितत्वेन व्यवस्थितत्वात्।

अतस्तत्सन्निधाने यदा बुद्धिस्तदाकारतामापद्यते चेतनेवो[2]पजायते, बुद्धिवृत्तिप्रतिसङ्क्रान्ता च यदा चिच्छक्तिः बुद्धिवृत्तिविशिष्टतया[3] संवेद्यते, तदा बुद्धेः

१. आरोपयन्ति (पा०)। विषयम् आरूपयन्ति = आविर्भावयन्ति।

२. चेतनोपजायते (पा०)।

३. बुद्धिवृत्त्यावेशात् तथा संपद्यते (पा०)।

स्वस्यात्मनो[1] वेदनं संवेदनं भवतीत्यर्थः ॥ २१ ॥

पुरुषः = पुरुष । चिद्रूपत्वात् = चेतन स्वरूप होने के कारण । चितिः = चिति, चेतनशक्ति है । सा = वह चिति शक्ति । अप्रतिसङ्क्रमा = संक्रमण रूप क्रिया से रहित है अर्थात् । न = नहीं । विद्यते = विद्यमान है । प्रतिसङ्क्रमः = प्रतिसंक्रम अर्थात् । अन्यत्र = अन्यत्र, विविध विषयों में । गमनं = गमन । यस्याः = जिस शक्ति का । सा = वह शक्ति । तथा = उस प्रकार से । उक्ता = कही गई है अर्थात् अप्रतिसंक्रमा है । अन्येन = अन्य, विषयों के साथ । असङ्कीर्णा = वह चितिशक्ति मिश्रित नहीं है । विषयाकार परिणाम को प्राप्त करने वाली नहीं है । इति यावत् = यही अभिप्राय है । अर्थात् स्वभावतः चिति शक्ति अपरिणामी, क्रिया रहित है । यथा = जैसे । गुणाः = सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुण । अङ्गाङ्गिभावलक्षणे = अङ्ग एवं अङ्गी रूप, गुणप्रधानरूप । परिणामे = परिणाम में । अङ्गिनं = अङ्गी, प्रधान । गुणं = गुण का । सङ्क्रामन्ति = संक्रमण करते हैं अर्थात् । तद्रूपताम् इव = उसी अङ्गी गुण की रूपता, एक रूपता, उसी प्रधान गुण के स्वरूप को । आपद्यन्ते = प्राप्त करते हैं । वा = अथवा । यथा = जैसे । लोके=लोक, संसार में । परमाणवः = परमाणु, सूक्ष्म अणु । प्रसरन्तः प्रसार को प्राप्त करते हुये, द्व्यणुक, त्र्यणुक इत्यादि क्रम से संघात रूप को प्राप्त करते हुये । विषयं = विषय, पदार्थ को । आरोपयन्ति = स्वरूप का हो जाते हैं । चितिशक्तिः = चिति शक्ति तो । एवं = एस प्रकार के, गुणों तथा परमाणुओं के समान परिणाम तथा संयोग को प्राप्त करने वाली । न = नहीं है । तस्याः = उस चिति शक्ति का । सर्वदा=सदा ही, सभी अवस्थाओं में । एकरूपतया = एक ही स्वरूप का । सुप्रतिष्ठितत्वेन = अच्छी प्रकार से प्रतिष्ठित होने से । व्यवस्थितत्वात् = व्यवस्थित, विद्यमान रहने से । चिति-शक्ति परिणाम एवं सम्मिश्रण से रहित है । अतः = इसलिये । तत् = उस अपरिणामी चेतन पुरुष के । सन्निधाने = संनिधान, समीप में रहने पर । यदा = जब । बुद्धिः = चित्त । तद् = उस पुरुष के । आकारतां = आकार को, तद्रूपता

१. आत्मना वेदनं (पा०) ।

को । आपद्यते = प्राप्त करता है । तब । चेतना = अचेतन चित्त में चेतना । उपजायते = उत्पन्न होती है । च = और । यदा = जब । बुद्धिवृत्तिप्रतिसङ्क्रान्ता= चित्त की वृत्ति में प्रतिबिम्बित हुई । चिच्छक्तिः = चिति शक्ति का । बुद्धि-वृत्तिविशिष्टतया = चित्तवृत्ति की विशेषता से, चित्तवृत्ति सहित । संवेद्यते = ज्ञान प्राप्त होता है । तदा = तब । बुद्धेः = चित्त के । स्वस्य आत्मनः = अपने ही स्वरूप की वेदनं = वेदना अर्थात् । संवेदनं = संवेदना, अच्छी प्रकार ज्ञान । भवति = होता है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है ॥ २१ ॥

इत्थं स्वसंविदितं चित्तं सर्वानुग्रहणसामर्थ्येन[1] सकलव्यवहारनिर्वाहक्षमं भविष्यतीत्याह—

इत्थं = इस प्रकार से । स्वसंविदितं = अपने से, चेतन पुरुष से जाना हुआ । चित्तं = चित्त । सर्वानुग्रहणसामर्थ्येन = सभी के अनुग्रह में समर्थ अर्थात् चेतन पुरुष की छाया प्राप्ति से समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होने से । सकलनिर्वाहक्षमं = सभी व्यवहारों के योग्य, ज्ञान में समर्थ । भविष्यति = होगा । इति = चित्त की इसी सामर्थ्य का । आह = प्रतिपादन करते हैं ।

द्रष्टृ-दृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥ २२ ॥

अर्थः—द्रष्टृदृश्योपरक्तं = द्रष्टा चेतन पुरुष तथा दृश्य शब्द-स्पर्शरूप इत्यादि, घट, पट इत्यादि से उपरक्त, उपरञ्जित हुआ, संबद्ध । चित्तं = चित्त । सर्वार्थं = समस्त अर्थों को ग्रहण करने वाला, ग्रहीतृग्रहणग्राह्य, द्रष्टृदर्शनदृश्य स्वरूप वाला होता है । चित्तसत्त्वगुण विशिष्ट होने के कारण स्वच्छ स्फटिक मणि के समान है । जिस प्रकार उस मणि के सान्निध्य में जो भी वस्तु आती है, वह उसी के आकार की हो जाती है । जपा कुसुम की समीपता से वह मणि भी तद्रूप हो जाती है । इसी प्रकार इन्द्रिय प्रणालिका के माध्यम से घट, पट इत्यादि विषय को प्राप्त कर चित्त विषयाकाराकारित हो जाता है । इसी भाँति चेतन पुरुष के प्रतिबिम्ब को प्राप्त कर वह चित्त भी तद्रूप हो जाता है । अतः द्रष्टा चेतन पुरुष तथा दृश्य विषयों से उपरञ्जित चित्त सभी अर्थों वाला होता

---

१. सकलनिर्वाहक्षमम् (पा०) ।

है। वह ग्रहीता तथा ग्राह्य के स्वरूप का हो जाता है साथ ही अपने स्वरूप से वह ग्रहण रूप का तो रहता ही है।

वृत्तिः—द्रष्टा पुरुषः, तेनोपरक्तं तत्सन्निधानेन तद्रूपतामिव प्राप्नोति, दृश्योपरक्तं विषयोपरक्तं गृहीतविषयाकारपरिणामं यदा भवति तदा तदेव चित्तं सर्वार्थग्रहणसमर्थं भवति; यथा निर्मलं स्फटिकदर्पणाद्येव[२] प्रतिबिम्बग्रहणसमर्थम्, एवं रजस्तमोभ्यामनभिभूतं सत्त्वं शुद्धत्वाच् चिच्छायाग्रहणसमर्थं भवति, न पुनरशुद्धत्वाद्रजस्तमसी।

तद् न्यग्भूतरजस्तमोरूपमङ्गितया सत्त्वं निश्चलप्रदीपशिखाकारं सदैकरूपतया परिणममानं चिच्छायाग्रहणसामर्थ्यादा-मोक्षप्राप्तेरवतिष्ठते। यथा अयस्कान्त-सन्निधाने लोहस्य चलनमाविर्भवति, एवं चिद्रूपपुरुषसन्निधाने सत्त्वस्याभिव्य-ङ्ग्यमभिव्यज्यते चैतन्यम्।

अत एव अस्मिन् दर्शने द्वे चिच्शक्ती-नित्योदिता अभिव्यङ्ग्या च; नित्यो-दिता चिच्छक्तिः पुरुस्सन्निधानादभिव्यक्तमभिव्यङ्ग्यचैतन्यं सत्त्वम्; अभि-व्यङ्ग्या चिच्छक्तिः तदत्यन्तसन्निहितत्वादन्तरङ्गं पुरुषस्य भोग्यतां प्रतिपद्यते। तदेव शान्तब्रह्मवादिभिः साङ्ख्यैः पुरुषस्य परमात्मनोऽधिष्ठेयं कर्मानुरूपं सुख-दुःखभोक्तृतया व्यपदिश्यते।

यत्तु अनुद्रिक्तत्वादेकस्यापि गुणस्य कदाचित् कस्यचिदङ्गित्वात् त्रिगुणं प्रतिक्षणं परिणममानं सुख-दुःख-मोहात्मकमनिर्मलं, तत्तस्मिन् कर्मानुरूपे शुद्धे सत्त्वे स्वाकार-समर्पणद्वारेण संवेद्यतामापादयति, तत् शुद्धमाद्यं चित्तसत्त्वमेवेति प्रतिसङ्क्रान्त-चिच्छायमन्यतो गृहीतविषयाकारेण चित्तेन उपढौकितमाकारं चित्सङ्क्रान्ति-वलात् चेतनायमानं वातवचैतन्याभावेऽपि सुख-दुःखस्वरूपं भोगमनुभवति, स एवं भोगोऽत्यन्तसन्निधानेन विवेकाग्रहणाद् अभोक्तुरपि पुरुषस्य भोग इति व्यपदिष्यते।

अनेनैवाभिप्रायेण विन्ध्यवासिनोक्तं—"सत्त्वतप्यत्वमेव पुरुषतप्यत्वम्" इति। अन्यत्रापि—"प्रतिबिम्बे [३]प्रतिबिम्बमानच्छायासदृशच्छायोद्भवः प्रतिबिम्बशब्दे-

---

२. स्फाटिकं दर्पणाद्येव (पा०)।

३. बिम्बे प्रति....(पा०)।

नोच्यते; एवं सत्त्वेऽपि पौरुषे यच्चिच्छायास[1]दृशचिदभिव्यक्तिः प्रतिसङ्क्रान्ति-शब्दार्थः'' इति ।

ननु प्रतिबिम्बं नाम निर्मलस्य नियतपरिणामस्य निर्मले दृष्टम्; यथा मुखस्य दर्पणे, अत्यन्तनिर्मलस्य व्यापकस्य अपरिणामिनः पुरुषस्य तस्मादत्यन्तनिर्मलात् पुरुषादनिर्मले सत्त्वे कथं प्रतिबिम्बनमुपद्यते ?

उच्यते—प्रतिबिम्बनस्य स्वरूपमनवगच्छता भवतेदमभ्यधायि, यैव सत्त्वगताया अभिव्यङ्ग्यायाश्चिच्छक्तेः, पुरुषस्य सान्निध्यादभिव्यक्तिः[2] सैव प्रतिबिम्बनमुच्यते, यादृशी पुरुषगता चिच्छक्तिस्तच्छायाप्यत्राविर्भवति ।

यदप्युक्तम्—अत्यन्तनिर्मलः पुरुषः कथमनिर्मले सत्त्वे प्रतिसङ्क्रामतीति ? तदप्यनैकान्तिकं, नैर्मल्यादपकृष्टेऽपि जलादावादित्यादयः प्रतिसङ्क्रान्ताः समुपलभ्यन्ते ।

यदप्युक्तम्—अनवच्छिन्नस्य नास्ति प्रतिसङ्क्रान्ति, तदप्ययुक्तं व्यापकस्यास्याकाशस्य दर्पणादौ प्रतिसङ्क्रान्तिदर्शनात्; एवं सति न काचिदनुपपत्तिः प्रतिबिम्बदर्शनस्य ।

ननु सात्त्विकपरिणामरूपे बुद्धिसत्त्वे पुरुषसन्निधानादभिव्यङ्ग्यायाश्चिच्छक्तेर्बाह्याकारसङ्क्रान्तौ पुरुषस्य सुखदुःखरूपो भोग इत्युक्तं, तदनुपपन्नं, तदेव चित्तसत्त्वं प्रकृतावपरिणतायां कथं सम्भवति ? किमर्थश्च तस्याः परिणामः ?

अथोच्येत, पुरुषस्यार्थोपभोगसम्पादनं तया कर्त्तव्यम्, अतः पुरुषार्थकर्त्तव्यतयाऽस्या युक्त एव परिणाम । तच्चानुपपन्नं, पुरुषार्थकर्त्तव्यताया एवानुपपत्तेः; पुरुषार्थो मया कर्त्तव्य एवंविधोऽध्यवसायः पुरुषार्थकर्त्तव्यतोच्यते,[3] जडायाश्च प्रकृतेः कथं प्रथममेवंविधोऽध्यवसायः ? अस्ति चेदध्यवसायः, कथं जडत्वम् ?

अत्रोच्यते—अनुलोम-प्रतिलोमलक्षणपरिणामद्वये सहजं शक्तिद्वयमस्ति, तदेव पुरुषार्थकर्त्तव्यतोच्यते; सा च शक्तिरचेतनाया अपि प्रकृतेः सहजैव । तत्र महदादि-

---

१. सदृशस्वकीययचिच् छायान्तराभिव्यक्तिः प्रतिबिम्ब शब्दार्थः (पा०) ।

२. सान्निध्ये (पा०) ।

३. कर्तव्यतया उच्यते (पा०) ।

महाभूतपर्य्यन्तोऽस्या बहिर्मुखतयाऽनुलोमः परिणामः, पुनः स्वकारणानुप्रवेशन-द्वारेणास्मिताऽन्तः परिणामः प्रतिलोमः ।

इत्थं पुरुषस्य भोगपरिसमाप्तेः[1] सहजशक्तिद्वयक्षयात् कृतार्था प्रकृतिर्न पुनः परिणाममारभते ; एवंविधानाञ्च पुरुषार्थकर्त्तव्यतायां जडाया अपि प्रकृतेर्न काचिदनुपपत्तिः ।

ननु यदि ईदृशी शक्तिः सहजैव प्रधानस्यास्ति, तत् किमर्थं मोक्षार्थिभिर्मोक्षाय यत्नः क्रियते ? मोक्षस्य चानर्थनीयत्वे तदुपदेशकशास्त्रस्यानर्थक्यं स्यात् ? उच्यते—योऽयं प्रकृतिपुरुषयोरनादिर्भोग्य-भोक्तृत्वलक्षणः[2] सम्बन्धः, तस्मिन् सति व्यक्तचेतनायाः प्रकृतेः कर्त्तृत्वाभिमानाद् दुःखानुभवे सति कथमियं दुःख-निवृत्तिरात्यन्तिकी मम स्याद् इति भवत्येवाध्यवसायः ; अतो दुःखनिवृत्त्यु-पायोपदेशकशास्त्रोपदेशापेक्षा अस्त्येव प्रधानस्य ; तथाभूतमेव कर्मानुरूपं बुद्धिसत्त्वं शास्त्रोपदेशस्य विषयः, दर्शनान्तरेष्वप्येवंविध एवाविद्यास्वभावः शास्त्रेऽ-धिक्रियते[3];

स च मोक्षाय प्रयतमान एवंविधशास्त्रोपदेशं सहकारिणमपेक्ष्य मोक्षाख्यं फलमासादयति । सर्वाण्येव कार्य्याणि प्राप्तायां सामग्र्यामात्मानं लभन्ते, अस्य प्रतिलोमपरिणामद्वारेणैवोत्पाद्यस्य मोक्षाख्यस्य कार्य्यस्य ईदृश्येव सामग्री प्रमाणेन निश्चिता, प्रकारान्तरेणानुपपत्तेः ; अतस्तां बिना, कथं भवितुमर्हति ?

अतः स्थितमेतत्-सङ्क्रान्तविषयोपरागमभिव्यक्तचिच्छायं बुद्धिसत्त्वं विषय-निश्चयद्वारेण समग्रां लोकयात्रां निर्वाहयतीति । एवंविधमेव चित्तं पश्यन्तो भ्रान्ताः स्वसंवेदनं[4] चित्तं, चित्तमात्रं च जगदित्येवं ब्रुवाणाः प्रतिबोधिता भवन्ति ॥ २२ ॥

द्रष्टा = द्रष्टा । पुरुषः = चेतन पुरुष है । तेन = उस द्रष्टा चेतन पुरुष से ।

---

१. आ भोगपरिसमाप्तेः (पा०) ।
२. भोक्तृभावलक्षणः (पा०) ।
३. अभिधीयते (पा०) ।
४. स्वसंवेदनचित्तमात्रं जगत् (पा०) ।

उपरक्तं = उपरञ्जित, रंगा हुआ, सम्बद्ध चित्त अर्थात्। तत् = उस पुरुष के। सन्निधानेन = सान्निध्य, समीपता से। वह चित्त। तद् = उस पुरुष के। रूपताम् इव = आकार के सदृश आकार को, उस पुरुष के स्वरूप को। प्राप्नोति = प्राप्त करता है। दृश्योपरक्तं—दृश्य से उपरञ्जित चित्त अर्थात्। विषयोपरक्तं = घट-पट इत्यादि विषयों से उपरञ्जित, उपराग को प्राप्त किया हुआ चित्त। यदा = जब। चित्त। गृहीतविषयाकारपरिणामं = ग्रहण किये गये विषय के आकार के परिणाम वाला, संबद्ध विषय के स्वरूप वाला। भवति – होता है। तदा = तब। तदेव = वही। चित्तं = चित्त। सर्वार्थग्रहणसमर्थं = समस्त पदार्थों के स्वरूप को ग्रहण करने की सामर्थ्य वाला। भवति = होता है। यथा— जैसे। निर्मलं = स्वच्छ। स्फटिकदर्पणादि = स्फटिक मणि, दर्पण इत्यादि। एव— ही। प्रतिबिम्बग्रहणसमर्थं = समीप में प्राप्त पदार्थों के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ होते हैं। एवं = इसी प्रकार। रजस्तमोभ्यां = रजोगुण एवं तमो गुण से। अनभिभूतं = अभिभूत न किया गया, न दबाया गया। सत्त्वं = प्रकाशक सत्त्व गुण। शुद्धत्वात् = शुद्ध विमल होने के कारण। चिच्छायाग्रहणसमर्थं = चेतन पुरुष की छाया, प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ होता है। पुनः = किन्तु। अशुद्धत्वात् = राग एवं तमस् के कारण अशुद्ध, कलुषित होने के कारण। रजस्तमसी = रजो गुण तथा तमो गुण। न = पुरुष की छाया को ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। न्यग्भूतरजस्तमोरूपं = न्यून हो गये, अभिभूत हुये रजो गुण एवं तमो गुण वाला। तद् = वह। सत्त्वं = सत्व गुण। अङ्गितया = अङ्गी, प्रधान रूप से, उत्कर्ष को प्राप्त कर। निश्चलप्रदीपशिखाकारं = निष्कम्प, गति रहित दीपक शिखा के आकार वाला। सदा = सदैव, सभी अवस्थाओं में। एकरूपतया = एक ही स्वरूप में। परिणममानं = परिणाम को प्राप्त करता हुआ। चिच्छायाग्रहणसामर्थ्याद् = चेतन पुरुष के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने की सामर्थ्य होने से। आमोक्षप्राप्तेः = मोक्ष, अपवर्ग प्राप्ति पर्यन्त। अवतिष्ठते = विद्यमान रहता है। यथा = जैसे। अयस्कान्तसन्निधाने = अयस्कान्त मणि, चुम्बक का सान्निध्य, सामीप्य होने पर। लोहस्य = लौह धातु का, लौह खंड में। चलनं = चलना, गति। आविर्भवति = उत्पन्न होती है। एवं = इसी

प्रकार । चिद्रूपपुरुषसन्निधाने = चेतन स्वरूप पुरुष के सान्निध्य में । सत्त्वस्य = सत्त्व की, सत्त्वगुण विशिष्ट चित्त की । चैतन्यं = चेतनता । अभिव्यङ्ग्य = अभिव्यञ्जित होकर । अभिव्यज्यते = अभिव्यक्त, प्रकट होती है अर्थात् चेतन पुरुष का प्रतिबिम्ब पड़ने पर अचेतन चित्त में चेतना उद्भूत होती है । अत-एव = इसलिए । अस्मिन् = इस, प्रस्तुत । दर्शने = योगदर्शन में । द्वे = दो प्रकार की । चिच्शक्ति = चेतन शक्तियाँ हैं । नित्योदिता = नित्य उदित, सदैव विद्यमान रहने वाली चेतन शक्ति । च = और । अभिव्यङ्ग्या = अभिव्यञ्जित, चेतन पुरुष के संयोग से व्यक्त होने वाली चेतन शक्ति । नित्योदिता = नित्य उदित चेतन शक्ति । चिच्छक्तिः = चित् शक्ति, चेतन पुरुष रूप शक्ति है । पुरुषसन्निधानाद् = चेतन पुरुष की समीपता से । अभिव्यक्तं = अभिव्यक्त, उद्भूत हुई । अभिव्यङ्ग्यचैतन्यं = अभिव्यञ्जित, प्रकट हुई चेतनता वाला । सत्त्वं = सत्त्वगुण विशिष्ट चित्त है । अभिव्यङ्ग्या = अभिव्यक्त होने वाली । चिच्छक्तिः = चेतन की शक्ति । तद् = उस पुरुष के । अत्यन्तसन्निहितत्वाद् = अति ही समीप में स्थित होने के कारण । अन्तरङ्गं = प्रधान, मुख्य अङ्ग, साधन, कारण है । और । पुरुषस्य = मनुष्य की । भोग्यतां = उपभोग को । प्रतिपद्यते = प्राप्त होता है । तदेव = वही । शान्तब्रह्मवादिभिः = शान्त ब्रह्म-वादियों । एवं । साङ्ख्यैः = सांख्य आचार्यों के द्वारा । परमात्मनः = परमात्मा का । अधिष्ठेयं = अधिष्ठेय रूप में एवं । कर्मानुरूपं = शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण कर्मों के अनुसार । सुखदुःखभोक्तृतया = सुख तथा दुःख के भोक्ता के रूप में । पुरुषस्य = पुरुष का । व्यपदिश्यते = व्यपदेश, कथन किया जाता है अर्थात् परमात्मा ही पुरुष का अधिष्ठाता है और स्वपूर्वकृतकर्मों के अनुकूल ही पुरुषों को सुखदुःख इत्यादि भोगों की प्राप्ति होती ही है । यत्तु = और जो । कदाचित् = कभी । एकस्य = एक । गुणस्य = गुण का । अपि = भी । अनुद्रिक्त-त्वाद् = कम होने के कारण, अङ्ग रूप होने से । कस्यचिद् = और किसी गुण का । अङ्गित्वात् = अङ्गी प्रधान रूप होने से । त्रिगुणं = सत्त्व-रजस्-तमस त्रिविध गुण । प्रतिक्षणं = प्रत्येक क्षणं, सदैव । परिणममानं = परिणाम को प्राप्त करते हुए । सुखदुःखमोहात्मकं = सुख, दुःख एवं मोह स्वरूप वाला । अनिर्मलं =

अनिर्मल, अशुद्ध रूप अर्थात् सुखदुःखमोह से युक्त चित्त होता है। तीनों ही गुण सतत परिणाम को प्राप्त करते रहते हैं। अतः वे अङ्गाङ्गिभाव से परिणत होते हुए चित्त को सुखदुःखमोहमय बनाते रहते हैं। चित्त का सदैव सम्बन्ध इनसे बना ही रहता है। तत् = इसलिये। तस्मिन् = उस। कर्मानुरूपे = कर्मों के अनुसार। शुद्धे = शुद्ध, उत्कर्ष को प्राप्त, अङ्गी। सत्त्वे = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त में। स्वाकारसमर्पणद्वारेण = अपने आकार के समर्पण से। संवेद्यतां = संवेदनशीलता, ज्ञान को। आपादयति = चित्त प्रदान कराता है। तत्=वह। शुद्धं = शुद्ध, रजस्-तमस् से अनभिभूत। आद्यं = प्रकृति का प्रथम विकार। चित्तसत्त्वं = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त। एव = ही है। इति = इस रूप से। प्रतिसङ्क्रान्तचिच्छायं = प्रतिबिम्बित चेतन पुरुष की छाया वाला। अन्यतः = अन्य से, इन्द्रिय प्रणालिका से। गृहीतविषयाकारेण = ग्रहण किये, प्राप्त पदार्थ के आकार वाले। चित्तेन = चित्त के द्वारा। उपढौकितं = समर्पित। आकारं = आकार वाला। वास्तवचैतन्याभावे = वास्तव में, यथार्थतः चेतनता का अभाव होने पर। अपि = भी। अर्थात् चित्त के अचेतन होने पर भी। चित्सङ्क्रान्तिबलात् = चेतन पुरुष के प्रतिबिम्ब के बल से। चेतनायमानं = चित्त चेतन सा हो जाता है। सुखदुःखस्वरूपं = सुख एवं दुःख रूप। भोगं = भोग का। अनुभवति = अनुभव करता है। एवं = इस प्रकार। सः = वह। भोगः = भोग, चित्त में इन्द्रियों के माध्यम से उपस्थित भोग। अत्यन्तसन्निधानेन = चित्, चेतन पुरुष के अत्यन्त समीप होने के कारण, अति सामीप्य के कारण। विवेकाग्रहणाद् = चित्त एवं चित् दोनों में भेद का ग्रहण न होने से, अज्ञान के कारण दोनों में अभेद, एकता की प्रतीति होने से। अभोक्तुः = अभोक्ता होने पर। अपि = भी। पुरुषस्य = पुरुष का। भोगः = भोग है। इति = इस रूप से। व्यपदिश्यते = कहा जाता है अर्थात् त्रिगुणातीत होने से यद्यपि पुरुष भोक्ता नहीं है, पर चित्त के साथ तादात्म्य होने से यह भी भोक्ता हो जाता है। अनेन = इस। एव = ही। अभिप्रायेण = उद्देश्य, विचार से। विन्ध्यवासिना = आचार्य विन्ध्यवासि द्वारा। उक्तं = कहा गया है। "सत्त्वतप्यत्वं = सत्त्व, चित्त का तप्यत्व होना, दुःख से संतप्त बनाया जाना। एव = ही। पुरुषत-

प्यत्वं = पुरुष का दुःख से से अभिभूत होना है अर्थात् यद्यपि सुखदुःख इत्यादि भोग बुद्धि के हैं, फिर भी अविवेक के कारण असङ्ग पुरुष भी सुख-दुःखों का उपभोक्ता बनता है।" इति = इस रूप से अभोक्ता पुरुष भोक्ता होता है। अन्यत्रापि = दूसरे स्थलों पर भी इसी प्रकार अभोक्ता पुरुष को भोक्ता कहा गया हैं। "बिम्बे = बिम्ब में, स्फटिक, दर्पण इत्यादि बिम्ब में। प्रतिबिम्बमानच्छायासदृशच्छायोद्भवः = प्रतिबिम्बत हुई, संक्रमित हुई, पड़ी हुई छाया के समान छाया की उत्पत्ति ही। प्रतिबिम्बशब्देन = प्रतिबिम्ब शब्द के द्वारा। उच्यते = कही जाती है। बिम्ब स्फटिक में जपाकुसुम के सदृश ही छाया की उत्पत्ति जपाकुसुम का स्फटिक में प्रतिबिम्ब है। एवं = इसी प्रकार। सत्त्वे = बिम्ब रूप चित्त में। अपि = भी। पौरुषेयचिच्छायासदृशचिदभिव्यक्तिः = चेतन पुरुष की छाया के समान ही चित् पुरुष की अभिव्यक्ति, उद्भूति ही। प्रतिसङ्क्रान्तिशब्दार्थः = प्रतिसंक्रान्ति शब्द का अभिप्राय है।" इति = इस रूप से बिम्ब चित्त में पुरुष की छाया का प्रकट होना ही पुरुष का प्रतिबिम्ब है।

ननु = प्रश्न होता है कि। प्रतिबिम्बं = प्रतिबिम्ब। नाम = तो। नियतपरिणामस्य = निश्चित परिणाम वाले। निर्मलस्य = विमल पदार्थ अर्थात् स्थिर स्वच्छ वस्तु का। निर्मले = मल रहित स्वच्छ, दर्पण इत्यादि में। दृष्टं = देखा जाता है। यथा = जैसे। मुखस्य = स्वच्छ मुख का। दर्पणे = विमल दर्पण में प्रतिबिम्ब देखा जाता है। तस्माद् = इसलिये। अत्यन्तनिर्मलस्य = समस्त कलुषरहित नितान्त स्वच्छ। व्यापकस्य = व्यापक। अपरिणामिनः = परिणाम रहित, सदैव एक ही स्वरूप में रहने वाले। पुरुषस्य = पुरुष का। अत्यन्तनिर्मलात् = अत्यन्त निर्मल होने के कारण, सकल दोषों से विमुक्त होने से। पुरुषाद् = शुद्ध पुरुष से नितान्त प्रतिकूल। अनिर्मले = अशुद्ध, रागद्वेष इत्यादि भावनाओं तथा शब्दस्पर्श इत्यादि विषयों से उपरञ्जित। सत्त्वे = चित्त में। कथं = किस प्रकार। प्रतिबिम्बिन = प्रतिबिम्बित होना, छाया का पड़ना। उपपद्यते = उपपन्न, सिद्ध हो सकता है अर्थात् उपरागयुक्त चित्त में पुरुष की छाया का दिखलाई पड़ना कैसे संभव है?। उच्यते = इसका उत्तर देते हैं अर्थात रागयुक्त चित्त में पुरुष का प्रतिबिम्ब पड़ता ही है। प्रतिबिम्बिनस्य =

प्रतिबिम्ब के । स्वरूपं = स्वरूप को । अनवगच्छता = न समझने के कारण । भवता = आपकी । इदं = इस प्रकार की । अभ्यधायि = धारणा हैं । या = जो । एव = ही । सत्त्वगतायाः = चित्त में रहने वाली । अभिव्यङ्ग्यायाः = अभिव्यञ्जित, अभिव्यक्त, प्रकट होने वाली । चिच्छक्तेः = चेतन शक्ति की । पुरुषस्य = पुरुष के । सान्निध्याद् = सामीप्य से । अभिव्यक्तिः = अभिव्यक्ति होती है, चेतनता की उत्पत्ति होती हैं । सा एव = वही । प्रतिबिम्बनं = प्रतिबिम्ब रूप से । उच्यते = कही जाती है । यादृशी = जिस प्रकार की । पुरुषगता = पुरुष में विद्यमान । चिच्छक्तिः = चेतन शक्ति होती हैं । तच्छाया = उस पुरुष की छाया । अपि = भी । अत्र = इस चित्र में आविर्भवति = उसी प्रकार की उद्भूत, प्रकट होती है । यद् = जो । अपि = भी । उक्तं = कहा गया है कि । अत्यन्तनिर्मलः = नितान्त शुद्ध । पुरुषः = पुरुष । कथं = किस प्रकार से । अनिर्मले = अशुद्ध, रागयुक्त । सत्त्वे = चित्त में । प्रतिसङ्क्रामति = प्रतिम्बित होता है । इति = इस रूप से दोष से आवृत्त चित्त में पुरुष की छाया पड़ना संभव नहीं है । तद् = वह । अपि = भी । अनैकान्तिकं = एकान्तिक नियत नहीं है अर्थात् उपरञ्जित चित्त में पुरुष की छाया नहीं पड़ सकती, यह कथन निश्चित रूप से समीचीन नहीं है । जलादौ = जल इत्यादि पदार्थों में । नैर्मल्याद् = निर्मलता, स्वच्छता के । अपकृष्टे = अपकृष्ट होने पर, न्यून, कम होने पर । अपि = भी । आदित्यादयः = सूर्य इत्यादि । प्रतिसङ्क्रान्ताः = प्रतिबिम्बित हुये । समुपलभ्यन्ते = प्राप्त होते हैं, देखे जाते हैं। यद् अपि उक्तं = और जो यदि भी कहा गया है कि । अनवच्छिन्नस्य = अवच्छिन्न रहित, अपरिछिन्न, अपरिमित अर्थात् व्यापक पुरुष का । प्रतिसङ्क्रान्तिः = प्रतिबिम्ब । न = नहीं । अस्ति = है अर्थात् पुरुष व्यापक है और उसकी अपेक्षा कोई अन्य तत्त्व महत् परिणाम वाला नहीं है । अतः उसका प्रतिबिम्ब परिमित चित्त में पड़ना संभव नहीं है । इति = ऐसा मत है । तद् = वह मत । अपि = भी । अयुक्तं = समीचीन, उचित नहीं है । व्यापकस्य = व्यापक । अस्य = इस । आकाशस्य = आकाश का । दर्पणादौ = शुद्ध दर्पण इत्यादि अति व्याप्य पदार्थों मे । प्रतिसङ्क्रान्तिदर्शनात् = प्रतिबिम्ब का दर्शन होने से यह सिद्ध होता है कि

व्यापक का प्रतिबिम्ब व्याप्य में संभव ही है। एवं सति = ऐसा सिद्ध हो जाने पर। प्रतिबिम्बदर्शनस्य = चित्त में पुरुष के प्रतिबिम्ब दर्शन की। काचित = कोई भी। अनुपपत्तिः असिद्धि। न = नहीं है। ननु = प्रश्न होता है कि। सात्त्विकपरिणामरूपे = सात्त्विक परिणाम रूप। बुद्धिसत्त्वे = सत्त्वगुण विशिष्ट चित्त में। पुरुषसन्निधानाद् = चेतन पुरुष की समीपता के कारण। अभिव्यञ्ज्यायाः = अभिव्यञ्जित, प्रकट होने वाली। चिच्छक्तेः = चेतन शक्ति का। बाह्याकारसङ्क्रान्तौ = बाह्य आकार के संक्रान्त होने पर। पुरुषस्य = पुरुष के लिये। सुखदुःखरूपः = सुख एवं दुःख रूपी। भोगः = उपभोग की प्राप्ति होती है। इति = इस रूप से। उक्तं = जो यह कहा गया है। तद् = वह। अनुपपन्नं = असिद्ध है। तदेव = वही। चित्तसत्त्वं = सात्त्विक चित्त। प्रकृतौ = प्रकृति के। अपरिणतायां = परिणाम न प्राप्त करने पर। कथं = किस प्रकार से। सम्भवति = संभव है अर्थात् प्रकृति के परिणाम के बिना चित्त का उद्भव संभव ही नहीं है। च = और। तस्याः = उस प्रकृति का। परिणामः = परिणाम। किं = किस। अर्थः = अर्थ, प्रयोजन वाला है। अथ = यदि। उच्येत = यह कहा जाय कि। तया = उस प्रकृति के द्वारा। पुरुषस्य = पुरुष का। अर्थोपभोगसम्पादनं = शब्द स्पर्श इत्यादि विषयों के उपभोग का संपादन। कर्त्तव्यं = किया जाना चाहिये। अतः = इसलिये। पुरुषार्थकर्त्तव्यतया = पुरुष का उपभोग रूप प्रयोजन ही कर्त्तव्य होने के कारण। अस्याः = इस प्रकृति का। परिणामः = परिणाम। युक्तः = उचित, समीचीन। एव = ही है। च = और। तत् = वह। अनुपन्नं = असिद्ध है। पुषषार्थकर्त्तव्यतायाः = पुरुष का उपभोग रूपी प्रयोजन की कर्त्तव्यता का। एव = ही। अनुपपत्तेः = असिद्ध होने के कारण अर्थात् अचेतन प्रकृति द्वारा पुरुष का उपभोग करना ही असिद्ध है। मया = मुझ प्रकृति द्वारा। पुरुषार्थः = पुरुष का उपभोग। कर्त्तव्यः = संपन्न किया जाना चाहिये। एवंविधः = इस प्रकार का। अध्यवसायः = अध्यवसाय, निश्चयात्मक ज्ञान ही। पुरुषार्थकर्त्तव्यता = पुरुषार्थकर्त्तव्यता रूप से। उच्यते = कहा जाता है। च = किंतु। कथं = किस प्रकार से। जडायाः = अचेतन। प्रकृतेः = प्रकृति का। प्रथमं = प्रथम। एवंविधः = इस प्रकार का। अध्य-

वसायः = अध्यवसाय संभव है। चेत् = यदि। अध्यवसायः = पुरुषार्थकर्त्तव्यता रूप प्रकृति का अध्यवसाय। अस्ति = होता ही है। कथं = तो किस प्रकार। जडत्वं = प्रकृति का स्वरूप अचेतन है। अत्र = इस संबन्ध में। उच्यते = उत्तर देते हैं। अनुलोमप्रतिलोमलक्षणपरिणामद्वये = अनुलोम एवं प्रतिलोम रूप दो प्रकार के परिणाम में। सहजं = सहज, स्वाभाविक। शक्तिद्वयं = दो प्रकार की शक्ति। अस्ति = हैं। तदेव = वही सहज शक्ति। पुरुषार्थकर्त्तव्यता = पुरुषार्थ-कर्त्तव्यता रूप से। उच्यते = कही जाती है। च = और। सा = वह। शक्तिः = शक्ति। अचेतनायाः = अचेतन। प्रकृतेः = प्रकृति की। अपि = भी। सहजा = सहज, स्वाभाविक। एव = ही है। तत्र = उन द्विविध परिणामों में से। महदादिमहाभूतपर्य्यन्तः = महत्तत्त्व से लेकर आकाश इत्यादि पञ्च महाभूतों तक। बहिर्मुखतया = बहिर्मुखी रूप से। अस्याः = इस प्रकृति का। अनुलोमः = अनुलोम नाम वाला। परिणामः = परिणाम है। पुनः = पुनः। स्वकारणानुप्रवेशनद्वारेण = आकाश इत्यादि पञ्च महाभूत रूप कार्यों का शब्द इत्यादि तन्मात्रा रूप अपने कारण में तिरोहित, विलीन होने के क्रम से। अस्मितान्तः = अस्मिता तक अन्त होने वाला। परिणामः = अन्तर्मुखी परिणाम। प्रतिलोमः = प्रकृति का प्रतिलोम परिणाम है। इत्थं = इस प्रकार से। पुरुषस्य = पुरुष के। भोगपरिसमाप्तेः = उपभोग के संपन्न होने तक। सहजशक्तिद्वयक्षयात् = अनुलोम एवं प्रतिलोम रूप दोनों प्रकार की सहज शक्तियों का क्षय, अभाव हो जाने से। कृतार्था = पुरुष के उपभोग को संपन्न कर देने वाली। प्रकृतिः = प्रकृति। पुनः = पुनः। परिणामं = किसी अन्य परिणाम को। न = नहीं। आरभते = प्रारम्भ करती है। च = और। एवं विधायां = इस प्रकार के। पुरुषार्थकर्त्तव्यतायां = पुरुष के उपभोग रूप प्रयोजन की कर्त्तव्यता संपन्न हो जाने से। जडायाः = अचेतन। प्रकृतेः = प्रकृति की। अपि = भी। काचित् = कोई। अनुपपत्तिः = असिद्धि। न = नहीं है अर्थात् अचेतन होने पर भी प्रकृति पुरुष के उपभोग को संपन्न करती ही है। अतः पुरुषार्थ सिद्धि प्रकृति का प्रयोजन ही है।

ननु = प्रश्न उपस्थित होता है कि । यदि = यदि । ईदृशी = इस प्रकार की । शक्तिः = शक्ति । प्रधानस्य = प्रधान प्रकृति की । सहजा = सहज, स्वाभाविक । एव = ही । अस्ति = है । तत् = तो । किं = किस । अर्थं = लिये, उद्देश्य से । मोक्षार्थिभिः = मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले व्यक्तियों, ऋषियों के द्वारा । यत्नः = प्रयास । क्रियते = किया जाता है अर्थात् पुरुष के अपवर्ग की सिद्धि यदि प्रकृति का स्वभाव, प्रयोजन ही है, तो फिर इसकी प्राप्ति के लिये ऋषियों की प्रवृत्ति क्यों होती है । च = और । मोक्षस्य = मोक्ष का । अनर्थनीयत्वे=प्रार्थनीय न होने से, स्वयं सिद्ध, प्रकृतिप्रदत्त होने से । तद् = उस मोक्ष का । उपदेशक-शास्त्रस्य=उपदेश देने वाले, सिद्धि के लिये उपायों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र की । आनर्थक्यं=अनर्थता, निष्प्रयोजनता । स्यात्=हो जायेगी ? उच्यते=इसी के उत्तर में कहते हैं । यः = जो । अयं = यह । प्रकृति-पुरुषयोः = प्रकृति तथा पुरुष में । अनादिः = अनादि काल से । भोग्यभोक्तृत्वलक्षणः = भोग्य तथा भोक्ता रूप । सम्बन्धः = संबन्ध है । तस्मिन् सति = उस भोग्यभोक्ता रूप संबन्ध के विद्यमान रहने पर । व्यक्तचेतनायाः = अभिव्यक्त, प्रकट हुई चेतनता वाली । प्रकृतेः = प्रकृति के कारण । कर्त्तृत्वाभिमानाद् = अकर्ता पुरुष में कर्त्तृत्व का अभिमान होने से । दुखानुभवे सति = प्रकृतिगत धर्मों का अज्ञान वश अपने में उपचार कर लेने से दुःख का अनुभव होने पर । कथं = किस प्रकार से । आत्यन्तिकी = आत्तन्तिक, सार्वकालिक रूप से । मम = मेरी । इयं = यह । दुःख-निवृत्तिः = त्रिविध दुःखों की निवृत्ति, निराकरण, अभाव । स्यात् = होवे । इति = इस रूप से । अध्यवसायः = अध्यवसाय, निश्चयात्मक ज्ञान । भवति एव = होता ही है । अतः = इसलिये । दुःखनिवृत्त्युपायोपदेशकशास्त्रोपदेशापेक्षा = दुःख परिहार के उपायों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र के उपदेश की अपेक्षा, उपयोगिता । प्रधानस्य = प्रधान, प्रकृति के लिये । अस्ति = है । एव = ही । अर्थात् प्रकृतिपुरुष-विवेकख्याति ही अपवर्ग में हेतु है । अतः प्रकृति के स्वरूप ज्ञान के लिये शास्त्र की उपयोगिता है ही । तथाभूतं = उसी प्रकार के । एव = ही । कर्मानुरूपं = शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण कर्मों के अनुसार । बुद्धिसत्त्वं = सात्त्विक बुद्धि, चित्त, महत्तत्त्व । शास्त्रोपदेशस्य = वेदशास्त्रों के उपदेश का ।

विषयः = विषय है अर्थात् प्रकृति के समान महत्तत्त्व भी शास्त्रों का प्रतिपाद्य विषय है। दर्शनान्तरेषु = सांख्य, वेदान्त इत्यादि अन्य दर्शनों में। अपि = भी। एवंविधः = सम्मत, इस प्रकार का। एव = ही। अविद्यास्वभावः = अविद्या का स्वभाव, स्वरूप। शास्त्रे = प्रस्तुत योगशास्त्र में। अधिक्रियते = स्वीकार किया जाता है। च = और। सहकारिणं = सहकारी, सहायक रूप। एवंविध शास्त्रोपदेशं = इस प्रकार के शास्त्र के उपदेश की। अपेक्ष्य = अपेक्षा करके, उपदेश अनुसार। प्रयतमानः = प्रयत्न, प्रयास करता हुआ। सः = वह। मोक्षाख्यं = मोक्ष नाम वाले, अपवर्ग रूप। फलं = मानव जीवन के उत्कृष्टतम फल को। आसादयति = प्राप्त करता है। सामग्र्यां = सामग्री के। प्राप्तायां = प्राप्त हो जाने पर। सर्वाणि एव = सभी। कार्य्याणि = कार्य। आत्मानं = अपने स्वरूप को। लभन्ते = प्राप्त करते हैं। प्रतिलोमपरिणामद्वारेण = प्रकृति के प्रतिलोम परिणाम के द्वारा। एव = ही। उत्पाद्यस्य = उत्पाद्य, उत्पन्न किये जाने वाले। मोक्षाख्यस्य = मोक्ष नाम वाले। अस्य = इस। कार्यस्य = कार्य का। ईदृशी = इस प्रकार की। एव = ही। सामग्री = सामग्री। प्रमाणेन = प्रमाण के द्वारा। निश्चिता = निश्चित, सिद्ध की गई। प्रकारान्तरेण = दूसरे प्रकार, हेतु द्वारा। अनुपपत्तेः = असिद्धि होने के कारण। अतः = इसलिये। तां = उसके। विना = बिना। कथं = किस प्रकार। भवितुं = उसकी सिद्धि होने के लिये। अर्हति = योग्य, समर्थ है। अतः = इस प्रकार। एतत् = यह। स्थितं = स्थित, सिद्ध ही है। सङ्क्रान्तविषयोपरागं = शब्द-स्पर्श, घट-पट इत्यादि विषयों के उपराग से उपरञ्जित, युक्त, प्रतिबिम्बित हुये विषयों के उपराग वाला। अभिव्यक्तचिच्छायं = अभिव्यक्त, प्रकट होने वाली चेतन पुरुष की छाया वाला, चित् की छाया से युक्त। बुद्धि सत्त्वं = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त ही। विषयनिश्चयद्वारेण = विषयों के निश्चय, अध्यवसाय के द्वारा। समग्रां = समस्त, सकल। लोकयात्रां = लोक की यात्रा, लौकिक व्यवहार को। निर्वाहयति = निर्वाह, संपन्न करता है। इति = इस रूप से, इन्द्रिय प्रणालिका से प्राप्त विषयों का ज्ञान अचेतन चित्त, चेतन चित् की छाया ग्रहण करके प्रदान करता है। एवंविध = इस प्रकार के। एव = ही। चित्तं = चित्त को। पश्यन्तः = देखते हुए, चित्त के

स्वरूप को जानते हुए। भ्रान्ताः = भ्रान्त मनुष्य, चित्, चित्त एवं जगत् के स्वरूप को न जानने वाले। स्वसंवेदनं = संवेदनशील, विषयों का ज्ञान प्राप्त करने वाले अपने। चित्तं = चित्त को। च = तथा। जगत् = यह जगत्। चित्तमात्रं = चित्तमात्र हैं, केवल चित्त द्वारा ही जाना जाता है। इति एवं = इस प्रकार से। ब्रुवाणाः = कहते हुये वे मनुष्य। प्रतिबोधिताः = प्रतिबोधित, ज्ञान युक्त, चित् चित्त, जगत् के स्वरूप को जानने वाले। भवन्ति = हो जाते हैं ॥ २२ ॥

ननु यद्येवंविधादेव चित्तात् सकलव्यवहारनिष्पत्तिः, कथं प्रमाणशून्यो द्रष्टा अभ्युपगम्यते—इत्याशङ्क्य द्रष्टुः प्रमाणमाह—

ननु = प्रश्न उपस्थित होता है कि। यदि = यदि। एवं विधात् = इस प्रकारे के। चित्तात् = चित्त से, चेतन पुरुष के प्रतिबिम्ब से, चेतनता प्राप्त चित्त से। एव = ही। सकलव्यवहारनिष्पत्तिः = समस्त व्यवहार की सिद्धि हो जाती है। कथं = तो फिर, किस प्रकार। प्रमाणशून्यः = प्रमाण शून्य, किसी भी प्रमाण से न सिद्ध होने वाला। द्रष्टा = द्रष्टा पुरुष। अभ्युपगम्यते = स्वीकार किया जाता है। इति = ऐसी। आशङ्क्य = आशंका करके। द्रष्टुः = द्रष्टा के, चेतन द्रष्टा पुरुष की सिद्धि में। प्रमाणं = प्रमाण को। आह = कहते हैं।

तदसङ्ख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥२३॥

अर्थः—तत् = वह चित्त। असङ्ख्येयवासनाभिः = अनन्त वासनाओं, संस्कारों से। चित्रं = चित्रित, सामन्वित होने पर। अपि = भी। संहत्यकारित्वात् = विषय एवं इन्द्रिय तथा अहंकार से मिलकर उद्देश्य, कार्य को संपन्न करने के कारण। परार्थं = अपने से भिन्न पर के अर्थ को सिद्ध करने वाला है अर्थात् यद्यपि चित्त समस्त वासनाओं से युक्त रहता है; फिर भी वह विषय, इन्द्रिय इत्यादि का संयोग प्राप्त करके रहता है; फिर भी वह विषय, इन्द्रिय इत्यादि का संयोग प्राप्त करके ही किसी कार्य का करने वाला बनता है। अतः उसका प्रयोजन अपने से भिन्न, असंहत पुरुष के भोग एवं अपवर्ग द्विविध प्रयोजनों को सिद्ध करना है। चित्त का स्वार्थ कुछ भी नहीं। उसके सकल व्यापार पर के लिये होते हैं और वहीं पर चेतन द्रष्टा पुरुष है।

वृत्तिः—तदेव चित्तं सङ्ख्यातुमक्याभिर्वासनभिश्चित्रमपि नानारूपमपि परार्थं परस्य स्वामिनो भोक्तुर्भोगापवर्गलक्षणमर्थं साधयतीति; कुतः ? संहृत्य-कारित्वात् संहत्य सम्भूय मिलित्वाऽर्थक्रियाकारित्वात्; यच्च संहत्यार्थक्रियाकारि, तत् परार्थं दृष्टम्; यथा शयनासनादि । सत्त्वरजस्तमांसि च चित्तलक्षणपरिणाम-भाञ्जि संहत्यकारीणि च, अतः परार्थानि । यः परः स पुरुषः ।

ननु यादृशेन शयनासनादीनां[1] परेण शरीरवता पारार्थ्यमुपलब्धं, तद्दृष्टान्त-बलेन तादृश एव परः सिध्यति, यादृशश्च भवतां परोऽसंहतरूपोऽभिप्रेतः तद्विपरी-तस्य सिद्धेरयमिष्टविघातकृद्धेतुः ।

उच्यते—यद्यपि सामान्येन परार्थमात्रे[2] व्याप्तिर्गृहीता, तथाऽपि सत्त्वादि-विलक्षणधर्मिपर्य्यालोचनया तद्विलक्षण एव भोक्ता परः सिध्यति, तथा चेन्धना-वृते[3] शिखरिणिविलक्षणाद्धूमाद्वन्हिरनुमीयमान इतरवन्हिविलक्षणश्चेन्धनप्रभव एव प्रतीयते, एवमिहापि विलक्षणस्य सत्त्वाख्यस्य भोग्यस्य परार्थत्वेऽनुमीयमाने तथाविध एव भोक्ता अधिष्ठाता परश्चिन्मात्ररूपोऽसंहतः सिध्यति ।

यदि च तस्य परत्वं सर्वोत्कृष्टत्वमेवं प्रतीयत तथापि तामसेभ्यो विषयेभ्यः प्रकृष्यते शरीरं, प्रकाशरूपेन्द्रियाश्रयत्वात्, तस्मादपि प्रकृष्यन्ते इन्द्रियाणि, ततोऽपि प्रकृष्टं सत्त्वं प्रकाशरूपं, तस्यापि यः प्रकाशकः प्रकाश्यविलक्षणः, स चिद्रूप एव[4] भवतीति कुतस्तस्य संहतत्वम् ? ॥२३॥

तदेव = वही । चित्तं = चित्त । सङ्ख्यातुं = गणना करने में । अशक्याभिः= असंभव । वासनाभिः = वासनाओं से अर्थात् अनन्त वासनाओं से । चित्रं = चित्रित होने पर । अपि = भी अर्थात् । नानारूपं = विविध रूपों का, अनेक विषयों के स्वरूप का होने पर । अपि = भी । परार्थं = परार्थ, अपने विषयों से भिन्न दूसरे के अर्थ को सिद्ध करने वाला है अर्थात् । भोक्तुः = भोक्ता रूप में

१. शयनासनादिना (पा०) ।

२. परार्थमात्रत्वेन (पा०) ।

३. क्वचिद् इन्धनस्थले चन्दनशब्दःपठ्यते वाक्येऽस्मिन् स्थलद्वये ।

४. इव (पा०) ।

विद्यमान । परस्य = पर । स्वामिनः=स्वामी, चेतन पुरुष के । भोगापवर्गलक्षणं= भोग एवं अपवर्ग रूप । अर्थं = द्विविध प्रयोजन को । साधयति = सिद्ध करता है । बुद्धि ही पुरुष के दोनों उद्देश्यों को सम्पन्न करती है (सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात्पुरुषस्य साधयति बुद्धिः । सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधान-पुरुषान्तरं सूक्ष्मम् ।। सांख्यकारिका ३७) । इति = इस रूप से । कुतः = किस कारण से चित्त परार्थ का ही संपादक है, स्वार्थ का नहीं । संहत्यकारित्वात् = संहत्यकारी होने के कारण अर्थात् । संहत्य = संहत्य शब्द का अर्थ है । सम्भूय = एक साथ होकर अर्थात् । मिलित्वा = मिलकर । अर्थक्रियाकारित्वात् = अर्थ की क्रिया को करने के कारण अर्थात् विषय, इन्द्रिय इत्यादि से मिल करके ही, संघात हो करके ही प्रयोजन को सिद्ध करता है । च = और । यत् = जो कोई । संहत्य = संघात रूप होकर, मिल करके । अर्थक्रियाकारि = उद्देश्य सिद्धि की क्रिया को करने वाला होता है । तत् = वह । परार्थं = दूसरे के प्रयोजन के लिये । दृष्टं = देखा जाता है, अपने से भिन्न दूसरे के अर्थ को पूर्ण करता है । यथा = जैसे । शयनासनानि = शयन, आसन इत्यादि संघात होने से पर, असंहत के लिये देखे जाते हैं । चित्त से भिन्न पुरुष की सिद्धि के लिये इसी प्रकार सांख्य में "संघात-परार्थत्वात् सांख्यकारिका १७" हेतु प्रस्तुत किया गया है । च = और । सत्त्वर-जस्तमांसि = सत्त्व, रजस्, तमस् त्रिविध गुण । चित्तलणक्षपरिणामभाञ्जि = चित्त रूपी परिणाम को प्राप्त करने वाले । च = और । संहत्यकरिणी = एक साथ मिलकर कार्य करने वाले हैं । अतः = इसलिये । परार्थानि = तीनों ही गुण अपने से भिन्न दूसरे के प्रयोजन को सिद्ध करने वाले हैं । यः = जो । परः = पर है । सः = वही । पुरुषः = चित्त से भिन्न पुरुष है । ननु = इस सम्बन्ध में आशंका होती है कि । शयनासनादीनां = संघात रूप शयन, आसन इत्यादि का । यादृशेन = जिस प्रकार के । परेण = पर । शरीरवता = शरीरी के द्वारा । पारार्थ्य = परार्थ की । उपलब्धं = उपलब्धि, सिद्धि होती है । तद् = उस । दृष्टान्तबलेन = उदाहरण के आधार पर । तादृशः = उस प्रकार का, संहत्य-कारी । एव = ही । परः = पर, पुरुष । सिध्यति = सिद्ध होता है । च=और । भवतां = आपका । यादृशः = जिस प्रकार का । असंहतरूपः = असंहत स्वरूप,

संघातविहीन। परः = पर, पुरुष। अभिप्रेतः = अभिमत, सम्मत है। तत् = उससे। विपरीतस्य = विपरीत, प्रतिकूल संघात रूप। सिद्धेः = पुरुष की सिद्धि होने से। अयं = यह, संहत्यकारित्व। इष्टविघातकृद् = अभीष्ट का विघात करने वाला, साध्य से विपरीत को सिद्ध करने वाला। हेतुः = हेतु है। उच्यते= इसका उत्तर देते हैं अर्थात् 'संहत्यकारित्व' हेतु अनुकूल साध्य को ही सिद्ध करता है, विलोम को नहीं। यद्यपि = यद्यपि। सामान्येन = सामान्य रूप से। परार्थमात्रे = केवल परार्थ, अपने से भिन्न की सिद्धि में। व्याप्तिः = व्याप्ति का। गृहीता = ग्रहण किया गया है। अर्थात् परार्थमात्र होने से एक संघात अपने से पर, दूसरे संघात के लिए भी हो सकता है, न कि संघातविहीन के लिये। तथापि = फिर भी। सत्त्वादिविलक्षण-धर्मिपर्य्यालोचनया = सत्त्व-रजस्-तमस् विलक्षण गुणों, धर्मों के धर्मी चित्त के ऊपर विचार करने से। तद्विलक्षणः = त्रिविधगुण समन्वित चित्त से विलक्षण, भिन्न अर्थात् त्रिगुणातीत। एव = ही। भोक्ता = भोक्ता रूप। परः = पर, चेतन, निर्गुण पुरुष। सिध्यति = सिद्ध होता है। च = और। यथा = जैसे। इन्धनावृते = इन्धन से आवृत, ढके हुये। शिखरिणी = पर्वत पर। विलक्षणाद् = विलक्षण। धूमाद् = धूम, हेतु के दर्शन से। अनुमान की जाती हुई। वह्निः = साध्य अग्नि। इतरवह्निविलक्षणः = अन्य अग्नि से विलक्षण होने पर भी। च इन्धनप्रभवः = इन्धन से उद्भूत हुई। एव= ही। प्रतीयते = प्रतीत होती है, बिना इन्धन के नहीं। एवं = इसी प्रकार। इह = इस प्रस्तुत उदाहरण में अपि = भी। भोग्यस्य = भोग रूप में स्थित। विलक्षणस्य=विलक्षण। सत्त्वाख्यस्य=सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त का। परार्थत्वे = दूसरे के प्रयोजन के लिये। अनुमीयमाने=अनुमान किये जाने पर। तथाविधः=उस प्रकार। एव = ही। भोक्ता = भोक्ता। अधिष्ठाता=अधिष्ठाता। परः = पर। चिन्मात्ररूपः = चेतन स्वरूप वाला। असंहतः = असंहत, संघात रहित पुरुष। सिध्यति=सिद्ध होता है। च = और। यदि = यदि। तस्य = उसका। परत्वं = परत्व, अपने से भिन्न पर, अन्य। सर्वोत्कृष्टत्वं = सबसे उत्कृष्ट रूप में, उससे श्रेष्ठ रूप में। एवं=इस प्रकार। प्रतीयते=प्रतीत होता है अर्थात् शयन, आसन इत्यादि संघातों से उनका पर उनकी अपेक्षा उत्कृष्ट होगा। तथापि = फिर भी,

ऐसा स्वीकार कर लेने पर भी। तामसेभ्यः = तमो गुण प्रधान। विषयेभ्यः = शयन, आसन इत्यादि विषयों की अपेक्षा प्रकाशरूपेन्द्रियाश्रयत्वात् = प्रकाश स्वरूप इन्द्रियों का आश्रय होने के कारण। शरीरं = शरीर। प्रकृष्यते = उत्कृष्ट सिद्ध होता है। तस्माद् = उस शरीर से। अपि = भी। इन्द्रियाणि = प्रकाश करने वाली इन्द्रियाँ। प्रकृष्यन्ते = प्रकृष्ट सिद्ध होती हैं। ततः = उन इन्द्रियों की अपेक्षा से। अपि = भी। प्रकाशरूपं = समस्त विषयों को प्रकाशित करने वाला। सत्त्वं = सत्त्वगुण विशिष्ट चित्त। प्रकृष्टं = उत्कृष्ट सिद्ध होता है। तस्य = उस चित्त का। अपि = भी। यः जो। प्रकाश्यविलक्षणः = प्रकाश से भिन्न। प्रकाशकः = प्रकाशक है। सः = वह। एव=ही। चिद्रूपः = चेतन स्वरूप वाला पुरुष। भवति = सिद्ध होता है। इति = चित्त का परत्व के रूप में होने से पुरुष इस प्रकार सिद्ध होता है। कुतः = किस प्रकार। तस्य = उस पुरुष का। संहतत्वं = संघात रूप है? अर्थात् वह पुरुष संघातरूप में नहीं असंहत है और संघात रूप चित्त द्वारा इसी पुरुष के भोग एवं अपवर्ग दोनों प्रयोजन संपन्न किये जाते हैं ॥ २३ ॥

इदानीं शास्त्रफलं कैवल्यं निर्णेतुं दशभिः सूत्रैरुपक्रमते—

इदानीं = अब। शास्त्रफलं = प्रस्तुत योगशास्त्र के फल। कैवल्यं = कैवल्य, अपवर्ग का। निर्णेतुं = निर्णय करने के लिये। दशभिः = दश। सूत्रैः = सूत्रों के द्वारा। उपक्रमते = प्रारम्भ करते हैं।

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनानिवृत्तिः ॥२४॥

अर्थः—विशेषदर्शिनः = समाधि द्वारा विशेष का दर्शन करने वाले, चित्त एवं चित् के स्वरूप का साक्षात्कार करने वाले, साधक योगी की। आत्मभाव-भावनानिवृत्तिः = आत्मभाव संवन्धी समस्त भावनाओं की निवृत्ति हो जाती है अर्थात् विवेकख्याति से बुद्धि एवं पुरुष में भेद का ग्रहण कर लेने वाले योगी की कर्तृत्व, ज्ञातृत्व, भोक्तृत्व इत्यादि सभी भावनायें दूर हो जाती हैं।

वृत्तिः—एवं सत्त्व-पुरुषयोरन्यत्वे साधिते यस्तयोर्विशेषं पश्यति अयमस्मादन्य इत्येवंरूपं, तस्य विज्ञातचित्तरूपसत्त्वस्य चित्ते या आत्मभावभावना सा निवर्त्तते, चित्तमेव कर्त्तृ, ज्ञातृ, भोक्तृ इत्यभिमानो निवर्त्तते ॥२४॥

एवं = इसी प्रकार समाधिजनित विवेकख्याति के द्वारा । सत्त्वपुरुषयोः = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त तथा पुरुष में । अन्यत्वे = पर्थक्य भेद के । साधिते = सिद्ध हो जाने पर, प्रत्यक्ष हो जाने पर । यः = जो साधक योगी । तयोः=चित्त एवं चित् उन दोनों में । विशेषं = विशेषता, भेद को । पश्यति = देखता है अर्थात् अयं = यह चेतन द्रष्टा पुरुष । अस्माद् = इस अचेतन दृश्य चित्त से । अन्यः = भिन्न है । इति = इस रूप से । एवंरूपं = इस प्रकार । विज्ञातचित्तरूप-सत्त्वस्य = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त के स्वरूप को अच्छी प्रकार से जानने वाले । तस्य = उस साधक योगी के । चित्ते = चित्त में । या = जो । आत्मभावना = आत्मभाव के सम्बन्ध में भावना है । सा = वह भावना । निवर्त्तते = निवृत्त, दूर हो जाती है अर्थात् । चित्तं = चित्त । एव = ही । कर्तृज्ञातृभोक्तृ इति = कर्ता, ज्ञाता एवं भोक्ता रूप में स्थित । अभिमानः = अभिमान, अहंभाव की । निवर्त्तते = निवृत्ति, निराकरण हो जाता है ।। २४ ।।

तस्मिन् सति किं भवतीत्याह—

तस्मिन् सति = आत्मभाव विषयक भावनाओं की निवृत्ति हो जाने पर । किं = क्या । भवति = होता है, किस फल की प्राप्ति होती है । इति आह = इसी का उत्तर देते हैं ।

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ।।२५।।

अर्थः—तदा = तब, विशेष का दर्शन हो जाने पर, चित्त एवं पुरुष में विवेक, भेद का ग्रहण हो जाने पर । विवेकनिम्नं = विवेक ज्ञान की ओर संरक्षण करने वाला, लगा हुआ । चित्तं = चित्त । कैवल्यप्राग्भारं = कैवल्य को प्रारम्भ करने वाला, अपवर्ग की ओर अभिमुख हो जाता है । विवेकख्याति से पूर्व चित्त अज्ञानयुक्त, विषयों की ओर गमन करने वाला होता है, पर चित्त एवं पुरुष के स्वरूप का दर्शन हो जाने पर चित्त ज्ञानाभिमुख होकर कैवल्य प्रदान करने वाला हो जाता है ।

वृत्तिः—यदस्य अज्ञाननिम्नपथं बहिर्मुखं विषयोपभोगफलं चित्तमासीत्, तदिदानीं विवेकमार्गमन्तर्मुखं कैवल्यप्राग्भारं कैवल्यप्रारम्भं[1] सम्पद्यते इति ।।२५।।

---

१. कैवल्य प्रारम्भं वा (पा०) ।

अस्य = इस साधक योगी का। अज्ञाननिम्नपथं = अज्ञान, अविवेक पथ में प्रवृत्त, प्रवहणशील, लगा हुआ। बहिर्मुखो = बहिर्मुखी। विषयोपभोगफलं = शब्दस्पर्श इत्यादि विषयों के उपभोग रूपी फल वाला, बाहरी विषमों का उपभोग करने वाला। यत् = जो। चित्तं = चित्त। आसीत् = था। तद् = वही चित्त। इदानीं = अब। विवेकमार्ग = विवेक मार्ग की ओर, सत्वपुरुष के विवेक ज्ञान की ओर। अन्तर्मुखं = अन्तर्मुखी, उन्मुख, प्रवृत्त। कैवल्यप्राग्भारं = कैवल्य प्राक्, अपवर्ग की सिद्धि होने तक विश्रान्ति वाला अर्थात्। कैवल्यप्रारंभं = अपवर्ग का प्रारंभ। सम्पद्यते = करने वाला होता है, मोक्ष सम्पन्न करने वाला हो जाता है। इति = यही अभिप्राय है ॥ २५ ॥

अस्मिंश्च विवेकवाहिनि चित्ते येऽन्तरायाः प्रादुर्भवन्ति, तेषां हेतुप्रतिपादनद्वारेण त्यागोपायमाह—

च = और। अस्मिन् = इस। विवेकवाहिनी = विवेक पथ में बहने वाले, संचरण करने वाले। चित्ते = चित्त में। ये = जो। आन्तरायाः = विघ्न बाधाएँ। प्रादुर्भवन्ति = उत्पन्न, उपस्थित हो जाती हैं। तेषां = उन विघ्नों के। हेतुप्रतिपादनद्वारेण = कारण का प्रतिपादन, निरूपण करते हुए। त्यागोपायं = उनके परित्याग के उपाय को। आह = बतलाते हैं।

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥२६॥

अर्थः—तत् = विवेक ज्ञान में संचरण जरने वाले, विवेकज्ञाननिष्ठचित्त के। छिद्रेषु = छिद्रों, अन्तरायों में। संस्कारेभ्यः = पूर्व के संस्कारों द्वारा, व्युत्थान कालीन संस्कारों के कारण। प्रत्ययान्तराणि = दूसरे विषयों की प्रतीति होती रहती है अर्थात् समाहित चित्त में पूर्व में अनुभूत व्युत्थान संस्कारों के प्रभाव से चित्त में ध्येय से भिन्न अन्य पदार्थों की प्रतीति होती है।

वृत्तिः—तस्मिन् समाधौ स्थितस्य, छिद्रेष्वन्तरायेषु, यानि प्रत्ययान्तराणि व्युत्थानरूपाणि ज्ञानानि, प्राग्भूतेभ्यः, व्युत्थानानुभवजेभ्यः संस्कारेभ्योऽहं ममेत्येवंरूपाणि क्षीयमाणेभ्योऽपि प्रभवन्ति, अन्तःकरणोच्छित्तिद्वारेण तेषां हानं कर्त्तव्यमित्युक्तं भवति ॥२६॥

---

१. प्राक्तनेभ्यः (पा०)।

तस्मिन् = उस। समाधौ = समाधि में। स्थितस्य = विद्यमान चित्त के अर्थात्। अन्तरायेषु = अन्तरायों में। यानि = जो। प्रत्ययान्तराणि = ध्येय से भिन्न अन्य विषयों का प्रत्यय, विषयान्तर की प्रतीति अर्थात्। व्युत्थानरूपाणि = व्युत्थान स्वरूव। ज्ञानानि = ज्ञान हैं। प्राग्भूतेभ्यः = पूर्व उत्पन्न। व्युत्थानानुभवजन्येभ्यः = व्युत्थान के अनुभव से उत्पन्न। संस्कारेभ्यः = संस्कारों के द्वारा। अहं = अहं भाव रूप। मम = ममत्व भाव रूप। इति एवंरूपाणि = इस प्रकार की दूसरे प्रत्ययों की प्रतीति। क्षीणमाणेभ्यः = पूर्व के व्युत्थान संस्कारों के क्षोण होने पर। अपि = भी। प्रभवन्ति = उत्पन्न होती है। अर्थात् चित्त के विवेक ज्ञान अभिमुखी होने पर भी बीच बीच में पूर्व अनुभूत व्युत्थान संस्कारों के कारण अन्य विषयों की प्रतीति होती ही रहती है। क्योंकि संस्कार अनादि काल से प्रवृत्त होने के कारण अत्यन्त प्रबल हैं और तात्कालिक समाधि से प्राप्त विवेकज्ञान उनकी अपेक्षा दुर्बल है। अतः व्युत्थान संस्कारों के प्रभाव से चित्त में ध्येयभिन्न विषयान्तर की प्रतीति होती ही है। अन्तःकरणोच्छित्तिद्वारेण = अन्तःकरण, अहं, मम भावना के उच्छेद के द्वारा। तेषां = उन विषयान्तर प्रत्ययों का। हानं = अभाव, हानि। कर्त्तव्यं = करना चाहिये। इति उक्तं भवति = यह अभिप्राय है ॥ २६ ॥

हानोपायश्च पूर्वमेवोक्त इत्याह—

च=और। हानोपायः=इनके निराकरण, अभाव का उपाय। पूर्वं = पहले। एव = ही। उक्तः = वर्णन किया गया है। इति = इसी को। आह = कहते हैं।

हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥२७॥

अर्थः—एषां = इन व्युत्थान संस्थारो का। हानं = हानि, अभाव निराकरण का उपाय। क्लेशवद् = अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश रूप पञ्च क्लेशों के निराकरण के उपाय के समान ('ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः' एवं 'ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः' २।१०-११) ही। उक्तं = कहा गया।

वृत्तिः—यथा क्लेशानामविद्यादीनां हानं पूर्वमुक्तं (२।१०-११), तथा

संस्कराणामपि कर्त्तव्यं, यथा ते ज्ञानाग्निना प्लुष्टा दग्धबीजकल्पा न पुनश्चित्तभूमौ प्ररोहं लभन्ते, तथा संस्कारा अपि ।।२७।।

यथा = जिस प्रकार । अविद्यादीनां = अविद्या-अस्मिता इत्यादि । क्लेशानां = पञ्चविध क्लेशों का । हानं = हानि, अभाव का उपाय । पूर्वं २।१०-११ = पूर्व के साधन पाद के सूत्र १० एवं ११ में । उक्तं = कहा गया है, क्लेशों के निराकरण के लिये उपायों का वर्णन किया गया है । तथा = उसी प्रकार । संस्काराणां = व्युत्थान के संस्कारों का । अपि = भी । कर्त्तव्यं = अभाव करना चाहिये । यथा = जैसे । ते = वे पञ्च क्लेश । ज्ञानाग्निना = विवेक ख्याति रूपी अग्नि से । प्लुष्टाः = आप्लुष्ट, भस्म हुये । दग्धबीजकल्पाः= जले हुये बीज के समान । चित्तभूमौ = चित्त की भूमि में । पुनः = फिर दग्ध होने के बाद । प्ररोहं = प्ररोह, अङ्कुर को । न = नहीं । लभन्ते = प्राप्त करते, अङ्कुरित नहीं होते । तथा = उसी प्रकार । संस्कारा = व्युत्थान के संस्कार । अपि = भी । विवेक ज्ञान से निवृत्त होकर पुनः उद्भूत नहीं होते ।। २७ ।।

एवञ्च प्रत्ययान्तरान्तरानुदये स्थिरीभूते समाधौ यादृशस्य योगिनः समाधेः प्रकर्षप्राप्तिर्भवति तथाविधमुपायमाह––

च = और । एवं = इस प्रकार । प्रत्ययान्तरान्तरा = दूसरे-दूसरे प्रत्ययों, विषयान्तरों की प्रतीति का । अनुदये = उदय न होने पर, समाहित चित्त में विषयान्तर प्रतीति का सर्वथा अभाव हो जाने पर । समाधौ = समाधि के । स्थिरीभूते = सुदृढ़, विक्षेप रहित हो जाने पर । योगिनः = योगी को । समाधेः = समाधि की । यादृशस्य = जिस प्रकार के । प्रकर्षप्राप्तिः = उत्कर्ष की सिद्धि । भवति = होती है । तथाविधं = उस प्रकार के । उपायं = उपाय को । आह = कहते हैं ।

प्रसङ्ख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्याते-
र्धर्ममेघः समाधिः ।।२८।।

अर्थः—प्रसङ्ख्याने = प्रसंख्यान में, समस्त तत्त्वों के स्वरूप का सम्यक् ज्ञान होने पर, तत्त्वों की विवेकख्याति की प्राप्ति हो जाने पर । अपि = भी ।

अकुसीदस्य = विवेक ज्ञान के प्रभाव से प्राप्त होने वाले समस्त ऐश्वर्यो, फलों में लिप्सा, प्राप्ति की अभिलाषा न रखने वाले साधक योगी की। समाधिः = समाधि। सर्वथा = सभी प्रकार से, निर्बाध रूप से निरन्तर। विवेकख्यातेः = तत्त्वों के सम्बन्ध में विवेकख्याति, भेद ज्ञान, स्वरूप ज्ञान होने से। धर्ममेघः = धर्ममेघ होती है। प्रसंख्यान के फलस्वरूप सभी ऐश्वर्यों, सर्वज्ञत्व इत्यादि की सिद्धि होती है। किन्तु इन फलों में जिसकी लिप्सा, तृष्णा नहीं है। उसमें विवेकख्याति की सदैव स्थिति बनी रहती है। अतः विक्षेप का पूर्णतः अभाव होने से तथा विषयान्तर प्रतीति की उपस्थिति न होने से उस योगी की समाधि धर्ममेघ होती है। जल का सिञ्चन करने वाले मेघ के सदृश ही यह समाधि क्लेश, विक्षेप इत्यादि का निराकरण करने वाली विवेकख्याति को प्रदान करती है तथा दुःख का एकान्तिक तथा आत्यन्तिक अभाव करने के कारण सुख रूप, धर्म रूप होने से यह समाधि धर्ममेघ है।

वृत्तिः—प्रसङ्ख्यानं यावतां तत्त्वानां यथाक्रमं व्यवस्थितानां परस्परविलक्षणस्वरूपविभावनं, तस्मिन् सत्यप्यकुसीदस्य फलमलिप्सोः, प्रत्ययान्तराराणामनुदये[1] सर्वप्रकारविवेकख्यातेः परिशेषाद् धर्ममेघः समाधिर्भवति। प्रकृष्टमशुक्लकृष्णं धर्मं परमपुरुषार्थसाधकं मेहति सिञ्चतीति धर्ममेघः, अनेक प्रकृष्टधर्मस्यैव ज्ञानहेतुत्वमित्युपपादितं भवति ॥२८॥

यथाक्रमं = क्रम के अनुसार। व्यवस्थितानां = स्थित, विद्यमान। यावतां तत्त्वानां = जितने प्रकार के तत्त्व हैं, उन सभी तत्त्वों का। परस्परविलक्षणस्वरूपविभावनं = परस्पर विलक्षण स्वरूप, लक्षण वालों का, एक दूसरे का विवेक भेद के साथ ग्रहण करना, ज्ञान प्राप्त करना हो। प्रसङ्ख्यानं = प्रसंख्यान शब्द का अभिप्राय है। तस्मिन् सति = तत्त्वों के संबन्ध में विवेकख्याति हो जाने पर। अकुसीदस्य = अकुसीद का, मूल धन का ब्याज न लेने वाले का अर्थात्। फलं = फल की, सर्वज्ञत्व, ऐश्वर्य इत्यादि फल की। अलिप्सोः = लिप्सा कामना, तृष्णा न रखने वाले योगी की। प्रत्ययान्तराणां = विषयान्तर की

---

१. अनुदयात् (पा०)।

प्रतीति का, ध्येय से भिन्न अन्य विषयों की प्रतीति का। अनुदये = उदय न होने पर, उपस्थित न होने पर। सर्वप्रकारविवेकख्यातेः = सभी प्रकार से विवेकख्याति का। परिशेषाद् = शेष रहने के कारण अर्थात् अनवरत, निरन्तर रूप से विवेकज्ञान की स्थिति बनी रहने से। धर्ममेघः = धर्ममेघ नाम वाली। समाधिः = योगी की समाधि। भवति = होती है। प्रकृष्टं = अत्यन्त उत्कृष्ट, श्रेष्ठ। अशुक्लकृष्णं = शुक्लकृष्णरहित, पुण्यपापविवर्जित। परमपुरुषार्थ-साधकं = मानव जीवन के चरम, परम प्रयोजन अपवर्ग को सिद्ध, प्रदान करने वाले। धर्मं = धर्म की। मेहति = वर्षा करती है अर्थात्। सिञ्चति = सिञ्चन करती है। इति = इसलिये धर्म की वर्षा करने के कारण। धर्ममेघः = यह समाधि धर्ममेध कही जाती है। अनेन = इस धर्ममेघ के द्वारा। प्रकृष्टधर्मस्य = अत्यन्त उत्कृष्ट, उत्तम धर्म का। एक = ही। ज्ञानहेतुत्वं = ज्ञान में हेतु, कारण बनना अर्थात् इस समाधि से उत्कृष्टतम धर्म की प्राप्ति होती है जो ज्ञान में हेतु है और यही ज्ञान अपवर्ग का संपादक है। इति उपपादितं भवति = ऐसा प्रतिपादन, निरूपण किया जाता है। धर्ममेघ समाधि धर्म एवं ज्ञान को प्रदान करके अपवर्ग की सिद्धि करने वाली है॥ २८॥

तस्माद्धर्ममेघात् किं भवतीत्याह—

तस्माद् = उस। धर्ममेघात् = धर्ममेध समाधि की सिद्धि से। किं = किस फल की। भवति = प्राप्ति होती है। इति = इसी का। आह = वर्णन कहते हैं।

ततः क्लेश-कर्मनिवृत्तिः ॥२९॥

अर्थः—ततः = उस धर्ममेध समाधि से। क्लेशकर्मनिवृत्तिः = अविद्या अस्मिता-रागद्वेष'अभिनिवेश पाँच प्रकार के क्लेशों तथा शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण तीन प्रकार के कर्मों का निराकरण होता है। इस धर्ममेघ समाधि से शुद्ध ज्ञान, विवेकख्याति की निरन्तर स्थिति बने रहने से पञ्चविध क्लेशों एवं त्रिविध कर्मों का अभाव हो जाता है और इस प्रकार योगी जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

वृत्तिः—क्लेशानामविद्यादीनामभिनिवेशान्तानां, कर्मणाञ्च शुक्लादिभेदेन त्रिविधानां, ज्ञानोदयात् पूर्वपूर्वकारणनिवृत्त्या निवृत्तिर्भवति ॥२९॥

अविद्यादीनां = अविद्या इत्यादि का, अविद्या से प्रारम्भ होने वाले। अभिनिवेशान्तानां = अभिनिवेश तक अन्त होने वाले। क्लेशानां = क्लेशों का अर्थात् अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश रूप पञ्चविध क्लेशों का। च = और। शुक्लादिभेदेन = शुक्ल इत्यादि के भेद से, शुक्ल, कृष्ण, शुक्लकृष्ण अर्थात् पुण्य, पाप एवं पुण्यपापमिश्रित। त्रिविधानां = तीन प्रकार के। कर्मणां = कर्मों का। ज्ञानोदयाद् = धर्ममेघ समाधि से ज्ञान का उदय होने से, क्रमशः ज्ञान के उत्कर्ष की प्राप्ति होने से। पूर्वपूर्वकारणनिवृत्त्या = पहले-पहले के कारणों का परिहार, निराकरण होने से। निवृत्तिः = पञ्चविध क्लेशों एवं त्रिविध कर्मों की निवृत्ति, अभाव। भवति = होता है॥ २९ ॥

तेषु निवृत्तेषु किं भवतीत्याह—

तेषु = उन पञ्चविध क्लेशों एवं त्रिविध कर्मों का। निवृत्तेषु = अभाव हो जाने पर। किं = किस फल की। भवति = प्राप्ति होती है। इति = इसी का। आह = वर्णन करते हैं।

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥३०॥

अर्थः—तदा = तब, उस समय, धर्ममेघ समाधि के प्रभाव से सभी क्लेशों एवं कर्मों का अभाव हो जाने पर। सर्वावरणमलापेतस्य = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त का आवरण करने वाले क्लेश-कर्म रूप मल कलुष के दूर हुए योगी के। ज्ञानस्य = ज्ञान का। आनन्त्यात् = अनन्त, निस्सीम, व्यापक होने से। ज्ञेयं = ज्ञातव्य विषय। अल्पं = अति ही अल्प, न्यून हो जाते हैं। अर्थात् चित्त का आवरण करने वाले दोष, मलिनता रूप समस्त क्लेशों एवं कर्मों का सर्वथा परिहार हो जाता है। इस प्रकार सत्त्व गुण के परम प्रकर्ष से चित्त का ज्ञान असीम हो जाता है और सभी विषयों का ज्ञान उसे हो जाता है।

वृत्तिः—आव्रियते चित्तमेभिरित्यावरणानि क्लेशाः, त एव मलास्तेभ्योऽपेतस्य तद्विरहितस्य, ज्ञानस्य गगननिभस्य, आनन्त्यादनवच्छेदात्, ज्ञेयमल्पं गणना-

स्पदं भवति,[1] अक्लेशेनैव सर्वं ज्ञेयं जानातीत्यर्थः ।।३०।।

एभिः = इनके द्वारा । चित्तं = चित्त । आव्रियते = आवृत्त, ढका जाता है । इति = इसलिमें । आवरणानि = इनको आवरण कहते हैं । क्लेशाः = इन्हीं को क्लेश कहते हैं । ते एव = वही । मलाः = मल, कलुष, दोष, मलिनतायें हैं । तेभ्यः = उन्हीं दोष रूप क्लेशों से । अपेतस्य = विनिर्मुक्त, दूर हूये अर्थात् । तद् = उन क्लेशों से । विरहितस्य = रहित, निर्मुक्त योगी के । गगननिभस्य = व्यापक गगन, आकाश के सदृश । ज्ञानस्य = ज्ञान का । आनन्त्याद् = अनन्त होने से अर्थात् । अनवच्छेदात् = अवच्छेद, सीमा रहित, अपरिमित होने से । ज्ञेयं = ज्ञातव्य विषय, जानने योग्य पदार्थ । अल्पं = अति ही कम होते हैं अर्थात् । गणनास्पदं = गणना के योग्य । भवति = होता है अर्थात् । अक्लेशेन = बिना क्लेश के, प्रयत्न के । एव = ही, सुगमता, सरलतापूर्वक । सर्वं = सभी । ज्ञेयं = जानने योग्य विषय को । जानाति = वह योगी जानता है । इति अर्थः = यही अभिप्राय है ।। ३० ।।

ततः किमित्याह—

ततः = उनके पश्चात्, समस्त ज्ञातव्य विषयों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो जाने पर । किं = किस फल की प्राप्ति होती है । इति = इसी का । आह = निरूपण करते हैं ।

ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ।।३१।।

अर्थः—ततः = उसके पश्चात्, धर्ममेघ समाधि से समस्त ज्ञातव्य विषयों का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर, सम्यक् विवेकख्याति की स्थिति हो जाने पर । कृतार्थानां = पुरुष के भोग एवं अपवर्ग द्विविध प्रयोजन को संपन्न कर देने वाले, पुरुषार्थ की सिद्धि को पूर्ण कर देने वाले । गुणानां=सत्त्व-रजन्-तमस् त्रिविध गुणों के । परिणामक्रमसमाप्तिः=परिणाम क्रम की समाप्ति होती है, अनुलोमी परिणाम, सृष्टि परिणाम, कार्य उत्पादन रूप परिणाम के क्रम की समाप्ति हो जाती है अर्थात् पुरुषार्थ की सिद्धि हो जाने से कृतकृत्य, कृतार्थ हुये गुण पुरुष के प्रति

1. न भवति (पा०) ।

अपने व्यापार से उपरत हो जाते हैं। पुनः उस पुरुष के लिये भोग प्रस्तुत नहीं करते और इस प्रकार अपवर्ग की सिद्धि हो जाती है।

वृत्ति:—कृतो निष्पादितो भोगापवर्गलक्षणः पुरुषार्थः प्रयोजनं यैस्ते कृतार्थाः, गुणाः सत्त्व-रजस्तमांसि, तेषां परिणाम आ-पुरुषार्थसमाप्तेरानुलोम्येन प्रातिलोम्येनाङ्गाङ्गिभावः स्थितिलक्षणः, तस्य योऽसौ क्रमो वक्ष्यमाणः, तस्य परिसमाप्तिर्निष्ठा, न पुनरुद्भव इत्यर्थः ॥३१॥

कृतः = किया है, पूर्ण किया है अर्थात्। निष्पादितः = निष्पन्न, सम्पन्न किया है। भोगापवर्गलक्षणः = भोग एवं अपवर्ग रूप। पुरुषार्थ = पुरुष का अर्थ अर्थात्। प्रयोजनं = प्रयोजन, उद्देश्य। यैः = जिनके द्वारा। ते = वे ही। कृतार्थाः = प्रयोजन को सम्पन्न कर देने वाले हैं। वे ही। गुणाः = गुण हैं अर्थात्। सत्त्वरजस्तमांसि = सत्त्व, रजस् एवं तमस् त्रिविध गुण हैं। तेषां = उन्हीं तीनों का। परिणामः = परिणाम अर्थात्। आपुरुषार्थसमाप्तेः = पुरुष के भोग एवं अपवर्ग रूप द्विविध प्रयोजनों की सिद्धि होने तक। आनुलोम्येन = अनुलोम रूप से, महत्तत्त्व-अहंकार-इन्द्रिय-तन्मात्र-महाभूत की सृष्टि, विकास के क्रम से। प्रातिलोम्येन = प्रतिलोम, प्रतिकूल रूप से संहार रूप, महाभूत-तन्मात्र-इन्द्रिय-अहंकार-महत्तत्त्व का अव्यक्त प्रकृति में तिरोभाव, विलीन होने के क्रम से। अङ्गाङ्गिभावः = गुण प्रधान रूप, परस्पर अभिभाव्य-अभिभावक, विसदृश रूप, किसी गुण का प्रवल होना और शेष का सहायक रूप से। स्थितलक्षणः = स्थितरूप वाला है अर्थात् गुण परिणाम को प्राप्त करते रहते हैं। तस्य = गुणों के उस परिणाम का। यः = जो। असौ = वह। वक्ष्यमाणः = आगे वर्णन किया जाने वाला। क्रमः = क्रम है। तस्य = उस क्रम की। परिसमाप्तिः = उस पुरुष के प्रति पूर्ण से समाप्ति, उपरति होती है अर्थात्। निष्ठा = निष्ठा होती है अर्थात्। पुनः = फिर। उद्भवः = गुणों के परिणाम के क्रम का आविर्भाव। न = नहीं होता है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है अर्थात् गुण उस पुरुष के प्रति अपने व्यापार को समाप्त कर देते हैं॥ ३१ ॥

क्रमस्योक्तस्य लक्षणमाह—

उक्तस्य = सूत्र ४।३१ में कहे गये, उल्लिखित। क्रमस्य = क्रम का।

लक्षणं = लक्षण, स्वरूप । आह = बतलाते हैं ।

क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥३२॥

अर्थः—क्षणप्रतियोगी = अनेक क्षणों का प्रतियोगी, क्षणों से सम्बन्ध रखने वाला, क्षणसंबद्ध एवं । परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः = परिणाम के अनन्तर, पश्चात् ग्रहण किया जाने वाला, प्रतीति होने वाला । क्रमः = क्रम होता है अर्थात् क्रम का सम्बन्ध अनेक क्षणों से होता है तथा इसका ग्रहण, ज्ञान परिणाम की समाप्ति, अवसान पर होता है । यद्यपि पदार्थों में सदैव परिणाम होते रहते हैं पर क्रम का ग्रहण सदा न होकर परिणाम की समाप्ति पर ही होता है ।

वृत्तिः—क्षणोऽल्पीयान् कालः तस्य योऽसौ प्रतियोगी क्षणविलक्षणः, परिणामः अपरान्तनिर्ग्राह्यः अनुभूतेषु क्षणेषु पश्चात् सङ्कलनबुद्ध्यैव यो गृह्यते, स क्षणानां क्रम उच्यते, न ह्यननुभूतेषु क्रमः परिज्ञातुं शक्यः ॥३२॥

अल्पीयान् = अत्यन्त अल्प, न्यून । कालः = काल, समय ही । क्षणः = क्षण है । तस्य = उस स्वल्प काल का । यः = जो । असौ = वह । प्रतियोगी= प्रतियोगी, संबन्ध रखने वाला है । क्षणविलक्षणः = वही विलक्षण क्षण है । परिणामः = परिणाम । अपरान्तनिर्ग्राह्यः = उपरान्त, पश्चात् ग्रहण किया जाने वाला, विदित होने वाला । अनुभूतेषु = अनुभव किये जाते हुये । क्षणेषु = क्षणों के । पश्चात् = बाद में उत्तर काल में, अनन्तर । यः = जो । सङ्कलनबुद्ध्या = संकलन करने वाली बुद्धि के द्वारा । गृह्यते = ग्रहण किया जाता है । सः = वही । क्षणानां = क्षणों का, समय का । क्रमः = क्रम । उच्यते = कहा जाता है । हि = क्योंकि । अननुभूतेषु = अनुभव न किये गये क्षणों में । क्रमः = परिणाम के क्रम का । परिज्ञातुं = ज्ञान प्राप्त करना । न = नहीं संभव है ॥ ३२ ॥

इदानीं फलभूतस्य कैवल्यस्यासाधारणस्वरूपमाह—

इदानीं = अब । फलभूतस्य = समाधि इत्यादि योगाङ्गों के फल के रूप में विद्यमान । कैवल्यस्य = कैवल्य, अपवर्ग के । असाधारणस्वरूपं = असाधारण स्वरूप को । आह = बतलाते हैं ।

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति[1] ॥३३॥

अर्थः—पुरुषार्थशून्यानां = पुरुषार्थ रहित, पुरुष के भोग एवं अपवर्ग रूप द्विविध प्रयोजन को सम्पन्न कर देने वाले, अतएव अन्य कोई प्रयोजन न होने से, पुरुष के अर्थ को सिद्ध कर देने से कृतकृत्य हुए। गुणानां = गुणों का। प्रतिप्रसवः = प्रतिप्रसव होना, प्रतिलोम परिणाम के द्वारा क्रमशः अपने मूल कारण अव्यक्त प्रकृति में विलीन हो जाना, लय को प्राप्त कर लेना ही। कैवल्यं = कैवल्य, अपवर्ग, मोक्ष है। वा = अथवा। चितिशक्तेः = चितिशक्ति, चेतन पुरुष का। स्वरूप प्रतिष्ठा = अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होना ही कैवल्य है। समस्त वृत्तियों का अभाव हो जाने से, अतः वृत्तियों के रूप का न होने से, प्रकृति में गुणों का विलय हो जाने से, उनके साथ सम्बन्ध समाप्त हो जाने से पुरुष अपने चिन्मात्र स्वरूप में स्थित हो जाता है। पुरुष का यही स्वरूप-प्रतिष्ठा ही कैवल्य है तथा प्रतिलोम परिणाम द्वारा इन्द्रिय, अहंकार, बुद्धि का मूलप्रकृति में प्रवेश कर जाना कैवल्य है। प्रकृति एवं उसके विकारों के साथ पुरुष का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है और वह केवल, चिन्मात्र रह जाता है। यही अपवर्ग है। इति = इस प्रकार मानव जीवन का परम पुरुषार्थ अपवर्ग का प्रतिपादन करके प्रस्तुत योगशास्त्र समाप्त होता है।

वृत्तिः—समाप्तभोगापवर्गलक्षणपुरुषार्थानां गुणानां यः प्रतिप्रसवः प्रतिलोमस्य परिणामस्य समाप्तौ विकारानुद्भवः[2] यदि वा—चितिशक्तेर्वृत्तिसारूप्यनिवृत्तौ स्वरूपमात्रेऽवस्थानं तत् कैवल्यमुच्यते[3]

---

१. चितिशक्तिरिति बहुसंमतः पाठः।

२. विकारानुभवः क्षणेषु इति क्वचित् पठ्यते।

३. द्र० "कैवल्यशब्देन योगशास्त्रान्तिक सूत्रेण कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा चितिशक्तेरिति अनेन प्रतिपादितस्वरूपो मोक्ष उच्यते। चितिशक्तेवृत्तिसारूप्यनिवृत्तौ स्वरूपमात्रेणावस्थानं कैवल्यमुक्तं भोजराजवृत्तौ" (भास्करकृत-ललितासहस्रनाम टीका, पृ० १३२)।

न केवलमस्मद्दर्शने क्षेत्रज्ञः कैवल्यावस्थायामेवंविधश्चिद्रूपः यावद्दर्शनान्तरेष्वपि विमृष्यमाण एवंरूपोऽवतिष्ठते, तथा हि--संसारदशायामात्मा कर्त्तृत्व-भोक्तृत्वानुसन्धातृत्वमयः प्रतीयते, अन्यथा यद्ययमेकः क्षेत्रज्ञस्तथाविधो न स्यात्, तदा ज्ञानक्षणानामेव पूर्वापरानुसन्धातृशून्यानामात्मभावे नियतः कर्मफलसम्बन्धो न स्यात् कृतहाना[४] कृताभ्यागमप्रसङ्गश्च ।

यदि येनैव शास्त्रोपदिष्टमनुष्ठितं कर्म तस्यैव भोक्तृत्वं भवेत्, तदा हिताहित-प्राप्तिपरिहाराय सर्वस्य प्रवृत्तिर्घटेत, सर्वस्यैव व्यवहारस्य हानोपादानलक्षणस्य अनुसन्धानेनैव प्राप्तत्वात्, ज्ञानक्षणानां परस्परभेदेनानुसन्धानशून्यत्वात् तदनुसन्धानाभावे कस्यचिदपि व्यवहारानुपपत्तेः कर्त्ता भोक्ता अनुसन्धाता यः स आत्मेति व्यवस्थाप्यते ।

मोक्षदशायां तु सकलग्राह्यग्राहकलक्षणव्यवहाराभावाच्चैतन्यमात्रमेव तस्य अवशिष्यते, तच् चैतन्यं चितिमात्रत्वेनैवोपपद्यते, न पुनरात्मसंवेदनेन, यस्माद् विषयग्रहणसमर्थनमेव[१] चिते रूपं, नात्मग्राहकत्वम्; तथा हि—अर्थश्चित्या गृह्यमाणोऽयमिति गृह्यते, स्वरूपं गृह्यमाणमहमिति, न पुनर्युगपद्, बहिर्मुखताऽन्तर्मुखतालक्षणव्यापारद्वयं परस्परविरुद्धंकर्त्तुं शक्यम्; अत एकस्मिन् समये व्यापारद्वयस्य कर्त्तुमशक्यत्वाच् चिद्रूपतयै[२]वावशिष्यते; अतो मोक्षावस्थायां निवृत्ताधिकारेषु गुणेषु चिन्मात्ररूप एवात्माऽवतिष्ठते इत्येव युक्तम् ।

संसारदशयान्तु एवम्भूतस्यैव कर्त्तृत्वं भोक्तृत्वमनुसन्धातृत्वञ्च सर्वमुपपद्यते; तथा हि—योऽयं प्रकृत्या सहानादिनैसर्गिकोऽस्य भोग्यभोक्तृत्वलक्षणसम्बन्धोऽविवेकख्यातिमूलः, तस्मिन् सति पुरुषार्थकर्त्तव्यतारूपशक्तिद्वयसद्भावे या महदादिभावेन परिणतिः, तस्यां संयोगे सति यदात्मनोऽधिष्ठातृत्वं, चिच्छायासमर्पणसामर्थ्यं, बुद्धिसत्त्वस्य च सङ्क्रान्तचिच्छायाग्रहणसामर्थ्यं, चिदवष्टब्धायाश्च बुद्धेर्योऽयं कर्त्तृत्व-भोक्तृत्वाध्यवसायः, तत एव सर्वस्यानुसन्धानपूर्वकस्य व्यव-

---

४. कृतनाशाकृताः (पा०) ।

१. समर्थत्वम् (पा०) ।

२. चिद्रूपतैव (पा०) ।

हारस्य निष्पत्तेः किमन्यैः फल्गुभिः कल्पनाजल्पैः[1] ?

यदि पुनरेवंभूतमार्गव्यतिरेकेण पारमार्थिकमात्मनः कर्त्तृत्वाद्यङ्गीक्रियेत, तदाऽस्य परिणामित्वप्रसङ्गः, परिणामित्वाच्चानित्यत्वे तस्य आत्मत्वमेव न स्यात्। यथा ह्येकस्मिन्नेव समये एकेनैकरूपेण न परस्परविरुद्धावस्थानुभवः सम्भवति। तथाहि—यस्यामवस्थायामात्मसमवेते सुखे समुत्पन्ने तस्यानुभवितृत्वम् न तस्यामेवावस्थायां दुःखानुभवितृत्वम्; अतोऽवस्थानानात्वात् तदभिन्नस्यावस्थावतो नानात्वं, नानात्वाच्च परिणामित्वान्नात्मत्वं, नापि नित्यत्मम्; अत एव शान्तब्रह्मवादिभिः साङ्ख्यैरात्मनः सदैव संसारदशायां मोक्षदशायाञ्च एकं रूपमङ्गीक्रियते।

ये तु वेदान्तवादिनश्चिदानन्दमयत्वमात्मनो मोक्षं[2] मन्यन्ते, तेषां न युक्तः पक्षः; तथाहि—आनन्दस्य सुखस्वरूपत्वात् सुखस्य च सदैव संवेद्यमानतयैव प्रतिभासात् संवेद्यमानत्वञ्च संवेदनव्यतिरेकेणानुपपन्नमिति संवेद्य-संवेदनयोर्द्वयोरभ्युपगमाद् अद्वैतहानिः। अथ सुखात्मकत्वमेव तस्योच्येत, तद् विरुद्धधर्माध्यासादनुपपन्नं, न हि संवेदनं संवेद्यञ्चैकं भवितुमर्हतीति।

किञ्च, अद्वैतवादिभिः कर्मात्म-परमात्मभेदेन आत्मा द्विविधः स्वीकृतः; इत्थञ्च तत्र येनैव रूपेण सुख-दुःखभोक्तृत्वं कर्मात्मनः, तेनैव रूपेण यदि परमात्मनः स्यात्, तदा कर्मात्मवत् परमात्मनः परिणामित्वमविद्यास्वभावत्वं च स्यात्। अथ न तस्य साक्षाद् भोक्तृत्वं, किन्तु तदुपढौकितमुदासीनतया अधिष्ठातृत्वेन स्वीकरोति, तदा अस्मद्दर्शनानुप्रवेशः। आनन्दरूपता च पूर्वमेव निराकृता।

किञ्च, अविद्यास्वभावत्वे निःस्वभावत्वात् कः शास्त्राधिकारी ? न तावन्नित्यनिर्मुक्तत्वात् परमात्मा, नापि अविद्यास्वभावत्वात् कर्मात्मा; ततश्च सकलशास्त्रवैयर्थ्यप्रसङ्गः। अविद्यामयत्वे च जगतोऽङ्गीक्रियमाण कस्याविद्येति विचार्य्यते—न तावत् परमात्मनः, नित्यमुक्तत्वाद् विद्यारूपत्वाच्च; कर्मात्मनोऽपि परमार्थतो निःस्वभावतया शशविषाणप्रख्यत्वे कथमविद्यासम्बन्धः ?

अथोच्यते, एतदेवविद्याया अविद्यात्वं यदविचारणीयत्वम्। अविचारणीयत्वं

---

१. कल्पना जातैः(पा०)।

२. मोक्षे (पा०)।

नाम यैवहि विचारेण दिनकरस्पष्टनीहारवद् विमलमुपयाति साऽविद्येत्युच्यते; मैवं. यद्वस्तु किञ्चित् कार्य्यं करोति तदवश्यं कुतश्चिद्भिन्नमभिन्नंवा वक्तव्यम्, अविद्यायाश्च संसारलक्षणकार्य्यकर्त्तृत्वमवश्यमङ्गीकर्त्तव्यं, तस्मिन् सत्यपि यदि अनिर्वाच्यत्वमुच्यते, तदा कस्यचिदपि वाच्यत्वं न स्यात्, ब्रह्मणोऽप्यवाच्यत्व-प्रसक्तिः ।

तस्मादधिष्ठातृतारूपव्यतिरेकेण नान्यदात्मनो रूपमुपद्यते, अधिष्ठातृत्वं च चिद्रूपत्वमेव, तद्व्यतिरिक्तस्य धर्मस्य कस्यचित् प्रमाणानुपपत्तेः ।

यैरपि नैयायिकादिभिरात्मा चेतनायोगाच्चेतन इत्युच्यते, चेतनापि तस्य मनःसंयोगजा; तथा हि—इच्छा-ज्ञान-प्रयत्नादयो ये गुणास्तस्य व्यवहारदशायाम् आत्म-मनःसंयोगादुत्पद्यन्ते, तैरेव च गुणैः स्वयं ज्ञाता कर्त्ता भोक्तेति व्यपदिश्यते, मोक्षदशायां तु मिथ्याज्ञाननिवृत्तौ तन्मूलानां दोषाणामपि निवृत्तिः, तेषां बुद्ध्यादीनां विशेषगुणानामत्यन्तोच्छित्तिः, स्वरूपमात्रप्रतिष्ठत्वमात्मनोऽङ्गीकृतं, तेषामयुक्तः पक्षः ।

यतस्तस्यां दशायां नित्यत्व-व्यापकत्वादयो गुणा आकाशादीनामपि सन्ति, अतस्तद्वैलक्षण्येनात्मनश्चिद्रूपत्वमवश्यमङ्गीकार्य्यम् । आत्मत्वविलक्षणजातियोग इति चेत्, न; सर्वस्यैव तज्जातियोगः सम्भवति; अतो जातिभ्यो वैलक्षण्यमात्मनोऽवश्यमङ्गीकर्त्तव्यं, तस्याधिष्ठातृत्वं चिद्रूपतयैव घटते नान्यथा ।

यैरपि मीमांसकैः कर्मकर्त्तृरूप आत्मा अङ्गीक्रियते, तेषामपि न युक्तः पक्षः; तथाहि—अहं-प्रत्ययग्राह्य आत्मेति तेषां प्रतिज्ञा; अहं-प्रत्यये च कर्त्तृत्वं कर्मत्वञ्चात्मन एव; न च एतद् विरुद्धत्वादुपपद्यते, कर्त्तृत्वं प्रमातृत्वं, कर्मत्वञ्च प्रमेयत्वं, न चैतद्विरुद्धधर्माध्यासो युगपदेकस्य घटते, यत् विरुद्धधर्माध्यस्तं न तदेकं, यथा भावाभावौ; विरुद्धे च कर्तृत्वकर्मत्वे ?

अथोच्यते—न कर्तृत्व-कर्मत्वयोर्विरोधः, किन्तु कर्तृत्व-करणत्वयोः । केन एतदुक्तं, विरुद्धधर्माध्यासस्य तुल्यत्वात् कर्तृत्वकरणत्वयोरेव विरोधः, न कर्तृत्व-कर्मत्वयोः; तस्मादहं-प्रत्ययग्राह्यत्वं परिहृत्य आत्मनोऽधिष्ठातृत्वमेवोपपन्नं, तच्च चेतनत्वमेव ।

यैरपि[1] 'द्रव्यबोधपर्य्यायभेदेन आत्मनोऽव्यापकस्य शरीरपरिमाणस्य परिणामित्वमिष्यते,' तेषाम् उत्थानपराहत एव पक्षः; परिणामित्वे चिद्रूपताहानेः चिद्रूपताऽभावे किमात्मन आत्मत्वम्? तस्मादात्मन आत्मत्वमिच्छता चिद्रूपत्वमेवाङ्गीकर्त्तव्यं, तच्चाधिष्ठातृत्वमेव।

केचित्[2] 'कर्त्तृरूपमेवात्मानमिच्छन्ति; तथा हि—विषयसान्निध्ये या ज्ञानलक्षणा क्रिया समुत्पन्ना, तस्यां विषयसंवित्तिः फलं, तस्याञ्च फलरूपायां संवित्तौ स्वरूपं प्रकाशरूपतया प्रतिभासते, विषयश्च ग्राह्यतया, आत्मा च ग्राहकतया, 'घटमहं जानामी' त्याकारेण तस्याः समुत्पत्तेः। क्रियायाश्च कारणं कर्त्तैव भवति, इत्यतः कर्त्तृत्वं भोक्तृत्वञ्चात्मनो रूपमिति।

तदनुपपन्नं, यस्मात्तासां संवित्तीनां स किं कर्त्तृत्वं युगपत् प्रतिपद्यते? क्रमेण वा? युगपत् कर्तृत्वे क्षणान्तरे तस्य कर्त्तृत्वं न स्यात्। अथ क्रमेण कर्त्तृत्वम्? तदैकरूपस्य न घटते। एकेन रूपेण चेत् तस्य कर्त्तृत्वं, तदैकस्य सदैव सन्निहितत्वात् सर्वफलमेकरूपं स्यात्।

अथ नानारूपतया तस्य कर्त्तृत्वम्? तदा परिणामित्वम्; परिणामित्वाच्च न चिद्रूपत्वम्; अतश्चिद्रूपत्वमात्मन इच्छद्भिर्न साक्षात्कर्त्तृत्वमङ्गीकर्त्तव्यं, यादृशमस्माभिः कर्त्तत्वमात्मनः प्रतिपादितं कूटस्थस्य नित्यस्य चिद्रूपस्य, तदेवोपपन्नम्।

एतेन 'स्वप्रकाशस्य आत्मनो विषयसंवित्तिद्वारेण ग्राहकत्वमभिव्यज्यते' इति ये[3] वदन्ति, तेऽपि अनेनैव निराकृताः।

केचिद्[4] 'विमर्शात्मकत्वेन आत्मनश्चिन्मयत्वमि'च्छन्ति, त आहुः, न विमर्शव्यतिरेकेण चिद्रूपत्वमात्मनो निरूपयितुं शक्यं, जगद्वैलक्षण्यमेव चिद्रूपत्वमुच्यते, तच्च विमर्शव्यतिरेकेण निरूप्यमाणं नान्यथा अवतिष्ठते।

तदनुपपन्नम्; इदमित्थमेव रूपमिति यो विचारः सः विमर्श इत्युच्यते, स

---

१. जैन मत प्रदर्शन परमिदं वाक्यम्।

२. दैत मत विशेष प्रतिपादन-परमिदं वाक्यम्।

३. औपनिषदैक देशिमनप्रतिपादन परमिदम्।

४. शैवसंप्रदाय विशेष मतप्रदर्शन परमिदम्।

वास्मिताव्यतिरेकेण नोत्थानमेव लभते, तथा हि—आत्मन्युपजायमानो विमर्शः 'अहमेवम्भूत' इत्यनेन आकारेण संवेद्यते; ततश्चाहंशब्दभिन्नस्य आत्मलक्षणस्य अर्थस्य तत्र स्फुरणान्न तत्र विकल्पस्वरूप[1]ताऽतिक्रमः; विकल्पश्चाध्यवसायात्मा बुद्धिधर्मः, न चिद्धर्मः, कूटस्थनित्यत्वेन चितेः सदैकरूपत्वाद् नित्यत्वान्नाहङ्कारानुप्रवेशः।

तदनेन सविमर्शत्वमात्मनः प्रतिपादयता बुद्धिरेवात्मत्वेन भ्रान्त्या प्रतिपादिता, न प्रकाशात्मनः परस्य पुरुषस्य स्वरूपमवगतमिति।

इत्थं सर्वेष्वेव दर्शनेष्वधिष्ठातृत्वं विहाय नान्यदात्मनो रूपमुपपद्यते। अधिष्ठातृत्वञ्च चिद्रूपत्वं, तच्च जडाद्वैलक्षण्यमेव, चिद्रूपतया यदधितिष्ठति तदेव भोग्यतां नयति, यच्च चेतनाधिष्ठितं तदेव सकलव्यापारयोग्यं[2] भवति।

एवञ्च सति नित्यत्वात् प्रधानस्य व्यापारनिवृत्तौ यदात्मनः कैवल्यमस्माभिरुक्तं, तद्विहाय दर्शनान्तराणां नान्या गतिः; तस्मादिदमेव युक्तमुक्तं, वृत्तिसारूप्यपरिहारेण स्वरूपे प्रतिष्ठाचितिशक्तेः कैवल्यम्।

तदेवं सिद्ध्यन्तरेभ्यो विलक्षणां सर्वसिद्धिमूलभूतां समाधिसिद्धिमभिधाय, जात्यन्तरपरिणामलक्षणस्य च सिद्धिविशेषस्य प्रकृत्यापूरणमेव कारणमित्युपपाद्य, धर्मादीनां प्रतिबन्धकनिवृत्तमात्रे एव सामर्थ्यमिति प्रदर्श्य निर्माणचित्तानामस्मितामात्रादुद्भव इत्युक्त्वा, तेषाञ्च योगिचित्तमेवाधिष्ठापकमिति प्रदर्श्य, योगिचित्तस्य चित्तान्तरवैलक्षण्यमभिधाय, तत्कर्मणामलौकिकत्वञ्चोपपाद्य, विपाकानुगुणानां वासनानामभिव्यक्तिसामर्थ्यं कार्यकारणयोश्चैक्यप्रतिपादनेन व्यवहितानामपि वासनानामानन्तर्य्यमुपपाद्य, तासामानन्त्येऽपि हेतु-फलादिद्वारेण हानमुपदर्श्य, अतीतादिष्वध्वसु धर्माणां सद्भावमुपपाद्य, विज्ञानवादं निराकृत्य, साकारवादञ्च प्रतिष्ठाप्य, पुरुषस्य ज्ञातृत्वमुक्त्वा, चित्तद्वारेण सकलव्यवहारनिष्पत्तिमुपपाद्य, पुरुषसत्त्वे प्रमाणमुपदर्श्य कैवल्यनिर्णयाय दशभिः सूत्रैः क्रमेणोपयोगिनोऽर्थानभिधाय, शास्त्रान्तरेऽप्येतदेव कैवल्यमित्युपपाद्य कैवल्यस्वरूपं निर्णीतमिति व्याकृतः कैवल्यपादः।

---

१. विकल्परूपतातिक्रमः (पा०)।

२. सकलव्यवहार योग्यं (पा०)।

मर्वे यस्य वशाः प्रतापवसतेः पादान्तसेवानति-
प्रभ्रश्यन्मकुटेषु मूर्द्धसु दधत्याज्ञां धरित्रीभृतः ।
यद्वक्त्राम्बुजमाप्य गर्वमसमं वाग्देवता संश्रिता
स श्रीभोजपतिः फणाधिपतिकृत्सूत्रेषु वृत्तिं व्यधात् ।

इति श्रीधारेश्वरभोजदेवविरचितायां राजमार्त्तण्डाभिधायां पातञ्जलवृत्तौ कैवल्यपादश्चतुर्थः ।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।

समाप्तभोगापवर्गलक्षणपुरुषार्थानां = भोग एवं अपवर्ग रूप पुरुष के द्विविध प्रयोजनों को सिद्ध, संपन्न कर देने वाले । गुणानां = गुणों का । यः = जो । प्रतिप्रसवः = प्रतिप्रसव है अर्थात् । क्षणेषु = क्षणों में । प्रतिलोमस्य = प्रतिलोम, विलोम संहार रूप । परिणामस्य = गुणों के परिणाम की । समाप्तौ= समाप्ति हो जाने पर । विकारानुद्भवः = विकारों, कार्यों का आविर्भाव न होना ही । कैवल्य है । अर्थात् पुरुष के भोग एवं अपवर्ग दोनों ही प्रयोजन सिद्ध कर देने के पश्चात् कृतार्थ होकर गुण प्रतिलोम परिणाम से अपने मूल कारण प्रकृति में तिरोहित हो जाते हैं । कृतार्थ गुणों का यही प्रतिप्रसव, कारण में विलीन होना ही कैवल्य है । वा = अथवा । यदि = यदि । चितिसक्तेः = चितिशक्ति चेतन पुरुष का । वृत्तिसारूप्यनिवृत्तौ = प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रास्मृति रूप वृत्तियों की सरूपता, सादृश्य का निराकरण हो जाने पर, वृत्तियों के रूप का न होने से । स्वरूपमात्रे = केवल अपने शुद्ध चेतन स्वरूप में । अवस्थानं = स्थित होना ही । तत् = वह । कैवल्यं = कैवल्य, मोक्ष । उच्यते = कहा जाता है अर्थात् अविद्या के कारण चित्त के साथ संबन्ध को प्राप्त कर विक्षेप काल में पुरुष भी उन्हीं चित्तवृत्तियों के अनुरूप हो जाता है । किंतु विवेक ख्याति से समस्त वृत्तियों का सर्वथा निरोध हो जाता है । अतः पुरुष अपने चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है । यही स्वरूप-प्रतिष्ठा ही कैवल्य है ।

न = न । केवलं = केवल । अस्मद्दर्शने = हमारे इस योग दर्शन में ही । क्षेत्रज्ञः = क्षेत्र शरीर को जानने वाला, आत्मा पुरुष कैवल्यावस्थायां = कैवल्य मोक्ष की दशा में । एवंविधः = इस प्रकार का । चिद्रूपः = चेतन रूप है अर्थात्

केवल इस योगदर्शन में ही अपवर्ग की अवस्था में पुरुष चेतन स्वरूप वाला नहीं है, अपितु अन्यत्र भी वह आत्मा मोक्ष की दशा में चित् रूप ही रहता है। यावद् दर्शनान्तरेषु = जितने अन्य दर्शन हैं, उनमें। अपि = भी। विमृष्यमाण: = विमर्श, विचार करने पर। वह आत्मा। एवंरूप: = इसी रूप का चेतन स्वरूप ही। अवतिष्ठते = सिद्ध होता है। तथा हि = जैसे कि। संसारदशायां = संसार की दशा में। आत्मा=यह आत्मा। कर्त्तृत्वभोक्तृत्वानुसन्धातृत्वमय: = कर्ता, भोक्ता एवं अनुसंधाता रूप से। प्रतीयते = प्रतीत होता है, उपलब्ध होता है। अन्यथा = अन्यथा, इससे विपरीत दशा में। यदि = यदि। अयं = यह। एक: = एक ही। क्षेत्रज्ञ: = क्षेत्रज्ञ आत्मा। तथाविध: = उस प्रकार का अर्थात् कर्ता-भोक्ता-अनुसंधाता। न = नहीं। स्यात् = होगा अर्थात् कर्ता-भोक्ता-अनुसंधाता रूप से तीन प्रकार से प्राप्त होने वाला यदि यह एक ही आत्मा नहीं होगा। तदा = तब। पूर्वापरानुसन्धातृशून्यानां = पूर्व एवं अपर अनुसंधाता से शून्य, रहित, प्रतीत न होने वाले। ज्ञानक्षणानां = ज्ञान के क्षणों का। एव = ही। आत्मभावे = आत्मभाव में स्थिति में आत्मा के साथ। नियत: = नियत, निश्चित रूप से। कर्मफलसम्बन्ध: = किये गये कर्म के फल का संबन्ध। न = नहीं। स्यात् = होगा। च = और। कृतहानाकृताभ्यागम प्रसङ्ग: = कृत कर्म की हानि तथा अकृत कर्म की प्राप्ति का दोष उपस्थित हो जाता है। क्षणिक विज्ञान को बौद्ध आत्मा मानते है। इस सिद्धान्त के अनुसार जो विज्ञान आत्मा प्रथम क्षण में कर्ता है, वह द्वितीय क्षण में भोक्ता और तृतीय क्षण में अनुसंधाता नहीं बन सकता, क्योंकि आत्मा एक न होकर अनेक हो जाता है। इस प्रकार स्वकृत कर्म फल का संबन्ध उस आत्मा से नहीं हो पाता। अपने किये हुए कर्मों का फल उस आत्मा को प्राप्त नहीं होगा। क्योंकि कार्य करने वाला आत्मा प्रतिक्षण परिवर्तनशील होने से फलभोग के समय विद्यमान नहीं है। इसी प्रकार किये हुये कर्म का अभाव और बिना किये हुये, दूसरे के द्वारा किये गये कर्मफल की प्राप्ति होगी। उन दोषों के कारण क्षणिक विज्ञान आत्मा नहीं है। आत्मा तो चिद्रूप है। अनादि अविद्या के कारण प्रकृति एवं उसके विकार चित्त इत्यादि के साथ संबन्ध प्राप्त कर वह एक ही आत्मा कर्ता-

भोक्ता-अनुसंधाता रूप से संसारी दशा में त्रिविध रूपों में उपलब्ध होता है। वह चिन्मात्र ही है। यदि = यदि। येन = जिस आत्मा के द्वारा। एव = ही। शास्त्रोपदिष्टं = शास्त्र के द्वारा बतलाये गये, शास्त्रविहित, सम्मत। कर्म = कर्म का। अनुष्ठानं=अनुष्ठान, संपादन किया गया है। तस्य=उस आत्मा का। एव= ही। भोक्तृत्वं=भोक्तृत्व। भवेत्=होना चाहिये, उसी आत्मा को फलों का भोक्ता होना चाहिये। तदा = ऐसी स्थिति में। हिताहितप्राप्तिपरिहाराय = हित की प्राप्ति तथा अहित का परिहार, परित्याग करने के लिये। सर्वस्य = सभी की। प्रवृत्तिः = प्रवृत्ति। घटेत् = घटित होनी चाहिये अर्थात् सभी पुरुषों का समस्त प्रयास सदैव हित की प्राप्ति एवं अहित के परिहार के लिये होना चाहिये। अनुसन्धानेन = अनुसंधान रूप से। एव = ही। हानोपादानलक्षणस्य = हान एवं उपादेय, त्याज्य एवं ग्राह्य रूप से। सर्वस्य एव = सभी पुरुषों के। व्यवहार की। प्राप्तत्वात् = प्राप्ति होने के कारण। ज्ञानक्षणानां = ज्ञान के क्षणों का। परस्परभेदेन = परस्परभेद रूप से। अनुसन्धान शून्यत्वात् = अनुसंधान से रहित होने के कारण। तद् = उस। अनुसन्धानाभावे = अनुसंधान का अभाव हो जाने पर। कस्यचिद् अपि = किसी भी पुरुष के। व्यवहारानुपपत्तेः = व्यवहार की सिद्धि न होने के कारण। यः = जो। कर्त्ता = कर्ता। भोक्ता = भोक्ता। अनुसन्धाता = अनुसंधाता। सः = वही। आत्मा = एक चेतन रूप आत्मा है अर्थात्। कर्ता, भोक्ता, अनुसंधाता रूप से तीन रूपों में प्रतीत होने वाला वह एक ही चेतन आत्मा है। इति = इस रूप से। व्यवस्थाप्यते = व्यवस्था, व्यवहार की सिद्धि होती है। यही त्रिविध रूप में उपलब्ध होने वाला आत्मा। मोक्षदशायां = मोक्ष की दशा में। तु = तो। सकलग्राह्यग्राहकलक्षण-व्यवहाराभावात् = ग्राह्य एवं ग्राहक रूप से स्थित समस्त व्यवहारों का अभाव हो जाने से। तस्य = उस आत्मा, पुरुष का। चैतन्यमात्रम् एव = केवल चेतन, चिन्मात्र स्वरूप ही। अवशिष्यते = शेष रह जाता है अर्थात् कर्ता-भोक्ता अनुसंधाता रूप सभी अभिमान का सर्वथा अभाव हो जाने से वह पुरुष अपने नैसर्गिक, स्वाभाविक, यथार्थ चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। तत् = आत्मा, पुरुष की वह। चैतन्यं = चेतनता। चितिमात्रत्वेन = चिन्मात्र होने से,

स्वभावतः चेतन स्वरूप होने से, स्वभावतः चेतन स्वरूप होने से। एव = ही उपपद्यते = सिद्ध होती है। पुनः = पुनः, किन्तु। आत्मसंवेदनेन = आत्मा के संवेदन के द्वारा। न = नहीं। यस्माद् = जिस कारण से विषयग्रहणसमर्थनं = घट-पट, शब्द स्पर्श इत्यादि विषयों के ग्रहण करने की सामर्थ्य वाला। एव = ही। चितेः = चिति शक्ति का। रूपं = स्वरूप है। आत्मग्राहकत्वं = आत्मा को ग्रहण कराना, आत्मा के स्वरूप का ज्ञान प्रदान कराना। न = नहीं। तथाहि = जैसे कि। चित्या = चिति शक्ति के द्वारा। गृह्यमाणः = ग्रहण किया जाता हुआ, ज्ञान प्राप्त किया जाता हुआ। अर्थः = पदार्थ। अयं = अयं। इति = इस रूप से। गृह्यते = ग्रहण किया जाता है, बाह्य पदार्थों, विषयों का ज्ञान 'अयं' रूप से होता है। किन्तु। गृह्यमाणं = ग्रहणकिया जाता हुआ। स्वरूपं = अहं = अहं। इति = इस रूप से ग्रहण किया जाता है। पुनः = किंतु। परस्पर-विरुद्धं = परस्पर विरोधी, प्रतिकूल। बहिर्मुखतालक्षणव्यापारद्वयं = बहिर्मुखी एवं अन्तर्मुखी रूप दो व्यापार, बाह्य विषयों तथा आत्मा के स्वरूप का। कर्त्तुं = ग्रहण करना, ज्ञान प्राप्त करना। युगपद् = एक ही साथ एक ही काल में। शक्यं = संभव। न = नहीं है अर्थात् चिति शक्ति के द्वारा परस्पर विरुद्ध दो व्यापारों का संपादन नहीं हो सकता। अतः = इसलिये। एकस्मिन् = एक ही समान। समये = काले में। व्यापारद्वयस्य = दो विरुद्ध व्यापारों का, बाह्य एव अन्तः का। कर्त्तुं = ग्रहण करना। अशक्यत्वात् = असंभव होने के कारण। चिद्रूपतया = चिन्मात्र स्वरूप से। एव = ही। अवशिष्यते = शेष बचता है, सिद्ध होता है अर्थात् आत्मा पुरुष स्वभावतः, स्वरूपतः चेतन है। इसीलिये अपने स्वरूप के साथ-साथ बाह्य विषयों का प्रकाशन यह करता है। अतः = इस प्रकार सिद्ध है कि। मोक्षावस्थायां = मोक्ष की दशा में। गुणेषु = गुणों के। निवृत्ताधिकारेषु = अधिकार समाप्त हो जाने पर, कृतार्थ गुणों का पुरुष के प्रति अपने व्यापार को समाप्त कर देने पर। चिन्मात्ररूपः = केवल चेतन स्वरूप से। एव = ही। आत्मा = आत्मा, पुरुष। अवतिष्ठते = विद्यमान हो जाता है, चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। इति एव = यही। युक्तं = उचित, समीचीन है अर्थात् मोक्ष की दशा में भी आत्मा चेतन स्वरूप वाला रहता है।

तु = किंतु । संसारदशायां = संसार की दशा में । एवंभूतस्य = इस प्रकार के, चिन्मात्र स्वरूप वाले आत्मा का । एव = ही । कर्त्तृत्वं = कर्ता रूप । भोक्तृत्वं = भोक्ता रूप । च = एवं । अनुसंधातृत्वं = अनुसधाता रूप । सर्वं = एक ही आत्मा का कर्ता-भोक्ता-अनुसधाता रूप सभी व्यवहार । उपपद्यते = घटित होता है । तथा हि = जैसे कि । अविवेकख्यातिमूलः = अविद्या जन्य । भोग्यभोक्तृत्वलक्षणसम्बन्धः=भोग्य एवं भोक्ता रूप संबन्ध । यः = जो । अयं = यह । प्रकृत्या = प्रकृति के । सह = साथ । अस्य = इस चेतन आत्मा, पुरुष का । अनादिः = अनादि । एवं । नैसर्गिकः = नैसर्गिक, स्वाभाविक संबन्ध है अर्थात् अविद्या के कारण पुरुष का प्रकृति के साथ भोक्ता-भोग्य रूप जो अनादि संबन्ध है । तस्मिन् सति = उस संबन्ध के बने रहने पर । पुरुषार्थकर्त्तव्यतारूप-शक्तिद्वयसद्भावे = भोग एवं अपवर्ग रूप पुरुष के प्रयोजन की कर्त्तव्य के रूप से दो प्रकार की शक्तियों की स्थिति होने से । या = जो। महदादिभावेन = मह-त्तत्त्व, अहंकार, इन्द्रिय, शब्द इत्यादि तन्मात्रा, आकाश इत्यादि पञ्च महाभूत इत्यादि भावों के रूप से । परिणतिः = प्रकृति का परिणाम होता है । तस्यां = उसमें । संयोगे सति = संयोग के विद्यमान रहने पर । यत् = जो । आत्मनः = आत्मा, पुरुष का । अधिष्ठातृत्वं = अधिष्ठाता रूप है । चिच्छायासमर्पणसा-मर्थ्यं=चेतन छाया को समर्पण, प्रदान करने की सामर्थ्य है, आत्मा अपनी चेतन छाया को प्रदान करता है । च = और । बुद्धिसत्त्वस्य = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त की । सङ्क्रान्तचिच्छायाग्रहणसामर्थ्यं = अपने में प्रतिबिम्बित चेतन पुरुष की । छाया को स्वीकार करने की शक्ति है, अचेतन चित्त चेतन पुरुष की छाया प्राप्त कर स्वयं भी शक्ति है, अचेतन सा हो जाता है । च = और । चिदवष्ट-ब्धायाः = चेतन आत्मा, पुरुष से अधिष्ठित, चेतन के प्रतिबिम्ब से युक्त हुई । बुद्धेः = बुद्धि, चित्त का । यः = जो । अयं = यह । कर्त्तृत्वभोक्तृत्वाध्यवसायः= कर्ता एवं भोक्ता रूप से अध्यवसाय, निश्चयात्मक ज्ञान है । ततः = उससे । एव = ही । अनुसन्धानपूर्वकस्य = अनुसंधान पूर्वक, विचार विमर्श करने से । सर्वस्य = सभी प्रकार के । व्यवहारस्य = व्यवहारों की । निष्पत्तेः = सिद्धि हो जाने के कारण । अन्यैः = अन्य । फल्गुभिः = फल्गु, तत्त्वहीन । कल्पनाजल्पैः =

काल्पनिक प्रलापों, वचनों का। किं = क्या प्रयोजन है अर्थात् वे निस्सार हैं। यदि = यदि। पुनः = पुनः। एवंभूतमार्गव्यतिरेकेण = इस प्रकार के सिद्धान्त से प्रतिकूल रूप से। आत्मनः = आत्मा का। पारमार्थिकं=पारमार्थिक स्वरूप। कर्त्तृत्वाद्यङ्गीक्रियेत = कर्ता, भोक्ता, अनुसंधाता इत्यादि रूप में स्वीकार किया किया जाये। यदा = तब, ऐसी स्थिति में। अस्य = इस आत्मा का। परिणामित्वप्रसङ्गः = परिणामी रूप दोष हो जायेगा अर्थात् एक रूप का न होकर आत्मा परिणाम को प्राप्त करने वाला हो जायेगा। च = और। परिणामित्वात् = परिणामी होने के कारण। तस्य = उस आत्मा का। अनित्यत्वे = अनित्य, परिवर्तन प्राप्त करने वाला हो जाने से, परिणामी कभी भी नित्य नहीं होता। आत्मत्वं = आत्मत्व स्वरूप। एव = ही। न = नहीं। स्यात् = होगा। अर्थात् आत्मा अपने स्वरूप से च्युत, विहीन हो जायेगा। हि = क्योंकि। यथा= जैसे। एकस्मिन्=एक। एव = ही। समये = समय में। एकेन=परिणामी एक ही आत्मा के द्वारा। एकरूपेण=अपने एक स्वरूप से। परस्परविरुद्धावस्थानुभवः = परस्पर विपरीत, प्रतिकूल, भिन्न अवस्थाओं का अनुभव, ज्ञान, प्रतीति। न=नहीं। सम्भवति=संभव है। तथाहि=जैसे कि। यस्यां=जिस एक। अवस्थायां=अवस्था में। दुःखानुभवितृत्वं=आत्मा का दुःख अनुभवितृत्व रूप है अर्थात् आत्मा दुःख का अनुभव करने वाला है। उस काल में उसे सुख इत्यादि अन्य धर्मों की प्रतीति नहीं होती। अतः = इसलिये। अवस्थानानात्वात् = अवस्थाओं के विविध, अनेक प्रकार का होने के कारण। तद् = उनसे। अभिन्नस्य = अभिन्न, सदृश, समान। अवस्थावतः = अवस्थाओं वाले आत्मा की भी। नानात्वं = विविधता, अनेकता है। च = और। नानात्वात् = अनेक रूपों का होने के कारण। तद् = उनसे। अभिन्नस्य = अभिन्न, सदृश, समान। अवस्थावतः = अवस्थाओं वाले आत्मा की भी। नानात्वं = विविधता, अनेकता है। च = और। नानात्वात् = अनेक रूपों का होने के कारण। परिणामित्वात् = परिणामी, परिवर्तनशील होने के कारण। आत्मा का। आत्मत्वं = आत्मत्व रूप, आत्मा होना ही। न = नहीं है। नित्यत्वं = आत्मा का नित्य होना। अपि = भी। न = नहीं है। अर्थात् आत्मा तो अपरिणामी, नित्य है, किंतु इस प्रकार से आत्मा के

स्वरूप की ही सिद्धि नहीं होती। अतः = इस कारण से। एव = ही। शान्त-ब्रह्मवादिभिः = शान्तब्रह्मवादी आचार्यों के द्वारा। तथा। सांख्यैः = सांख्य सिद्धान्त के आचार्यों के द्वारा। संसारदशायां = संसार की दशा में। च = तथा। मोक्षदशायां = मोक्ष की दशा में। सदैव = सदा ही। आत्मा को। एकं = एक ही। रूपं = रूप का, चिन्मात्र स्वरूप का ही। अङ्गीक्रियते = स्वीकार किया जाता है, आत्मा सदैव चिन्मात्र ही है।

ये तु = और जो। वेदान्तवादिनः = वेदान्त, अद्वैत सिद्धान्त के समर्थक आचार्य लोग। चिदानन्दमयत्वं = चित् एवं आनन्द रूप। आत्मनः = आत्मा का। मोक्षं = मोक्ष। मन्यन्ते = मानते हैं, स्वीकार करते हैं, चेतन एवं आनन्द रूप ही मोक्ष का स्वरूप है। तेषां = उन वेदान्तियों का। पक्षः = सिद्धान्त। युक्तः = उचित, समीचीन। न = नहीं है। तथा हि = जैसे कि। आनन्दस्य= आनन्द का। सुखस्वरूपत्वात् = सुख स्वरूप होने के कारण। च = और। सुखस्य = सुख की। सदैव = सदा ही। संवेद्यमानतया = संवेद्य रूप से अनुभूति रूप से। प्रतिभासात् = प्रतिभासित, प्रतीत होने के कारण। अर्थात् सुख के अनुभव की सदैव प्रतीति होने से। च = और। संवेद्यमानत्वं = अनुभूति का। संवेदनव्यतिरेकेण = संवेदन, अनुभव के साधन के बिना। अनुपपन्नं = उपपत्ति, सिद्धि नहीं होती, साधन में चित्त इत्यादि के अभाव में अनुभूति असंभव है। इति = इस रूप से संवेद्यसंवेदनयो = संवेद्य एवं संवेदन, अनुभूति एवं अनुभव के साधन। द्वयोः = दोनों की। अभ्युपगमाद् = पृथक् रूप से प्राप्ति होने के कारण। अद्वैतहानिः = अद्वैत की हानि अर्थात् द्वैत की सिद्धि होगी। अर्थात् अद्वैत वेदान्त के अनुसार मोक्ष की दशा में आत्मा आनन्द रूप रहता है। किन्तु इस आनन्द का अनुभव करने वाला साधन दो रूप होने से द्वैत की सिद्धि होती है और आत्मा अपने अद्वैत रूप से च्युत हो जाता है। अतः मोक्ष की दशा में आत्मा आनन्दरूप नहीं रहता। अथ = और यदि। तस्य = उस आत्मा का। सुखात्मकत्वं = मोक्ष की दशा में सुख स्वरूप। एव = ही। उच्येत = कहा जाय, मान लिया जाय। तब। विरुद्धधर्माध्यासाद् = दो विपरीत धर्मों के एक ही में अध्यास हो जाने से। तद् = वह मत। अनुपपन्नं = सिद्ध नहीं होता। हि =

क्योंकि। संवेदनं = संवेदन, अनुभव का साधन। च = और। संवेद्यं = अनुभूति। दोनों ही। एकं = एक ही रूप में। भवितुं = होने में। न = नहीं। अर्हति = योग्य हैं। इति = इस रूप से, संवेद्य एवं संवेदन दोनों में एक रूपता नहीं हो सकती। किञ्च = और भी। अद्वैतवादिभिः = अद्वैतवादियों के द्वारा। कर्मात्मपरमात्मभेदेन = कर्मात्मा एवं परमात्मा के भेद से। द्विविधः = दो प्रकार का। आत्मा = आत्मा। स्वीकृतः = माना गया है। च = और। इत्थं = इस प्रकार। तत्र = उनमें। येन = जिस। एव = ही। रूपेण = स्वरूप से। कर्मात्मनः = कर्मात्मा का। सुखदुःखभोक्तृत्वं=सुख तथा दुःख भोगने वाला स्वरूप सिद्ध होता है। तेन = उस। एव = ही। रूपेण = स्वरूप से, सुख तथा दुःख के भोक्ता के रूप से। यदि = यदि। परमात्मनः = परमात्मा का। स्यात्= हो जायेगा। तदा = तब। कर्मात्मवत् = कर्मात्मा के समान। परमात्मनः = परमात्मा का भी। परिणामित्वं = परिणामी स्वरूप। च = तथा। अविद्या-स्वभावत्वं = अविद्या स्वभाव वाला। स्यात् = हो जायेगा। अथ = और यदि। तस्य = उसका। साक्षाद् = प्रत्यक्ष रूप से। भोक्तृत्वं = सुख-दुःखों का भोक्ता रूप। न = नहीं है। किन्तु = किन्तु। उदासीनतया = उदासीन, असङ्ग रूप। अधिष्ठातृत्वेन = अधिष्ठाता रूप से। तद् = उसने। उपढौकितं = प्रदत्त, प्रस्तुत किये गये सुख दुःख इत्यादि भोगों को। स्वीकरोति = स्वीकार करता है, भोक्ता बनता है। तदा = ऐसी स्थिति में। अस्मद्दर्शनानुप्रवेशः = अद्वैतदर्शन का हमारे ही योगदर्शन में प्रवेश हो जाता है, अद्वैत की योग के साथ एकता हो जाती है। च = और। आनन्दरूपता = मोक्ष काल में आत्मा के आनन्द स्वरूप का। पूर्वं = पहले। एव = ही। निराकृता = निराकरण, खंडन किया जा चुका है।

किञ्च = और भी। अविद्यास्वभावत्वे = आत्मा को अविद्या स्वभाव वाला मान लेने पर, अविद्या से युक्त होने से। निःस्वभावत्वात् = निकृष्ट, ज्ञान रहित स्वभाव होने के कारण। कः = कौन आत्मा। शास्त्राधिकारी = शास्त्रीय ज्ञान का अधिकारी होगा? परमात्मा = परमात्मा। तावत् = तो। नित्यनिर्मुक्तत्वात् = नित्य, सदैव मुक्त, बन्धन से रहित होने के कारण।

न = शास्त्र का अधिकारी नहीं है। शास्त्रीय ज्ञान की उसे उपयोगिता नहीं है। अविद्यास्वभावत्वात् = अविद्या रूप स्वभाव होने के कारण। कर्मात्मा = कर्मात्मा। अपि = भी। न = शास्त्र का अधिकारी नहीं है क्योंकि अज्ञान के कारण उसकी प्रवृत्ति शास्त्र में होगी ही नहीं। च = और। ततः = उस प्रकार से। सकलशास्त्रवैयर्थ्यप्रसङ्गः = समस्त शास्त्रों की व्यर्थता, निष्प्रयोजनता का दोष उत्पन्न हो जायेगा, सभी शास्त्र प्रयोजन विहीन हो जायेंगे। च = और। जगतः = जगत्, संसार का। अविद्यामयत्वे = अविद्या स्वरूप वाला। अङ्गीक्रियमाणे = स्वीकार करने पर। अविद्या = यह अविद्या। कस्य = किसकी है, किसका स्वरूप है। इति = इस रूप से। विचार्य्यते = विचार किया जाता है। नित्यमुक्तत्वाद् = नित्य, सदैव बन्धन से मुक्त होने के कारण। च = और। विद्यारूपत्वात् = विद्या, ज्ञानमय स्वरूप होने के कारण। परमात्मनः = परमात्मा का। तावत् = तो। न = अविद्या के साथ सम्बन्ध नहीं है। कर्मात्मनः = कर्मात्मा का। अपि = भी। परमार्थतः = पारमार्थिक दृष्टि से। निःस्वभावतया = निःस्वभाव होने से, अविद्या रूप होने से। शशविषाणप्रख्यत्वे = शशक की शृङ्ग के सदृश। कथं = किस प्रकार। अविद्यासम्बन्धः = अविद्या के साथ सम्बन्ध है। अथ = और यदि इस विषय में। उच्यते = उत्तर दिया जाता है कि। अविद्यायाः = अविद्या का। एतद् = यह। एव = ही। अविद्यात्वं = अविद्यात्व स्वरूप है। यत् = जो कि। अविचारणीयत्वं = अविचारणीय, अनिर्वचनीय, अनिरूपणीय स्वरूप है। अविचारणीयत्वं नाम = अविद्या का अविचारणीय स्वरूप। या एव हि = जो इस प्रकार का है कि। विचारेण = विचार, विमर्श, ज्ञान के द्वारा। दिनकरस्पृष्टनीहारवद् = सूर्य की रश्मियों से स्पर्श किये गये नीहार, तुहिन कण के समान। विलयं = विलय, अभाव को। उपयाति = प्राप्त हो जाता है। सा = वही। अविद्या = अविद्या। इति = इस रूप से। उच्यते = कही जाती है अर्थात् अविद्या का स्वभाव अविचारणीय है, जिसका नितान्त, पूर्णतः अभाव विद्या द्वारा हो जाता है, जैसे कि निहार का अभाव सूर्य की किरणों से हो जाता है। मा एवं = इस प्रकार का नहीं है अर्थात् अविद्या का इस प्रकार का स्वरूप नहीं है। यत् = जो। वस्तु = वस्तु। किञ्चित् =

कुछ। कार्य्यं = कार्य को। करोति = करती है। तत् = वह वस्तु। अवश्यं = अवश्य ही, निश्चयपूर्वक। कुतश्चित् = किसी भी प्रकार से। भिन्नं = भिन्न। वा = अथवा। अभिन्नं = अभिन्न रूप से। वक्तव्यं = कही जानी चाहिये अर्थात् कार्य की अभिव्यक्ति करने वाला कारण अवश्य ही किसी न किसी रूप का होगा। च = और। अविद्याः = अविद्या को। संसारलक्षणकार्य्यकर्तृत्वं = संसार रूपी कार्य के कर्ता के रूप में। अवश्यं = अवश्य ही, निश्चित रूप से। अङ्गीकर्तव्यं = स्वीकार करना ही पड़ता है। तस्मिन्सति = अविद्या के कार्यभूत उस संसार के विद्यमान रहने पर। अपि = भी। यदि = यदि। अनिर्वाच्यत्वं= कारण रूपा अविद्या को अनिर्वाच्य, अविचारणीय रूप से। उच्यते = कहा जाता है। तदा = तब, ऐसी स्थिति में। कस्यचिद् = किसी का। अपि = भी। वाच्यत्वं=स्थिति रूप में कथन। न = नहीं। स्यात् = संभव होगा। ब्रह्मणः = समस्त जगत् का कारण ब्रह्म की। अपि = भी। अवाच्यत्वंप्रसक्तिः = अवाच्यत्व, अविचारणीय रूप से प्रसक्ति होगी, ब्रह्म के अभाव की सिद्धि होगी। तस्माद् = इसलिये। अधिष्ठातृतारूपव्यतिरेकेण = अधिष्ठाता रूप से भिन्न प्रकार में। आत्मनः = आत्मा का। अन्यद् = अन्यं, विपरीत। रूपं = स्वरूप। न = नहीं। उपपद्यते = उपपन्न, सिद्ध होता है। च = और। अधिष्ठातृत्वं = आत्मा का अधिष्ठाता रूप। चिद्रूपत्वं = चेतन स्वरूप। एव = ही है। तद् = उस चेतन से। व्यतिरिक्तस्य = अतिरिक्त, भिन्न। कस्यचित् = किसी अन्य। धर्मस्य = धर्म को। प्रमाणानुपपत्तेः = किसी भी प्रमाण से सिद्ध न होने के कारण। अधिष्ठता आत्मा चिन्मात्र ही है, मोक्ष की दशा में भी वह चिन्मात्र ही रहता है, यह सिद्ध होता है।

यैः = जिन। नैयायिकादिभिः = न्याय-वैशेषिक आचार्यों के द्वारा। अपि भी। आत्मा = आत्मा। चेतनायोगात् = चेतनायोगात् = चेतना के संयोग के कारण। चेतनः = उद्भूत चेतना वाला। इति = इस रूप से। उच्यते = कहा जाता है। चेतना = वह चेतना। अपि = भी। तस्य = उस आत्मा का। मनः संयोगजा = मन के साथ सम्बन्ध होने पर उत्पन्न होने वाली है अर्थात् न्यायवैशेषिक सिद्धान्त में आत्मा स्वभावतः अचेतन है। मन के साथ संयोग

होने पर उसमें चेतनता उद्भूत होती है। अतः यहाँ पर चैतन्य आत्मा का स्वरूप नहीं अपितु आगन्तुक धर्म है। तथाहि = जैसे कि। व्यवहारदशायां = व्यवहार दशा में। तस्य = उस आत्मा के। इच्छाज्ञानप्रयत्नादयः = इच्छा, ज्ञान, प्रत्यक्ष इत्यादि। ये = जो। गुणाः = गुण हैं। आत्ममनःसंयोगाद् = आत्मा का मन के साथ सम्बन्ध होने पर। उत्पद्यन्ते = उत्पन्न होते हैं। च = और। तैः एव = उन्हीं। गुणैः = इच्छा, ज्ञान, प्रयत्न इत्यादि गुणों के कारण ही। स्वयं = वह अत्मा स्वयं ही। ज्ञाता = ज्ञाता। कर्ता=कर्ता। भोक्ता = भोक्ता। इति = इस रूप से। व्यपदिश्यते = कहा जाता है। तु = किन्तु। मोक्षदशायां= मोक्ष की दशा में। मिथ्या ज्ञान का अभाव हो जाने पर। तन्मूलानां = उस मिथ्या ज्ञान के मूल भूत, कार्य रूप, अज्ञान के कारण उत्पन्न होने वाले। दोषाणां = दोषों का। अपि = भी। निवृत्तिः = निराकरण हो जाता है। कारण मिथ्या ज्ञान के दूर होते ही तज्जन्य समस्त दोषों का परिहार स्वतः हो इस प्रकार। तेषां = उन। बुद्धयादीनां = बुद्धि इत्यादि के। विशेषगुणानां = इच्छा, ज्ञान, प्रयत्न इत्यादि विशेष गुणों का। अत्यन्तोच्छित्तिः = अत्यन्त उच्छेद्, सर्वथा अभाव हो जाता है। और इस प्रकार। आत्मनः = आत्मा का। स्वरूपमात्र-प्रतिष्ठत्वं = अपने स्वरूप में ही स्थित होना। अङ्गीकृतं = स्वीकार किया गया है। तेषां = उन न्याय वैशेषिक आचार्यों का। पक्षः = पक्ष, आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में सिद्धान्त। अयुक्तः = समीचीन, उचित नहीं है। यतः = क्योंकि। तस्यां = उस। दशायां = मोक्ष की दशा में। आत्मा में। आकाशादीनां = आकाश इत्यादि द्रव्यों के। अपि = भी। नित्यत्वव्यापकत्वादयः = नित्यत्व, व्यापकत्व इत्यादि। गुणाः = गुण। सन्ति = रहते ही है। अतः = इसलिये। तद् = उनसे। वैलक्षण्येन = विलक्षण, भिन्न। आत्मनः = आत्मा का। चिद्रूपत्वं = चेतन स्वरूप। अवश्यं = अवश्य ही। अङ्गीकार्य्यं = स्वीकार करना चाहिये। चेत् = यदि। आत्मत्वलक्षणजातियोगः = आत्मत्व रूप जाति का योग, संबन्ध। इति = इस रूप से मान लिया जाय। न = किन्तु ऐसा नहीं है। क्योंकि। सर्वस्य एव = सभी का। तज्जातियोगः = उस आत्मत्व जाति के साथ सम्बन्ध। सम्भवति = संभव है। अतः = इसलिये। जातिभ्यः = आत्मत्व

रूप जाति से। वैलक्षण्यं = विलक्षण, भिन्न, व्यतिरिक्त। आत्मनः = आत्मा को। अवश्यं = निश्चय रूप से। अङ्गीकर्त्तव्यं = स्वीकार करना ही पड़ेगा। तस्य = उस आत्मा का। अधिष्ठातृत्वं = अधिष्ठाता रूप। चिद्रूपतया = चेतन स्वरूप स्वीकार करने पर। एव = ही। घटते = घटित होता है। अन्यथा = अन्य किसी स्वरूप को मानने पर। न = आत्मा का अधिष्ठाता होना सिद्ध नहीं होता।

यैः = जिन। मीमांसकैः = मीमांसकों के द्वारा। अपि = भी। कर्मकर्तृ-रूपः = कर्मों के कर्त्ता के रूप में। आत्मा = आत्मा। अङ्गीक्रियते = स्वीकार किया जाता है। तेषां = उन मीमांसकों का। अपि = भी। पक्षः = सिद्धान्त। युक्तः = उचित। न = नहीं है। तथा हि = जैसे कि। 'अहं प्रत्ययग्राह्यः' = अहं प्रत्यय द्वारा ग्रहण किया जाने वाला। आत्मा = आत्मा है। इति = इस रूप में। तेषां = उन मीमांसकों की। प्रतिज्ञा = प्रतिज्ञा है। च = और। अहं के प्रत्यय में। आत्मनः = आत्मा का। कर्तृत्वं = कर्ता। च = एवं। कर्मत्वं = कर्म रूप। एव = ही सिद्ध होता है। च = किन्तु। विरुद्धत्वाद् = कर्ता एवं कर्मरूप परस्पर विपरीत होने के कारण। एतद् = आत्मा का यह कर्मकर्तृत्व रूप। न = नहीं। उपपद्यते = समीचीन प्रतीत होता है। कर्त्तृत्वं = कर्ता रूप। प्रमातृत्वं = प्रमाता है। च = और। कर्मत्वं = कर्म रूप। प्रमेयत्वं = प्रमेय होता है अर्थात् कर्ता तो ज्ञाता और कर्म ज्ञेय, विषय रूप होता है। च = और। एतद् विरुद्धधर्माध्यासः = कर्ता-कर्म ज्ञाता-ज्ञेय रूप परस्पर भिन्न धर्मों का यह अध्यास, आरोपण। युगपद् = एक ही साथ, एक ही काल में। एकस्य = एक ही धर्मी का। न = नहीं। घटते = घटित होता। एक ही समय में एक ही धर्मी में पर-स्पर विरुद्ध धर्मों की स्थिति नहीं हो सकती क्योंकि। यत् = जो। विरुद्धधर्मा-ध्यस्तं = परस्पर विरुद्ध धर्मों से अध्यस्त हैं, जिसमें विपरीत धर्मों का समारोप है। तद् = वह वस्तु। एकं = एक। न = नहीं हो सकती। यथा = जिस प्रकार। भावाभावौ = परस्पर विरुद्ध भाव एवं अभाव कभी भी एक रूप नहीं हो सकते। च = और, उसीप्रकार। कर्तृकर्मत्वे = कर्ता एवं कर्म रूप धर्म। विरुद्धे = परस्पर विपरीत, प्रतिकूल हैं। अथ = अब इस संबन्ध में। उच्यते =

कहा जाता है कि । कर्त्तृत्वकर्मत्वयोः = कर्तृत्व एवं कर्मत्व इन दोनों में परस्पर । विरोधः = विरोध, भेद । न = नहीं है । किन्तु = अपितु । कर्त्तृत्वकरणत्वयोः = कर्तृत्व एवं करणत्व में ही विरोध है । केन = किसके द्वारा, किस हेतु से । एतद् = यह । उक्तं = कहा जाता है । विरुद्धधर्माध्यासस्य = विरुद्ध धर्मों के अध्यास का । तुल्यत्वात् = समान होने के कारण । कर्त्तृत्वकरणत्वयोः = कर्ता तथा करण इन दोनों में । एव=ही । विरोधः = विरोध है । कर्त्तृत्वकर्मत्वयोः = कर्तृत्व एवं कर्मत्व इन दोनों में । न = विरोध नहीं है । तस्माद् = इस प्रकार । अहं प्रत्ययग्राह्यत्वं = आत्मा के अहं प्रत्यय ग्राह्यत्व का, अहं प्रत्यय द्वारा ही आत्मा है इसका । परिहृत्य = परिहार, परित्याग करके । आत्मानः = आत्मा का । अधिष्ठातृत्वं = अधिष्ठाता स्वरूप । एव = ही । उपपन्नं = सिद्ध होता है । च = और । तत् = आत्मा का वह अधिष्ठातृरूप । चेतनत्वं = चेतन स्वरूप, चिन्मात्र । एव = ही है ।

यैः = जिन अन्य दार्शनिकों अर्थात् जैन आचार्यों के द्वारा । अपि = भी । द्रव्यबोधपर्य्यायभेदेन = द्रव्य बोध के पर्याय भेद से । अव्यापकस्य = अव्यापक, परिच्छिन्न । शरीरपरिणामस्य = ग्रहण किये गये शरीर-परिमाण वाले । आत्मनः = आत्मा का परिणामित्वं = परिणामी रूप । इष्यते = स्वीकार किया जाता हैं । तेषां = उन जैनियों का । पक्षः = आत्मविषयक सिद्धान्त । उत्थान-पराहत = प्रस्तुत किये हुये हेतु के आधार पर निरस्त, असिद्ध हो जाता है । जैन सिद्धान्त के अनुसार पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश काल के सदृश आत्मा द्रव्य है । वह ज्ञान-दर्शन युक्त, अमूर्त, कर्ता, भोक्ता, स्वदेहपरिमाण, ऊर्ध्वगति स्वभाव वाला है । परिणामित्वे = आत्मा के परिणामी, परिवर्तनशील होने से । चिद्रूपताहानेः = चेतन स्वरूप की हानि, असिद्धि होने से । जैन दर्शन का आत्मा संबन्धी सिद्धान्त समीचीन नहीं है । चिद्रूपताऽभावे = आत्मा में चेतन स्वरूप का अभाव हो जाने से । किं = क्या । आत्मनः = आत्मा का । आत्मत्वं = आत्मा रूप होना सिद्ध हो सकेगा ? तस्माद् = इसलिये । आत्मनः = आत्मा का । आत्मत्वं = आत्मत्व, आत्मस्वरूपता की । इच्छता = इच्छा, अभिलाषा रखने वाले के द्वारा, अर्थात् आत्मा के यथार्थ स्वरूप के लिये । चिद्रूपत्वं =

चेतन रूप चिन्मात्र। एव = ही। अङ्गीकर्त्तव्यं = स्वीकार करना पड़ेगा। च = और। तत् = आत्मा का वही चिन्मात्र स्वरूप। अधिष्ठातृत्वं = अधिष्ठाता रूप। एव = ही है।

केचित् = कुछ दार्शनिक। आत्मानं = आत्मा को। कर्तृरूपं = कर्ता के रूप में। एव = ही। इच्छति = स्वीकार करते हैं। तथा हि = जैसे कि। विषयसान्निध्ये = विषय के सान्निध्य, सामीप्य, संनिकर्ष में। या = जो। ज्ञानलक्षणा = ज्ञान लक्षण वाली, ज्ञान रूप। क्रिया = क्रिया। समुत्पन्ना = उत्पन्न हुई हैं। तस्यां = उसमें। विषयसंवित्तिः = विषय का ज्ञान ही। फलं = फल है। च = और। तस्यां = उस। फलरूपायां = फलरूप। संवित्तौ = संवित्ति, ज्ञान में। स्वरूपं = स्वरूप। प्रकाशरूपतया = प्रकाश रूप से। प्रतिभासते = प्रतिभासित, प्रकाशित होता है। च = और। विषयः = विषय, पदार्थ। ग्राह्यतया = ग्राह्य, ज्ञेय रूप से। च = और। आत्मा = आत्मा। ग्राहकतया = ग्रहक ज्ञाता रूप से प्रकाशित होता है अर्थात्। 'घटमहं जानामि' = 'मैं ज्ञाता घट विषय ज्ञेय को जानता हूँ'। इति = इस। आकारेण = आकार, रूप से। तस्याः = उस संवित्ति, ज्ञान की। समुत्पत्तिः = उत्पत्ति होने से। च = और। क्रियायाः = क्रिया का। कारणं = कारण, करने वाला, संपादक। कर्त्ता = कर्त्ता। एव = ही। भवति = होता है। **इति** = इस रूप से। अतः = इसलिये, इस प्रकार। कर्तृत्वं = कर्ता। च = **एवं**। भोक्तृत्वं = भोक्ता। आत्मनः = आत्मा का। रूपं = स्वरूप है। इति = ऐसा सिद्ध होता। तद् = वह आत्मा का कर्तृत्व एव भोक्तृत्व स्वरूप। अनुपपन्नं = असिद्ध है। यस्मात् = क्योंकि। तासां = उन। संवित्तीनां = ज्ञानों का। सः = वह आत्मा। किं = क्या। कर्तृत्वं = कर्ता। युगपत् = एक ही साथ। प्रतिपद्यते = सिद्ध होता है ? वा = अथवा। क्रमेण = क्रमशः उन ज्ञानों का कर्ता बनता है। युगपत् = एक ही साथ। कर्तृत्वे = उन सभी संवित्तियों का कर्ता आत्मा को मान लेने पर। क्षणान्तरे = दूसरे क्षण में। तस्य = उस आत्मा का सतत परिणामी होने के कारण। कर्तृत्वं = कर्ता होना। न = नहीं। स्यात् = सिद्ध होगा। अथ = और यदि। क्रमेण = क्रमशः। कर्तृत्वं = उस आत्मा का कर्तृत्व स्वीकार किया जाय।

तदा = ऐसी स्थिति में। एकरूपस्य = एकरूप की। न = नहीं। घटते = सिद्ध होती। चेत् = यदि। एकेन = एक ही। रूपेण = स्वरूप से। तस्ये = उस आत्मा का। कर्त्तृत्वं = कर्तृत्व स्वीकार किया जाय। तदा = तब। एकस्य = आत्मा के एक ही स्वरूप के। सदैव = सदा ही। सन्निहितत्वात् = विद्यमान रहने के कारण। सर्वफलं = कर्ता द्वारा किये सभी फल। एकरूपं = एक ही रूप का। स्यात् = हो जायेगा। अथ = और यदि। नानारूपतया = अनेक प्रकार के रूपों के द्वारा। तस्य = उस आत्मा। का। कर्त्तृत्व = कर्तृत्व स्वीकार का लिया जाय। तदा = तब, ऐसी स्थिति में। परिणामित्वं = वह आत्मा परिणामी सिद्ध हो जायेगा। च = और। परिणामित्वात् = परिणामि होने के कारण। चिद्रूपत्वं = आत्मा का चेतन स्वभाव होना। न = नहीं सिद्ध होगा। अतः = इस इसलिये। आत्मनः आत्मा का। चिद्रूपत्वं = चेतन स्वरूप की। इच्छद्भिः = इच्छा करने वाले के द्वारा। साक्षात् = साक्षात्, प्रत्यक्ष रूप से। कर्त्तृत्व = कर्ता रूप। न = नहीं। अङ्गीकर्त्तव्यं = स्वीकार करना चाहिये। इसलिये। कूटस्थस्य = कूटस्थ, समस्त विकारों, परिणामों से रहित। नित्यस्य = नित्य। नित्य। चिद्रूपस्य = चेतन स्वरूप वाले। आत्मनः = आत्मा का। यादृशं = जिस प्रकार का। कर्त्तृत्वं = स्वरूप। अस्माभिः = हम लोगों के द्वारा, योगशास्त्र द्वारा। प्रतिपादितं = प्रतिपादन, निरूपण किया गया है, अभिमत है। तद् = वह। एव = ही। आत्मा का स्वरूप। उपपन्नं = सिद्ध है, समीचीन है।

एतेन = इस सिद्धान्त के अनुसार। 'स्वप्रकाशस्य = स्वयं प्रकाश स्वरूप। आत्मनः = आत्मा का। विषयसंवित्तिद्वारेण = विषय के ज्ञान के द्वारा। ग्राहकत्वं = ग्राहकत्व, ग्रहण करने वाला स्वरूप। अभिव्यज्यते = अभिव्यक्त होता है'। इति = इस रूप से। ये = जो। वदन्ति = कहते हैं। ते अपि = वे भी। अनेन = इस निरूपण के द्वारा। एव = ही। निराकृताः = निराकृत, निरस्त हो जाते हैं। अर्थात् उनके मत का प्रत्याख्यान, खण्डन हो जाता है।

केचिद् = कुछ दार्शनिक। विमर्शात्मकत्वेन = विमर्शात्मक रूप से। आत्मनः = आत्मा का। चिन्मयत्वं = चेतनस्वरूप। इच्छन्ति = स्वीकार करते

हैं । ते = वे । आहुः = कहते हैं । विमर्शव्यतिरेकेण = विमर्श के बिना, विमर्श के अभाव में । आत्मनः = आत्मा का । चिद्रूपत्वं = चेतन स्वरूप । निरूपयितुं = निरूपित करना, प्रस्तुत करना । न = नहीं । शक्यं = संभव है । जगद्वैलक्षण्यं= जगत् की विलक्षणता, विविधता, विरूपता । (जडाद्वैलक्षणं = जड़ अचेतन से भिन्न; पाठभेद) । एव = ही । चिद्रूपत्वं = चेतन रूप से । उच्यते = कही जाती है । च = और । तत् = वह । विमर्शव्यतिरेकेण = विमर्श के बिना । निरूप्यमाणं = निरूपित, वर्णन, अभिव्यक्त किया जाना । अन्यथा = किसी दूसरे प्रकार । से । न = नहीं । अवतिष्ठते = स्थित, सिद्ध होता है । तद् = वह, विमर्शात्मक ही आत्मा का चिद्रूप है । अनुपपन्नं = असिद्ध है । इदं = यह वस्तु । इत्थं = इस प्रकार की है । एवंरूपं = इस रूप का । इति = इस प्रकार । यः = जो । विचारः = विचार होता है । सः = वही विचार । विमर्शः = विमर्श । इति = इस रूप से । उच्यते = कहा जाता है । च = और । सः = विचार रूप विमर्श । अस्मिता व्यतिरेकेण = अस्मिता के बिना । उत्थानं= उत्थान, उपस्थिति, अभिव्यक्ति को । एव = ही । न नहीं । लभते = प्राप्त करता । तथा हि = जैसे कि । आत्मनि = आत्मा में । उपजायमानः = उत्पन्न, उपस्थित होने वाला । विमर्शः = विमर्श । 'अहं = मैं । एवं = इस प्रकार का । भूतः = हो गया हूँ ।' इति = इस रूप से । अनेन = इस । आकारेण = आकार के द्वारा । संवेद्यते = ज्ञात होता है, 'अहमेवम्भूतः' रूप से प्रतीति होती है । च = और । ततः = उससे । अहंशब्दभिन्नस्य = अहं शब्द से भिन्न (अहंशब्द-सिम्भिन्नस्य = अहं शब्द मिश्रित, अहं रूप अह के साथ एकरूपता वाले; पाठभेद) आत्मलक्षणस्य = आत्मा रूप । अर्थस्य = अर्थ की । तत्र = उस ज्ञान में । स्फुरणात् = स्फुरण, अभिव्यक्ति होने से । तत्र = उसमें । विकल्परूपता = विकल्प के स्वरूप का । अतिक्रमः = अतिक्रमण । न = नहीं है अर्थात् विकल्प रूप ही है । च = और । विकल्पः = यह विकल्प । अध्यवसायात्मा = अध्यवसायात्मक, निश्चयात्मकज्ञान रूप । बुद्धिधर्मः = बुद्धि, चित्त का ही धर्म है । चिद्धर्मः = चित्, चेतन रूप पुरुष का धर्म । न = नहीं है अर्थात् विकल्प, अध्यवसाय बुद्धि का ही धर्म है 'अध्यवसायो बुद्धिः' । पुरुष तो समस्त धर्मों से रहित,

निर्गुण, चिन्मात्र है। चित्तेः = चित्ति का, पुरुष का। कूटस्थनित्यत्वेन = कूटस्थ नित्य होने से। सदा = सभी अवस्थाओं में। एकरूपत्वाद् = एक ही स्वरूप का, परिणाम, विकार रहित होने के कारण। नित्यत्वात् = नित्य, विनाश रहित होने के कारण। अहंकारानुप्रवेशः = अहंकार में प्रवेश, अन्तर्भाव। न = नहीं है अर्थात् आत्मा और अहंकार दोनों एक रूप नहीं है। तद् = इस प्रकार। अनेन = इस सिद्धान्त निरूपण के द्वारा। सविमर्शत्वं = विमर्शात्मक को ही। आत्मनः = आत्मा का स्वरूप। प्रतिपादयता = प्रतिपादन करके वाले के द्वारा। भ्रान्त्या = भ्रान्ति, मिथ्यज्ञान के कारण। बुद्धिः = बुद्धि। एव = ही। आत्मत्वेन = आत्मा के रूप में। प्रतिपादिता = प्रतिपादित की गई है अर्थात् भ्रान्ति के कारण चित्त को ही आत्मा स्वीकार कर लिया गया है। इति = इस प्रकार। प्रकाशात्मनः = प्रकाश रूप। परस्य = पर। पुरुषस्य = पुरुष का। स्वरूपं = स्वरूप। न = नहीं। अवगतं = प्रतीत, सिद्ध होता है अर्थात् वह आत्मा, पुरुष चिद्रूप हीं है।

इत्थं = इस प्रकार। सर्वेषु एव = सभी। दर्शनेषु = दर्शनों में। अधिष्ठातृत्वं = अधिष्ठाता स्वरूप को। बिहाय = छोड़कर। आत्मनः = आत्मा का। अन्यद् = अन्य, भिन्न। रूपं = स्वरूप, अधिष्ठाता से भिन्न स्वरूप। न = नहीं। उपद्यते = उपपन्न, सिद्ध होता है। च = और। चिद्रूपत्वं = चिद्रूपता, चेतनता ही। अधिष्ठातृत्वं = आत्मा का अधिष्ठाता स्वरूप है। च = और। तद् एव = वही चेतन स्वरूप। जडाद् = जड़, अचेतन पदार्थों से। वैलक्षण्यं= विलक्षण, विपरीत होता है। यद् = जो। चिद्रूपपतया = चेतन रूप से। अधितिष्ठति = नियमित करता है, अधिष्ठाता, नियन्ता बनता है। तद् एव = वही। भोग्यतां = भोग्यता को। नयति = ले जाता है, प्राप्त करता है। च = और। यत् = जो वस्तु। चेतनाधिष्ठितं = चेतन से अधिष्ठित, नियंत्रित होती है। तद् एव = वही। सकलध्यापारयोग्यं = सभी व्यापार के योग्य, समस्त व्यवहार के अनुकूल। भवति = होती है। च = और। एवं सति = ऐसा होने पर, आत्मा के चिद्रूप होने से। नित्यत्वात् = नित्य होने से। प्रधानस्य = प्रधान, प्रकृति के। व्यापारनिवृत्तौ = व्यापार से विपरीत हो जाने पर, पुरुष

के भोग एवं अपवर्ग द्विविध प्रयोजन को संपन्न कर देने के बाद, अपने व्यापार से प्रकृति के उपरत हो जाने पर। यद् = जो चिन्मात्र प्रतिष्ठा। आत्मनः = आत्मा, पुरुष का। कैवल्यं = कैवल्य, मोक्ष। अस्माभिः = हम लोगों के द्वारा, योगशास्त्र के द्वारा। उक्तं = कहा गया है, मोक्ष के जिस स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। तद् = उस चिन्मात्र स्वरूप को। विहाय = छोड़कर। दर्शनान्तराणां = दूसरे दर्शनों की। अन्या = भिन्न। गतिः = गति, उपाय। न = नहीं है अर्थात् चेतन स्वरूप की प्राप्ति ही सभी दर्शनों को मोक्ष की अवस्था माननी पड़ेगी। तस्माद् = इसलिये। इदं = यह मोक्ष का स्वरूप। युक्तं = उचित, समीचीन। एव = ही। उक्तं = कहा गया है। चितिशक्तेः = चिति शक्ति चेतन पुरुष का। वृत्तिसारूप्यपरिहारेण = प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति रूप वृत्तियों की समान रूपता का परिहार करके, वृत्तियों के सदृश रूप का न हो करके। स्वरूपे = अपने ही चिन्मात्र केवल चेतन स्वरूप में। प्रतिष्ठा= प्रतिष्ठित, हो जाना ही। कैवल्यं = कैवल्य है। समस्त वृत्तियों का सर्वथा अभाव हो जाने से अपने ही चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना ही पुरुष का अपवर्ग है ॥ ३४ ॥

तदेवं = इस प्रकार से। सिद्ध्यन्तरेभ्यः = अन्य सिद्धियों, जन्म-औषधि-मन्त्र-तप से प्राप्त होने सिद्धियों से। विलक्षणां = विलक्षण, भिन्न। सर्वसिद्धिमूलभूतां = समस्त सिद्धियों के मूल रूप में स्थित। समाधिसिद्धि = समाधि की साधना से प्राप्त होने वाली सिद्धि का। अभिधाय = वर्णन करके। च = और। जात्यन्तरपरिणामलक्षस्य = एक जाति से दूसरी जाति में प्राप्त होने वाले परिणाम रूप। सिद्धिविशेषस्य = विशेष प्रकार की सिद्धि का। प्रकृत्यापूरणं = प्रकृति के आपूर, अवयव प्रवेश को। एव = ही। कारणं = कारण। इति = इस रूप में। उपपाद्य = प्रतिपादन करके अर्थात् प्रकृति आपूर को जात्यन्तरपरिणाम में कारण रूप से वर्णन करके। धर्मादीनां = धर्म इत्यादि की। प्रतिबन्धकनिवृत्तमात्रे = प्रकृति के परिणाम में प्रतिबन्धक, आवरणस्वरूप अधर्म इत्यादि के केवल निवारण, दूर करने में। एव = ही। सामर्थ्य = शक्ति है, प्रकृति को प्रेरित करने की नहीं। इति = इस रूप से। प्रदर्श्य =

प्रदर्शित करके। निर्माणचित्तानां = योगी द्वारा बनाये गये चित्तों की। अस्मितामात्रात् = केवल अस्मिता से। उद्भवः उत्पत्ति होती है। इति = ऐसा। उक्त्वा = कह करके। च = और। तेषां = अस्मिता से उद्भूत उन चित्तों की। योगीचित्तं = योगी का अपना एक चित्त। एव = ही। अधिष्ठापकं = अधिष्ठाता, प्रयोजक होता है। इति = इस रूप से। प्रदर्श्य = निरूपण करके। योगिचित्तस्य = योगी के चित्त की। चित्तान्तरवैलक्षण्यं = दूसरे चित्तों से विलक्षणता, भेद को। अभिधाय = कह करके। च = और। तत्कर्मणां = योगी के कर्मों की। अलौकिकत्वं = अलौकिक लोक, सामान्य लोगों से भिन्न रूप को अर्थात् केवल अशुक्ल एवं अकृष्ण द्विविध रूप का ही। उपपाद्य = प्रतिपादन करके। विपाकानुगुणानां = शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण कर्मों के विपाक के अनुसार ही। वासनानां = वासनाओं के। अभिव्यक्तिसामर्थ्य = अभिव्यक्ति की सामर्थ्य को। च = और। कार्य्यकारणयोः = कार्य तथा कारण दोनों की। ऐक्यप्रतिपादनेन = एकता के प्रतिपादन द्वारा। व्यहितानां = जाति, देश, काल से व्यवहित होने वाली, बीच में जाति, देश, काल का व्यवधान होने पर भी। वासनानां = वासनाओं की। अपि = भी। आनन्तर्य्यं = नैरन्तर्य्य, अविच्छिन्नता का। उपपाद्य = प्रतिपादन करके। तासां = उन वासनाओं के। आनन्त्ये = अनन्त, असंख्य, अपरिमित होने पर। अपि = भी। हेतुफलादिद्वारेण = हेतु, फल इत्यादि के द्वारा अर्थात् हेतु-फल-आश्रय-आलम्बन के द्वारा ही वासनाओं का संग्रह होता है, अतः इनके अभाव के निरूपण द्वारा ही। हानं = वासनाओं के अभाव, हानि का। उपदर्श्य = वर्णन करके। अतीतादिषु = अतीत-वर्तमान-अनागत इत्यादि। अध्वसु = कालों अवस्थाओं में। धर्मी में। धर्माणां = धर्मों की। सद्भावं = स्थिति, सत्ता की। उपपाद्य = सिद्धि करके। विज्ञानवादं = बौद्ध अभिमत विज्ञानवाद का। निराकृत्य = निराकरण करके। च = और। सत्कारवादं = सत्कारवाद की, अभिव्यक्ति से पूर्व कार्य अपने कारण में सद्रूप से ही विद्यमान रहता है। प्रतिष्ठाप्य = स्थापना, प्रतिष्ठा करके। पुरुषस्य = पुरुष के। ज्ञातृत्वं = ज्ञाता स्वरूप को। उक्त्वा = कह करके। चित्तद्वारेण = चित्त के द्वारा, चित्त के माध्यम से। सकलव्यवहारनिष्पत्ति = समस्त व्यवहारों

की सिद्धि का। उपपाद्य = प्रतिपादन करके अर्थात् बुद्धि के द्वारा ही द्रष्टृत्व कर्तृत्व, भोक्तृत्व इत्यादि सभी व्यवहारों की सिद्धि होती है। पुरुषसत्त्वे = पुरुषसत्त्व में, पुरुष की सत्ता की सिद्धि में। प्रमाणं = प्रमाण को। उपदर्श्य = दिखला कर, प्रस्तुत कर। कैवल्यनिर्णयाय = कैवल्य के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिये। दशभिः = दश। सूत्रैः = विशेषदर्शिनः ४।२४ से पुरुषार्थशून्यानां ४।३३ तक सूत्रों के द्वारा। क्रमेण = क्रमशः। उपयोगिनः = उपयोगी। अर्थान् = अर्थों, तत्त्वों का। अभिधाय = निरूपण करके: शास्त्रान्तरे = दूसरे शास्त्रों में, बौद्ध-जैन-न्याय-मीमांसा-वेदान्त इत्यादि दर्शनों में। अपि = भी। एतद् = यह। एव = ही। कैवल्यं = कैवल्य का स्वरूप है। इति = इस रूप से। उपपाद्य = प्रतिपादित करके। कैवल्यस्वरूपं = चिन्मात्र स्वरूप-प्रतिष्ठा ही अपवर्ग है, इस कैवल्य के स्वरूप का। निर्णीतं = निर्णय, स्थापना की गई। इति = इस प्रकार। कैवल्यपादः = प्रस्तुत योगशास्त्र के कैवल्यपाद नामक चतुर्थ एवं अन्तिम पाद का। व्याकृतः = व्याख्यान, विवेचन प्रस्तुत किया गया।

॥ इति चतुर्थः कैवल्यपादः ॥

भोजवृत्तिसमन्वितो हिन्दीव्याख्यासंवलितश्च समाप्तोऽयं ग्रन्थः

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

BHARATIYA VIDYA PRAKASHAN
1-UB, JAWAHAR NAGAR, BUNGALOW ROAD,
DELHI-110 007 PHONES : 2521570,
BRANCH :
P.B. NO. : 1108, KACHAURI GALI, VARANSI-221 001 (U.P.)
PHONE : 322376